आठवें दशक के बाद का हिन्दी कथा-साहित्य
कथ्यात्मक चिंतन और समय का सत्य

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी से
कला संकाय (हिन्दी) में पी-एच. डी. उपाधि
हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

शोध-निर्देशक :
डॉ० अश्विनी कुमार शुक्ल
प्रवक्ता
हिन्दी विभाग
पं. जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, बाँदा

शोधकर्त्ता :
राहुल मिश्र
एम. ए. हिन्दी

शोध-केन्द्र
पं. जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, बाँदा (उ. प्र.)

डॉ. अश्विनीकुमार शुक्ल
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
पं. जवाहर लाल नेहरू महाविद्यालय
बाँदा

निवास :
जिला विद्यालय निरीक्षक कार्यालय के सामने
स्वराज कालोनी, बाँदा
दूरभाष : 9415171833

प्रमाण-पत्र

मैं प्रमाणित करता हूँ कि श्री राहुल मिश्र ने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी से हिन्दी विषय में पी-एच.डी. उपाधि हेतु **'आठवें दशक के बाद का हिन्दी कथा-साहित्य : कथ्यात्मक चिंतन और समय का सत्य'** नामक शोध-प्रबन्ध मेरे निर्देशन में शोध अध्यादेश 7 के अनुसार निर्धारित उपस्थिति देकर पूर्ण किया है। इन्हें विश्वविद्यालय के पत्रांक बु.वि.वि./प्रशा./शोध/ 2005/ 1937-39 दिनांक 01/02/2005 के आधार पर शोध उपाधि समिति की बैठक दिनांक 22/12/2004 के द्वारा विषय की स्वीकृति प्रदान की गई थी। श्री राहुल मिश्र का प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध उच्चस्तरीय तथ्यों पर आधारित है तथा शोध के क्षेत्र में इस प्रबन्ध का मौलिक योगदान होगा। अतएव, मैं इसे मूल्यांकनार्थ बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी में प्रस्तुति हेतु प्रबलतम संस्तुति करता हूँ।

Ashwini Kumar Shukla
14.01.2007

(डॉ. अश्विनीकुमार शुक्ल)
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
पं. जवाहर लाल नेहरू महाविद्यालय
बाँदा (उ.प्र.)

भूमिका

अपने देश में कथा-किस्से-कहानियों और आख्यानों की गौरवशाली, समृद्ध परम्परा सद्यः प्रवाहित होती रही है। लोककथाएँ हों या ललित (साहित्यिक) कथा-साहित्य, अपने युग के सापेक्ष इनमें जीवन के विविध रंग और सामयिक यथार्थ के साथ ही शिक्षा व ज्ञान की तमाम बातें घुलमिल कर मानव-जीवन के साथ अटूट सम्बन्ध बनाए रहीं हैं।

हिन्दी का आधुनिक कथा-साहित्य अंग्रेजी व बंग्ला के प्रभाव से उत्पन्न हुआ। यदि यहीं से कथा-साहित्य की उत्पत्ति को स्वीकार कर लिया जाय तो लगभग डेढ़ सौ वर्षों की अपनी सतत् सृजन-यात्रा में हिन्दी के कथा-साहित्य द्वारा हासिल की गई उपलब्धियों को, स्थापित वर्चस्व को नकारा नहीं जा सकता। आठवें दशक के बाद के हिन्दी कथा-साहित्य ने समय के सत्य से गहनता के साथ जुड़कर कथा-साहित्य को श्रेष्ठ ऊँचाइयों पर स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

आठवें दशक के बाद जीवन की जटिलताएँ और विद्रूपताएँ, त्रासदियाँ और यंत्रणाएँ तेजी से उभरीं। यद्यपि यह स्थितियाँ पहले भी थीं, किन्तु देश की गुलामी के वृहद कालखण्ड और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के वर्षों में स्थितियाँ सुधरने के इंतजार में प्रायः दबी हुई ही रहीं। आठवें दशक के बाद के वर्षों में आम जनता के इंतजार का, सब्र का बाँध टूटा, साथ ही राष्ट्रीय स्तर पर (और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भी) तमाम क्रान्तिकारी, अप्रत्याशित घटनाओं ने जीवन की जटिलताओं और विद्रूपताओं को अभूतपूर्व तरीके से बढ़ा दिया।

अपने बाल्यकाल से ही जीवन पर गहराते संकट और हर क्षेत्र में चल रही बदलाव की तेज बयार को महसूस करते, देखते, सुनते और भोगते हुए नीरजा माधव की कहानी 'कतरनों वाली फाइल' के पात्र राजकिशोर जी की तरह कब से अखबारों की कतरनें और पत्रिकाएँ एकत्र करने लगा, मुझे याद नहीं आता। किन्तु एक प्रश्न मेरे मन में अवश्य हलचल मचाता रहा है कि क्या दादी-नानी द्वारा सुनाई जातीं परी देश की मनोहारी कथाओं की तरह ही हिन्दी का कथा-साहित्य भी मन बहलाव का साधन-मात्र है या समय के क्रूर सत्य को उजागर करते हुए मानव-जीवन के संघर्ष में सहभागी भी है? इसी जिज्ञासा ने ही प्रस्तुत शोध कार्य हेतु प्रेरित किया।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में मानव-सभ्यता के विकास के साथ ही निरन्तर

प्रवाहमान अललित कथा-साहित्य और ललित कथा-साहित्य को प्रस्तुत किया गया है। आठवें दशक तक के कथा-साहित्य के परिचय के साथ ही कथा-साहित्य के निरूपण, परिभाषाओं और परिधि को प्रथम अध्याय में रखा गया है। इस अध्याय को 'कथा-साहित्य का निरूपण एवं आठवें दशक तक का कथा-साहित्य' नाम दिया गया है।

'आठवें दशक के बाद का युगीन परिदृश्य', शोध-प्रबन्ध का द्वितीय अध्याय है। इस अध्याय में आठवें दशक के बाद के राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक परिवेश को प्रस्तुत करने के साथ ही इन क्षेत्रों में आए बदलावों को भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

तृतीय अध्याय में आठवें दशक के बाद के वर्षों में रचनाकर्म में प्रवृत्त कथाकारों सहित नवोदित कथाकारों के संक्षिप्त परिचय को प्रस्तुत किया गया है, साथ ही आठवें दशक के बाद के कथा-साहित्य के कथ्य को भी विश्लेषित किया गया है। तृतीय अध्याय को 'आठवें दशक के बाद का कथा-साहित्य, प्रमुख कथाकार और उनकी कृतियाँ' नाम दिया गया है।

चतुर्थ अध्याय- 'आठवें दशक के बाद की कहानियों के कथ्यात्मक चिन्तन के सन्दर्भ' है। इस अध्याय में आठवें दशक के बाद की कहानियों में वर्णित विविध पक्षों और पहलुओं को वर्तमान के यथार्थ के आलोक में प्रकट करने और विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

पंचम अध्याय उपन्यासों के कथ्यात्मक चिंतन पर आधारित है। 'आठवें दशक के बाद के उपन्यासों के कथ्यात्मक चिंतन के संदर्भ' शीर्षक से प्रस्तुत पंचम अध्याय में आठवें दशक के बाद के उपन्यासों में वर्णित राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और ऐतिहासिक परिवेश सहित स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को विश्लेषित किया गया है।

षष्ठ अध्याय में कथ्यात्मक चिन्तन और समय के सत्य के बीच स्थापित सम्बन्धों को तलाशने का प्रयास किया गया है। इस अध्याय को 'कथ्यात्मक चिन्तन और समय के सत्य के बीच सम्बन्धों के आधार' नाम दिया गया है। आठवें दशक के बाद के उपन्यास और कहानियों के कथ्यात्मक चिन्तन को समय के सत्य के साथ, वर्तमान के साथ और सामयिक यथार्थ के विविध पक्षों के साथ विश्लेषित करते हुए शोध के निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयास किया गया है।

सप्तम अध्याय में शोध-प्रबन्ध के निष्कर्ष को प्रस्तुत किया है। इस अध्याय में शोध से प्राप्त निष्कर्ष के रूप में यह बतलाने का प्रयास किया गया है कि कथा-साहित्य की निजी

विशिष्टताओं, मर्यादाओं और सीमाओं में रहते हुए आठवें दशक के बाद के हिन्दी कथा-साहित्य ने वर्तमान के यथार्थ को समग्रता के साथ अपने में समेटकर मानव और मानवता के प्रति अपने दायित्वों का निर्वहन किया है और इसी कारण साहित्य की अन्य विधाओं के बीच श्रेष्ठता भी पाई है, प्रतिष्ठा भी पाई है।

शोध-प्रबन्ध के परिशिष्ट में 'आज के कथाकारों' द्वारा प्राप्त विचारों को भी प्रस्तुत किया गया है, और ऐसा करते हुए शोध-प्रबन्ध को सर्वांगपूर्ण बनाने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को एकाग्रनिष्ठ होकर पूर्ण कर सकने हेतु सतत् निर्देशन, क्षमता व साहस श्रद्धेय गुरुवर डॉ. अश्विनीकुमार शुक्ल से प्राप्त हुआ है। अत्यधिक कार्य-व्यस्त होने के बावजूद श्रद्धेय गुरुवर ने बड़ी कृपापूर्वक मेरी प्रार्थना को स्वीकार किया और मेरा मार्गदर्शन किया, इस अहेतुक कृपा हेतु मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। श्रद्धेय गुरुवर के सहज, सरल, कर्मठ और उदारमना व्यक्तित्व के समक्ष मेरे आभार के यह शब्द नाकाफी हैं। गुरुमाता श्रीमती रेखा शुक्ला और गुरुभगिनी आकांक्षा शुक्ला के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ, जिनका आशीर्वाद निरन्तर सम्बल प्रदान करता रहा।

मेरे प्रेरणास्रोत नाना जी (स्व. जगन्नाथ प्रसाद मिश्र), अम्मा जी (स्व. श्रीमती श्यामा देवी मिश्रा) और पिता (स्व. मेजर विनोद कुमार मिश्र) को इस अवसर पर भुला नहीं सकता, जिनके कारण यहाँ तक पहुँचने में सक्षम हो सका।

पं. जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, बाँदा के प्राचार्य डॉ. नन्दलाल शुक्ल, डॉ. वेद प्रकाश द्विवेदी, डॉ. रामगोपाल गुप्त, डॉ. शशिकान्त अग्निहोत्री, डॉ. गया प्रसाद 'सनेही' व श्री नरेन्द्र पुण्डरीक के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, जिनका मार्गदर्शन मुझे हर समय प्राप्त होता रहा।

प्रो. आनन्द कुमार (जे.एन.यू. नई दिल्ली), भिक्षु लोबजंग नोरबू शास्त्री (सारनाथ) और डॉ. मनोज कुमार (नई दिल्ली) के प्रति भी मेरे आभार के शब्द समर्पित हैं, जो समय-समय पर मेरा पथ-प्रदर्शन करते रहे।

अपने विद्यालय के विद्वान प्राचार्य डॉ. विनोद कुमार त्रिपाठी सहित विद्यालय परिवार (हिन्दू इण्टर कालेज, अतर्रा) के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। साथ ही मेरे आभार के शब्द समर्पित हैं उन सभी मित्रों के प्रति भी, जिन्होंने किसी भी प्रकार से इस शोध-कार्य में मेरा सहयोग दिया है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन (प्रयाग), नागरी प्रचारक पुस्तकालय (बाँदा) एवं गोविन्द वल्लभ पन्त शिक्षा पारितोषिक संकाय (अतर्रा) द्वारा संचालित पुस्तकालय के साथ ही केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ (वाराणसी) और लखनऊ विश्वविद्यालय (लखनऊ) के पुस्तकालयों से मूल्यवान पुस्तकीय सहायता प्राप्त हुई, इस हेतु मैं अनुगृहीत हूँ।

अपनी मौसी (श्रीमती चन्द्रलेखा शुक्ला) के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने शोध-छात्र के रूप में पंजीकृत होने के लिए शुल्क की धनराशि दी थी। अपनी माँ (श्रीमती रंजना मिश्रा), भाई-बहनों और सभी परिजनों के प्रति भी हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनका आशीष, स्नेह और शुभानुशंसा सदैव मेरा साहस बढ़ाती रही है।

साथ ही आभार व्यक्त करना चाहूँगा उन तमाम साहित्यकारों का, विद्वानों का और ज्ञात-अज्ञात महानुभावों का जिन्होंने किसी-न-किसी रूप में इस शोध-कार्य में सहायता की है, मदद दी है।

मैं आभार व्यक्त करता हूँ विधि कम्प्यूटर्स के व्यवस्थापक श्री अखिलेश कुमार द्विवेदी, श्री अनुरुद्ध कुमार त्रिपाठी एवं श्री धीरेन्द्र कुमार शर्मा के प्रति भी, जिन्होंने इस शोध-ग्रन्थ को मूर्त रूप दिया है।

राहुल मिश्र

(राहुल मिश्र)

शोधार्थी

अनुक्रमणिका

अध्याय - प्रथम

कथा-साहित्य का निरूपण एवं आठवें दशक तक का कथा-साहित्य

अध्याय - द्वितीय

आठवें दशक के बाद का युगीन परिदृश्य

अध्याय - तृतीय

आठवें दशक के बाद का कथा-साहित्य, प्रमुख कथाकार और उनकी कृतियाँ

अध्याय - पंचम

आठवें दशक के बाद के उपन्यासों के कथ्यात्मक चिंतन के सन्दर्भ

अध्याय - षष्ठ

कथ्यात्मक चिंतन और समय के सत्य के बीच सम्बन्धों के आधार

अध्याय : प्रथम

कथा-साहित्य का निरूपण एवं आठवें दशक तक का कथा-साहित्य

कथा-साहित्य का निरूपण एवं आठवें दशक तक का कथा-साहित्य

आज का कथा–साहित्य तमाम प्रवृत्तियों और आन्दोलनों के रूपबंधों को तोड़कर समाज की जटिलताओं और समय के सत्य को इतनी निकटता और गहनता से रूपायित करने लगा है कि जीवन का कोई पहलू, मानव मन और भावनाओं का कोई कोना कहीं पर भी छूट जाने की संभावना लगभग शून्य हो गई है। जीवन की संवेदना, जीवन के संघर्ष और जीवन की जटिलताओं को समग्रता और सूक्ष्मता से रूपायित करने के कारण कथा–साहित्य ने न केवल हिन्दी गद्य की विविध विधाओं के बीच केन्द्रीय स्थिति बना ली है, बल्कि कविता को भी प्रभावित कर दिया है। लम्बे समय तक हिन्दी साहित्य में छाई रहने वाली कविता, कथा–साहित्य के खुले कथ्य और सहज रूप में परिवेशगत गहन यथार्थ को स्वयं में समाहित किये हुए कथात्मक तत्त्व से प्रभावित हुए बिना न रह सकी और कथा–विस्तार समेटे कथ्य वाली कविताओं का एक नया दौर ही शुरू हो गया। जहाँ एक ओर कविता ने आधुनिक साहित्य से प्रभावित होकर अपना चोला बदला वहीं दूसरी ओर गद्य–साहित्य की विविध विधाएँ (डायरी, संस्मरण, रिपोर्ताज आदि) कथा–साहित्य में ही उतरने लगीं। समय और समाज की जटिलताओं, समस्याओं, अन्तर्विरोधों, विसंगतियों और विद्रूपताओं; मानवीय संवेग और भाव की यथार्थ अभिव्यक्ति के कारण लगभग सौ वर्षों के अन्तराल में ही कथा–साहित्य ने हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं के मध्य न केवल अपनी स्पष्ट पहचान बना ली, वरन् सबके मध्य केन्द्रीय स्थिति को भी प्राप्त कर लिया।

फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के कारण हिन्दी का साहित्य प्रभावित हुआ और नए युग का सूत्रपात हुआ। भारतेन्दु युग के उदय के साथ ही हिंदी का कथा–साहित्य भी नयापन लेकर नए रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने लगा। यहीं से कथा–साहित्य में उपन्यास और कहानी के बीच विभाजक रेखा खिंच गई। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों द्वारा प्रायः इस युग में कथा–साहित्य (उपन्यास एवं कहानी) का प्रमाणिक उद्‌भव माना जाता है। इस प्रकार हिन्दी के आधुनिक कथा–साहित्य की आयु भले ही सौ वर्षों से कुछ ही अधिक हो लेकिन कथा, किस्से, कहानियाँ उतनी ही पुरानी हैं, जितनी मानव सभ्यता। भारतीय समाज में परम्परागत तरीके से चली आ रही लोककथाएँ सांस्कृतिक व साहित्यिक संक्रमण और नवीन भावबोध के कारण लगभग एक शताब्दी पूर्व आधुनिक रूप में विकसित हो सकीं। यदि भारतीय समाज में लोककथाएँ, किस्से आदि पुरातन काल से न चले आ रहे होते तो आधुनिक कथा–साहित्य की उत्पत्ति भी

संभवतः इतनी सरल न होती। कथा, किस्से, कहानियों के कथा-साहित्य बनने तक की यह यात्रा जितनी लम्बी है, उतनी ही रोचक भी है।

कथा-साहित्य के अतीत के बारे में भले ही पुस्तकों में सामग्री न मिले किन्तु व्यावहारिक रूप से किस्से, कहानियों के जन्म और विकास को सभी जानते होंगे। प्राचीन काल में मानव जीवन की तमाम रोचक घटनाएँ, पुरानी बातें और गल्प, आसपास का वातावरण, पेड़-पौधों, पशु-पक्षिओं आदि की बातें कथात्मक रूप में एक दूसरे को सुनाना ही मनोरंजन और समय व्यतीत करने का साधन बन जाता था। साहित्य की दृष्टि में महत्त्वहीन होने के बाद भी यह कथा-साहित्य के जन्म का पहला पड़ाव था। मानव और मानवेतर परिवेश से जन्मीं ऐसी कथाओं से, किस्सों और कहानियों से ही कालान्तर में साहित्यिक (ललित) कथा परम्परा विकसित हुई और लोककथाओं व लोकगाथाओं, किस्सों व कहानियों के रूप में असाहित्यिक (अललित) कथा परम्परा ललित कथा-साहित्य को जीवनीय और पोषणीय ख़ुराक देकर निरन्तर विकसित, उन्नत और समृद्ध बनाती रही। ललित कथा-साहित्य के उद्‌भव, निरन्तर विकास (भाषा, कथ्य और शिल्प के स्तर पर) और श्रेष्ठता प्राप्त करने की यात्रा में समानान्तर रूप से परम्परागत लोक-साहित्य भी चलता रहा। आज भी हर समाज (ग्रामीण और शहरी), हर वर्ग (अमीर और गरीब) व हर जाति-धर्म में दादी-नानी की कहानियाँ, परी देश और जंगल की कहानियाँ जैसी ढेरों कहानियाँ विद्यमान हैं।

इस प्रकार साहित्य के साँचे में ढला और इससे मुक्त, दोनों प्रकार का कथा-साहित्य विकसित हुआ और अपनी विकास-यात्रा से इसने व्यक्ति, समाज, समीक्षक, साहित्यिक व इतिहासकार को रोमांचित किया। मानव सभ्यता के विकास, जीवन-स्तर में परिवर्तन, शिक्षा के विस्तार, विज्ञान के प्रसार और परिवेशगत बदलाव ने प्रथम पक्ष को अपेक्षाकृत सबल किया और कालांतर में प्रतिष्ठित भी। मुद्रण तकनीक के विकास के साथ ही लिखित कथा-साहित्य में वृद्धि होती गई और नवीनता का भी समावेश होता गया। आधुनिक कथा-साहित्य इसी विकास की देन है। तब से लेकर आज की स्थिति में पहुँचे कथा-साहित्य के बारे में विद्वानों के मत/परिभाषाएँ, कथा-साहित्य की परिधि और उसके निरूपण इत्यादि के संदर्भ में निम्न बिंदुओं के अन्तर्गत विवेचना प्रस्तुत है-

(क) कथा-साहित्य का अतीत, निरूपण, परिभाषाएँ व कथा-साहित्य की परिधि

(ख) आठवें दशक तक के कथा-साहित्य का परिचय

(क) कथा-साहित्य का अतीत, निरूपण, परिभाषाएँ व कथा-साहित्य की परिधि :-

विषय की सुलभता एवं अध्ययन की सुगमता हेतु निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत अध्ययन अपेक्षित है-

(अ) कथा-साहित्य का अतीत

(आ) निरूपण

(इ) परिभाषाएँ

(ई) कथा-साहित्य की परिधि

(अ) कथा-साहित्य का अतीत :-

कथा-साहित्य का उद्भव कब हुआ ? यह ठीक-ठीक कह सकना संभव नहीं है, क्योंकि मानव ने जब अपनी बात कहने के लिए, अपने भावों को व्यक्त करने के लिए केवल सांकेतिक भाषा के स्थान पर वाणी का भी सहारा लिया होगा लगभग तभी से कथाओं का भी जन्म हो गया होगा। आदिमकाल में जब मनुष्य के पास अपने भावों और विचारों को व्यक्त करने का, समस्या और दुःख-दर्द बाँटने का एकमात्र साधन बोलचाल था, तब जीवन की तमाम बातें, आवश्यकताएँ आदि, अतीत के अनुभव और भविष्य की कल्पनाएँ एक दूसरे को सुनाना और सुनना यही सब कथा रूप में परिणित होता गया। जीवन के विस्तार ने, अस्तित्व के संघर्ष ने और प्राकृतिक परिवेश ने आदिम मनुष्य के मानस पर ऐसा प्रभाव डाला कि इनसे जुड़ी तमाम घटनाएँ, विश्वास और मन में उठने वाले भावों व संवेदनाओं ने आदिम कहानी को जन्म दिया। तब पशु-पक्षियों के शिकार, सूरज, चाँद, नदी, तारे, पेड़-पौधे जैसी जीवन की तमाम आवश्यकताओं के बीच इन्हीं सबकी कहानियाँ और किस्से उगने लगे। घटना-प्रधान कथाएँ धीरे-धीरे मनोरंजन और समय व्यतीत करने का साधन बनने लगीं। ऐसी कथाओं में कल्पना लोक की सैर के साथ ही नीतिपरक और हितोपदेश की कथाएँ बनने लगीं। कथाओं के विकास का यह क्रम मानव सभ्यता के विकास, ज्ञान-विज्ञान और सामाजिकता के विकास के समानांतर विकसित होने लगा। वाचिक परम्परा और स्मरण रखने की आवश्यकता के कारण कथाएँ प्रायः पद्यात्मक ही थीं। सभ्यता के विकास के साथ ही लिपि के आविष्कार ने कथाओं को साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया। यहीं से कथा-साहित्य की दो धाराएँ फूटीं। पहली लोकसाहित्य या अललित साहित्य

की और दूसरी ललित या साहित्यिक कथा-साहित्य की। भारत की आर्य भाषा वैदिक संस्कृत में ललित कथा-साहित्य रचा गया। दूसरी ओर जनभाषा में लोकसाहित्य चलता रहा। क्रमबद्ध अध्ययन के दृष्टिकोण से निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन अपेक्षित है-

(1) अललित कथा-साहित्य (लोककथा)

(2) ललित कथा-साहित्य

(1) अललित कथा-साहित्य (लोककथा) :-

अललित कथा-साहित्य से आशय उन कथाओं, किस्सों और कहानियों से है, जिन्हें, साहित्यिक मान्यता प्राप्त नहीं है। इन्हें लोककथा भी कहा जा सकता है। लोककथाओं से ही ललित कथाओं का जन्म हुआ। प्राचीनता की दृष्टि से लोककथाओं की परम्परा अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन है। लोककथाओं से ही ललित कथा-साहित्य अपना रस-संचय करता है। आदि मानव की आदिम कहानियाँ और कथाएँ, लोककथाएँ ही थीं, जिनमें मानव के श्रमसाध्य जीवन के बीच विश्राम के क्षण, सभ्यता, संस्कृति और समाज के विकास की भावना, प्रकृति, परिवेश, परिवेश से सम्बद्ध मानवेतर पात्रों (जीव-जन्तुओं, पेड़-पौधों, पशु-पक्षिओं आदि) से जुड़े अच्छे या बुरे संस्मरण, आचार-विचार, धार्मिक विश्वास व मान्यताएँ, अंधविश्वास, टोने-टोटके और तंत्र-मंत्र सभी कुछ शामिल थे। आज जैसे मनोरंजन के साधनों के अभाव में ऐसी लोककथाएँ मनोरंजन का साधन तो बनती ही थीं, साथ ही नीतिपरक शिक्षा और ज्ञान लेने-देने का माध्यम भी बन जाती थीं। सामाजिक और साहित्यिक विकास के समानांतर लोककथाएँ भी विकसित होती गईं। कभी लोककथाओं ने ललित साहित्य को पुष्ट किया, आगे का रास्ता दिखाया तो कभी लोकजीवन से दूर रहने वाला ललित साहित्य ही लोककथाओं में उतर आया। साहित्यिक भाषा और लोक-भाषा के बीच की खाई के कारण और शिक्षा के अभाव के कारण पुराण और शास्त्रों की शिक्षाप्रद, नीतिनिर्देशक बातों को लोकजीवन तक पहुँचाने का माध्यम भी लोककथाएँ ही बनीं। पौराणिक आख्यानों और शास्त्रीय परम्पराओं से आगत तमाम किंवदंतियाँ और कथाएँ लोकजीवन में प्रचलित हो गईं। शनैः शनैः ये लोककथाएँ, किंवदंतियाँ, किस्से आदि समाज के हर वर्ग में, अमीर-ग़रीब में फैल गए। लोककथाओं के विस्तार ने सामाजिक जीवन को भी प्रभावित किया। मनोरंजन और नीतिपरक शिक्षा के अतिरिक्त लोककथाओं ने पारिवारिक ढाँचे और सामाजिकता को भी विस्तार दिया। परिवार के बड़े-बूढ़ों (दादा-दादी, नाना-नानी आदि) द्वारा बच्चों को किस्से,

कथाएँ सुनाई जाने लगीं जिससे परिवार में पीढ़ियों के बीच का अंतर समाप्त हुआ। दूसरी ओर चौपालों मे सामूहिक रूप से किस्से, कहानियों को सुनने-सुनाने की प्रथा ने सामाजिकता की भावना को बल दिया। साथ ही समाज में सौहार्द, भाईचारे, सामूहिक उत्तरदायित्व और आपसी समन्वय जैसी उदात्त भावनाएँ भी विकसित होती गई।

लोक परम्पराओं के विकास, सांस्कृतिक सुदृढ़ीकरण और लोककथाओं के मध्य समानुपातिक सम्बन्ध है। लोक परम्पराओं से लोककथाएँ उपजती हैं और लोककथाओं का सहारा पाकर लोक परम्पराएँ विकसित होती हैं। इसी प्रकार सांस्कृतिक सुदृढ़ीकरण व समृद्धि और लोककथाओं के मध्य अन्तर्सम्बन्ध होते हैं। संस्कृति, लोक परम्पराएँ और लोककथाएँ, किंवदंतियाँ, किस्से, कहानियाँ आदि उस समाज की वैचारिक प्रखरता एवं विकास का स्तर भी निर्धारित करती हैं। युगीन परिवेश और सामाजिक चेतना के अनुरूप ही लोककथाएँ, किस्से आदि भी परिवर्तित और संवर्द्धित होते रहते हैं। सांस्कृतिक और सामाजिक विकास के साथ कथाओं, किस्सों, कहानियों का न केवल स्वरूप बदलता गया, बल्कि लोक जीवन के अनुरूप लोककथाओं के विविध स्वरूप बनते गए। लोककथाओं के स्वरूप, विषय और उपयोगिता के आधार पर विभिन्न विद्वानों द्वारा इनका वर्गीकरण किया गया है। भारतवर्ष की लगभग सभी भाषाओं और बोलियों में प्रचलित लोककथाओं का प्रामाणिक वर्गीकरण यद्यपि प्रकाश में नहीं आया है तथापि डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय द्वारा किये गये वर्गीकरण को अपेक्षाकृत तर्कसंगत और व्यवहारिक माना जाता है। इसी के अनुरूप लोककथाओं को वर्गीकृत करते हुए विस्तृत अध्ययन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत अपेक्षित है-

(1) उपदेश कथा

(2) व्रत कथा

(3) प्रेम कथा

(4) मनोरंजन कथा

(5) सामाजिक कथा

(6) पौराणिक कथा

(1) उपदेश कथा :-

अधिकांश कथाओं का उद्देश्य नीति की या हित की बात बताना होता है। अशिक्षा के कारण या साधनों के अभाव की स्थिति में ज्ञान की, नीति की व हित की तमाम बातें बताने

का रोचक और कलात्मक माध्यम उपदेश कथाएँ ही होती हैं। नेवले की कथा, गीदड़ और शेर की कथा, लोमड़ी की कथा आदि इसके उदाहरण हैं।

(2) व्रत कथा :-

भारतीय लोकमानस में व्याप्त धार्मिक परम्पराओं और मान्यताओं से भी लोककथाओं का घनिष्ठ सम्बन्ध है। कोई भी तीज-त्योहार हो, धार्मिक अनुष्ठान हो या व्रत हो वह तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक उससे कोई कथा नहीं जुड़ जाती। इसी कारण हर पर्व में कथाएँ सुनने-सुनाने का प्रचलन है। यद्यपि, ऐसी कथाओं के रचयिता कौन हैं ? कहाँ के निवासी हैं ? जैसे तमाम प्रश्न अनुत्तरित हैं, तथापि ऐसी व्रत कथाएँ धार्मिक मान्यताओं के साथ बहुत गहराई से जुड़ी हुई हैं। जगन्नाथ स्वामी की कथा, नागपंचमी की कथा, हलछठ की कथा, करवाचौथ की कथा, चिरैया-गौर की कथा, भैयादूज की कथा, संकटचौथ की कथा, सत्यनारायण की कथा जैसी तमाम व्रत कथाएँ धार्मिक मान्यताओं और परम्पराओं का महत्त्वपूर्ण अंग हैं।

(3) प्रेम कथा :-

मानव जीवन में प्रेम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मानव सभ्यता और सामाजिकता के विकास के साथ ही आपसी प्रेम भावना भी विकसित होती गई और ये प्रेमानुभूतियाँ लोककथाओं का अंग बनती गईं। वात्सल्य, मातृत्व, दाम्पत्य और मित्र-प्रेम सहज भाव से लोक कथाओं में अभिव्यक्त होता रहा। ऐसी लोककथाओं, किस्सों, कहानियों को प्रेम कथा के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

(4) मनोरंजन कथा :-

कोई नीति की बात कहने या उपदेश देने के बजाय मनोरंजन के लिए कही जाने वाली कथाएँ मनोरंजन कथा के अन्तर्गत आती हैं। ऐसी कथाओं का उद्देश्य किसी आदर्श की स्थापना या कोई विशेष कथन कहना नहीं, केवल मनोरंजन और वातावरण को हल्का करना होता है। बुन्देलखण्ड में इन्हें ढकोसला कहा जाता है।

(5) ~~मनोरंजन~~ सामाजिक कथा :-

ऐसी कथाओं के अन्तर्गत समाज की विभिन्न समस्याएँ व आवश्यकताएँ प्रकट करने वाली कथाएँ आती हैं। समस्याओं को प्रकट करते हुए ये कथाएँ न केवल परिणाम तक ले जाती हैं वरन् सार्थक समाधान बतलाते हुए सुखान्त से समाप्त होती हैं। सामाजिक समस्याओं को

चित्रित करने हेतु विभिन्न काल्पनिक पात्रों, स्थान और समय का चयन किया जाता है। मुख्यतः मानवीय पात्रों को लेकर ही ये कहानियाँ गढ़ी जाती हैं। जैसे-राजा-रानी, मुखिया, किसान, साहूकार आदि।

(6) पौराणिक कथा :-

धार्मिक ग्रंथों, पुराणों आदि में वर्णित कथाएँ भी लोककथाओं का अंग बन जाती हैं। शिक्षा के अभाव और साधनों की कमी के कारण समाज का बड़ा वर्ग वेद, पुराण आदि धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन और उनमें निहित नीतिपरक बातों से विलग रह जाता था। पौराणिक लोककथाओं के माध्यम से इस कमी को पूरा करने का प्रयास किया गया। नल-दमयंती, सत्य हरिश्चन्द्र, दधीचि, राजा भरथरी, श्रवण कुमार, सती अनुसूया जैसी तमाम लोककथाएँ ज्ञान और नीति के विस्तार में सहायक सिद्ध हुई, साथ ही समाज को रास्ता दिखाने, उपदेश देने का कार्य भी किया।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि विविध रूपों में, विविध तरीकों से प्रचलित ये लोककथाएँ, किस्से और कहानियाँ भारतीय जनमानस में न केवल गहरे तक पैठी हुई थीं, वरन् सामाजिकता व संस्कृति का भी अंग थीं। शिष्ट कथा-साहित्य के निर्माण में महत् योगदान देने वाली ऐसी लोककथाएँ शिष्ट कथा-साहित्य (लौकिक कथाओं) की उत्पत्ति के बाद उनके विकासक्रम में अलग वर्ग बन गई। लोककथा और शिष्टकथा दो अलग-अलग धाराओं के रूप में चलने लगीं। साहित्य ने लोककथाओं को मान्यता नहीं प्रदान की। लोककथाएँ, लोकजीवन में ही जीवित रहकर विकसित होती रहीं। समाज के विकास ने, विज्ञान के विकास ने, शिक्षा के प्रसार ने और बदलते मानवीय मूल्यों ने लोककथाओं को भी प्रभावित किया। पारिवारिक और सामाजिक ढाँचे को मजबूत करने और बिखरने से बचाने में बड़ा योगदान करने वाली लोककथाएँ समय के साथ पिछड़ती चली गई। तमाम बदलावों के बाद भी लोककथाओं का नैसर्गिक स्वरूप सदैव जीवित रहा और आज भी जीवित है। वृहद रूप में न सही, फिर भी गाँवों की चौपालों में, शहर की बैठकों में, दादा-दादी, नाना-नानी के कमरों में आज भी ये लोककथाएँ जीवित हैं। बच्चों की कहानियाँ सुनने की जिद आज भी है। विज्ञान के प्रयोग, मनोरंजन के नित नवीन आविष्कृत होते साधनों के बीच, परिवार और समाज के टूटते मानदण्डों के बीच में भी लोक कथाएँ जीवित हैं, जीवन्त हैं और संभवतः अपने उद्देश्य में डटी हुई भी हैं। जब तक समाज है तब तक ये लोककथाएँ

भी रहेगीं और इन्हीं के बूते कथा-साहित्य भी, क्योंकि ये लोककथाएँ वह जमीन हैं- जिस पर आधुनिक कथा-साहित्य की नींव पड़ी है।

(2) ललित कथा-साहित्य :-

ऐसा कथा-साहित्य, जिसे साहित्यिक मान्यता प्राप्त हो, ललित या शिष्ट कथा-साहित्य कहा जा सकता है। शिष्ट कथा-साहित्य की उत्पत्ति से पूर्व लोककथाएँ, किस्से और कहानियाँ प्रचलित थीं। इन्हीं से होते हुए शिष्ट कथा-साहित्य की उत्पत्ति हुई। लिपि के निर्माण ने ललित कथा-साहित्य के विकास में बहुत बड़ा योगदान दिया। प्रारम्भिक दौर में लिपि का प्रयोग बहुत ही सीमित था। कागज और छापाखाना के बिना साहित्य का जीवन वाचिक परम्परा के भरोसे ही चलता था। इस कारण कथा-साहित्य काव्यात्मक रूप में ही था, जिससे दीर्घकाल तक इसको स्मरण रखा जा सके और सहजता के साथ उसे दूसरी पीढ़ी को स्थानान्तरित भी किया जा सके। गुरुकुलों में वाचिक परम्परा के माध्यम से अध्ययन-अध्यापन होता था और इन्हीं में कथा-साहित्य जीवित रहता था। भावों को सहजता, यथार्थ और शक्तिशाली तरीके से अभिव्यक्त कर सकने की क्षमता की कमी और साधनों के अभाव के कारण प्राचीनकाल के कथाकारों को काव्य का सहारा लेना पड़ता था। इस प्रकार की कथा भी काव्यकला का ही एक अंग थी। कोमल कोठारी इस सन्दर्भ में लिखते हैं कि "आदिम समाज का सम्पूर्ण कलात्मक एवं वैज्ञानिक जीवन कथाओं के माध्यम से व्यक्त होता था और कथाएँ कविता के माध्यम से अपना रूप निर्मित करतीं थीं।"[1]

ऋग्वेद को विश्व सभ्यता का प्राचीनतम ग्रंथ माना जाता है। ऐसी भी मान्यता है कि वेद अपौरुषेय है। मान्यताओं की सत्यता के तर्क के बजाय यह देखना होगा कि ऋग्वेद में ही कथा, कहानियों के सूत्र मिलने लगते हैं। इसका आशय यह है कि ऋग्वेद के पूर्व से ही लोककथाएँ, कहानियाँ आदि वाचिक परम्परा के रूप में समाज में व्याप्त रही हैं। ऋग्वेद का निम्न सूक्त इस स्थान पर उल्लेखनीय है-

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां
भर्यो न योषामभ्येति पश्चात्

(ऋग्वेद, प्रथम मण्डल, 115 वाँ सूक्त)

(सूर्य, दिव्य तथा ज्योतिष्मयी उषा के पीछे-पीछे ऐसे ही जाता है जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी

के पीछे)

ऋग्वेद में विविध कथा प्रसंग आए हैं जो लगभग 20 संवाद-सूक्त के रूप में संकलित हैं। इन संवाद-सूक्तों में कथा-साहित्य के तत्त्व छिपे हुए हैं। ओल्डेनवर्ग, मैक्समूलर, हर्टेल तथा श्रोएडर प्रभृति पाश्चात्य विद्वानों द्वारा इन संवादों को 'आख्यान सूक्त' कहा गया है और मत दिया गया है कि इनमें गद्य और पद्य दोनों रूप विद्यमान थे। पद्य को कंठस्थ करने की परंपरा थी, इस कारण कालांतर में गद्य भाग विलुप्त हो गया तथा पद्य भाग ही शेष रहा। गद्य भाग में कथा-साहित्य के तथा पद्य भाग में कविता के प्रारम्भिक रूप विद्यमान थे। इन संवाद-सूक्तों में प्रमुख रूप से पुरुरवा-उर्वशी संवाद (ऋग्वेद, संवाद-सूक्त 10.85); यम-यमी संवाद (ऋग्वेद, संवाद-सूक्त 10.10); विश्वामित्र-नदी संवाद (ऋग्वेद, संवाद-सूक्त 03.33); सरमा-पाणि संवाद (ऋग्वेद, संवाद-सूक्त 10.130) आदि आते हैं। इसी प्रकार यजुर्वेद और अथर्ववेद में कथाओं के सूत्र मिलते हैं। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय, मैत्रायणी और कठ शाखा में कथाएँ हैं। आरण्यक ग्रंथों और ब्राह्मण ग्रंथों में भी पौराणिक कथाएँ वर्णित हैं।

यजुर्वेद की शुक्ल शाखा में वैशम्पायन-याज्ञवल्क्य कथा, कृष्ण यजुर्वेद की कठ संहिता में सावित्री-पंचचूड़ व स्वर्ग दीक्षित आदि की कथाएँ हैं।

सामवेद में ऋचा और साम के मध्य संवाद में भी कथा-साहित्य के सूत्र छिपे हैं।

अथर्ववेद में तत्कालीन समाज की स्थिति का व्यापक एवं वृहद चित्रण किया गया है। इसमें लोकसंस्कृति से सम्बद्ध तत्त्व भी समाविष्ट हैं। गोपथ ब्राह्मण में अथर्ववेद की श्रेष्ठता और सामाजिक संलग्नता सिद्ध करने वाली एक आख्यायिका वर्णित है। अथर्ववेद की समाज और सत्य से निकटता के कारण इसे वेदत्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) से अलग रखा जाता है।

ब्राह्मण ग्रंथों में भी कथाएँ, आख्यान व आख्यायिकाएँ वर्णित हैं। ऐतरेय ब्राह्मण ग्रंथ में शुनः शेप का मार्मिक आख्यान है। शतपथ ब्राह्मण ग्रंथ में पुरुरवा-उर्वशी, दौष्यन्ति-भरत, श्रद्धा-मनु, वृत्तासुर वध तथा सांख्याचार आसुरि व पाण्डववंशीय राजा जनमेजय की कथाएँ हैं। ताण्ड्य महाब्राह्मण में भी अनेक महत्त्वपूर्ण आख्यान हैं।

वेदों और ब्राह्मण ग्रंथों की भाँति ही उपनिषदों में भी कथाएँ प्राप्त होती हैं। कुछ उपनिषद गद्यात्मक रूप लिये हुए हैं, यथा- वृहदारण्यक, छान्दोग्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, कौषीतकि, केन आदि। कुछ उपनिषदों का स्वरूप पद्यात्मक है, यथा-कठ, ईश, श्वेताश्वतर आदि। प्रायः उपनिषदों

की संख्या 108 से लेकर 200 तक मानी जाती है, किन्तु जिन उपनिषदों पर शंकर का भाष्य प्राप्त होता है उन्हीं को प्रमुखता दी जाती है। ऐसे उपनिषदों में से केन उपनिषद में उमा-हेमवती का आख्यान; कठोपनिषद में यम-नचिकेता का आख्यान; प्रश्नोपनिषद में पिप्पलादि छः ऋषियों का आख्यान; छांदोग्य उपनिषद में आंगिरस का आख्यान, सूर्य की उत्पत्ति की कथा, सत्यकाम जावालि और उसकी माता की कथा, उपकोसल की कथा, अश्वपति कैकेय व छः तत्त्व जिज्ञासुओं का संवाद, नारद-सनत्कुमार संवाद तथा इन्द्र और विरोचन की कथा; वृहदारण्यक उपनिषद में हिरण्यगर्भ के यज्ञ-अश्व का वर्णन, संसार की उत्पत्ति की कथा, गार्ग्य ब्राह्मण-राजा अजातशत्रु संवाद व याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद आदि मिलते हैं। इन संवादों, आख्यानों और कथाओं को आधुनिक कथा-साहित्य का आदिम चरण कहा जा सकता है।

वैदिक साहित्य में पुराणों को पंचम वेद कहा गया है। चूंकि वेदों के अध्ययन और ज्ञान का क्षेत्र सीमित और तमाम नियमों, परम्पराओं में बद्ध था इस कारण वेद, समाज के एक बड़े वर्ग के लिए दुर्लभ थे। वेद ज्ञान को सुलभ और सहज बनाने हेतु पुराणों की रचना की गई। समाज के अधिक निकट होने के कारण पुराणों में धार्मिक रीति-रिवाज, सामाजिक मान्यताएँ, नीतियाँ आदि बहुतायत मात्रा में हैं। तदनुसार पुराणों में तमाम कथाएँ भी समाविष्ट हैं। इस समय अठारह पुराण और अठारह उपपुराण प्राप्त हैं। पुराणों की नामावली में 'ब्रह्मपुराण' सर्वप्रथम है। 'ब्रह्मपुराण' में सृष्टि निर्माण की कथा, कृष्ण चरित्र और ब्रह्म-दक्ष संवाद आदि हैं। 'पद्मपुराण' में पुष्कर तीर्थ वर्णन, ययाति-पुरु की कथा, दुष्यंत-शकुंतला की कथा, रावण की कथा (रघुवंश) है; 'विष्णुपुराण' में विष्णु-लक्ष्मी आख्यान, कृष्ण लीला, चतुर्युग, नरक आदि का आख्यान है; 'शिव पुराण' में सृष्टि वर्णन व शिव आख्यान है; 'देवी भागवत' में मधु-कैटभ वध कथा, शिव वरदान कथा, शुक्राचार्य कथा, पाण्डवों की कथा, जनमेजय का नाग यज्ञ, सत्यव्रत कथा, महिषासुर वध कथा, संभासुर कथा, वृत्रासुर की कथा, हरिश्चंद्र कथा व मनु कथा आदि हैं। 'श्रीमद् भागवत' में परीक्षित की कथा कथा, हिरण्याक्ष वध कथा, दक्ष प्रजापति का आख्यान, ध्रुव कथा, पृथु की कथा, ऋषभदेव की कथा, भरत की कथा, प्रह्लाद की कथा, वामनावतार, मत्स्यावतार, अम्बरीष, मान्धाता, हरिश्चंद्र चरित, कृष्ण का जन्म, बाल लीला एवं मार्कण्डेय की कथा आदि हैं; 'मार्कण्डेय पुराण' में वृत्रासुर वध, हरिश्चंद्र, विश्वामित्र एवं वशिष्ट की कथाएँ हैं; 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में विष्णु के अवतार, गणेश की अनेक कथाएँ व कृष्णजन्म की कथाएँ है; 'वाराह

पुराण' में नचिकेता आख्यान है; 'स्कन्ध पुराण' में सनत्कुमार की कथा है; 'वामन पुराण' में शिव-विवाह व गणेश-कार्तिकेय की कथा है; 'कूर्म पुराण' में विष्णु के कूर्मावतार की कथा वर्णित है; 'मत्स्य पुराण' में मत्स्यावतार की कथा है और 'गरुड़ पुराण' में प्रेत कथा है। वेदों का ही भाग होने के कारण पुराणों में वर्णित अधिकांश कथाएँ एवं आख्यान वेदों से ही आगत हैं।

वैदिक संस्कृत-साहित्य से चलती हुई कथाओं, आख्यानों और संवादों की परम्परा लौकिक संस्कृत साहित्य में उत्तरोत्तर प्रगति की ओर अग्रसर होती गई। लौकिक संस्कृत साहित्य के उपजीव्य ग्रंथ- रामायण, महाभारत और गुणाढ्य-कृत वृहत्कथा में वर्णित ढेरों कथाओं और आख्यानों का परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। रामायण, महाभारत और वृहत्कथा में वर्णित कथा-प्रसंग वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों और उपनिषदों पर आधृत हैं, अनेक कथा-प्रसंग मौलिक भी हैं। रामायण और महाभारत में वर्णित कथाएँ हिन्दी सहित दुनिया की तमाम भाषाओं- पालि, अरबी, पहलवी, तुर्की, फारसी, ईरानी आदि भाषाओं में भी अनूदित हुईं और इस प्रकार दुनिया के तमाम देशों- श्रीलंका, कम्बोडिया, चीन, जापान, ईरान, तिब्बत, अफगानिस्तान, बर्मा, इण्डोनेशिया और वियतनाम आदि देशों में भी पहुँच गईं और वहाँ आज भी अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं।

विष्णु शर्मा (200 ई. पू.) द्वारा रचित 'पंचतंत्र' कथा-साहित्य का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें रोचक कथाओं के माध्यम से नीति के उपदेश भी दिये गए हैं। 'पंचतंत्र' का प्रभाव भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य पर पड़ा है। 'पंचतंत्र' की कहानियाँ बहुत दूर-दूर तक सैर कर चुकी हैं। इनके भ्रमण की कहानी स्वयं बड़ी रोचक है। संस्कृत की इन कहानियों का संसार में इतना अधिक प्रचार हुआ है कि यह विश्व-साहित्य का एक अंग बन गई हैं।

शिवदास द्वारा रचित 'वैताल पंचविंशतिका' में कथा रूप में विक्रम और वैताल की पच्चीस संवाद हैं। इसमें भी नीतिपरक उपदेश हैं। 'वैताल पंचविंशतिक' का भी विश्व की कई भाषाओं में अनुवाद हुआ है। इन ग्रंथों के अतिरिक्त 'शुकप्तति', 'कथार्णव' और 'पुरुष परीक्षा' आदि कथा ग्रंथ भी कथा-साहित्य के आदि ग्रंथ माने जाते हैं।

उपरोक्त महत्त्वपूर्ण कथा ग्रंथों के अतिरिक्त लौकिक संस्कृत-साहित्य में कथा, किस्से, कहानियों की दीर्घ परम्परा मिलती है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि कथाओं का स्वरूप गद्यात्मक होने के स्थान पर प्रायः पद्यात्मक ही है। इसका मूल कारण कथा को स्थायित्व देने की आवश्यकता रही होगी क्योंकि तत्कालीन समाज में लिपि का अल्प प्रसार व छापाखानों का

अभाव था, साथ ही अतिरेकी भावाभिव्यंजना के कारण कथाओं का स्वरूप काव्यात्मक था। इस सृष्टि से अगर देखा जाए तो लौकिक संस्कृत साहित्य का एक बड़ा भाग आधुनिक कथा-साहित्य का उपजीव्य कहा जा सकता है। वैसे संस्कृत साहित्य के निर्माण में गद्य की भूमिका की कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। पद्यकाव्य के अतिरिक्त गद्यकाव्य और गद्य-पद्य मिश्रित चम्पू काव्य में कथाएँ प्रचुर मात्रा में हैं।

संस्कृत साहित्यकारों ने मनोरंजन के लिए, नीति और आदर्श की स्थापना के लिए, सामाजिक जीवन को सुसंगठित बनाने के लिए एवं जीवन-दर्शन की स्थापना के लिए व्यापक स्तर पर कथाओं का, कथा-साहित्य का प्रणयन किया।

संस्कृत गद्य कवियों की परम्परा में दण्डी (9 वीं शती.) का उल्लेख सर्वप्रथम आता है। दण्डी द्वारा 'अवन्ति सुन्दरी कथा' एवं 'दशकुमार चरित' की रचना की गई। सुबन्धु (छठी शती. का उत्तरार्द्ध) ने 'वासवदत्ता' की रचना की, जिसमें राजकुमार कन्दर्पकेतु और वासवदत्ता की कथा वर्णित है। बाणभट्ट (सातवीं शती का पूर्वार्द्ध) ने 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' की रचना की, जिसमें 'हर्षचरित' आख्यायिका है और इसमें स्थाण्वीश्वर के सम्राट हर्षवर्धन का जीवन चरित बड़ी रोचकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। 'कादम्बरी' काल्पनिक कथा का ग्रंथ है। इसमें राजा चन्द्रापीड़ और कादम्बरी की प्रेमकथा मुख्य है, महाश्वेता और पुण्डरीक की प्रेमकथा व शुक की कथा आदि अनेक छोटी-छोटी कथाएँ भी हैं। इसलिए 'कादम्बरी' को आधुनिक उपन्यास का उपजीव्य ग्रंथ माना जाता है। बंगला कथा-साहित्य में उपन्यासों को 'कादम्बरी' ही कहा जाता था और प्रायः आज भी कहा जाता है। यह तथ्य 'कादम्बरी' और आधुनिक उपन्यासों के मध्य अन्तर्सम्बन्धों को स्वतः प्रकट कर देता है।

नीति कथा-साहित्य में 'हितोपदेश' का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। डॉ. कीथ के मतानुसार 'हितोपदेश' की रचना लगभग 900 से 1337 ई. के मध्य नारायण पण्डित द्वारा की गई है। 'हितोपदेश' में 'पंचतंत्र' का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। कवि भर्तृहरि द्वारा रचित 'नीतिशतक' भी इसी श्रेणी में आता है। इसके सौ श्लोकों में नीतिपरक बातें कथात्मक रूप में वर्णित हैं।

लौकिक संस्कृत साहित्यकारों द्वारा वेदों और पुराणों की कथाओं को लेकर रचनाएँ की गई हैं। महाकवि भारवि के 'किरातार्जुनीयम्' में; श्रीहर्ष के 'नैषधीयचरितम्' में; भवभूति के 'महावीरचरितम्' व 'उत्तररामचरित' में; कालिदास के 'विक्रमोर्वशीयम्', 'अभिज्ञान शकुन्तलम्',

'रघुवंश', 'कुमार सम्भव में; माघ के 'शिशुपाल वध' में; महाकवि भास के 'उरुभंगम', 'दूतवाक्यम्', 'पांचरात्रम्', 'दूत घटोत्कच' व 'अभिषेक नाटक' में वर्णित कथा-प्रसंग वेदों, पुराणों, रामायण और महाभारत से आगत हैं।

गुणाढ्यकृत 'वृहत्कथा' भी संस्कृत कथा-साहित्य का उपजीव्य ग्रंथ है। इसमें पाँचवीं-छठी शताब्दी के आसपास के तत्कालीन समाज, राजनीति, धर्म और संस्कृति को चित्रित करती अनेक कहानियाँ हैं। बाणभट्ट कृत 'कादम्बरी' भी इसी के आधार पर रची गई है। आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा 'वृहत्कथा' के संक्षिप्त रूप का प्रणयन 'वृहत्कथा मंजरी' (1063 ई.) में किया गया है। 'वृहत्कथा' को आधार बनाते हुए ही आचार्य सोमदेव द्वारा सरल-सुबोध भाषा-शैली में 'कथा सरित्सागर' की रचना 11वीं शता. के उत्तरार्द्ध में की गई।

500 ई. पू. के बाद बोलचाल की भाषा (संस्कृत) में विकास के स्पष्ट स्वरूप के दर्शन होने लगे और यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते इसमें तमाम प्रवृत्ति बदलाव आ गए। बोलचाल की इस नई भाषा को 'पालि' की संज्ञा दी गई। यह साहित्य की भाषा बनी। बुद्धकालीन साहित्य अधिकांशतः पालि भाषा में है। महात्मा बुद्ध ने अपने उपदेश भी पालि में ही दिये। महात्मा बुद्ध के जीवन पर आधारित 'जातक कथाएँ' पालि भाषा में ही हैं। 'जातक कथाओं' का कथा-क्षेत्र काफी विस्तृत है, इसमें राजा-महाराजा, सेठ-महाजन, जीव-जंतु, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी सभी आते हैं।

पहली ईसवीं तक आते-आते पालि में भी परिवर्तन स्पष्ट परिलक्षित होने लगे और इस नई भाषा को 'प्राकृत' नाम दिया गया। राजा सातवाहन हाल द्वारा रचित ग्रंथ 'गाथा सप्तशती' प्राकृत भाषा ग्रंथ है। इसमें नीतिपरक बातें रोचक तरीके से बताई गई हैं।

500 ई. के आसपास प्राकृत भाषा से विभिन्न क्षेत्रीय अपभ्रंशों का विकास स्पष्ट परिलक्षित होने लगा। अपभ्रंश में जैन साहित्य की रचना प्रमुखता से हुई। महावीर स्वामी के जीवन पर आधारित कथाएँ अपभ्रंश भाषा में मिलती हैं। नवीं शताब्दी में प्राकृत भाषा के कौतूहल कवि द्वारा 'लीलावती' नामक प्रेमकथा-काव्य लिखा गया। ऐसे ही प्रेमकथा-काव्य 'पद्मावती-कथा' की रचना दसवीं शताब्दी के मयूर कवि द्वारा की गई। इनके अतिरिक्त 'नायाधम्म कहाओ' नामक ग्रंथ में अनेक कथाएँ वर्णित हैं। 'समाराइच्च कहा' तथा 'प्रपंचकहा' भी अपभ्रंश कथा-साहित्य के ग्रंथ हैं। स्वयम्भू कृत 'पउमचरिउ' व 'रिट्ठणेमि चरिउ'; पुष्पदंत कृत 'महापुराण',

'जयकुमार चरिउ' व 'जसहर चरिउ' तथा धनपाल कृत 'भविसयत्तकहा' आदि रचनाओं में कथा-प्रसंग भरे पड़े हैं।

शौरसेनी, मागधी तथा अर्द्धमागधी अपभ्रंशों से हिन्दी भाषा का उद्भव हुआ। 1000 ई. के आसपास रचे गए साहित्य को हिन्दी का प्रारम्भिक साहित्य माना जाता है। काल-विभाजन की दृष्टि से 1000 ई. से 1500 ई. तक के कालखण्ड को हिन्दी भाषा का आदिकाल कहा जाता है। वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश से निरन्तर चली आ रही कथा-साहित्य सर्जना की परम्परा हिन्दी साहित्य के आदिकाल (1000-1350 ई.) में भी यथावत् दिखाई देती है। कथा-साहित्य का पद्यात्मक रूप ही आदिकालीन हिन्दी में मिलता है।

शालिभद्र सूरि ने 1184 ई. में 'भरतेश्वर-बाहुबली रास' नामक ग्रंथ की रचना की। इसमें अयोध्या के ऋषभ जिनेश्वर के पुत्रों- भरत और बाहुबली की कथाएँ वर्णित हैं। 1200 ई. के लगभग आसगु कवि द्वारा 'चन्दनबाला रास' की रचना की गई, इसमें चम्पानगरी के राजा दधिवाहन की पुत्री चन्दनबाला की कथा है। 1209 ई. में रचित 'स्थूलिभद्ररास' को 'जिनधर्मसूरि' की रचना माना जाता है। इसमें स्थूलिभद्र और कोशा नामक वेश्या की कथा है।

आदिकालीन हिन्दी के जैन 'रास साहित्य' और वीरगाथाओं से परिपूर्ण 'रासो साहित्य' में पर्याप्त भिन्नता है। 'रास' में धार्मिक दृष्टि का प्राधान्य है जबकि 'रासो' में राजाओं के चरित तथा प्रशंसा की गाथाएँ हैं। दलपति विजय ने नवीं शती में खुमाण नरेश के विवाह एवं युद्धों आदि का वर्णन 'खुमाण रासो' में किया है। नरपति नाल्ह ने 1016 ई. में 'बीसलदेव रासो' की रचना की, इसमें परमार वंशी राजकुमारी राजमती और अजमेर के चौहान राजा बीसलदेव तृतीय के विवाह, वियोग एवं पुनर्मिलन की रोचक कथा वर्णित है।

ग्यारहवीं शती. के आसपास अद्दहमाण (अब्दुल रहमान) द्वारा 'संदेश रासक' की रचना की गई, जिसमें एक विरहिणी स्त्री द्वारा पथिक से कथोपकथन के रूप में सुंदर प्रेमकहानी लिखी गई है। 'परमाल रासो' तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की रचना है और इसके रचनाकार महोबा के राजा परमार्दिदेव के राज्याश्रित कवि जगनिक हैं, इसमें आल्हा-ऊदल नामक दो वीरों की वीरतापूर्ण लड़ाइयों की कथा सहित प्रेम और विवाह की भी कथाएँ हैं। उत्तर प्रदेश में 'आल्हा' के नाम से रासो ग्रंथ को जाना जाता है और आज भी गाँवों में गाया जाता है। सं. 1343 ई. के आसपास चंदवरदायी द्वारा 'पृथ्वीराज रासउ' की रचना की गई, इसमें दिल्ली के अधिपति

पृथ्वीराज चौहान के जीवन, युद्ध एवं विवाह आदि की सजीव एवं रोचक कथाएँ हैं। 'पृथ्वीराज रासो' में हिंदी गद्य के प्राचीनतम रूप की झलक मिलती है। चंदवरदायी ने रासो में कथा को शुक और शुकी के मध्य संवाद द्वारा वर्णित और विस्तृत किया है। तत्कालीन कथाओं में दो व्यक्तियों के मध्य संवाद (वार्ता) के रूप में कथाएँ कहने का प्रचलन था। पृथ्वीराज रासो में निजंधरी कथाओं की परम्परा के दर्शन होते हैं, जिसमें कन्याहरण का वर्णन प्रधान है। सं. 1335 ई. में नल्ल सिंह द्वारा 'विजयपाल रासो' की रचना की गई। इसमें विजयपाल सिंह और पंग राजा के मध्य युद्ध का आख्यान है। विद्यपति द्वारा रचित 'कीर्तिलता' में भृङ और भृङी के मध्य संवाद के माध्यम से राजा कीर्ति सिंह का आख्यान प्रस्तुत किया गया है। विद्यापति ने अपनी कृति को 'कथा' नहीं बल्कि 'काहाणी' कहा है। कीर्तिलता, में वर्णित रोचक आख्यान और विद्यापति के वक्तव्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन लोक भाषा में कथा और कहानियाँ लिखने का प्रचलन था। पं. दामोदर शर्मा की पुस्तक 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' में उल्लेख है कि संस्कृत के चम्पू काव्यों से प्रवृत्तिगत भिन्नता के कारण ऐसी रचनाओं को 'काहाणी' या 'कहानी' की संज्ञा दी जाती थी। यद्यपि हिन्दी गद्य की भाँति तत्कालीन लोकभाषा की कहानियों में गद्य का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता था और कथा-काव्यों का प्रारम्भ 10वीं शताब्दी की शिलांकित (रोड़ाकृत) 'राउलवेल' से हो जाता है तथापि 'उक्ति-व्यक्ति प्रकरण' से व्याकरण सम्मत गद्य की शुरुआत होती है। यद्यपि वाचिक परम्परा में जीवित रखने की आवश्यकता, लेखन सामग्री के अभाव और लिपि के अल्प विस्तार के कारण कथा-काव्यों की परम्परा ही प्रबल रही, तथापि आधुनिक कथा-साहित्य के निर्माण की आधार शिला भी आदिकाल में रखी गई।

हिन्दी के भक्तिकाल में आदिकाल की अपेक्षाकृत गद्य प्रयोग अधिक हुआ। भक्तिकाल में प्रायः सानुप्रास या तुकमय गद्य अधिक लिखा गया है, किन्तु कथा-काव्य की परम्परा बलवती रही है। निर्गुण और सगुण भक्ति काव्य धारा के कवियों ने पौराणिक आख्यानों का वर्णन लोकभाषा में किया है। तुलसी के 'रामचरित मानस', केशव के 'रामचन्द्रिका', जायसी के 'पद्मावत' और सूरदास के 'सूरसागर' में पौराणिक व लौकिक कथाएँ वर्णित हैं। इसी प्रकार सधारू अग्रवाल द्वारा लगभग 1354 ई. में रचित 'प्रद्युम्नचरित' में प्रद्युम्न, नारद, कृष्ण, रुक्मिणि आदि की कथाएँ है; जाखू मणियार कृत 'हरिश्चन्द्र पुराण' (1396 ई.) में राजा हरिश्चन्द्र की कथा वर्णित है। प्रेमकथा-काव्यों की कड़ी में मुल्ला दाऊद कृत 'चांदायन' (1399

ई.); ईश्वरदास (1500 ई. के लगभग) कृत 'सत्यवती कथा'; कुतुबन कृत 'मृगावती' (1503 ई.); मंझन कृत 'मधुमालती' (1545 ई.); जायसी कृत 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम'; उसमान कृत 'चित्रावली' (1613 ई.) जान कवि कृत 'कनकावती', 'कामलता' और 'मधुकर मलित'; बाबा धरणीदास कृत 'प्रेम प्रगास' और कुशल लाभ कृत 'माधवानल कामकंदला चौपाई' (1616 ई.) आदि उल्लेखनीय हैं।

भक्तिकाल में काव्य-कथा की परम्परा के समानान्तर ही गद्यकाव्य या सानुप्रास (तुकमय) गद्य रचना की परम्परा भी चल रही थी। यह परम्परा आदिकाल की अपेक्षा अधिक बलवती थी और इस कारण ब्रजभाषा, खड़ी बोली, दक्खिनी और राजस्थानी विभाषाओं में गद्य के अनेक रूप निर्गत हुए। ऐसे गद्य का निर्माण प्रायः कथा और कहानियों के लिए हुआ। कथा, बात व चरित आदि रूपों में कथा-साहित्य का सृजन हुआ। ब्रजभाषा गद्य में वैकुण्ठमणि शुक्ल ने 'वैसाख महातम्' व 'अगहन महातम' में धार्मिक कथाएँ लिखीं। 'सिंगार सुतुक' रचनाकार अज्ञात में भी पौराणिक कथाएँ वर्णित हैं। ब्रजभाषा गद्य में वल्लभ सम्प्रदाय का 'वार्ता साहित्य' प्रसिद्ध है। 'चौराससी वैष्णवन की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के रयचिता गोस्वामी गोकुलनाथ जी माने जाते हैं। पहले वार्ता ग्रन्थ में गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्यों की कथाएँ हैं। खड़ी बोली गद्य भी भक्तिकाल में विकसित हो रहा था। 'वात' शीर्षक से खड़ी बोली गद्य में कथा-कहानियों की रचना हुई है। 1623 ई. में जटमल (1613 ई.) द्वारा 'गोरा बादल की कथा' की रचना की गई। 'कुतुबशत' (कुतुबुद्दीन री बात), 'गेसेण गोसठ' और 'पोथी सचुषंड' आदि इसी प्रकार की पुस्तकें हैं। 'पोथी सचुषंड' में गुरुनानक के जीवन की कथा वर्णित है। दक्खिनी गद्य में रचित पुस्तक 'सबरस' (1636 ई.) के रचनाकार कुतुबशाह के दरबारी कवि मुल्ला वजही (1550 ई.) ने 'प्रबोध चंदोदय' नाटक की तर्ज पर यह प्रेम कथा लिखी। मुल्ला वजही अपनी इस पुस्तक की गद्य भाषा को दक्खिनी या खड़ी बोली कहने के बजाय हिन्दी कहते हैं। इसके विधान, भाषा और रूप आदि के आधार पर 'सबरस' को आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य का आदिम रूप कहा जा सकता है। राजस्थानी गद्य परम्परा में 'वचनिका' और 'चरित' के नाम से कथाएँ लिखी गई। इनमें से 'पृथ्वीचंद चरित्र' (1421 ई.), 'धनपाल कथा' (15 वीं शताब्दी); शिवदास चरण कृत 'अचलदास खीची री वचनिका' (15 वीं शती.), 'अंजना सुन्दरी कथा' (16वीं शती.), 'आदिनाथ चरित्र', 'कालिकाचार्य कथा' और हीरानन्द सूरि कृत 'वस्तुपाल तेजपालरास'

आदि उल्लेखनीय हैं।

भक्तिकाल में धर्मनिष्ठा की अधिकता, वाचिक परम्परा का प्राधान्य और कागज आदि साधनों के अभाव के कारण कथा-काव्यों की ही प्रचुरता रही, किन्तु तुकमय, गद्य-पद्य मिश्रित रचनाओं के माध्यम से भी कथा-साहित्य विकसित होने लगा। दक्खिनी गद्य खड़ी बोली, सूफी मत एवं अरबी, फारसी से आगत कथाओं/कथानकों के प्रभाव के कारण ललित (साहित्यिक) कथा-साहित्य अपेक्षाकृत अधिक विकसित हुआ।

रीतिकाल में तत्कालीन साहित्यिक परिवेश के अनुरूप काव्य एवं गद्य में कथाओं का सृजन हुआ। पुहकर ने 1616 ई. में 'रसरतन' नामक प्रेम कथानक पर आधारित काव्य लिखा; लालचन्द्र ने 'पद्मिनी चरित्र' की रचना की; लालकवि ने 'छत्र प्रकाश' की रचना की; सूदन ने 'सुजान चरित' लिखा। प्रेमाख्यान काव्यधारा के अन्तर्गत प्रायः कल्पित प्रेम कथाएँ रची गईं। इनमें से कासिमशाह कृत 'हंस जवाहर' (1736 ई.); नूर मोहम्मद कृत 'इन्द्रावती' (1744 ई.); शेख निसार कृत 'यूसुफ जुलेखा' (1790 ई.); सूफी सूरदास कृत 'नलदमन' (1657 ई.); दुखहरूदास कृत 'पुहुपावती' (1669 ई.); दामोदरकृत 'माधवानल कथा' (1680 ई.); हंसकवि की 'चन्द्रकुवँर री बात' (1693 ई.); जनकुंज कृत 'उषा चरित्र' (1780 ई.); चतुर्भुजदास कृत 'मधुमालती' (1780 ई.); सेवारामकृत 'नलदमयंती' (1796 ई.); अज्ञात कवि की 'रमणशाह छबीली भटियारी की कथा' (1800 ई. के आसपास) एवं जीवनदास कृत 'उषा-अनिरूद्ध' (1829 ई.) आदि उल्लेखनीय हैं।

भक्तिकाल की अपेक्षा रीतिकाल में गद्य विस्तार अधिक है। रीतिकालीन गद्य की विविध विधाओं के साथ ही आधुनिक कथा-साहित्य की उपजीव्य विधाएँ- कथा-कहानियाँ, वार्ता, बात, वचनिका, दवावैत, चरित्र और गोसट आदि पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होती है। रीतिकाल के ब्रजभाषा गद्य में वल्लभ सम्प्रदाय में 'वार्ता' नाम से कथाएँ रची गईं। इनमें से 'महाप्रभु जी की प्राकट्य भावना वार्ता' व ब्रजभूषण कृत 'श्री द्वारिकाधीश जी की प्राकट्य वार्ता' प्रमुख हैं। 'वार्ता' अधिकांशतः धार्मिक आख्यानों से सम्बन्धित हैं। 'वार्ता' के साथ ही कथाएँ भी रची गईं। यथा- मीनराज प्रधान कृत 'हरितालिका कथा' (1669 ई.) गुमानीराय कृत 'आइने अकबरी की भाषा वचानिका' (1795 ई.) व शिवचन्द्र कृत 'महारावल मूलराज वचनिका'। रीतिकालीन खड़ी बोली गद्य में रची गई कथात्मक-वर्णनात्मक रचनाएँ भी अपना विशिष्ट स्थान रखती है। किन्तु

18 वीं शताब्दी के बाद ही खड़ी बोली गद्य का परिमार्जित रूप दिखाई देता है। इसके पूर्व की कथाओं में ब्रज, फारसी, पंजाबी आदि विभाषाओं का प्रभाव दिखाई देता है। यथा– 'नरसिंह गौड़ की दवावैत', 'जिनसुखसूरि मजलिस', 'लखपत दवावैत', हरिजी कृत 'गोसट गुरु मिहरिबानु', पद्मपुराण वचनिका, 'श्रीपाल चरित्र वचनिका' आदि। राम प्रसाद निरंजनी की पुस्तक 'भाषा योग वाशिष्ठ' (1741 ई.) में खड़ी बोली गद्य का स्वतंत्र रूप देखने को मिलता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार 'भाषायोग वासिष्ठ' परिमार्जित गद्य की प्रथम पुस्तक है और इसके लेखक रामप्रसाद निरंजनी प्रथम प्रौढ़ गद्य लेखक हैं। दक्खिनी गद्य में अरबी व फारसी की कथा-पुस्तकों का अनुवाद हुआ। इनमें 'तूतीनामा', 'अनवरे सुहेली', 'किस्सा-ए-गुलोहुरमुज' का उल्लेख किया जा सकता है। राजस्थानी गद्य, रीतिकाल में न केवल समृद्ध था वरन् आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य के अत्यन्त निकट था। 'वातों' या 'वार्ता' शीर्षक से रचा गया राजस्थानी गद्य प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त 'वचनिका' और 'दवावैत' में गद्य-पद्य मिश्रित कथाएँ हैं 'रतना हमीर री वात', 'राव अमर सिंहरी वात', 'सिद्धराज जयसिंह दे री वात', 'सयाणी चारणी री वात', 'ढोला मारवाणी', 'गोरा बादल री वात', 'वात दूधै जो धावत री', बीरबल री वात', 'राजान राउत रो वात-वणाव' व 'रामदास वैरावत री आखड़ी री वात' आदि प्रसिद्ध कथात्मक वात हैं। खिड़िया जगा कृत 'राठौड़ रतन सिंह जी महेस दासौत री वचनिका', वृन्द कृत 'वचनिका स्थान किशनगढ़' राजस्थानी गद्य की प्रसिद्ध वचनिकाएँ हैं। आलोच्य कालखण्ड में मुगलों के राजदरबारों की 'किस्सागोई' भी समृद्ध हो चुकी थी और अब तक मनोरंजन के साधन के अलावा धन कमाने का साधन भी बन चुकी थी। 'किस्सागोई' प्रायः कल्पित प्रेम कथाओं और कौतूहलपूर्ण घटनाओं पर आधारित होती थी। मुगल दरबार की किस्सागोई की कला राजपूताने में भी दिखने लगी और इस काल के राजस्थानी गद्य की कथात्मक रचनाओं, वात, वार्ता व वचनिका आदि में भी इसका प्रभाव दिखने लगा।

रीतिकाल में तमाम पौराणिक और लौकिक कथाओं में छायानुवाद भी हुए। छायानुवादकारों में सदल मिश्र और लल्लूलाल का उल्लेखनीय योगदान रहा। रीतिकाल में सुरति मिश्र ने संस्कृत की 'वैताल पंचविंशतिका' का अनुवाद 'वैताल पचीसी' नाम से किया; देवीचंद ने 'हितोपदेश' का अनुवाद 'हितोपदेश ग्रंथ महाप्रबोधिनी' नाम से किया; वंशीधर ने भी 1717 ई. में 'हितोपदेश' का अनुवाद 'मित्र मनोहर' पुस्तक में किया; लल्लूलाल ने 1802 ई. में अपनी पुस्तक

'राजनीति' में 'हितोपदेश' का अनुवाद किया एवं 'कालयवन कथा' में 'महाभारत' के शुकदेव-परीक्षित संवाद का अनुवाद किया और पं. योगध्यान मिश्र ने 1838 ई. में 'हातिमताई' का अनुवाद किया।

रीतिकालीन प्रवृत्तियों के अनुरूप काव्य रचना के साथ ही इस काल में गद्य-पद्य मिश्रित कथात्मक रचनाओं के निर्माण को कमतर नहीं आँका जा सकता। ऐसा ललित गद्य रीतिकाल के अंतिम कालखण्ड में उस स्थिति तक पहुँच गया जहाँ से आधुनिक हिन्दी के खड़ी बोली गद्य का आविर्भाव हुआ। इसी के साथ ही आधुनिक कथा-साहित्य का प्रस्फुटन हुआ। इसके निर्माण में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अंग्रेजों ने देशी भाषाओं के विकास एवं अंग्रेज अधिकारियों को देशी भाषाओं की शिक्षा देने हेतु 1800 ई. में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। फोर्ट विलियम कॉलेज में भाषा मुंशी पद पर नियुक्त लल्लू जी लाल (1761-1824 ई.) एवं हिंदी मुंशी पद पर नियुक्त सदल मिश्र (1767-1847 ई.) ने हिन्दी गद्य के आधुनिक स्वरूप के निर्माण में सक्रिय योगदान दिया। लल्लूलाल जी ने गद्य-पद्य मिश्रित भाषा में माधव-सुलोचना की प्रेमकथा पर आधारित पुस्तक 'माधोविलास' (1817 ई.) लिखी और भागवत के दशम स्कंध में वर्णित कृष्णकथा को आधार बनाकर खड़ी बोली गद्य में 'प्रेमसागर' (सं. 1866) की रचना की, 'नक्लियात' नामक पुस्तक में लल्लूलाल जी द्वारा रचित लघु कहानियाँ संग्रहीत हैं। सदल मिश्र के यम-नचिकेता की पौराणिक कथा के आधार पर 'नासिकेतोपाख्यान' (1803 ई.) एवं आध्यात्म रामायण के आधार पर 'रामचरित' (1805 ई.) की रचना की। गद्यकार चतुष्ट्य के शेष दो लेखक इंशाअल्ला खाँ (मृत्यु :1818 ई.) व मुंशी सदासुखलाल 'नियाजी' (1746-1824 ई.) हैं। इंशाअल्ला खाँ द्वारा 'उदयभान चरित' या 'रानी केतकी की कहानी' लिखी गई। साहित्यकारों एवं आलोचकों का मत है कि परवर्ती उपन्यासकारों ने इंशा की 'कहानी' से प्रेरणा लेकर उपन्यास लिखे। बाबू देवकीनंदन खत्री के उपन्यास 'चंद्रकांता' की भाषा-शैली को इंशा की 'कहानी' का अनुगामी माना जाता है। इंशा द्वारा अपनी कृति को 'कहानी' नाम दिया गया है, किन्तु भाषा-शैली और विधान के कारण इसे 'उपन्यास' कहा जाता है। 'रानी केतकी की कहानी' उपन्यास है या कहानी, इस विषय पर पर्याप्त मतभेद हैं। मुंशी सदासुखलाल कृत 'सुखसागर' उपदेश प्रधान ग्रंथ है और इसका रचना-विधान निरंजनी के 'भाषा योग वासिष्ठ' के निकट का है। उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में

उपरोक्त गद्यकार चतुष्ट्य ने जहाँ एक ओर साहित्यिक गद्य की प्रामाणिक एवं प्रतिनिधि भाषा 'हिन्दी' के निर्माण और विकास में योगदान दिया वहीं दूसरी ओर आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य की उर्वर पृष्ठभूमि तैयार करने में योगदान दिया।

आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य की उत्पत्ति एवं विकास में देश के बदलते सामाजिक, आर्थिक, बौद्धिक, धार्मिक एवं वैज्ञानिक परिवेश ने योगदान दिया। अंग्रेजों ने भारत में अपना एकछत्र शासन स्थापित करने के बाद भारत की सामाजिक व्यवस्था में बदलाव हेतु कदम उठाए। ईसाई मिशनरियों ने धार्मिक भावनाओं में हलचल पैदा कर दी, धर्मान्तरण व धार्मिक मत-मतान्तर भी समाज में जगह बनाने लगे। मैकाले की शिक्षा नीति का विस्तार, अंग्रेजी के प्रति जनता का झुकाव, सर्वमान्य भाषा के रूप में हिंदी की स्थापना, शिक्षा का प्रचार-प्रसार, यातायात के साधनों का विकास आदि के साथ ही सबसे क्रान्तिकारी परिवर्तन कागज और छापाखाने के प्रादुर्भाव के कारण हुआ। आदिकाल से वाचिक परम्परा में जीवित कथा-साहित्य व पद्य-काव्य अपना पद्यात्मक रूप त्यागकर पूर्णतः गद्य रूप में आ गया। कागज और छापाखाना के प्रयोग ने साहित्य की दशा और दिशा दोनों ही बदल दीं। उधर अंग्रेजों की दमनकारी नीति से आहत भारतीय समाज अपने घावों पर मरहम लगाने, अंग्रेजों के अत्याचार से बचने, जनजागरण करने व अपने सुख-दुख बाँटने के लिए साहित्य को माध्यम बनाकर स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़ा। कागज व छापाखाना ने ऐसे साहित्य को प्रचलित, प्रसारित और स्थायित्व प्रदान करने में मदद दी। इस प्रकार समाज और सत्य से जुड़ने का सशक्त माध्यम गद्य साहित्य बना और उसमें भी कथा-साहित्य के नवोदित रूप ने प्रमुख भूमिका निभाई।

(आ) निरूपण :-

कथा-साहित्य का प्रारम्भ भले ही आधुनिक काल में हुआ हो, लेकिन कथाओं और किस्सों की परम्परा भारत के समृद्ध सांस्कृतिक परिवेश और सभ्यता से जुड़ी रही है। ऋग्वेद के पहले भी भारतीय लोककथाएँ समाज का अंग थीं, दैनिक जीवन में आवश्यक तत्त्व के रूप में समाविष्ट थीं और आदिम मानव की तमाम आवश्यकताओं, विकास और समस्याओं से जुड़ी हुई थीं। कोमल कोठारी के शब्दों में, "कथाएँ लोकजीवन की संघर्षपूर्ण यात्रा की हरावल में चलती हैं। और इन कथाओं में कुछ तत्त्व ही ऐसा है कि साधारण मनुष्य निश्चिंत होकर इनके सहारे अपने दैनिक जीवन के कर्तव्य और अकर्तव्य का निर्णय ले सकता है। इन कथाओं का गुण अथवा

अवगुण केवल मनोरंजन और धर्म को सुलाने वाली शक्ति ही नहीं है। यह जीवन को क्रियाशील, कर्तव्यवान और कर्मप्रधान बनाने में विश्वास रखती हैं।''[2] मानव जीवन के विज्ञान, धर्म, जादू-टोने, रीति-नीति, विश्वास, भाव और संवेदना से जुड़ी सहज अभिव्यक्ति ही कथा है। मानव जीवन के अनुभव और अनुभूतियाँ सभी, कथा में समाहित हो जाती हैं। इसी कारण वैदिक और लौकिक संस्कृत काल में काव्य और कथा में भेद नहीं था। कथा, काव्यकला के अंग के रूप में जानी जाती थी। यह अलग बात है कि आख्यान मौलिक और सत्य होते थे, जबकि कथाएँ काल्पनिक। उस समय भी कथा-साहित्य को सत्य की स्थापना के महत् उत्तरदायित्व का निर्वहन करना पड़ता था और उपदेशपरक, नीतिपरक बातों के व्याख्यान द्वारा अपने लोगों का पथ-प्रदर्शन करना होता था। लोक कथाएँ इस दायित्व का निर्वहन आदिकाल में भी करती रहीं और तब से लेकर आज तक लोककथाओं का स्वरूप ऐसा ही है। यही कारण है कि अतीत में धनुष-बाण, ईंट-पत्थर के युग से लेकर आज के वैज्ञानिक युग तक की लम्बी यात्रा तय करके भी लोककथाएँ जीवित और जीवन्त हैं, दीर्घ रूप में न सही, सूक्ष्म रूप में ही। जबकि दूसरी ओर मध्यमकालीन युग में ललित (साहित्यिक) कथा-साहित्य का विकास एवं विस्तार देखने को नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि मध्यकालीन युग में यथार्थवादिता के स्थान पर काल्पनिकता, बौद्धिकता के स्थान पर अव्यावहारिकता प्रतिष्ठित हो गई और इस कारण गद्य के स्थान पर पद्य और कहानियों के स्थान पर कविताएँ आ गई थीं। यहाँ उल्लेखनीय है कि संस्कृत युगीन 'काव्य' का विस्तृत अर्थ संकुचित होकर केवल 'पद्य' के लिए प्रयुक्त होने लगा। यथार्थ की अभिव्यक्ति, बौद्धिकता और तार्किकता की अभिव्यक्ति के छूटने के साथ ही गद्य भी छूटता गया और लुप्तप्राय हो गया। अठारहवीं शती. के अंतिम कालखण्ड से लेकर उन्नीसवीं शती. के प्रारंभिक समय के अन्तराल में बौद्धिकता, यथार्थवादिता, तार्किकता और व्यावहारिकता की वापसी हुई। सत्य को, जीवन की वास्तविकताओं को, जीवन की जटिलताओं को, संत्रास और हर्ष-विषाद के अनुभवों को जब साहित्यिक रूप देने की आवश्यकता पड़ी तब पुनः 'गद्य' की ओर देखा गया। ऐसी तमाम बातों को व्यक्त करने का सशक्त माध्यम 'गद्य' बना और 'गद्य' में भी कथा-साहित्य। शिक्षा के प्रचार-प्रसार, मध्यवर्ग का साहित्य के प्रति रुझान, कागज व छापाखानों के प्रयोग और विश्व के तमाम सुधारवादी आन्दोलनों की प्रेरणा आदि ऐसे कारक बने जिनसे आधुनिक कथा-साहित्य का जन्म हुआ। यद्यपि भारत का संस्कृत कालीन कथा-साहित्य अत्यन्त समृद्ध था और विश्व के

तमाम देशों- अरब, यूनान, मिस्र, फारस व यूरोप आदि तक पहुँचकर अपना प्रभाव जमाए हुए था, तथापि भारत का आधुनिक कथा-साहित्य पश्चिम की ही देन माना जाता है। इस संदर्भ में डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त का विचार उल्लेखनीय है कि "जिस प्रकार भारत से भेजी हुई रुई और ऊन को यूरोप वाले कपड़े के बढ़िया थानों में परिवर्तित करके लौटाते रहे हैं, कुछ वैसे ही भारत का प्राचीन कथा-साहित्य यूरोप से क्रमशः रोमांटिक कथा-साहित्य एवं उपन्यास का रूप धारण करके लौटा।"[3] यह अन्तर प्रमुखतः यथार्थबोध, कालानुकूल चेतना प्रवाह, स्वाभाविकता और बौद्धिक वृत्ति का है।

संक्षेप में, कहा जा सकता है कि आदिकाल से लेकर आज तक, अललित से लेकर ललित तक, लोक से लेकर साहित्य तक यथार्थ का चिन्तन, बौद्धिकता का समावेश, तार्किकता का पुट, उपदेश-नीति और ज्ञान की बातें समग्रतः साहित्य की जिस विधा में हैं उसे 'कथा-साहित्य' के रूप में निरूपित किया जा सकता। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि बौद्धिकता, यथार्थ, नीति या ज्ञान की बात में यदि रोचकता, सजीवता, स्वाभाविकता, मनोरंजकता, सहजता और सरलता नहीं रहेगी तो वह कथा-साहित्य होने के बजाय विज्ञान हो जाएगा, इतिहास, दर्शनशास्त्र या ऐसा ही कुछ हो जाएगा, इसलिए उपरोक्त तत्त्वों के बिना कथा-साहित्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

(इ) परिभाषाएँ :-

कथा-साहित्य का उद्भव वैदिक काल में ही हो गया था। वैदिक काल और लौकिक संस्कृत काल में कथा-साहित्य के दो भेद कथा और आख्यायिका थे। कथा और आख्यायिका का विभाजन अग्निपुराण में सर्वप्रथम प्राप्त होता है। अग्निपुराण के अनुसार आख्यायिका में ऐतिहासिक कथा होती है, प्रारंभ में कवि वंश का वर्णन होता और पद्य का भी समावेश होता है। कथा, कविकल्पित होती है, आरम्भ में देव तथा गुरु की वन्दना होती है और केवल गद्य में रचना होती है। 'अमर कोश' में कथा-साहित्य को इस प्रकार परिभाषित किया गया है-

"आख्यायिकोपलब्धार्था प्रबन्धकल्पना कथा"

(कथा कल्पनाजन्य होती है तथा आख्यायिका ऐतिहासिक कथानक पर आधारित होती है)

लौकिक संस्कृत काल में कथा और आख्यायिका का भेद न्यूनतम रह गया था। दण्डी द्वारा कथा-साहित्य को इस प्रकार परिभाषित किया गया है-

"तत् कथाख्यायिकेत्येका जाति संज्ञा"

आचार्य विश्वनाथ ने 'कादम्बरी' को उद्धृत करते हुए लिखा है कि-

"कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेवविनिर्मितम्"

प्राकृत के कवि हेमचन्द्र ने कथा को 'चरित या चरित्र' कहकर परिभाषित किया है।

इस प्रकार संस्कृत भाषाकाल में कथा एवं आख्यायिका के बीच का अन्तर पालि भाषाकाल के आरम्भ (500 ई. पू.) समाप्त हो गया और केवल 'कथा' रह गई।

हिंदी के आदिकाल से लेकर रीतिकाल तक कथा-साहित्य को रासो, वात, कथा, दवावैत, वचनिका, चरित आदि रूपों में जाना जाता रहा।

रचना-विधान और विस्तार के आधार पर आधुनिक काल में कथा-साहित्य उपन्यास और कहानी विधाओं में विभाजित हो गया। यद्यपि कथा-साहित्य की परम्परा पुरातन काल से चली आ रही थी, तथापि कथा-साहित्य (उपन्यास और कहानी) का उद्भव आधुनिक काल से ही माना जाता है। इस प्रकार कथा-साहित्य के नवीन रूपों को भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्यकारों द्वारा अलग-अलग परिभाषित किया गया है। तद्नुरूप उपन्यास एवं कहानी की परिभाषाएँ निम्नवत् हैं-

(1) उपन्यास :-

अंग्रेजी साहित्य का 'नॉविल' बंगला से होता हुआ हिन्दी में आया है और 'उपन्यास' कहलाया। उपन्यास में दो शब्द 'उप' तथा 'न्यास' का समावेश है। इसका सीधा अर्थ है 'निकट रखी हुई धरोहर'। इस प्रकार उपन्यास को मानव जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति करने वाली साहित्यिक विधा कहा जा सकता है। हिन्दी के साहित्यकारों द्वारा उपन्यास की निम्न परिभाषाएँ दी गई हैं-

मुंशी प्रेमचन्द-

"मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्र मात्र समझता हूँ। जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक व काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव-जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।"

श्यामसुंदर दास-

"उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।"

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी-

"आधुनिक उपन्यास केवल कथा-मात्र नहीं है, और पुरानी कथाओं और आख्यायिकाओं की भाँति कथा-सूत्र का बहाना लेकर उपमाओं, रूपकों, दीपकों और श्लेषों की छटा और सरस पदों में गुंफित पदावली की घटा दिखाने का कौशल भी नहीं है। यह आधुनिक वैयक्तिवादी दृष्टिकोण का परिणाम है। इसमें लेखक अपना एक निश्चित मत प्रकट करता है, और कथानक को इस प्रकार से सजाता है कि पाठक अनायास ही उसके उद्देश्य को ग्रहण कर सके, और उससे प्रभावित हो सके।"

प्रो. मोहन अवस्थी-

"आधुनिक काल के उपन्यासों और संस्कृत की आख्यायिकाओं में यों तो बहुत अन्तर है, मगर कथानक की दृष्टि से आधुनिक उपन्यास संस्कृत परम्परा के विकसित एवं सुसंस्कृत रूप ही प्रतीत होते हैं।"

डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त-

"उपन्यास गद्य का नव विकसित रूप है जिसमें कथा-वस्तु, चरित्र चित्रण, संवाद आदि के तत्त्वों के माध्यम से यथार्थ और कल्पना मिश्रित कहानी आकर्षक शैली में प्रस्तुत की जाती है।"

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी-

"उपन्यास' गद्य का पहला बड़ा आविष्कार है। गद्य में अर्थ और अनुभव की विविक्ति जितनी और जैसे बढ़ती गई उपन्यास की सामर्थ्य भी उतनी ही बढ़ती गई।"

डॉ. बच्चन सिंह-

"उपन्यास सामूहिक अनुभवों के स्थान पर वैयक्तिक अनुभवों को तरजीह देता है। व्यक्ति अपने सामयिक परिवेश में अनुभव प्राप्त करता है। उपन्यासों में वैयक्तिक अनुभव और परिवेश के विस्तृत चित्रण के लिए भूमि मिली।"

डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय-

"रचनाकार अपने उपन्यास में एक संवेदनात्मक सत्य व्यक्त करता है जो व्यक्तिमूलक होते हुए भी समष्टिमूलक पद प्राप्त कर अपनी सार्थकता सिद्ध करता है।"

नलिन विलोचन शर्मा-

"उपन्यास औद्योगिक क्रांति के युग का महाकाव्य है।"

उपन्यास का रचना-विधान और स्वरूप पश्चिमी साहित्य धारा से प्रवाहित माना जाता है, इसलिए 'उपन्यास' के सन्दर्भ में पश्चिमी साहित्यकारों के मत एवं परिभाषा का उल्लेख करना उपयुक्त एवं आवश्यक होगा। कुछ पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ प्रस्तुत हैं :-

न्यू इंगलिश डिक्शनरी "वृहद आकार गद्य, आख्यान या वृत्तान्त जिसके अन्तर्गत वास्तविक जीवन के प्रतिनिधित्व का दावा करने वाले पात्रों और कार्यों को कथानक में चित्रित किया जाता है।"

क्लारा रीवा -

"उपन्यास अपने युग का चित्रण करता है। नॉवेल यथार्थ जीवन का चित्र है, जिसमें अपने समय और उसकी गतिविधि का यथार्थ वर्णन रहता है। उसमें नित्य प्रति के जीवन का सहज सुलभ वर्णन रहता है। इसकी शैली सहज और सरल होती है। यथार्थ का मधुर भ्रम इसका उद्देश्य होता है। नॉवेल इस प्रकार का भ्रम उत्पन्न करता है जिसमें ऐसा प्रतीत होता है कि जो कुछ वर्णन किया जा रहा है सब यथार्थ है।"

क्रॉस -

"नॉवेल से अभिप्राय उस गद्यमय कथा का है जिसमें वास्तविक जीवन का यथार्थ चित्रण होता है।"

उपरोक्त सभी विद्वानों ने उपन्यास की प्रकृति निर्धारित करते हुए यथार्थ और समय के सत्य को चित्रित करने पर अधिक बल दिया है। इस प्रकार विद्वानों के विचारों एवं परिभाषाओं के आलोक में यह कहा जा सकता है कि 'उपन्यास' वृहद आकार की वह गद्यात्मक कृति है, जिसमें मानव जीवन का समग्र और सजीव चित्रण इस प्रकार किया जाता है कि जीवन का कोई पहलू छूटने न पाए। उपन्यास में काव्य की भावात्मकता और किस्सागोई के स्थान पर यथार्थपूर्ण, अनुभूतिपरक व्यावहारिक और व्यष्टिगत होते हुए भी समष्टिगत कथात्मकता और संवेदनात्मक सत्यता होती है।

(2)कहानी :-

कथा, आख्यायिका और किस्सों से चलते हुए 'कहानी' आधुनिकता और सांस्कृतिक, साहित्यिक संक्रमण की देन है। आधुनिक कहानी को विभिन्न साहित्यकारों द्वारा अलग-अलग तरीके से परिभाषित किया गया है। इनमें से कुछ परिभाषाएँ एंव मत निम्न हैं :-

मुंशी प्रेमचंद -

"गल्प एक ऐसी रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य होता है। उसके चरित्र, शैली, कथा विन्यास सब एक ही भाव को प्रकट करते हैं।"

डॉ. श्यामसुन्दर दास -

"आख्यायिका एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को रखकर लिखा गया एक नाटकीय आख्यान है।"

डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त -

"वस्तुतः प्राचीन कहानी में अलौकिकता, अस्वाभाविकता, आदर्शवादिता एवं काल्पनिकता का आग्रह अधिक था, जबकि आधुनिक कहानी में लौकिकता, स्वाभाविकता, यथार्थवादिता एवं विचारात्मकता पर अधिक बल दिया जाता है। प्राचीन कहानी स्वर्ग-लोक की कल्पना थी, जबकि आधुनिक कहानी हमें धरती के सुख-दुख का स्मरण कराती है।"

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी -

"जो बात उपन्यास के क्षेत्र में सत्य है, करीब-करीब वही बात कहानियों के बारे में भी ठीक है। कहानी की कहने की प्रथा कोई नई चीज नहीं है, पर 'कहानी' नामक नया साहित्यांग आधुनिक युग की देन है। यह भी प्रेस और यातायात के नवीन साधनों की सहायता से विकसित हुआ है और लोकप्रिय बना है।"

बाबू गुलाबराय -

"हिन्दी कहानी में दिखाई पड़ने वाला कहानी का व्यवस्थित संघटन, घटना का आरंभ, विकास और परिणति कथ्य के रूप में जीवन की घटना के किसी अंश का केन्द्रीकरण, प्रतिपादन-शैली, इत्यादि लक्षण प्राचीन भारत परम्परा के आख्यानों से भिन्न प्रकार के हैं।"

जयशंकर प्रसाद -

"सौन्दर्य की एक झलक का चित्रण करना और उसके द्वारा रस की सृष्टि करना ही कहानी का उद्देश्य है।"

अज्ञेय -

"कहानी जीवन की प्रतिच्छाया है और जीवन स्वयं एक अधूरी कहानी, एक शिक्षा है, जो

उम्र भर मिलती है और समाप्त नहीं होती।''

डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय –

''भारतीय मानव के आज के जीवन-सन्दर्भ को दृष्टि में रखते हुए आज की हिन्दी कहानी को व्यक्ति के व्यथित मन की गाथा कहा जाए तो हानि नहीं होगी। वास्तव में आज की कहानी में वातावरण और सामाजिक परिप्रेक्ष्य की प्रधानता हो चली है।''

रामप्रसाद पहाड़ी –

''व्यंजकता और प्रतिध्वनि कहानी की जीवन साँसे हैं।''

डॉ. मोहन अवस्थी –

''आधुनिक कहानी का सबसे पहला लक्षण यह है कि वह मानव से जुड़ी है। वह मानव से मानव के दुख-सुख की बात कहती है। इस लक्षण के अनुसार हिन्दी-साहित्य में कहानी का वास्तविक प्रादुर्भाव बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में हुआ।''

अंग्रेजी में 'स्टोरी' कही जाने वाली 'कहानी' के आधुनिक स्वरूप का उदय पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव की देन माना जाता है। पश्चिमी देशों की 'स्टोरी' बंगला में 'गल्प' से होते हुए हिन्दी में कहानी के रूप में आई। इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानों एवं साहित्यकारों द्वारा दी गई परिभाषाओं का उल्लेख करना आवश्यक होगा। कुछ पश्चिमी विद्वानों ने कहानी को इस प्रकार परिभाषित किया है।

एडगर ऐलेन पो –

''कहानी कथा का एक टुकड़ा है जिसमें कोई एक भौतिक या आध्यात्मिक घटना होती है। वह एक बैठक में पढ़ी जाती है। यह मौलिक होती है। इसे प्रभावित उद्दीप्त या उत्तेजित करना चाहिए।''

ऐलरी –

''वह एक घुड़दौड़ के समान होती है। जिस प्रकार घुड़दौड़ का आदि और अन्त ही महत्त्वपूर्ण होता है उसी प्रकार कहानी का आदि और अन्त ही विशेष महत्त्व का होता है।''

चेखव –

''कहानी में साधारण से साधारण बातों का वर्णन हो सकता है। जैसे सैमियो विच ने किस प्रकार मेरिया से विवाह किया – बस इतना ही।''

जॉन हेडफील्ड -

"छोटी कहानी वह है जो बहुत बड़ी न हो।"

उपरोक्त विद्वानों द्वारा दी गई कहानी की परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कहानी जीवन के वृहत्तर और अभेद्य आयामों में से किसी एक घटना का समस्या के यथार्थवादी, मानवीय, व्यावहारिक और तर्कपूर्ण बिन्दु या विचार से रू-ब-रू कराने हेतु कथात्मक, व्यंजनापूर्ण एवं सामयिक साहित्यिक विधा है।

(ई) कथा साहित्य की परिधि -

पूर्ववर्ती शीर्षकों में प्रस्तुत विवेचना के आधार पर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय कथा-साहित्य की परम्परा अपनी प्राचीनता के साथ ही विस्तार की दृष्टि से विश्वविख्यात थी। अरब, यूरोप तथा यूनान तक संस्कृत का कथा-साहित्य गया। आधुनिक युग में वही कथा-साहित्य उपन्यास और कहानी के रूप में लौटकर आया। उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरण को आधुनिक हिन्दी उपन्यासों एवं कहानियों का उद्‌भव काल माना जाता है। इस कालखण्ड में समूचा भारत बदलाव के दौर से गुजर रहा था। शिक्षा का विस्तार मध्यवर्ग में और कुछ सीमा तक निम्नवर्ग में भी हो चुका था। सामाजिक कुरीतियों, अंग्रेजों के दमन और अत्याचारों के प्रति जनता की जागरूकता ने समूचे समाज में एक नई वैचारिक क्रान्ति को जन्म दिया था। पद्य की व्यंजनापूर्ण और कल्पनालोक की बातें जीवन की तमाम समस्याओं के सामने बौनी लगने लगीं थीं। अपनी बात कहने के लिए, सच का आईना दिखाने के लिए साहित्य भी बदलाव चाहती थी। इसी समय यूरोप का कथा-साहित्य (फिक्शन) बंगला साहित्यकारों के सम्पर्क में आया। बंकिम, शरत्, रवीन्द्र आदि बंगला साहित्यकारों ने फिक्शन से प्रेरणा लेकर साहित्य रचा। हिन्दी का कथा-साहित्य, बंगला साहित्य से प्रभावित हुआ और उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में 'उपन्यास' का तथा बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में 'कहानी' का उदय हुआ। हिन्दी साहित्य की यह दोनों नवोदित विधाएँ तत्कालीन प्रचलित गद्यात्मक साहित्यिक विधाओं- नाटक एवं निबन्ध से पूर्णतया भिन्न थीं। भिन्नता इस मायने में भी कि नाटक का अस्तित्व रंगमंच पर होता है और निबन्ध वैचारिक गाम्भीर्य के साथ लेखकीय विचारों को प्रेरित करने का माध्यम मात्र, जबकि उपन्यास और कहानियों में सहजता, कलात्मकता, सजीवता, स्वाभाविकता, रोचकता, व्यापकता एवं गम्भीरता के साथ सामाजिक समस्याओं और जीवन के जटिल यथार्थ को प्रकट कर सकने

की क्षमता थी। इसी कारण अपने अपने उद्‌भव के साथ ही कथा-साहित्य की व्यापकता और जनप्रियता में वृद्धि होने लगी। समग्रता के साथ जीवन के यथार्थ की सार्थक अभिव्यक्ति कथा-साहित्य का प्रतिपाद्य विषय बन गया। कथा-साहित्य की उन्मुक्तता और यथार्थ से निकटता को और अधिक स्पष्ट करते हुए डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय अपने विचार व्यक्त करते हैं कि "साहित्य की दोनों विधाएँ ऐसी विधाएँ हैं जिनका जीवन से निकटतम सम्बन्ध है। जीवन कथा-साहित्य (उपन्यास और कहानी) के आगे रहता है। मध्य युग में जो स्थान महाकाव्य का था, उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी की प्रारम्भिक दशाब्दी में जो स्थान नाटक का था, वही स्थान अब कथा साहित्य का है।"[4] डॉ. वार्ष्णेय आगे लिखते हैं कि -"कथा-साहित्य की अपनी कलागत सीमाएँ रहते हुए भी वह काव्य और नाटक की अपेक्षा अधिक उन्मुक्त विधा है। कथाकार को रचना की दृष्टि से जितनी स्वतंत्रता रहती है उतनी कवि या नाटककार को नहीं।"[5] यह स्वतंत्रता और उनमुक्तता, सामयिक यथार्थवादी संलग्नता के कारण कथा-साहित्य को प्राप्त हुई है, इसी कारण समाज और परिवेश के बदलाव के साथ ही कथा-साहित्य में शीघ्र बदलाव प्रदर्शित होने लगता है।

आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य में भी वैश्विक परिवर्तनों के अनुसार बदलाव आते गए। वैज्ञानिकता और औद्योगीकरण ने, परिवार और समाज की परिवर्तित मान्यताओं ने कथा-साहित्य को भी अछूता नहीं रखा। उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें दशक का उत्तरार्द्ध और आठवें दशक का पूर्वार्द्ध इन मायनों में कथा-साहित्य में आए बदलाव का कालखण्ड है। अब तक चलता आया वैयक्तिकता का दबाव हट गया और अस्तित्वहीनता की स्थिति आ गई। कथाकार स्वयं भी निराश, हताश, दुखी, मृत्यु-बोध से ग्रस्त, अकेलेपन से जूझते, व्यवस्था की खामियों से त्रस्त और अव्यक्त स्वतंत्रता की चाह में भागते मानवों की दौड़ में शामिल हो गया। तमाम बंध टूटने के साथ ही विधागत बन्ध भी टूटे। उपन्यास और कहानियों का रचना-विधान भी अछूता न रह सका। सटीक अभिव्यक्ति की खातिर यात्रा-वृत्तान्त, रिपोर्ताज, आत्मकथा और पत्र-लेखन भी कथा-साहित्य में समा गए। यद्यपि इनका पृथक अस्तित्व भी है, किन्तु कथात्मकता की उपस्थिति इन्हें कथा-साहित्य में मिला लेती है। अज्ञेय के 'शेखर : एक जीवनी' और श्रीलाल शुक्ल के 'राग दरबारी' के बाद तो मानो ऐसे कथा-साहित्य की कमी ही न रह गई। बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में 'लघु कहानी' और 'लघु उपन्यास' रचने का चलन जोर पकड़ने लगा। आकार के

आधार पर उपन्यास और कहानी को विभाजित करना तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता और प्रचलन में आ गई मान्यताओं के अस्तित्व को सहज ही नकारा भी नहीं जा सकता।

अतः प्रस्तुत शोध की सीमाओं के अन्तर्गत ऐसे कथा-साहित्य को शोध का विषय बनाना होगा और निर्विवाद रूप से विश्लेषण के उपरान्त निष्कर्ष पर पहुँचना होगा। ऐतिहासिक कथा-साहित्य, जिसमें वर्तमान की अपेक्षा ऐतिहासिक पुरुषों का जीवन-चरित, ऐतिहासिक घटनाओं या स्थानों का चित्रण केवल इतिहास की दृष्टि से किया गया हो, उन्हें विश्लेषित करने का मोह निश्चित ही छोड़ना पडेगा तभी विषय के साथ न्याय हो सकेगा।

(ख) आठवें दशक तक का कथा-साहित्य :-

रीतिकाल के उत्तरार्द्ध में गद्य रचनाएँ होने लगीं थीं। संस्कृत गद्य साहित्य के छायानुवाद के दौर से चलते-चलते मौलिक गद्य रचनाओं का प्रारम्भ भी हो चुका था। इसी अवधि में कलकत्ता में स्थापित फोर्ट विलियम कॉलेज के भाषा मुंशी लल्लू जी लाल और हिन्दी मुंशी सदल मिश्र के साथ इंशाअल्ला खाँ और मुंशी सदासुखलाल 'नियाजी' ने हिन्दी भाषा को स्वरूप प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। गद्यकार चतुष्ट्य के अतिरिक्त फोर्ट विलियम कॉलेज के हिन्दुस्तानी विभाग के प्रोफेसर जॉन गिलक्राइस्ट ने हिन्दी के व्याकरण-कोष को तैयार कर खड़ी बोली हिन्दी गद्य का मार्ग प्रशस्त किया। दूसरी ओर शिक्षा के प्रसार, यातायात के साधनों के विस्तार और छापाखानों की स्थापना से गद्यात्मक रचनाओं का नया दौर आ गया। अर्थव्यवस्था में बदलाव और शिक्षा के प्रसार ने भारतीय जनजीवन में चेतना का प्रसार किया। ब्रिटिश राज की स्थापना के फलस्वरूप सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक संक्रमण ने भारतीय समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया को भी तेज कर दिया। ब्रह्म समाज (1828ई.), प्रार्थना समाज (1867ई.), आर्य समाज (1867 ई.), रामकृष्ण मिशन और थियोसोफिकल सोसायटी (1882ई.) आदि संस्थाओं ने परिवर्तन की प्रक्रिया में योगदान दिया। परिवर्तन को अंगीकार करने वालों के विरुद्ध परम्परावादी भी उठ खड़े हुए और पुनरुत्थानवादी प्रतिक्रियाएँ भी आरम्भ हुई। एक प्रकार से यह भारतीय जनजागरण का दौर था और परस्पर विरोधी स्वरों के फलस्वरूप नव बौद्धिक चेतना और राष्ट्रीयता को बढ़ावा मिला। भारतीय समाज में आ रहे बदलाव और नवजागरण ने हिन्दी साहित्य को भी प्रभावित किया। यह प्रभाव बंगला साहित्य से होता हुआ हिन्दी साहित्य में आया। अगर देखा जाए तो साहित्यिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रवादी

नवजागरण का प्रारम्भ बंगाल से ही होता है। हिन्दी साहित्य में नवजागरण का प्रभाव भारतेन्दु युग के प्रारम्भ (1850ई.) में स्पष्ट दिखने लगता है। भारतेन्दु के पूर्व राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द (1823-1895 ई.) और राजा लक्ष्मण सिंह (1826-1896ई.) के प्रयासों से हिन्दी गद्य का स्वरूप स्पष्ट और विकसित हुआ। उपरोक्त राजा द्वय का स्मरण उनकी साहित्यिक कृतियों की अपेक्षा खड़ी बोली गद्य को प्रतिष्ठित करने हेतु किए गये कार्यों के लिए किया जाता है।

भारतेन्दु युग का प्रारम्भ 1850 ई. से माना जाता है, क्योंकि भारतेन्दु बाबू का जन्म 1850 ई. में हुआ और इसी आधार पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल सहित कई साहित्येतिहासकार यहीं से आधुनिक काल का प्रारम्भ मानते हैं, जबकि सन् सत्तावन दो युगों का ऐसा विभाजक वर्ष है, जहाँ से सामन्तशाही का अन्त होता है और ऐसे प्रबुद्ध, राष्ट्रवादी वर्ग का उदय होता है जो वर्षों की गुलामी के विरोध में उठ खड़ा होता है। दूसरी तरफ बर्तानिया हुकूमत भी भारत के बदले हुए रूप को देख-समझकर बदलाव और आधुनिकीकरण की ओर मुड़ जाती है। इसीलिए 1857 ई. से ही आधुनिक काल का प्रारम्भ मानना ही तर्कसंगत होगा। भारतेन्दु युग में हिन्दी कथा-साहित्य में महत्त्वपूर्ण बदलाव दिखाई देता है। कथ्य, रचना-विधान और स्वरूपगत भिन्नता के आधार पर इसी कालखण्ड में ही कथा-साहित्य दो अंगों में विभाजित हो जाता है। ये विधाएँ-उपन्यास और कहानी हैं। परवर्ती युगों और साहित्यिक आन्दोलनों में कथा-साहित्य के इन दोनों अंगों का अलग-अलग विवेचन और अध्ययन किया जाने लगा। अतः उसी क्रम पर चलते हुए आठवें दशक तक के कथा-साहित्य का परिचय उपन्यास और कहानी शीर्षकों में अलग-अलग किया जायेगा।

(अ) आठवें दशक तक के उपन्यास :-

सन् 1877 ई. में श्रद्धाराम फुल्लौरी ने 'भाग्यवती' शीर्षक उपन्यास लिखा। फुल्लौरी जी धार्मिक विचारों वाले व्यक्ति थे और उनका यह उपन्यास भी हिन्दू समाज की कुरीतियों और स्त्री शिक्षा पर केन्द्रित था। इस कारण 'भाग्यवती' को हिन्दी का पहला उपन्यास नहीं माना जाता यद्यपि गणपतिचन्द्र गुप्त ने इसे हिन्दी का पहला उपन्यास मानते हुए लिखा है कि ''पहली रचना के लिए यह आवश्यक नहीं कि उसमें विकास की सभी परवर्ती मंजिलों के दर्शन हों- ऐसा होना सम्भव भी नहीं- अतः इसमें उपन्यास-कला का विकसित रूप दृष्टिगोचर न हो तो कोई बात नहीं, इससे इसकी प्राथमिकता का दावा खण्डित नहीं हो जाता।''[6] भारतेन्दु द्वारा 'पूर्ण प्रकाश

और चन्द्रप्रभा' लिखा गया, किन्तु यह उपन्यास मौलिक न होकर मराठी से अनूदित है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लाला श्रीनिवास दास के उपन्यास 'परीक्षागुरु' (1882 ई.) को हिन्दी का पहला उपन्यास माना है। यद्यपि हिन्दी के पहले उपन्यास के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है, तथापि अधिकांश विद्वान और इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मत सहमत हैं। दूसरी ओर आचार्य राधाकृष्ण दास कृत 'निस्सहाय हिंदू' (1890ई.); बालकृष्ण भट्ट कृत 'रहस्य कथा' (1879ई.), नूतन ब्रह्मचारी (1886ई.) और 'सौ अजान एक सुजान' (1892 ई.); ठा. जगमोहन सिंह कृत काव्य मिश्रित उपन्यास 'श्यामा-स्वप्न' (1888ई.); लज्जाराम शर्मा कृत 'धूर्त रसिक लाल' (1890 ई.) और 'स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी' (1899ई.); गोपालराम गहमरी कृत 'बड़ा भाई' और 'सास पतोहू' (1898ई.); किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'त्रिवेणी' (1889ई.) व 'सुख-शर्बरी' (1891ई.) आदि हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यास कहे जा सकते हैं।

उपन्यासों का उद्‌भव और विकास प्रायः बंगला और अंग्रेजी उपन्यासों के अनुवाद से माना जाता है। भारतेन्दु युग में अनूदित उपन्यासों की संख्या मौलिक उपन्यासों की अपेक्षा बहुत अधिक है। बंगला साहित्यकारों पर अंग्रेजी साहित्य का बहुत प्रभाव था इस कारण अंग्रेजी उपन्यासों के कथ्य और शिल्प का प्रभाव बंगला उपन्यासकारों की रचनाओं पर भी पड़ा। तत्कालीन बंगला उपन्यासकार बंकिमचन्द्र चटर्जी (1838-1894ई.), रमेशचन्द्र दत्त (1848-1909 ई.), तारकनाथ गांगुली (1845-1891 ई.), दामोदर मुखर्जी (1853-1907ई.), शतरचन्द्र, हाराणचन्द्र रक्षित, चण्डीचरण सेन, चारुचन्द व स्वर्ण कुमारी के लोकप्रिय उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद हुआ।

भारतेन्दु मण्डल के साहित्यकारों ने अनूदित उपन्यासों की रचना में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। भारतेन्दु युग में जबकि उपन्यास विधा का आधुनिक रूप में उद्‌भव हो रहा था, तब उपन्यासों के विकास, विस्तार और रचना-विधान के निर्धारण में ऐसे अनूदित उपन्यासों ने बड़ा योगदान दिया। प्रेम और व्यंग्य-विनोद के साथ ही इस युग में राष्ट्रीयता की भावना का भी विकास हुआ और उपन्यासों में भी 'राष्ट्रीय भावना' का चित्रण होने लगा। भारतेन्दु युग के उपन्यासकार 'बंगला साहित्य के सहारे हिन्दी के विकास' के मत में विश्वास रखते थे, इस कारण इस युग की अन्य मौलिक रचनाओं का कथ्य और शिल्प बंगला-साहित्य की ही देन है। इस युग के ऐसे उपन्यासों को अनूदित और मौलिक के बीच की श्रेणी में रखा जा सकता है।

ऐसे उपन्यासों में गोपालराम गहमरी कृत 'गुप्तचर' (1899ई.); गोपीनाथ कृत 'वीरेन्द्र' (1896ई.); राधाचरण गोस्वामी कृत 'विधवा विपत्ति' (1888ई.), हनुमंत सिंह कृत 'चंद्रकला' (1893ई.); गोकुलनाथ शर्मा कृत 'पुष्पावती'; देवदत्त कृत 'सच्चा मित्र' (1891ई.); रामगुलाम कृत 'सुवामा' (1894 ई.); कार्तिक प्रसाद खत्री कृत 'दीनानाथ' (1899ई.) आदि को रखा जा सकता है। जासूसी और तिलिस्मी उपन्यासों ने इस युग में न केवल धूम मचा दी वरन् अपनी लोकप्रियता के चलते तमाम अहिन्दी भाषियों को हिन्दी पढ़ने के लिए प्रेरित करने का भी कार्य किया। ऐसे उपन्यासों में बाबू देवकीनन्दन खत्री कृत 'चन्द्रकान्ता' (1891ई.) का नाम सबसे ऊपर आता है। खत्री जी के उपन्यास 'चन्द्रकान्ता' (चार भाग) और 'चन्द्रकान्ता सन्तति' (चौबीस भाग) ने जनसाधारण के मनोरंजन और हिन्दी के प्रचार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। आज भी इन उपन्यासों की लोकप्रियता कम नहीं हुई है। खत्री जी के अलावा गोपालराम गहमरी कृत जासूसी उपन्यास 'अद्भुत लाश' (1896ई.), 'गुप्तचर' (1899ई.), 'बेकसूर की फाँसी' (1900ई.), 'खूनी कौन है' (1900ई.), 'सरकटी लाश' (1900ई.) और 'बेगुनाह का खून' (1900ई.); हरेकृष्ण जौहर कृत 'कुसुमलता' (चार भाग); शंकर दयाल श्रीवास्तव कृत 'मदन मंजरी' (छः भाग); गंगा प्रसाद गुप्त कृत 'कृष्णकांता' व गुलाबदास कृत 'ठेठ तिलिस्मी बुर्ज' आदि उपन्यास रचे गए। प्रख्यात कवि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने ठेठ हिंदी में 'ठेठ हिंदी का ठाठ' (1899 ई.) उपन्यास लिखा। इस युग के भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र के उपन्यास 'घराऊ घटना' (1893 ई.) व 'बलवंत भूमिहार' (1896ई.) में जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति और उपन्यासों की भावी दिशा देखने को मिलती है।

बीसवीं सदी (1900ई.) के आरम्भ में ही काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। सन् 1903 ई. में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (1861-1938 ई.) ने 'सरस्वती' के सम्पादन का दायित्व संभाला। दूसरी ओर भारतेन्दु युग में उदित हुई राष्ट्रीयता की भावना, आधुनिक हिन्दी-साहित्य के निर्माण और विकास के प्रति समर्पण की भावना का उत्तरोत्तर विकास और सुधारवादी प्रक्रिया का प्रारम्भ बीसवीं शताब्दी के आरम्भ के साथ हुआ इसलिए 1900 ई. से 1918 ई. तक के कालखण्ड को जागरण-सुधार-काल के नाम से भी अभिहित किया जाता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के माध्यम से हिन्दी गद्य को व्यवस्थित करने, पद्य को ब्रजभाषा से मुक्त कर खड़ी बोली हिन्दी

में लाने, नवोदित साहित्यकारों को प्रोत्साहित करने एवं कथ्य व शिल्प की दृष्टि से पुरातनपंथी बंधनों को तोड़कर हिन्दी साहित्य को सुधारने, परिष्कृत करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। आचार्य द्विवेदी के इस महत् योगदान के कारण इस कालखण्ड को द्विवेदी युग (1900-1901 ई.) कहा जाता है। कथा-साहित्य के ऐतिहासिक अध्ययन की दृष्टि से डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, बाबू गुलाबराय, डॉ. मोहन अवस्थी एवं डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी आदि साहित्येतिहासकार भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग में विभेद नहीं मानते हुए एकसाथ रखते हैं। युगीन परिस्थितियों के बदलाव, खड़ी बोली गद्य के परिष्कार और परिमार्जन के साथ ही साथ द्विवेदी युग में कथा-साहित्य के कथ्य और स्वरूप में व्यापक बदलाव और आधुनिक कहानी की उत्पत्ति के कारण द्विवेदी युग न केवल भारतेन्दु युग से भिन्न हो जाता है वरन् अपना पृथक अस्तित्व भी रखता है। भारतेन्दु युग में रचे गये उपन्यासों की लोकप्रियता और इस नवोदित विधा की ओर जनसाधारण के आशातीत आकर्षण के फलस्वरूप द्विवेदी युग में अपेक्षाकृत अधिक संख्या में उपन्यास रचे गए। प्रवृत्ति-भेद के आधार पर डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने द्विवेदी युग के उपन्यासों को पाँच भागों में विभक्त किया है- तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यास, जासूसी उपन्यास, अद्‌भुत घटना प्रधान उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास और सामाजिक उपन्यास।[7]

तिलिस्मी उपन्यासकार बाबू देवकीनंदन खत्री को उनके उपन्यासों 'चन्द्रकांता' और 'चन्द्रकांता सन्तति' से जो प्रतिष्ठा भारतेन्दु युग में प्राप्त हुई थी वह द्विवेदी युग में भी कायम रही। खत्री जी के अन्य उपन्यास- 'काजर की कोठरी' (1902 ई.), 'अनूठी बेगम' (1905 ई.), 'गुप्त गोदना' (1906 ई.) एवं 'भूतनाथ'- प्रथम छह भाग (1906 ई.) आदि प्रकाशित हुए। हरेकृष्ण जौहर कृत- 'मायामहल' (1901 ई.), 'कमल कुमारी' (1902ई.), 'निराला नकाबपोश' (1902ई.), 'भयानक खून' (1903 ई.); किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'तिलिस्मी शीश महल' (1908 ई.); रामलाल वर्मा कृत 'पुतली महल' (1908 ई.) आदि इस युग के प्रसिद्ध तिलिस्मी उपन्यास हैं।

गोपालराम गहमरी (1866-1946 ई.) ने अपनी पत्रिका 'जासूस' के माध्यम से सैकड़ों जासूसी उपन्यासों को जनसाधारण तक पहुँचाया। गहमरी जी के उपन्यासों में अंग्रेजी के जासूसी उपन्यासकार आर्थर कानन डायल का प्रभाव देखा जा सकता है। 'चक्करदार चोरी' (1901ई.), 'जासूस पर जासूसी' (1904ई.), 'जासूस चक्कर में (1906ई.), 'इन्द्रजालिक जासूस' (1906

ई.), 'गुप्त भेद' (1913 ई.), 'जासूस की ऐयारी' (1914 ई.) आदि गहमरी जी के प्रसिद्ध उपन्यास हैं। रामलाल वर्मा, रामप्रसाद लाल, जयरामदास गुप्त और किशोरीलाल गोस्वामी प्रभृति उपन्यासकारों ने भी जासूसी उपन्यास लिखने का स्फुट प्रयास किया।

अंग्रेजी के उपन्यासकार रेनाल्ड्स के उपन्यास 'मिस्ट्रीज ऑफ द कोर्ट ऑफ लन्दन' का प्रभाव बंगाल से होते हुए हिन्दी कथा-साहित्य में आया और हिन्दी में अद्‌भुत घटना प्रधान उपन्यास लिखे गए। ऐसे उपन्यासों की संख्या लगभग पाँच सौ होगी, जिनमें विठ्ठलदास नागर कृत 'किस्मत का खेल' (1905ई.); बाँकेलाल चतुर्वेदी कृत 'ख़ौफनाक ख़ून' (1912 ई.); निहालचन्द्र वर्मा कृत 'प्रेम का फल अथवा मिस जोहरा' (1913 ई.); प्रेमविलास वर्मा कृत 'प्रेम माधुरी या अनंगकान्ता' (1915 ई.); किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'ख़ूनी औरत के सात ख़ून' (1916ई.); और दुर्गाप्रसाद खत्री कृत 'अद्‌भुत लाश' (1916 ई.) आदि लोकप्रिय हुए।

मुगलकाल की रहस्यमय और कौतूहलपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं में कल्पना, रोमांच और रूमानियत का समावेश करके इस युग में ऐतिहासिक उपन्यास रचे गए। चन्द ऐतिहासिक घटनाओं के आलोक के कारण ही ऐसे उपन्यासों को ऐतिहासिक उपन्यास कहा गया, अन्यथा इनमें ऐतिहासिकता का सर्वथा अभाव है। ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में किशोरीलाल गोस्वामी का सर्वाधिक योगदान है। गोस्वामी जी द्वारा रचित 'तारा वा क्षात्रकुल कमलिनी' (1902 ई.), 'कनक कुसुम या मस्तानी' (1903ई.), 'हृदय हारिणी वा आदर्श रमणी' (1904 ई.), 'सुल्ताना रजिया बेगम' (1904ई.), 'मल्लिका देवी वा बंग सरोजिनी' (1905ई.), 'पन्नाबाई' (1909ई.), 'गुलबहार' (1916ई.), 'लखनऊ की कब्र' (1917 ई.) आदि उल्लेखनीय हैं। गोस्वामी जी के अतिरिक्त गंगा प्रसाद गुप्त ने 'नूरजहाँ' (1902ई.), 'कुमार सिंह सेनापति' (1903ई.), 'हम्मीर' (1903ई.) और 'वीर पत्नी' (1903 ई.); जयरामदास गुप्त ने 'कश्मीर का पतन' (1907 ई.), 'रंग में भंग' (1907ई.), 'मायारानी' (1908ई.), 'नवाबी परिस्तान' (1909ई.) और 'मल्का चाँद बीबी' (1909 ई.); ब्रजनन्दन सहाय ने 'लाल चीन'; मिश्र बन्धुओं ने 'वीर मणि' (1917ई.), 'विक्रमादित्य' (1918ई.) और 'पुष्यमित्र' (1920 ई.) आदि ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की।

समाज में धर्म, नैतिकता, संस्कृति व आदर्श को प्रतिस्थापित करने एवं दूषित प्रवृत्तियों, कुरीतियों और सामाजिक समस्याओं को दूर करने के उद्देश्य को लेकर द्विवेदी युग में अनेक

सामाजिक उपन्यास रचे गये। सामाजिक उपन्यासकारों में भी किशोरीलाल गोस्वामी अग्रणी हैं। ढेरों उपन्यासों की रचना करने के कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किशोरीलाल गोस्वामी को हिन्दी का पहला उपन्यासकार माना है।[8] भारतेन्दु युग से चलते हुए आलोच्य युग में भी गोस्वामी जी के सामाजिक उपन्यासों की लम्बी श्रृंखला मिलती है। 'राजकुमारी' (1901ई.), 'लीलावती वा आदर्श सती' (1902 ई.), 'चपला या नव्य समाज चित्र' (1903 ई.), 'पुनर्जन्म या सौतिया डाह' (1907 ई.), 'माधवी माधव या मदन मोहिनी' (1903-1910ई.) और 'अँगूठी का नगीना' (1918ई.) आदि गोस्वामी जी के ख्यातिलब्ध उपन्यास हैं। गोस्वामी जी के अतिरिक्त लज्जाराम शर्मा ने 'आदर्श दम्पत्ति' (1904ई.), 'बिगड़े का सुधार अथवा सती सुख देवी' (1907ई.) और 'आदर्श हिन्दू' (1914ई.), अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध ने 'अधखिला फूल' (1907ई.), अमृतलाल चक्रवर्ती ने 'सती सुखदेवी' (1902ई.), लोचन प्रसाद पाण्डेय ने 'दो मित्र' (1906ई.), बल्देव प्रसाद मिश्र ने 'संसार' (1907ई.), नवलराम ने 'प्रेम' (1907ई.), सकल नारायण पाण्डेय ने 'अपराजिता' (1907ई.), श्यामकिशोर वर्मा ने 'काशी यात्रा' (1916ई.), रामजी दास वैद्य ने 'फूल में काँटा' (1906ई.) और 'धोखे की टट्टी' (1907ई.), कृष्णलाल वर्मा ने 'चम्पा' (1916ई.); मन्नन द्विवेदी ने 'रामलाल' (1917ई.), हरस्वरूप पाठक ने 'भारत माता' (1915ई.) और ब्रजनन्दन सहाय ने 'सौन्दर्योपासक' (1911ई.) व 'राधाकान्त' (1912ई.) आदि सामाजिक उपन्यास रचे। द्विवेदी युग में भी बंगला और अंग्रेजी के उपन्यासों के अनुवाद काफी मात्रा में हुए, किन्तु मौलिक उपन्यास भी कम नहीं रचे गए। इसके साथ ही सामाजिक समस्याओं का चित्रण भी इस युग के उपन्यासों में पर्याप्त होने लगा यथार्थ के सटीक चित्रण और बेबाक प्रस्तुतीकरण का अभाव जो द्विवेदी युग में देखने का मिलता है वह मुंशी प्रेमचन्द के आते ही दूर हो जाता है। उपन्यास जगत् में मुंशी प्रेमचंद के आगमन ने उपन्यासों की दिशा और दशा, कथ्य और शिल्प सभी को बदल दिया और इसलिए आगे आने वाला कालखण्ड प्रेमचंद युग के नाम से जाना गया।

मुंशी प्रेमचंद उर्दू के साहित्यकार थे और 'सेवासदन' (1918ई.) के प्रकाशन से उनको हिन्दी उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। 'सेवासदन' में वर्णित जीवन की वास्तविक अभिव्यक्ति ने उपन्यास विधा के समूचे युग को ही परिवर्तित कर दिया। मुंशी प्रेमचंद ने हिन्दी कथा-साहित्य का साक्षात्कार जीवन की वास्तविकताओं से कराया। अभी तक मनोरंजन का

साधन बना रहने वाला हिन्दी कथा-साहित्य जीवन की जटिलताओं, समस्याओं और विद्रूपताओं को अभिव्यक्त करने का माध्यम बन गया। उपन्यास विधा के क्षेत्र में मुंशी प्रेमचंद द्वारा दिये गये महत् योगदान के कारण इस युग को 'प्रेमचंद युग' के नाम से जाना गया। प्रेमचंद ने 'प्रेमाश्रम' (1922ई.), 'रंगभूमि' (1925ई.), 'कायाकल्प' (1926ई.), 'निर्मला' (1927ई.), 'गबन' (1931ई.), 'कर्मभूमि' (1933ई.) और 'गोदान' (1935ई.) उपन्यासों में देश की प्रायः सभी समस्याओं का चित्रण पूरी सच्चाई के साथ किया है। मुंशी प्रेमचंद की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए चण्डी प्रसाद 'हृदयेश' ने 'मनोरमा' (1924ई.) और 'मंगल प्रभात' (1926ई.); विश्म्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने 'माँ' (1929ई.), 'भिखारिणी' (1929ई.) और 'संघर्ष' (1945ई.) अवधनारायण ने 'विमाता' (1923ई.); श्रीनाथ सिंह ने 'उलझन' (1934ई.), 'जागरण' (1937ई.), 'प्रभावती' (1941ई.), 'प्रजामण्डल' (1941ई.); चतुरसेन शास्त्री ने 'हृदय की परख' (1918ई.), 'हृदय की प्यास' (1932ई.), 'अमर अभिलाषा' (1932ई.) और 'आत्मदाह' (1937ई.); प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने 'विदा' (1929ई.) और 'विजय' (1937ई.); अनूपलाल मण्डल ने 'निर्वासिता' (1929ई.) और सियारामशरण गुप्त ने 'गोद' (1932ई.), अंतिम आकांक्षा (1934ई.) और 'नारी' (1937ई.) आदि उपन्यास लिखे।

प्रेमचंद की विचारधारा से हटकर भी कुछ उपन्यासकार रचनाकर्म में प्रवृत्त हुए। ऐसे उपन्यासकारों में शिवपूजन सहाय (1893-1963ई.) का नाम सर्वप्रथम आता है। सहाय जी ने 'देहाती दुनिया' (1926ई.) के माध्यम से उपन्यासकारों को प्रेमचंद परम्परा से हटकर दूसरा मार्ग दिखाया। इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने 'चन्द हसीनों के खुतूत' (1927ई.); दिल्ली का दलाल' (1927ई.), 'बुधुआ की बेटी' (1928ई.), 'शराबी' (1930ई.); ऋषभचरण जैन ने 'मास्टर साहिब' (1927ई.), 'वेश्यापुत्र' (1929ई.), 'सत्याग्रह' (1930ई.) और 'चम्पाकली' (1937ई.); जैनेन्द्र ने 'परख' (1929ई.), 'सुनीता' (1935ई.) और 'त्यागपत्र' (1937ई.); भगवतीचरण वर्मा ने 'चित्रलेखा' (1934ई.); राधिकारमण प्रसाद सिंह ने 'राम रहीम' (1937ई.); वृन्दावनलाल वर्मा ने 'संगम' (1928ई.), 'लगन' (1929ई.), 'गढ़कुण्डार' (1929ई.), 'प्रत्यागत' (1929ई.), 'कुण्डली चक्र' (1932ई.) व 'विराटा की पद्मिनी' (1936ई.); राहुल सांकृत्यायन (1893-1963ई.) ने 'शैतान की आँख' (1923ई.), 'विस्मृति के गर्भ में' (1923ई.) और 'सोने की ढाल' (1923ई.) आदि अनूदित उपन्यासों की रचना की इस प्रकार

प्रेमचंद ने उपन्यासों के विकास-क्रम को आगे बढ़ाते हुए बंगला और अंग्रेजी के उपन्यासों के अनुगामी बनकर चलने वाले हिन्दी उपन्यास को अपनी कुशल लेखनी के प्रभाव द्वारा नवीन कथ्य और शिल्प से सजा दिया। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में ग्राम्य जीवन का ऐसा सुंदर और सजीव चित्रण किया है, जिसे अन्यत्र नहीं पाया जा सकता। दूसरी तरफ जैनेन्द्र ने प्रेमचंद की परम्परा से अलग हटकर मनोविश्लेषणवादी उपन्यासों की रचना प्रारम्भ की और इस प्रकार प्रेमचंद युग में ही हिन्दी उपन्यासों के क्षेत्र में तमाम नए कथ्य और विचार-बिन्दु आ गए जो परवर्ती काल में अधिक समृद्ध हुए।

प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों में विविध विचारधाराओं, नवीन खोजों और आधुनिकताबोध का प्रभाव दिखाई देने लगता है। प्रेमचंद युग में जैनेन्द्र ने जिस मनोविज्ञान, दार्शनिकता और वैयक्तिकता को अपने उपन्यासों में उतारा था, वह प्रेमचंदोत्तर युग में और अधिक पुष्ट हो गई। जैनेन्द्र के 'कल्याणी' (1939ई.), 'सुखदा' (1952ई.), 'विवर्त' (1953ई.), 'व्यतीत' (1953 ई.) और 'जयवर्द्धन' (1956ई.) आदि ऐसे ही उपन्यास हैं। जैनेन्द्र की परम्परा पर चलते हुए इलाचन्द्र जोशी ने 'संन्यासी' (1941ई.), पर्दे की रानी (1941ई.), 'प्रेत और छाया' (1946 ई.), 'निर्वासित' (1946ई.), 'मुक्तिपथ' (1950ई.), 'जिप्सी' (1952ई.), 'सुबह के भूले' (1952ई.) और 'जहाज का पंछी' (1955ई.); अज्ञेय ने 'शेखर : एक जीवनी' (1940-44 ई.), 'नदी के द्वीप' (1951ई.) और 'अपने अपने अजनबी' (1961ई.); डॉ. धर्मवीर भारती ने 'गुनाहों का देवता' (1949ई.); 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' (1953ई.); गिरिधर गोपाल ने 'चाँदनी के खण्डहर' (1954ई.); प्रभाकर माचवे ने 'परन्तु' (1951ई.), 'एक तारा' (1952ई.), 'द्वाभा' (1955ई.) एवं 'साँचा' (1956ई.) और नरेश मेहता ने 'डूबते मस्तूल' (1954ई.) आदि उपन्यास लिखे।

ऐसी रचनाओं ने आगे आने वाले समय में उपन्यास विधा के शिल्प को समृद्ध किया, साथ ही प्रतीकात्मकता, बिम्ब-विधान और वैचारिकता के स्तर पर नवीनी प्रयोगों को प्रेरणा देने का कार्य किया। फलतः इन्हें प्रयोगशील उपन्यास कहा गया।

प्रेमचंद की परम्परा पर चलते हुए प्रताप नारायण श्रीवास्तव ने 'विकास' (1938ई.), 'बयालिस' (1948ई.), 'विसर्जन' (1950ई.), 'विश्वमुखी' (1957ई.), 'वेदना' (1960ई.) और 'विश्वास की वेदी पर' (1960ई.); गुरुदत्त ने 'स्वाधीनता के पथ पर' (1942ई.), 'स्वराज्य दान'

(1949ई.), 'भावकुता का मूल्य' (1950ई.), 'बहती रेता' (1951ई.), 'देश की हत्या' (1953ई.), 'उमड़ी घटा' (1954ई.); भगवतीचरण वर्मा ने 'तीन वर्ष' (1946ई.), 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' (1946ई.), 'आखरी दॉव' (1950ई.), 'अपने खिलौने' (1957ई.), 'भूले बिखरे चित्र' (1959ई.), 'वह फिर नहीं आई' (1960ई.); उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने 'गिरती दीवारें' (1947ई.); डॉ. सत्यप्रकाश संगर ने 'बरगद की छाया', 'कली मुसकाई' और 'चाँद रानी' आदि आदर्शपरक सामाजिक उपन्यास लिखे।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' और चतुरसेन शास्त्री की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए प्रेमचंदोत्तर कालखण्ड में अमृतलाल नागर ने 'महाकाल' (1947ई.), 'सेठ बाँकेमल' (1955ई.), 'बूँद और समुद्र'(1956ई.), 'शतरंज के मोहरे' (1959ई.), 'सुहाग के नुपुर' (1960ई.) और 'ये कोठेवालियाँ' (1961ई.) लिखे। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने 'दीवारें' (1936ई.), 'सितारों का खेल' (1937ई.), 'गरम राख' (1952ई.) और 'बड़ी-बड़ी आँखे' (1955ई.); यज्ञदत्त शर्मा ने 'दो पहलू' (1940ई.), 'इन्सान' (1947ई.) और 'अन्तिम चरण'; मन्मथनाथ गुप्त ने 'अवसान', 'जय यात्रा', अन्धेर नगरी', 'काजल की कोठरी व 'दो दुनिया' और राजेन्द्र यादव ने 'प्रेत बोलते हैं' (1952ई.), 'उजड़े हुए लोग' (1956 ई.), 'कुलटा' (1958ई.) व 'शह और मात' (1959ई.) आदि यथार्थपरक सामाजिक उपन्यास लिखे।

इसी कालखण्ड में ही उपन्यासों में पूँजीवादी सभ्यता के दोषों के विरुद्ध आर्थिक असमानता, वर्ग-भेद, शोषण, अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध आवाजें उठने लगीं। उपन्यासों में जन्मी इस नई दिशा को आलोचकों, समीक्षकों ने 'प्रगतिवाद' नाम दिया। प्रगतिवाद के सबसे सशक्त उपन्यासकार यशपाल ने 'दादा कामरेड' (1941ई.), 'देशद्रोही' (1943ई.), दिव्या (1945ई.), 'पार्टी कामरेड' (1946ई.), 'मनुष्य के रूप' (1949ई.), 'अमिता' (1956ई.) और 'झूठा-सच' (1960ई.) आदि उपन्यासों में शोषित और कमजोर वर्ग की आवाज बुलन्द की। यशपाल के साथ ही नागार्जुन ने 'रतिनाथ की चाची' (1948ई.), 'बलचनमा' (1952ई.), 'वरुण के बेटे' (1957ई.) और 'दुखमोचन' (1957ई.) उपन्यास रचे; भैरवप्रसाद गुप्त ने 'मशाल' (1951ई.), 'गंगा मैया' (1953ई.), 'सती मैया का चौरा' (1956ई.), 'जंजीरें' और 'नया आदमी'; अमृतराय ने 'बीज' (1953ई.), 'नागफनी का देश' और 'हाँथी के दाँत'; महेन्द्रनाथ ने 'आदमी और सिक्के' (1952ई.), 'रात अंधेरी है' (1954ई.); नित्यानंद वात्स्यायन

ने 'केला बाडी' (1952ई.); राहुल सांकृत्यायन ने 'जीने के लिए' (1904ई.), 'सिंह सेनापति' (1944ई.), 'मधुर स्वप्न' (1949ई.) और 'विस्मृत यात्री' (1954ई.); रांगेय माधव ने 'घरौंदे' (1946ई.), 'विषादमठ' (1946ई.), 'मुर्दों का टीला' (1948ई.), सीधा सादा रास्ता' (1951 ई.) और 'अंधेरे का जुगनू' (1953ई.); रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' ने चढ़ती धूप (1954ई.), 'नयी इमारत' (1946ई.), 'उल्का' (1947ई.) और मरुप्रदीप (1951ई.) आदि उपन्यासों की रचना की।

शिवपूजन सहाय और नागार्जुन द्वारा प्रारम्भ की गई आंचलिक उपन्यास लेखन की परम्परा प्रेमचंदोत्तर युग में बलवती हो गई। फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' (1954ई.) ने आंचलिक उपन्यास रचना की ओर रचनाकारों को आकृष्ट किया। रेणु जी ने 'परती परिकथा' (1957ई.), और 'दीर्घतपा' (1963ई.) आदि उपन्यासों की रचना की। रेणु जी की परम्परा में ही देवेन्द्र सत्यार्थी ने 'रथ के पहिए', 'कठपुतली', 'दूधगाह' आदि; रांगेय राघव ने 'काका' और 'कब तक पुकारूँ'; उदयशंकर भट्ट ने 'सागर लहरें और मनुष्य' (1956ई.); वीरेन्द्र नारायण ने 'अमराई की छाँह'; बलवन्त सिंह ने 'रात चोर और चाँद' (1945ई.) व राजेन्द्र अवस्थी ने 'जंगल के फूल' (1960ई.) आदि के माध्यम से आंचलिक जनजीवन और उसकी समस्याओं को बड़ी बेबाकी से उकेरा।

ऐतिहासिक उपन्यास लेखन की परम्परा जो किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा प्रारम्भ की गयी थी उसे आगे बढ़ाते हुए प्रेमचंदोत्तर युग में और भी विस्तृत क्षितिज मिला। वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रृंखला में ही 'झाँसी की रानी' (1946ई.), 'मुसाहिब जू' (1946ई.), 'कचनार' (1947ई.), 'मृगनयनी' (1950ई.), 'टूटे काँटे' (1954ई.) और 'भुवन विक्रम' (1957ई.) आदि उपन्यास लिखे; आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'मंदिर की नर्तकी' (1939ई.), 'वैशाली की नगरवधू' (1948ई.), 'सोमनाथ' (1954ई.), 'आलमगीर' (1954ई.), 'वयं रक्षामः' (1955ई.), 'सोना और खून' (1960ई.) और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' (1946ई.) व 'चारुचन्द्र लेख' (1961ई.) आदि ऐतिहासिक पात्रों, घटनाओं पर आधारित उपन्यास लिखे। इस प्रकार साठ के दशक के अंत तक उपन्यास विधा न केवल समृद्ध हो गई वरन् विविध विचारधाराओं, प्रवृत्तियों और प्रयोगों ने उपन्यास विधा में नूतनता और यथार्थ से निकटता प्रदर्शित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी इसी के फलस्वरूप

वैचारिक द्वन्द्वों, आधुनिकता बनाम पुरातनता के द्वन्द्वों के बीच से निकलकर साठोत्तरी उपन्यासों ने हिन्दी कथा-साहित्य को समृद्ध किया।

अब तक उपन्यासों में जीवन्त सांस्कृतिक मिथक, फ्रायड और मार्क्स की विचारधाराएँ, विविध वाद, मनोविश्लेषणवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और आंचलिकता के अलग-अलग बंध टूटकर समवेत हो गए। लगभग सत्तर वर्षों की अपनी विकास-यात्रा में ही नए शिल्प से युक्त उपन्यासों ने जिन ऊँचाइयों को छुआ वह हिन्दी कथा-साहित्य के लिए प्रतिष्ठा की बात है। साठोत्तरी उपन्यासों का ऊर्ध्वाधर विकास होने के बजाय क्षैतिज विस्तार हुआ। समग्र देशकाल, एक-एक प्रश्नाकुलता, चुनौती, समस्या, विद्रूपता, विसंगति, यंत्रणा और जटिलता उपन्यासों में अभिव्यक्त होने लगी। जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त करते ऐसे उपन्यासों में कथ्य, शिल्प, संवेदना और रूप में भी व्यापक परिवर्तन परिलक्षित होने लगे। पुराने उपन्यासकारों ने नई राह पकड़ी और तमाम नवीन उपन्यासकार इस क्षेत्र में आए। लक्ष्मीकान्त वर्मा ने 'एक कटी हुई जिन्दगीः एक कटा हुआ कागज' (1965ई.), 'टेराकोटा' (1971ई.); लक्ष्मी नारायण लाल ने 'प्रेम अपवित्र नदी'; कृष्णा सोबती ने 'मित्रो मरजानी' (1967ई.), 'सूरजमुखी अँधेरे के' (1972ई.); उपेन्द्रनाथ अश्क ने 'शहर में घूमता आईना' (1963ई.); मन्मथनाथ गुप्त ने 'शहीद और शोहदे' (1970ई.); राजेन्द्र यादव ने 'अनदेखे अनजाने पुल' (1963ई.); फणीश्वरनाथ रेणु ने 'जुलूस' (1965ई.), 'कितने चौराहे' (1966ई.), 'कलंक मुक्ति' (1976ई.); रमेशचंद्र शाह ने 'गोबर गणेश', 'किस्सा गुलाम' (1976ई.); शिवप्रसाद सिंह ने 'अलग-अलग वैतरणी' (1967ई.); रामदरश मिश्र ने 'जल टूटता हुआ' (1969ई.), 'सूखता हुआ तालाब' (1972ई.); भीष्म साहनी ने 'कड़ियाँ' (1970ई.), 'तमस' (1973ई.); राजकमल चौधरी ने 'मछली मरी हुई' (1966ई.); रमेश बक्षी ने 'एक घिसा हुआ चेहरा' (1964ई.), 'अठारह सूरज के पौधे' (1965ई.), 'बैसाखियों वाली इमारतें (1966ई.); उषा प्रियंवदा ने 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' (1961ई.), 'रुकोगी नहीं राधिका' (1967ई.); मन्नू भण्डारी ने 'आपका बंटी' (1971ई.), 'महाभोज'; कमलेश्वर ने 'तीसरा आदमी' (1964ई.), 'आगामी अतीत' (1976ई.), 'काली आँधी'; मोहन राकेश ने 'अंधेरे बन्द कमरे' (1961ई.), 'अन्तराल' (1972ई.); निर्मल वर्मा ने 'वे दिन' (1964ई.), 'लाल टीन की छत'; गिरिराज किशोर ने 'यात्राएँ', 'जुगलबंदी' और 'चिड़ियाघर'; गंगाप्रसाद विमल ने 'अपने से अलग'; मृदुला गर्ग ने 'चित्तकोबरा'; मंजुल भगत ने 'लेडी

क्लब', 'अनारो'; गोविन्द मिश्र ने 'वह अपना चेहरा' (1971ई.), 'लाल पीली जमीन', 'उतरती हुई धूप'; श्रीलाल शुक्ल ने 'राग दरबारी' (1968ई.), 'अज्ञातवास', 'आदमी का जहर'; शिवानी ने 'कृष्णा कली' (1969ई.); राही मासूम रज़ा ने 'आधा गाँव' (1966ई.); नरेन्द्र कोहली ने 'दीक्षा', 'अवसर'; सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने 'पागल कुत्तों का मसीहा (1977ई.), 'सोया हुआ जल' (1977ई.), 'कच्ची सड़कें' (1978ई.) और 'अंधेरे पर अंधेरा' (1980ई.); विष्णु प्रभाकर ने 'स्वप्नमयी'; रवीन्द्र कालिया ने 'खुदा सही सलामत है' आदि उपन्यासों में जीवन के यथार्थ का, जीवन की समस्याओं, अन्तर्विरोधों, विद्रूपताओं और व्यवस्थाजन्य परिस्थितियों से संघर्ष करते व्यक्ति और समाज का सटीक चित्रण किया है। निर्मल वर्मा, विष्णु प्रभाकर, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, कामतानाथ, कमलेश्वर, गिरिराज किशोर, राजेन्द्र यादव, गोविन्द मिश्र, मृदुला गर्ग, क्रान्ति त्रिवेदी, मुद्राराक्षस, विद्यावती दुबे, मृणाल पाण्डे, रामदरश मिश्र, स्वयं प्रकाश और मोहनदास नैमिशराय प्रभृति उपन्यासकार अपनी रचनाओं में बहुरंगी जीवन के यथार्थ का प्रभावोत्पादक चित्रण करते हुए समष्टि से व्यष्टि और फिर स्वयं को भी भुला देने तक की औपन्यासिक विकास यात्रा में तमाम नवीन पक्षों को सजीव कर रहे हैं और हिन्दी कथा-साहित्य के विशाल भण्डार को समृद्ध कर रहे हैं।

(आ) आठवें दशक तक की कहानियाँ :-

भारतवर्ष में कहानी कला की समृद्ध परम्परा रही है, किन्तु 'आधुनिक कहानी' कही जाने वाली कहानियों की परम्परा का प्रारम्भ 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन के साथ ही होता है। यद्यपि इसके पूर्व भारतेन्दु युग में अम्बिकादत्त व्यास कृत 'कथा-कुसुम कलिका' (1888ई.), राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द कृत 'वामा मनोरंजन' (1886ई.) में पुराणों आदि से आगत कथाएँ हैं। वस्तुतः भारतेन्दु युग में कहानी और उपन्यासों के मध्य विभेद नहीं था। इंशाअल्ला खाँ द्वारा रचित 'रानी केतकी की कहानी' (1803ई.) को हिन्दी की पहली कहानी माना जाता है, जो भारतेन्दु युग से भी पहले की है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि ''रानी केतकी की कहानी' नई परम्परा की आरम्भिक कहानी नहीं है, बल्कि मुस्लिम प्रभावापन्न परम्परा की अंतिम कहानी है।''[9] राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद कृत 'राजा भोज का सपना' और भारतेन्दु कृत 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' भी हिंदी की प्रारम्भिक कहानियाँ कही जा सकती हैं। किन्तु इनमें मौलिकता और नवीनता का अभाव है। डॉ. रामचन्द्र तिवारी का मत है कि ''ये रचनाओं को

कहानी और निबन्ध के बीच की रचनाएँ हैं।''[10] इस प्रकार इन्हें हिन्दी की प्रथम कहानी नहीं का जा सकता। डॉ. बच्चन सिंह का मत है कि ''1887 ई. में किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा रचित 'प्रणयिनी परिणय', जिसे उन्होंने उपन्यास कहा है, वास्तव में हिन्दी की पहली कहानी है।''[11] कई विद्वान इस तर्क से सहमत नहीं हैं। गोस्वामी जी की ही कहानी 'इन्दुमती' का प्रकाशन 1900 ई. में 'सरस्वती में हुआ। यद्यपि इसमें अंग्रेजी नाटक 'द टेम्पेस्ट' का प्रभाव है, फिर भी लेखक द्वारा मौलिकता लाने और भारतीय वातावरण प्रदर्शित करने का भरपूर प्रयास किया गया है। इसलिए 'इन्दुमती' को ही हिन्दी की पहली कहानी माना जाता है। किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'गुलबहार' (1902ई.); मास्टर भगवानदास कृत 'प्लेग की चुड़ैल' (1902ई.); रामचन्द्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय' (1903ई.); माधव प्रसाद मिश्र कृत 'मन की चंचलता' और बंग महिला कृत 'दुलाईवाली' (1907ई.) आदि हिन्दी की प्रारम्भिक कहानियाँ हैं और किशोरीलाल गोस्वामी हिन्दी के प्रथम कहानीकार।

'राखीबन्द भाई' (1909ई.) लिखकर वृन्दावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक कहानियों की परम्परा प्रारम्भ की। दूसरी ओर जयशंकर प्रसाद का कहानी संग्रह 'छाया' (1912ई.) प्रकाशित हुआ। इसी समय मुंशी प्रेमचंद भी उर्दू को छोड़कर हिन्दी में आ गए और उनकी 'सौत' (1915ई.), 'पंच परमेश्वर' (1916ई.), 'सज्जनता का दण्ड' (1916ई.), 'ईश्वरी का न्याय' (1917ई.) और 'दुर्गा का मन्दिर' (1917ई.) आदि कहानियाँ 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुईं। चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानी 'उसने कहा था' भी (1915ई.) 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। 'सरस्वती' में ही विश्म्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' (1891-1945ई.) की 'रक्षाबन्धन' और पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की 'झलमला' आदि प्रसिद्ध कहानियाँ प्रकाशित हुईं। कहानियों की ओर जनमानस के झुकाव और माँग को देखते हुए काशी से सन् 1918 ई. में 'हिन्दी गल्पमाला' पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इस प्रकार 1920 ई. तक लगभग बीस वर्षों के अन्तराल में ही हिन्दी कहानी न केवल प्रतिष्ठित हो गई वरन् कथ्य और शिल्प के सन्दर्भ में विविधता और बहुलता ने भविष्य के लिए असीमित रचना संसार के द्वार भी खोल दिए। इसी अवधि में प्रेमचंद द्वारा रचे गए विशाल कथा-संसार ने हिन्दी-साहित्य को समृद्धि और नई पहचान दी। इस कालखण्ड (1918-1938ई.) को इसी कारण 'प्रेमचंद युग' कहा गया।

मुंशी प्रेमचंद न केवल महान उपन्यासकार थे वरन् महान कहानीकार भी थे। उनके द्वारा

रची गयी लगभग तीन सौ कहानियों में मानव मन व चरित्र के, समाज की समस्याओं व जटिलताओं के चित्र और यथार्थ तत्त्व उत्तरोत्तर बढ़ते ही जाते हैं। उनकी प्रमुख कहानियों में से 'आत्माराम' (1920ई.), 'बूढ़ी काकी' (1921ई.), 'गृहदाह' (1922ई.), 'हार की जीत' (1922ई.), 'आप बीती' (1923ई.), 'सवा सेर गेहूँ' (1924ई.), 'शतरंज के खिलाड़ी' (1925ई.), 'कजाकी' (1926ई.), 'सुजान भगत' (1927ई.), 'इस्तीफा' (1928ई.), 'आलग्योझा' (1929ई.), 'पूस की रात' (1930ई.), 'ठाकुर का कुआँ' (1932ई.), 'बेटों वाली विधवा' (1932ई.), 'ईदगाह' (1933ई.), 'नशा' (1934ई.), 'बड़े भाईसाहब' (1934ई.) और 'कफन' (1936ई.) आदि का उल्लेख किया जा सकता है। जयशंकर प्रसाद ने व्यक्ति केन्द्रित कहानियाँ लिखीं, प्रसाद की प्रमुख कहानियों में 'प्रतिध्वनि' (1926ई.), 'आकाशदीप' (1929ई.), 'आँधी' (1931ई.) और 'इन्द्रजाल' (1936ई.) आदि उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचंद युग की अन्य प्रमुख कहानियों (कहानी संग्रहों) में विश्म्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' कृत 'गल्पमंदिर', 'चित्रशाला', प्रेमप्रतिमा, 'मणिमाला' और 'कल्लोल' कहानी संग्रह; पं. बद्रीनाथ भट्ट सुदर्शन कृत 'सुदर्शन सुधा', 'सुदर्शन सुमन', 'तीर्थयात्रा', 'पुष्पलता', 'गल्पमंजरी', 'परिवर्तन' और 'पनघट' आदि कहानी संग्रह; विशम्भरनाथ जिज्जा कृत 'घूँघट वाली' कहानी संग्रह; राधिकारमण प्रसाद सिंह कृत 'गाँधी टोपी' (1938ई.) कहानी संग्रह; भगवतीचरण वर्मा कृत 'इन्सटालमेन्ट' (1936ई.); राहुल सांकृत्यायन कृत 'सतमी के बच्चे' (1935ई.); सुभद्रा कुमारी चौहान कृत 'बिखरे मोती' (1936ई.) और 'उन्मादिनी' (1934ई.) कहानी संग्रह; आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत 'अंबपालिका', 'प्रबुद्ध', 'भिक्षुराज', 'बाणवधू' आदि कहानियाँ; सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' कृत 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी', 'पद्मा' और 'लिली' तथा भगवती प्रसाद वाजपेयी कृत 'दीपमालिका', 'हिलोर', 'मिठाईवाला', 'तारा', 'स्वप्नमयी' और 'शबनम' आदि प्रसिद्ध हैं।

प्रेमचंद की परम्परा से अलग हटकर चलने वाले कहानीकारों में जैनेन्द्र, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' और अज्ञेय का नाम आता है। इन कहानीकारों ने क्रमशः मानव-मन की गुत्थियों को खोलकर रख देने, समाज के नग्न यथार्थ का बेबाक चित्रण करने और रूढ़िवादिता, शोषण व अत्याचार से डटकर संघर्ष करने की जिजीविषा पैदा कर देने वाली कहानियाँ लिखीं। ऐसी कहानियों में जैनेन्द्र कृत 'हत्या' (1927ई.), 'खेल', 'अपना-अपना भाग्य', 'बाहुबली',

'वातायन', 'पाजेब' और 'एक दिन' आदि कहानियाँ उग्र कृत 'चिनगारियाँ, (1923ई.), 'बलात्कार' (1927ई.), 'इन्द्रधनुष' (1927ई.), 'चाकलेट' (1928ई.) और 'दोजख की आग' (1929ई.) आदि कहानी-संग्रह तथा अज्ञेय कृत 'कड़ियाँ', 'मैना', 'सिगनेलर', 'रोज', 'हरसिंगार' और 'रेल की सीटी' आदि उल्लेखनीय हैं। इसी अवधि में ही विष्णु प्रभाकर, उषा देवी मित्रा और चन्द्रगुप्त विद्यालंकार प्रभृति कथाकारों ने रचनाकर्म प्रारम्भ किया, जो परवर्ती कालखण्ड में अपना स्थान बना सका।

प्रेमचंदोत्तर युग की कहानियों में जीवन की जटिलताएँ, समस्याएँ एवं व्यवस्था-विरोध और अधिक मुखर हो गया। लगभग ऐसा ही परिवर्तन इस युग की कविताओं में हुआ और 'नई कविता' कहा गया, इसी प्रकार कहानियों को भी 'नई कहानी' नाम दिया गया। तमाम आंदोलन भी चले और विचारधाराएँ भी पनपीं। यशपाल का आगमन प्रगतिवादी विचारधारा के प्रतिनिधि कहानीकार के रूप में हुआ। यशपाल के कहानी संग्रह 'पिंजड़े की उड़ान', 'वो दुनिया', 'ज्ञानदान', 'अभिशप्त', 'भस्मावृत चिनगारी', 'फूलों का कुर्ता', 'उत्तमी की माँ', 'तुमने क्यों कहा कि मैं सुन्दर हूँ' आदि हिन्दी कथा-साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं।

जैनेन्द्र की परम्परा के वाहक अज्ञेय द्वारा रचित कहानी संग्रह 'विपथगा', 'परंपरा', 'कोठरी की बात', 'शरणार्थी', 'जयदोल', 'अमर वल्लरी' और 'ये तेरे प्रतिरूप' में व्यक्ति का आत्मसंघर्ष, व्यक्ति का परिवेश से संघर्ष और लेखकीय अनुभूतियाँ बड़ी रोचकता के साथ वर्णित हैं। जैनेन्द्र परम्परा के ही कहानीकार इलाचन्द्र जोशी ने 'रोमैण्टिक छाया', 'खण्डहर की आत्माएँ', 'डायरी के नीरस पृष्ठ', 'आहुति', 'होली और दीवाली' आदि संग्रह रचे।

प्रेमचंदोत्तर कालखण्ड में ही विष्णु प्रभाकर ने 'फिर भी धरती अब घूम रही है' में नवीन भावबोध का; चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने 'चंद्रकला', 'भय का राज्य' और 'अमावस' कहानी संग्रह में सामाजिक समस्याओं का; उपेन्द्रनाथ अश्क ने 'निशानियाँ और दो धारा' कहानी संग्रह में समाज की दुर्बलताओं और दूषित प्रवृत्तियों का; रामप्रसाद मिश्र 'पहाड़ी' ने 'सफर', 'अधूरा चित्र', 'सड़क पर' और 'बया का घोंसला' आदि कहानी संग्रह में आधुनिक समाज की अनैतिकता और यौन प्रवृत्तियों का; डॉ. सत्यप्रकाश संगर ने 'अवगुण्ठन', 'नया मार्ग', कितना ऊँचा कितना नीचा', 'लम्बे दिन जलती रातें' और 'मुझे टिकट दो' आदि कहानी संग्रह में राजनीति और सरकारी प्रशासन के भ्रष्टाचार का बेबाक चित्रण किया है। इनके अतिरिक्त देवीदयाल चतुर्वेदी ने

'अन्तर्ज्वाला'; राजेश्वर प्रसाद सिंह ने 'कलंक'; शांतिस्वरूप गौड़ ने 'त्रयोदशी' आदि कहानी संग्रह रचे।

आरसी प्रसाद सिंह ने 'कालरात्रि'; व्यथित हृदय ने 'सुहागरात की कहानियाँ'; नरेश ने 'गोधूलि'; मधुसूदन ने 'उजाले से पहले' और बृजेन्द्रनाथ गौड़ ने 'बिखरी कलियाँ' कहानी संग्रह में यौन समस्याओं को उभारा है। इस वर्ग में द्विजेन्द्रनाथ मिश्र, इन्द्रशंकर, केसरी चंद, नरसिंहराम शुक्ल और किशोर साहू आदि कहानीकार भी आते हैं।

इस युग की कहानियों में राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक उत्तरदायित्व के निर्वहन के साथ ही साथ बहुरंगी जीवन के विविध आयामों का सजीव, सटीक और बेबाक चित्रण हुआ। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद जैसे साहित्यिक आन्दोलनों ने भी कहानी के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। ऐसे आन्दोलनों और विचार धाराओं ने नई खोजों को जन्म दिया और इसी के परिणामस्वरूप 'नयी कहानी' सामने आई।

राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, निर्मल वर्मा और मोहन राकेश प्रभृति कहानीकारों ने नवीन भावबोध (आधुनिकता) के साथ जीवन के यथार्थ को 'नयी कहानी' में उकेरा। डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने 'नई कहानी' को विश्लेषित करते हुए लिखा है कि ''नया कहानीकार न अतीत के आदर्शों से जुड़ा है और न ही भविष्य के स्वप्नों से। वह वर्तमान में और वर्तमान में भी केवल अपने भोगे हुए यथार्थ को अपनी दृष्टि का केन्द्र बनाता है। इस प्रकार 'नई कहानी' में व्यक्तिवाद, यथार्थवाद, अनुभूतिवाद एवं आधुनिकतावाद की प्रतिष्ठा हुई जिसके फलस्वरूप वह जीवन, समाज और राष्ट्र के व्यापक परिवेश से कटकर कहानीकारों के वैयक्तिक जीवन की निजी समस्याओं से आबद्ध हो गई।''[12] नई कहानी आन्दोलन से जुड़े कुछ प्रमुख कहानीकारों में से मोहन राकेश ने 'इन्सान के खण्डहर', 'नये बादल', 'जानवर और जानवर', 'फौलाद का प्रकाश', 'एक और जिन्दगी'; निर्मल वर्मा ने 'परिन्दे', 'एक दिन का मेहमान', 'जलती झाड़ी', 'कव्वे और काला पानी'; कमलेश्वर ने 'राजा निरबंसिया', 'कस्बे का आदमी', 'खोई हुई दिशाएँ', 'हमपेशा', 'मांस का दरिया'; धर्मवीर भारती ने 'चाँद और टूटे हुए लोग'; 'स्पर्श और पृथ्वी'; दूधनाथ सिंह ने 'सपाट चेहरे वाला आदमी', 'सुखान्त'; ज्ञानरंजन ने 'फेंस के इधर-उधर', 'यात्रा'; गंगाप्रसाद विमल ने 'एक और विदाई'; राजेन्द्र यादव ने 'अभिमन्यु की आत्महत्या', 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', 'किनारे से किनारे तक', 'प्रतीक्षा', 'अपने आरपार', 'छोटे-छोटे

ताजमहल'; मन्नू भण्डारी ने 'रेत की दीवार', 'मैं हार गई', 'तीन निगाहों की एक तस्वीर', 'यही सच है', 'त्रिशंकु'; उषा प्रियंवदा ने 'फिर बसन्त आया', 'एक कोई दूसरा', 'जिन्दगी और गुलाब के फूल'; कृष्णा सोबती ने 'मित्रो मरजानी', 'यारों के यार', 'तिन पहाड़'; शिवप्रसाद सिंह ने 'आर-पार की माला'; हरिशंकर परसाई ने 'हँसते हैं रोते हैं', 'सदाचार का ताबीज' और शानी ने 'बबूल की छाँव' आदि प्रतिनिधि कहानी संग्रह रचे।

'नई कहानी' की प्रतिक्रिया स्वरूप 'सचेतन कहानी' आन्दोलन की शुरुआत डॉ. महीप सिंह ने की। 'सचेतन कहानी' ने 'नई कहानी' की व्यक्तिवादी और आत्मकेन्द्रित सीमा को तोड़कर कहानी को पुनः सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याओं के साथ जोड़कर व्यापकता और विस्तार दिया। महीप सिंह के कहानी संग्रह 'उजाले के उल्लू', 'कुछ और कितना', 'घिराव' और 'कितने सम्बन्ध' आदि प्रकाशित हुए। महीप सिंह के अतिरिक्त मनहर चौहान, योगेश गुप्त, कुलभूषण, वेद राही, बलराज पण्डित, सुखबीर, रामकुमार भ्रमर और मेहरुन्निसा परवेज आदि 'सचेतन कहानी' के प्रतिनिधि कहानीकार हैं।

फ्रांस में 'एंटी स्टोरी' आन्दोलन के प्रणेता एलन रॉब ग्रिए, नताली सारात, फ्रांसिस फैटन और बॉल्टोविक आदि का अनुगमन करते हुए हिन्दी के कुछ कहानीकारों ने 1966-67 ई. में 'अ-कहानी' आन्दोलन चलाया। इस आन्दोलन के अगुओं ने यद्यपि इसे आन्दोलन न मानकर विचार-दृष्टि माना है, जो कहानी के राष्ट्रीय और सामाजिक स्वरूप के बजाय व्यक्तिकेन्द्रित होने पर जोर देती है। गंगाप्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी, राजकमल चौधरी, श्याम परमार, दूधनाथ सिंह और रवीन्द्र कालिया आदि 'अ-कहानी' के प्रतिनिधि कहानीकार हैं।

अ-कहानी, परम्परा निर्वाह के बोध, सामाजिक और राष्ट्रीय भावबोध से अलग हटकर व्यक्ति की समस्याओं, विद्रूपताओं, कुण्ठा, हताशा, मोहभंग और त्रासद विडम्बना को उच्छृंखलता एवं अतियथार्थ की सीमा तक ले जाकर व्यक्त करने लगी, साथ ही काम-वासना और यौन सम्बन्धों का अभूतपूर्व तरीके से अत्यधिक खुलकर प्रदर्शन भी करने लगी। अ-कहानी से जुड़े कुछ कहानीकारों की रचनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि अ-कहानी, यौनवाद या यौनक्रान्ति का ही पर्याय है।

सत्तर के दशक के कथाकार कमलेश्वर ने 'समान्तर' या 'समानान्तर कहानी' का आन्दोलन छेड़ा। 'समान्तर कहानी' आन्दोलन को वादमुक्त और पीढ़ीमुक्त कहानी कहकर

परिभाषित किया गया। इसमें 'आम आदमी की तलाश' के नाम पर निम्न, मध्यवर्ग, किसान और मजदूर कहानियों में आए। 'आम आदमी' से आशय भी इन्हीं वर्गों से था। कमलेश्वर, सेवक राम यात्री (से.रा.यात्री), राम अरोड़ा, जितेन्द्र भाटिया, मिथिलेश्वर, आशीष सिन्हा, मधुकर सिंह, इब्राहीम शरीफ, हिमांशु जोशी, अनीता औलक, सूर्यबाला, अकुलेश परिहार, मेहरुन्निसा परवेज़, दामोदर सदन, स्वदेश दीपक, आलमशाह खान, निरुपमा सेवती और सुधा अरोड़ा आदि 'समान्तर कहानी' के प्रतिनिधि कहानीकार हैं।

'नई कहानी' की आत्मपरकता और अनुभववाद की प्रतिक्रिया स्वरूप कहानी रचना में चल रही दूसरी धारा का उदय 'जनवादी कहानी' के रूप में हुआ। भीष्म साहनी, अमरकान्त, मार्कण्डेय, शेखर जोशी, ज्ञानरंजन, सतीश जमाली, काशीनाथ सिंह, रमेश उपाध्याय, इसराइल और विजयकांत आदि ने वर्ग संघर्ष, अविश्वास, आशंका, अमानवीयता, व्यवस्था-विरोध, सामाजिक अन्तर्विरोध और अभाव के विरुद्ध सक्रिय प्रतिरोध को अपनी कहानियों में खोलकर रख दिया। वामपंथी आन्दोलन से जुड़े रहने के कारण जनवादी कहानीकारों में वामपंथी विचारधारा स्पष्ट दिखाई देती है।

अस्सी के दशक के प्रारम्भ में ही राकेश वत्स ने 'सक्रिय कहानी' का नया आन्दोलन खड़ा किया। यह पश्चिम के 'एक्टिव स्टोरी' से प्रभावित था। चित्रा मुद्‌गल, सुरेन्द्र मनन, रमेश बतरा और निरुपमा सेवती जैसे कहानीकार इस आन्दोलन के साथ खड़े हुए। सुरेन्द्रदास 'तनहाई' और रंगनाथ मिश्र 'सत्य' ने 'संतुलित कहानी' आन्दोलन छेड़ा, जिसे वर्तमान को नए ढंग से देखने, जीवन के जीवन्त क्षण और मानव के सम्पूर्ण परिवेश का वृहद चित्रण करने का उपक्रम बताया गया।

कहानी विधा के विस्तार क्रम को देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सन् 1960 ई. के बाद की कहानियों को किसी न किसी आन्दोलन या विचारधारा के साँचे में रखा गया। इस कालखण्ड में तमाम आन्दोलन और विचारधाराएँ जन्म लेती और मिटती रहीं। प्रायः ऐसा भी देखा गया कि अपनी अलग छवि बनाने और ख्याति अर्जित करने के निहितार्थ को लेकर भी ऐसे आन्दोलन खड़े किये गए। वस्तुतः कहानी का कथ्य और उसमें वर्णित यथार्थ को आन्दोलनों, विचारधाराओं या प्रवृत्तियों में एक सीमा तक ही विभाजित किया जा सकता है उससे अधिक विभाजित करना अवैज्ञानिक और साहित्यिक विकास की दृष्टि में अव्यावहारिक भी होता है क्योंकि

साहित्य में स्पष्ट विभाजक रेखा खींच सकना संभव नहीं होता।

आठवें दशक के बाद की 'कहानी' तमाम आन्दोलनों, विचारधाराओं और प्रवृत्तियों की खींचतान से ऊबकर सीधे-सपाट रास्त पर चल निकली- जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त करने और समय के सत्य को उजागर करने का महत् उद्देश्य लेकर। ऐसा भी नहीं है कि आन्दोलनों और विचारधाराओं के बिना 'कहानी' विचार शून्य हो गई या फिर उसका विस्तार और विकास रुक गया। आठवें दशक के बाद की कहानियाँ ऊर्ध्वाधर विकास के साथ ही क्षैतिक विकासोन्मुख होकर तमाम अछूते कथ्य, तमाम अनछुए बिन्दुओं, तमाम अनदेखे दृश्यों को, यथार्थ को खोज-खोजकर सामने लाने लगी।

इस प्रकार अपनी लम्बी सृजन-यात्रा में चलते हुए आठवें दशक की समाप्ति या नवें दशक के प्रारम्भिक काल तक पहुँचते-पहुँचते हिन्दी के कथा-साहित्य ने उन ऊँचाइयों को छुआ जो हिन्दी-साहित्य की अन्य विधाओं के लिए बहुत दूर की बातें थीं। इस कारण यात्रा-संस्मरण, रिपोर्ताज, रेखाचित्र, निबन्ध, डायरी और संस्मरण आदि हिन्दी की विधाएँ भी कथा-साहित्य में सम्मिलित हो गईं और कथा-साहित्य का अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत, वृहद क्षितिज उभरकर सामने आया। आगामी अध्यायों में इस विषय पर गहन विश्लेषण करने का प्रयास किया जाएगा।

सन्दर्भ

1. कोमल कोठारी : साहित्य, संगीत और कला, पृ. 49

2. वही, पृ. 56

3. डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त : हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ. 417

4. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य का विकास, पृ. 30

5. वही, पृ. 30

6. डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त : हिन्दी का साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ. 418

7. डॉ. रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी साहित्य का इतिहास (सं. डॉ. नगेन्द्र), पृ. 511

8. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 434

9. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ. 222

10. डॉ. रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी साहित्य का इतिहास (सं. डॉ. नगेन्द्र), पृ. 475

11. डॉ. बच्चन सिंह : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 87

12. डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त : हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ. 460

अध्याय : द्वितीय

आठवें दशक के बाद का युगीन परिदृश्य

[2]

आठवें दशक के बाद का युगीन परिदृश्य

पूर्ववर्ती अध्याय में कथा-साहित्य के हजारों वर्षो की विकास-यात्रा का अध्ययन किया गया। युगीन परिस्थितियों और प्रवृत्तियों को देखते-सुनते, बोलते-बतियाते कभी कल्पना जगत् में, कभी आदर्शवाद में तो कभी यथार्थ में जीते कथा-साहित्य का विकास स्वयं में रोचक कथा ही है। आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य के उद्भव के बाद से अनेक परिवर्तन (रूपबंध, कथ्य और शिल्प को लेकर) आए, किन्तु सबसे बड़ा परिवर्तन युगीन परिवेश में बदलाव के कारण आया। स्वतंत्रता मिलने के साथ ही नवीन दायित्वबोध, तमाम समस्याएँ और इनके साथ ही पनपता विरोध जिस खुलेपन के साथ हिन्दी कथा-साहित्य में दिखाई देने लगा, वह पूर्ववर्ती युगों में देखने को नहीं मिलता। यथार्थ के जीवन्त अंकन और वैचारिक प्रतिद्वन्द्विता ने कथा-साहित्य में तमाम आन्दोलनों और प्रवृत्तियों को भी जन्म दिया। आठवें दशक के उत्तरार्द्ध में ऐसा प्रतीत होता है कि तमाम आन्दोलनों, विचारधाराओं और प्रवृत्तियों से कथा-साहित्य की मुक्ति हो रही है। आठवें दशक के बाद के कथा-साहित्य को इसी कारण पूर्ववर्ती कालखण्ड से अलग रखा जा सकता है। यद्यपि साहित्य को विभाजित करने की स्पष्ट विभाजक रेखा तय कर पाना असम्भव की स्थिति तक कठिन होता है, किन्तु तद्युगीन रचनाओं की दिशा व प्रकृति की बहुलता के आधार पर उस युग की विभाजक रेखा का अंकन किया जा सकता है। इन मायनों में आठवें दशक के बाद के हिन्दी कथा-साहित्य को परवर्ती युग से अलग देखा जा सकता है। विभिन्न आन्दोलनों और विचारधाराओं के रूपबंधों से मुक्त आठवें दशक के बाद का हिन्दी कथा-साहित्य अपनी वैचारिकता, यथार्थपरकता और युगबोध के सन्दर्भो में कमतर नहीं आँका जा सकता। आन्दोलनों और विचारधाराओं ने हिन्दी कथा-साहित्य को जो गतिशीलता और दायित्व प्रदान किया, उसी को आगे ले जाने का कार्य आठवें दशक के बाद के कथा-साहित्य ने किया- किसी आन्दोलन या विचारधारा में बँधे बगैर।

आठवें दशक के बाद के कथा-साहित्य की दशा, दिशा, रूप और कथ्य को प्रभावित करने में सबसे बड़ा योगदान विचारधाराओं या आंदोलनों के बजाय युगीन परिदृश्य का रहा। यह कहना गलत न होगा कि नवें दशक में स्वतंत्रता प्राप्ति और उसके बाद के दशकों का प्रक्रियात्मक दुष्प्रभाव (साइड इफेक्ट) दिखाई देता है, क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक व अन्य समस्याएँ स्वतंत्रता प्राप्ति के जोश में या परतंत्रता के संगर के कालखण्ड की दुष्कर व कठिन परिस्थितियों की स्मृति और भय के आवरण से मुक्त न हो पाने

की स्थिति में प्रायः दबी हुई ही रहीं। देश और दुनिया में तेजी से आ रहे बदलाव के कारण तमाम समस्याएँ जो दबी हुई थी, उभरकर सामने आने लगीं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 20 अक्टूबर 1962 को भारत पर चीन के हमले ने भारतीय राजनीतिक नेतृत्व की तन्द्रा को भंग कर दिया। विभाजन के दुष्प्रभावों से भारत अभी उबर भी नहीं पाया था कि सन् 1965 में कच्छ के रन में भारत-पाक युद्ध ने दोनों पड़ोसी देशों के सम्बन्धों को और भी खराब कर दिया। 1971 में पुनः पाकिस्तान के हमले, पाकिस्तान की पराजय और बांग्लादेश की मुक्ति ने दोनों देशों को एक दूसरे का कट्टर दुश्मन बना दिया। श्रीलंका में एल0टी0टी0ई0 द्वारा चलाई जा रही भारत विरोधी गतिविधियों, चीन द्वारा उत्तर-पूर्वी सीमान्त क्षेत्रों (नेफा, सिक्किम, मेघालय, असम) में चलाई जा रही अलगाववादी गतिविधियों और पाकिस्तान, बांग्लादेश जैसे जन्मजात विरोधियों के कारण भारत की सीमाएँ अलगाववाद, असुरक्षा और आतंक की आग में सुलग रहीं थीं। पंडित नेहरू की गुटनिरपेक्ष नीति, पंचशील और विश्वबंधुत्व के स्वप्नों का मोहजाल भंग हो चुका था और विश्व में भारत की स्थिति दयनीय व लाचार हो गई थी। जिस संयुक्त राष्ट्र संघ को जन्म देने और समर्थ बनाने में भारत ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, उसमें ही भारत की स्थिति नगण्य हो गई। बाहरी आक्रमणों से जूझ रहे देश की आंतरिक स्थिति भी अच्छी नहीं थी। स्वतंत्रता के समय अपने प्राणों की बाजी लगाने वाले समर्पित राजनेता, राजनीति की चकाचौंध में, सत्ता प्राप्ति के खूनी खेल में नहीं टिक पाने के कारण किनारे हो गए थे और उनके स्थान पर भ्रष्ट, स्वार्थी लोगों ने कब्जा जमा लिया। प्रख्यात विचारक और अर्थशास्त्री नानी पालखीवाला इस संदर्भ में अपना मत प्रकट करते हैं कि "1950 के दशक में ऐसे अनेक जननेता थे जो नख से शिख तक सज्जन थे। 1960 के दशक में भी ऐसे जननेता थे जो उनसे कुछ कम सज्जन थे। पर दुर्भाग्यवश 1970 के दशक में ऐसे अनाहूत अनेकानेक जननेता पैदा हो गए जिनमें सज्जनता है ही नहीं। हमारे संविधान के उदात्त पक्ष को हमारे महानगरों के सत्ताधारियों, सत्तालोलुपों और सत्ता के दलालों ने बौना बनाकर रख दिया है। चुनाव लड़ने वाले राजनेताओं ने चुनाव को घुड़दौड़ बनाकर रख दिया है। अन्तर केवल इतना है कि घोड़े को अच्छा प्रशिक्षण दिया जाता है।"[1] 26 जून 1975 ई0 को देश में आपात्काल की घोषणा की गई, लाखों राजनीतिक विरोधियों को सत्तारूढ़ केन्द्र सरकार ने कारागार में बन्द करा दिया, प्रेस और जनता की स्वतंत्रता आपात्काल की बलिवेदी पर कुर्बान हो गई, मौलिक अधिकारों के निलम्बन के साथ ही लोकतांत्रिक मूल्य भी

नष्ट हो गए। लगभग बीस माह की अवधि के उपरांत 20 मार्च 1977 ई0 को आपात्काल की समाप्ति की घोषणा के उपरांत संसदीय चुनावों में जनता की नवोदित राजनीतिक चेतना ने संविधान और लोकतंत्र की आड़ में मनमानी करने वालों और लोकतांत्रिक मूल्यों का क्षरण करने वालों को सबक सिखाया, सत्तारूढ दल की हार हुई और जनता पार्टी की जीत। जनता पार्टी की आपसी कलह के कारण मोरार जी देसाई की सरकार 1979 ई0 में ही गिर गई और 1980 ई0 में पुनः कांग्रेस को सत्ता प्राप्त हुई। आपात्काल ने देश की राजनीतिक धारा को एकदम पलटकर नई निरंकुश लोकतांत्रिक पद्धति को जन्म दे दिया। वरिष्ठ पत्रकार कुलदीप नैयर ने इस परम्परा पर चिन्ता व्यक्त करते हुए लिखा है कि "तब से जो भी सरकारें बनीं उनमें निरंकुशता की प्रवृत्ति किसी न किसी सीमा तक बनी ही रही। मुख्यमंत्री तो खासतौर पर खरे सिद्ध नहीं हो सके। उन्होंने भी इन्दिरा गाँधी की तरह आचरण किया। उनके व्यवहार में प्रतिरोध और आक्रामकता का भाव बना रहा।"[2] निरंकुशता और सत्तालोलुपता ने धर्म और वर्ग आधारित विभेद को जन्म दिया जिस कारण सिद्धान्तहीनता, भ्रष्टाचार, अवसरवादिता, अदूरदर्शिता और बौद्धिक पतन ने राजनीति को राष्ट्रनीति व राष्ट्रहित से अलग कर दिया। राष्ट्रप्रेम, उदात्त राजनीतिक सिद्धान्त, नैतिकता और समर्पण बीते समय की बातें हो गईं।

देश के शीर्ष नेतृत्व में आए बदलाव के कारण देश की नौकरशाही भी भ्रष्ट और मूल्यविहीन हो गई। स्वतंत्रता के बाद आत्मनिर्भरता और प्रगति के पथ पर अग्रसर राष्ट्र बाह्य आक्रमणों के बजाय अपने नीति-निर्माताओं की पथभ्रष्टता के कारण आहत हो गया। सामाजिक ताने-बाने भी नष्ट-भ्रष्ट होने लगे और जाति, धर्म के आधार पर हुए विभाजन से सबक लेने के बजाय साम्प्रदायिक दंगे भी देश की एकता और अखण्डता के लिए खतरे पैदा करने लगे। सरकारी आँकड़ों के अनुसार वर्ष 1969 ई0 और 1970 ई0 में विगत बीस वर्षों के अन्तराल में देश भर में सबसे अधिक दंगे हुए, इनकी संख्या क्रमशः 519 और 521 है। वैसे देश भर में प्रतिवर्ष साम्प्रदायिक दंगे होते रहे किन्तु आठवें दशक के अन्तिम वर्षो में इनकी संख्या में बढोत्तरी हुई और सालाना लगभग 366 दंगे हुए। साम्प्रदायिक दंगो, बाह्य आक्रमणों और राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव के कारण राष्ट्रीय प्रगति भी बाधित हुई। लालबहादुर शास्त्री द्वारा दिया गया 'जय जवान जय किसान' का नारा जो अपने समय में राष्ट्र को खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाने में सक्षम रहा, आगे आने वाले वर्षो में अपनी चमक खोता गया। देश की 73.

7 प्रतिशत भूमि सिंचाई की सुविधा की बाट जोहती रही। दूसरी ओर जनसंख्या की निरंतर वृद्धि ने खाद्यान्न के अभाव की समस्या खड़ी कर दी। शिक्षा के क्षेत्र में भी देश की आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा पीछे ही रह गया। विज्ञान, अभियंत्रण और तकनीक ने यद्यपि प्रगति की, किन्तु अति मन्थर गति से। 1974 ई0 को पोकरण में परमाणु विस्फोट, 19 अप्रैल 1975 ई0 को आर्यभट्ट के अन्तरिक्ष में प्रक्षेपण और जून 1979 ई0 को भास्कर के अन्तरिक्ष में प्रक्षेपण से विश्व के सामने भारत, वैज्ञानिक व तकनीकी क्षेत्र में प्रगतिशील राष्ट्र के रूप में सामने आया। इसके बावजूद भी देश के चार करोड़ नागरिक बेकारी से जूझते हुए गरीबी और तंगहाली का जीवन व्यतीत कर रहे थे। अपना पेट भरने के आसरे में तमाम गरीब तबके के लोग बेगारी करने को मजबूर थे। देश की स्वतंत्रता के लगभग तीस वर्ष बीत जाने के बाद भी उन्होंने 'स्वतंत्र जीवन' का स्वाद भी नहीं चखा था। सन् 1951 से 1981 के बीच 42.26 करोड़ की विस्फोटक जनसंख्या वृद्धि ने गरीबी, अशिक्षा, और बेकारी की और भी भयावह स्थिति खड़ी कर दी। खाद्यान्न की आवश्यकता के अनुरूप उत्पादन की कमी के कारण गाँवों से पलायन बढ़ा और बड़ी औद्योगिक व राजनीतिक नगरियों में श्रमिक वर्गों की बाढ़ सी आ गई। कठिन आर्थिक परिस्थिति ने नेहरू के मुक्त लोक निर्माण की परिकल्पना, स्थानीय स्वशासन और पंचायत व्यवस्था के जरिए ग्रामीण स्वशासन के स्वप्न को भंग कर दिया और इसके विपरीत पूँजीवादी वर्ग के शोषण ने गरीब, अशिक्षित और पिछड़ी जनता को निराशा व असन्तोष के गर्त में ढकेल दिया।

कुल मिलाकर नेहरू और शास्त्री युग की समाप्ति के बाद राष्ट्रीय चरित्र, नैतिकता और अनुशासन के अभाव की पराकाष्ठा के रूप में आपात्काल, जनता पार्टी के आपसी झगड़े और फिर मध्यावधि चुनाव ने आठवें दशक की समाप्ति तक देश को अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, हिंसा, अनुशासनहीनता और अनैतिकता के गर्त में झोंक दिया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान कारागार में बन्द चक्रवर्ती राजगोपालाचारी द्वारा की गई भविष्यवाणी-''जैसे ही हमें स्वराज्य दिया जाएगा, चुनाव और उसके भ्रष्टाचार, अन्याय और धनजनित उत्पीड़न तथा अत्याचार और अकुशल प्रशासन के कारण हमारा जीवन नरक बन जाएगा। लोग आह भरेंगे और कहेंगे कि इससे अच्छी तो पुरानी सरकार ही थी। वहाँ इससे अच्छा न्याय तो था, दक्ष, शान्तिपूर्ण और न्यूनाधिक ईमानदार प्रशासन तो था। एकमात्र हमें लाभ यह होगा कि जाति के नाते हमें अनादर और पराधीनता से मुक्ति मिल जाएगी।''[3] आजादी के लगभग तीस-बत्तीस वर्षों बाद ही राजा जी की

उक्त भविष्यवाणी चरितार्थ होती दिखाई देने लगी। देश की जनता निःस्वार्थ और नैतिक नेतृत्व के लिए तरसती रही और बदले में धोखाधड़ी, भ्रष्टाचार, अशिक्षा, गरीबी और बेकारी ही मिली। विधि और व्यवस्था की असफलता ने, संसाधनों के दुरुपयोग ने और मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकता के निरंतर अभाव ने आठवें दशक के अन्त तक यह अनुभव कर लिया गया था कि लोकतंत्र कितना सार्थक है और स्वतंत्रता कितनी लाभकारी।

देश की दयनीय दशा के आलोक में यह कहा जा सकता है कि आठवें दशक की समाप्ति और नवें दशक का प्रारम्भ वह चरम बिंदु है जहाँ से बदलाव की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है जनता की परमुखापेक्षी वृत्ति, उदासीनता और असंलग्नता के बंध टूटने के साथ परिवर्तन की प्रक्रिया का प्रारम्भ होता है। परिवर्तन को प्रकट करने, समय के सत्य को उद्‌भासित करने का दायित्व निभाने हेतु साहित्य भी संलग्न दिखाई देता है। आठवें दशक के बाद के राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक परिवेश में हो रहे परिवर्तनों का निम्न बिंदुओं के अन्तर्गत विस्तृत अध्ययन अपेक्षित है-

(क) राजनीतिक परिवेश

(ख) आर्थिक

(ग) धार्मिक एवं सांस्कृतिक

(घ) सामाजिक (युवा, नारी और बालकों के विशेष सन्दर्भ में)

(ङ.) मनोवैज्ञानिक

(च) साहित्यिक परिवेश

(क) राजनीतिक परिवेश :-

25 जून 1975 को इन्दिरा गाँधी की सरकार द्वारा देश पर लगाए गए आपात्‌काल के कष्टों और पीड़ाओं का जवाब देश की जनता ने जनता पार्टी को सत्ता में बैठाकर दिया, किन्तु राष्ट्रहित और सुशासन की ओर ध्यान देने के बजाय आपसी झगड़ों, अराजकता, बेरोजगारी और अनुशासनहीनता के कारण जनता पार्टी की सरकार सन् 1979 में ही गिर गई और जनवरी, 1980 के मध्यावधि चुनावों में फिर कांग्रेस भारी बहुमत से जीतकर आई। लोकतंत्र की आड़ में पहले आपात्‌काल और फिर 42 वें संशोधन के माध्यम से देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करके अघोषित तानाशाही लादने के तत्कालीन सरकार के फैसले को पलटने का

क्रान्तिकारी कदम उठाते हुए उच्चतम न्यायालय ने मिनर्वा मिल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ के मुकदमे पर फैसला देते हुए निरंकुश होते लोकतंत्र के पहरुओं पर लगाम कसने का कार्य किया। मिनर्वा मिल्स लिमिटेड के वाद पर उच्चतम न्यायालय का फैसला महज न्यायिक कार्य ही नहीं था, वरन् तत्कालीन राजनेताओं के व्यवहार और मानसिकता में आए परिवर्तनों को उजागर करने का माध्यम भी था। सत्तालोलुपता, भ्रष्टाचार, चालबाजी और अबौद्धिकता का लाभ उठाकर देश के सरकारी सेवक और नौकरशाह भी एक ओर तो राजनेताओं की हर सही और गलत चाल पर मौनदृष्टा बनकर सहमति की मुहर लगाते रहे, दूसरी ओर गरीब, निरीह जनता के अधिकारों को छलते रहे और भ्रष्टाचार, आतंक व अव्यवस्था का दंश झेलने को बाध्य करते रहे। बुद्धिजीवी वर्ग भी राजनीति से किनारा करके बैठ गया और समूचा देश 'स्वतंत्रता' के नाम पर चंद राजनेताओं की मनमर्जी का गुलाम हो गया। राजनीतिक अस्त—व्यस्तता, अव्यवस्था और लालफीताशाही के पाटों में पिसते हुए देश की जनता के पारम्परिक मूल्य, सामाजिक सरोकार और पारिवारिक मान्यताएँ भी नष्ट-भ्रष्ट होने लगीं। इसके साथ ही असंतुष्टों का बड़ा वर्ग देश में तैयार होने लगा। राजनीतिक भूलों के कारण पंजाब में पृथकतावादी आंदोलन को बल मिला तो भूख, अशिक्षा, गरीबी और बेकारी से जूझ रहे, राजनेताओं की कोरी बयानबाजी और चालबाजी से छले हुए युवा नक्सलवादी गतिविधियों में लिप्त हो गए। अक्टूबर 1984 में इन्दिरा गाँधी की हत्या ने सारे देश में राजनीतिक भूचाल ला दिया। 31 अक्टूबर से 4 नवम्बर के बीच पंजाब, दिल्ली और उत्तर प्रदेश सहित सारे देश में मौत ने जो नग्न तांडव मचाया, वह भारत के लोकतंत्र पर लगा बदनुमा दाग था, जिसे कभी नहीं मिटाया जा सकता। इन दंगों के भीषण परिणाम की ओर संकेत करते हुए 'यह बर्बरता कहाँ छुपी थी' पुस्तक के सम्पादक सुनील लिखते हैं कि "इस हत्याकाण्ड के बाद भारतीय राजनीति का नया फासीवादी चरित्र खुलकर सामने आता है जिसमें धर्मान्ध कट्टर तत्त्वों, स्थानीय गुण्डों, पुलिस और शासक दल का सशक्त गठबंधन बना है। अपने राजनीतिक स्वार्थों के लिए खुलकर साम्प्रदायिक घृणा फैलाने और भीषण हत्याकाण्ड करवाने में अब शासक दल को कोई संकोच नहीं होता। इसी के साथ अब साम्प्रदायिक पार्टियों और धर्मनिरपेक्ष पार्टियों के बीच फर्क बेमानी हो गए हैं। साम्प्रदायिक भावनाएँ उभारना सिर्फ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, भाजपा, मुस्लिम लीग, अकाली दल आदि की बपौती नहीं रह गया है। तथाकथित धर्मनिरपेक्ष पार्टियाँ भी जमकर जाति, धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर लोगों को लड़ाने और वोट

बटोरने का काम करती हैं।''[4] सारे देश में हुए बर्बर हत्याकाण्ड, लूटपाट और आगजनी से हुई अपार जान-माल की क्षति को लेकर राजनीतिक दलों में पश्चाताप या आत्मनिरीक्षण तथा जनता के दुःख-दर्द को देखने और आँसू पोंछने के बजाय आगे भागने की होड़ लगी हुई थी। इस होड़ ने साम्प्रदायिकता के साथ ही साथ भ्रष्टाचार के द्वार भी खोल दिए। सत्ता की हनक दिखाने, राजनीति के गलियारों में अपनी चमक-धमक दिखाने और चुनावों में भारी-भरकम खर्च उठाने के लिए राजनेताओं को स्मगलरों, माफिया गिरोहों, घूसखोरों, मुनाफेबाज उद्योगपतियों और भ्रष्ट नौकरशाहों का मुखापेक्षी होना पड़ा। स्वार्थ और सुख-सुविधाओं को किनारे रखकर जनता की सेवा के लिए राजनीति में आने वालों के बजाय स्वार्थी और विलासी राजनेताओं की नई जमात ने अपनी अदूरदर्शिता और सिद्धान्तविहीनता से गाँधी के सपनों के भारत को, सुराज और स्वराज की परिकल्पना को सिरे से नकार दिया। न केवल सत्ता पक्ष वरन् विपक्ष भी राजनीति की चकाचौंध में देश की जनता से दूर हो गया। देश की करोड़ों की जनता का विश्वास अपने 'भाग्य विधाताओं' पर से उठ गया और वे इसकी परवाह किए बिना जनता को छलते रहे। अधिक से अधिक लाभ कमाने की प्रवृत्ति ने दलबदल और खरीद फरोख्त को भी बढ़ावा दिया। ऐसी प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए संसद को बावनवें संशोधन (1985 ई0) द्वारा राजनीतिक दलबदल पर रोक लगानी पड़ी। दूसरी ओर राजनेताओं और दलालों, मुनाफाखोरों, अपराधियों, माफिया गिरोहों तथा स्मगलरों के बीच बने घनिष्ठ अन्तर्सबन्धों का लाभ दोनों एक दूसरे को देने लगे। आगे चलते हुए आपराधिक प्रवृत्ति के लोगों ने राजनेताओं के पिछलग्गू बनने के बजाय स्वयं ही राजनीति में उतरना प्रारम्भ कर किया जिस कारण संसद और विधानमण्डलों जैसे लोकतंत्र के पवित्र स्थल भी आपराधिक प्रवृत्ति के लोगों की पहुँच से दूर नहीं रह गए। भ्रष्टाचार ने तो इस तरह पैर फैलाए कि जनप्रतिनिधि भी अछूते नहीं रहे तथा बोफोर्स घोटाला, शेयर घोटाला, पेट्रोल पम्प तथा रसोई गैस घोटाला और चारा घोटाला जैसे कारनामे जनता के सामने आने लगे।

सत्ता से चिपके रहने के लिए कोई भी कदम उठाने से राजनेताओं को कोई परहेज नहीं रह गया। अगस्त 1990 को तत्कालीन केन्द्र सरकार द्वारा मण्डल आयोग की सिफारिशें लागू की गईं। आरक्षण के विरोध में एक बार फिर सारे देश में दंगों और आतंक का वातावरण बन गया। प्रख्यात पत्रकार और 'पायनियर' के सम्पादक सोमनाथ सप्रू ने चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा कि "वर्ष 1990 रक्तरंजित एवं वर्तमान दशक का सबसे विवादित वर्ष रहा। इस वर्ष सौ से भी

अधिक युवाओं ने मण्डल आयोग के विरुद्ध आत्मदाह किया।''[5] आरक्षण के नाम पर देश की प्रतिभा को कुंठित करने के राजनीतिक फैसले से भड़की सारे देश की जनता अभी शान्त भी नहीं हो पाई थी कि छह दिसम्बर 1992 को अयोध्या में बाबरी मस्जिद के विध्वंस ने एक बार फिर से सारे देश को दंगों और बर्बर हत्याकाण्डों की आग में झोंक दिया। चंद दलों ने अपने राजनीतिक स्वार्थ की सिद्धि के लिए पहले से ही अव्यवस्था और विकास की दयनीय स्थिति से जूझ रहे देश की हालत और भी बिगाड़ दी।

केन्द्र की नरसिंह राव सरकार ने 'गैट' और 'डंकल ड्राफ्ट' जैसे विवादित समझौतों के द्वारा देश के बाजारों को सारी दुनिया के लिए खोलने का फैसला लिया, जिसके फलस्वरूप अल्पविकसित भारतीय बाजारों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से टक्कर न ले पाने के कारण मंदी का दौर आ गया। राजनेताओं की अदूरदर्शिता और कोरी बयानबाजी से त्रस्त जनता संसद और विधानमण्डलों में बैठे अपने लगभग पाँच हजार 'भाग्य विधाताओं' के हर सही-गलत फैसले को देखने के लिए बाध्य हो गई। इधर कुछ श्रमिक संगठनों और कर्मचारी संगठनों ने सरकार के खिलाफ आंदोलनों द्वारा विरोध प्रदर्शित करना चालू रखा लेकिन वह भी वेतन आदि बढ़ाने जैसे व्यक्तिगत लाभ के मुद्दों की लड़ाई से अधिक कुछ भी नहीं सिद्ध हो सका। देश की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने वाला बड़ा वर्ग, देश की लगभग पचासी करोड़ जनता की उदर क्षुधा को शान्त करने वाला देश का किसान असंगठित ही रहा और इस कारण राजनीतिक रूप से उपेक्षित ही बना रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में कृषि क्षेत्र को पर्याप्त महत्त्व दिये जाने के बाद भी राजनेताओं की उदासीनता, लालफीताशाहों की निष्क्रियता व भ्रष्टाचार के कारण गाँव और किसान दोनों ही अपने भाग्य को कोसते रह गए। गाँवों में बढ़ती बेकारी और महँगाई के कारण ग्रामीणों का पंजाब, महाराष्ट्र, दिल्ली और गुजरात के औद्योगिक नगरों की ओर पलायन होने लगा, परिणामस्वरूप महानगरों में तो श्रमिकों, बेकारों और झुग्गी-झोपड़ी वालों की भीड़ इकट्ठी हो गई और दूसरी ओर गाँव के गाँव खाली हो गए। इस प्रकार गाँवों और नगरों के मध्य असंतुलन की स्थिति पैदा होते देखकर या संभवतः गाँधी के 'ग्राम स्वराज' की परिकल्पना को याद करके राजनेताओं ने संविधान के तिहत्तरवें संशोधन विधेयक-1992, द्वारा गाँवों में पंचायती राज व्यवस्था लागू करके गाँवों को अपने विकास के लिए विधायी शक्ति दी। पंचायती राज के रूप में गाँवों को मिली विधायी शक्ति के ठोस लाभ तो आज तक गाँवों में देखने को

नहीं मिले, वरन् लोकतंत्र की इस सबसे छोटी इकाई के अस्तित्व में आने के बाद ग्रामीण समाज के संगठित ढाँचे और व्यवस्था के छिन्न-भिन्न होने में कोई कसर शेष नहीं रही। आज देश भर में 2,17,300 से भी अधिक ग्राम पंचायतें सक्रिय हैं। महात्मा गाँधी ने 'ग्राम स्वराज्य' के माध्यम से सत्ता के विकेन्द्रीकरण और इसके माध्यम से देश के विकास की परिकल्पना की थी, गाँधी के दिखाए रास्ते पर चलते हुए परवर्ती सरकारों द्वारा लागू की गई 'पंचायती राज प्रणाली' अपने पवित्र उद्देश्य से दूर होकर गाँवों में ओछी राजनीति, जातिगत तथा वर्गगत गुटबाजी, भ्रष्टाचार और हिंसा फैलाने का माध्यम बन गई। पंचायती राज की असफलता को रेखांकित करते हुए वी0 आर0 कृष्ण अय्यर लिखते हैं कि "वित्तीय, प्रशासनिक तथा न्यायिक अधिकारों से सम्पन्न निर्वाचित पंचायतों के बारे में एक गंभीर शिकायत यह है कि इनके कारण हमारे गाँवों में गहरी और पक्की धड़ेबाजी फैली हुई है। आपसी मनमुटाव, जातिगत तथा राजनीतिक झगड़ों तथा साम्प्रदायिक हिंसा के कारण सरकारी कामों के सामूहिक प्रयास कमजोर पड़ जाते हैं। इसके अलावा गाँवों में धन का दुरुपयोग, सामंतवादी शोषण, महिलाओं के प्रति असमानता, हरिजनों तथा गिरिजनों पर अत्याचार और चुनावों में हेराफेरी जैसी बुराइयों को भी बल मिला है।"[6] अय्यर साहब की इस आशंका को भी झुठलाया नहीं जा सकता है कि "इस समय जहाँ कहीं भी ग्राम पंचायतें हैं, मृग-मरीचिका मात्र हैं। उनकी हालत दयनीय है और वे सत्ताविहीन सत्ता की हलचल से अधिक कुछ नहीं हैं। वहाँ कोई विकेन्द्रीकरण लोकतंत्र नहीं है, और नौकरशाही उन्माद में डूबे तुच्छ खुशामदी चुने हुए सदस्यों पर हुक्म चलाते रहते हैं। राज्य सरकारें अपने राजनीतिक स्वार्थों के आधार पर कानूनी आड़ लेकर पंचायतों को भंग कर देती हैं।"[7]

पंचायतें भले ही मृग-मरीचिका हों, लेकिन गाँवों के सामन्तशाहों, जमींदारों, पूँजीपतियों और गरीब, शोषित वर्गों के मध्य अस्तित्व और सत्ता के संघर्ष ने हिंसा, जातिवाद और वैमनस्यता को बढ़ावा दिया, इसके फलस्वरूप गाँवों का सामाजिक ढाँचा छिन्न-भिन्न हो गया। गाँवों की अन्योन्याश्रित व्यवस्था भी टूट गई और तमाम कारणों व्यवस्था भी टूट गई और तमाम कारणों से पलायनवादी वृत्ति भी बलवती होती गई। निःसन्देह गाँवों में ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करने में राजनेताओं का भी कम योगदान नहीं हैं। वोटों के लालच में और अपनी 'राजनीति की दुकान' चलाते रहने हेतु उनके लिए संभवतः यह आवश्यक भी था।

लोकतंत्र में संविधान की भूमिका सर्वोच्च होती है। संविधान के निर्माण और उसे क्रिया

रूप में जनहित के लिए परिणित करने का दायित्व कार्यपालिका निभाती है। जनता के हितों की रक्षा के लिए, संविधान की रक्षा के लिए और निरंकुश राजसत्ता को नियंत्रित करने के लिए न्यायपालिका को कार्यपालिका से ऊपर रखा गया है। भारतीय संविधान की यह विशेषता कई अवसरों पर संविधान की रक्षा और देश की जनता के हितों की रक्षा करने में काम आई है। केशवानंद भारती बनाम भारत संघ (1973 ई0) और मिनर्वा मिल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ (1980 ई0) के मुकदमों पर उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों को न्यायपालिका द्वारा भारतीय संविधान के रक्षोपायों का उदाहरण कहा जा सकता है। लेकिन स्थितियाँ सर्वथा ऐसी ही नहीं रहीं, राजनेताओं और नौकरशाहों द्वारा व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि हेतु न्यायालयों के वर्चस्व को भी चुनौती देने में कसर नहीं छोड़ी गई। शाहबानो प्रकरण पर उच्चतम न्यायालय के फैसले को पलटने हेतु संसद में बाकायदा विधेयक पारित कराया गया। राष्ट्रीय स्तर पर ही न्यायपालिका के अस्तित्व की चुनौती खड़ी हो गई तो गरीब, अनपढ़ और बेबस लोगों की भला कौन पूछे? समीक्षक और साहित्यकार रामदरश मिश्र का मत यहाँ उल्लेखनीय है कि "भ्रष्ट राजनीति के कारण ही न्यायालयों में असुरक्षा बढ़ गई और गरीब आदमी अपने को असहाय समझने लगा। राजनीति की इस विसंगति, विद्रूपता और अमानवीयता ने समाज को न जाने कितने स्तरों पर तोड़ा, कितनी कुंठाएँ पैदा कीं और कितना त्रास पैदा किया।"[8]

जीवन और समाज का कोई भी पहलू लोकतंत्र के प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता। जनता को किसी न किसी राजनीतिक दल को चुनना ही होता है और उस दल द्वारा लागू की गई नीतियों व व्यवस्थाओं को अपनाना पड़ता है, ढोना ही पड़ता है, इस कारण लोकतांत्रिक पद्धति में राजनीति की भागीदारी समाज, धर्म, शिक्षा और संस्कृति में अनिवार्यतः होती है। ऐसी स्थिति में राजनीति के सभी अच्छे और बुरे प्रभाव समाज, धर्म शिक्षा और संस्कृति में न्यूनाधिक परिलक्षित होते रहते हैं। आठवें दशक के बाद की राजनीतिक धारा में आ रहे बदलाव ने धीरे-धीरे स्थाई चरित्र ग्रहण कर लिया। समय की गति के साथ इस चरित्र के विरोधी पक्ष या तो किनारे हो गए या फिर मौनदृष्टा बनकर देखने को बाध्य हो गए। इस स्थाई चरित्र की कुछ प्रमुख विशिष्टताओं को निम्न बिंदुओं के अन्तर्गत रखा जा सकता है-

(अ) राजनीति और भ्रष्टाचार,

(आ) राजनीति और अपराधीकरण,

(इ) राजनीति और वर्ग-जाति भेद,

(ई) राजनीति और लालफीताशाही व पुलिस

(अ) राजनीति और भ्रष्टाचार :-

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् राजनीति धीरे-धीरे राष्ट्रीय-सामाजिक जीवन के लिए त्याग से छूट कर व्यक्तिगत योगक्षेम और स्वार्थपरता के पंक में लिप्त होने लगी, और यह राजनीति उन नेताओं से शुरू हुई जिन्होने स्वाधीनता आंदोलन के समय त्याग किया था और अब स्वदेशी सरकार के महत्त्वपूर्ण पदों पर थे। लगता था जैसे वे अपने सारे पूर्व त्याग का फल ब्याज सहित पा लेना चाहते थे। स्वाधीन सरकार से आशा थी (जैसा कि नेहरू जी ने कभी घोषित किया था) कि वह स्वाधीनता संग्राम के समय गद्दारी करने वाले सारे अफसरों को चौराहे पर फाँसी लगा देगी, किन्तु स्वाधीन सरकार की मशीनरी भी उन्ही अफसरों और पुलिस से चलती रही।''[9] राजनेताओं और नौकरशाहों के तालमेल से ही देश में भ्रष्टाचार पनपा है। निःसंदेह भ्रष्टाचार का प्रारम्भ राजनेताओं के नैतिक पतन के बाद शुरू हुआ है। ''पहले राजनीतिज्ञ चुनाव लड़ने के लिए दो-दो रुपया तक चन्दा माँगते थे और किसी तरह चुनाव खर्चे पूरे करते थे। लेकिन आज तो स्थिति ऐसी है कि जो भी एक बार विधायक या सांसद हो जाता है उसे लोग धनाढ्य मानने लगते हैं। कार्यकर्ताओं की भी अपेक्षा रहती है कि नेताओं से कुछ आर्थिक सहायता उन्हे मिलती रहे।''[10] नेताओं ने अपनी जेब भरने के लिए कल्याणकारी योजनाओं में घपलेबाजी की शुरुआत की और लोकसेवकों से लेकर पुलिस व मंत्रालयों से लेकर हर छोटे दफ़्तर तक भ्रष्टाचार का पूरा जाल ही बिछ गया। इस कारण केन्द्र से चलने वाली योजनाओं का दशांश ही जनता तक पहुँच पाता। इस संदर्भ में पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गाँधी की चिन्ता जगजाहिर है। भारतीय विदेश सेवा के अधिकारी और चर्चित लेखक पवन वर्मा ने भ्रष्टाचार की विकास यात्रा को रेखांकित करते हुए लिखा है कि ''इस समग्र प्रक्रिया में मध्यवर्ग ने तीन भूमिकाएँ एक साथ निभाईं। वह भ्रष्टाचार का शिकार भी हुआ, उसकी आलोचना भी की और फिर स्वयं उसमें भागीदार भी बना। सर्वोच्च स्तरों पर भ्रष्टाचार की मौजूदगी की धारणा और आम आदमी की रोजमर्रा की जिन्दगी में भ्रष्टाचार एक दूसरे को पानी देने लगे। दलील यह दी जाने लगी कि जब देश की बागडोर सँभालने वाले भ्रष्ट और सफल हैं तो निचले स्तर पर थोड़ा-बहुत माल कमाने के मौकों को क्यों हाथ से निकलने दिया जाए?''[11] आज समूचे राष्ट्रीय परिदृश्य में भ्रष्टाचार का इतना वर्चस्व

देखने को मिलता है कि समाज ने भी उसे मान्यता प्रदान कर दी है। आज व्यक्ति की मेहनत की कमाई के बजाय उसके सामाजिक स्तर का आकलन भ्रष्टाचार की कमाई से लगाया जाता है। जो अधिक भ्रष्ट है, जिसे कमाई वाली कुर्सी मिली हुई है, उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा भी उतनी ही अधिक है। जनता भी अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए, हर सही-गलत काम करवाने के लिए घूस देने में परहेज नहीं करती। एक प्रकार से भ्रष्टाचार को सामाजिक मान्यता प्राप्त हो चली है। साहित्यकार और विचारक डॉ. विद्यानिवास मिश्र भ्रष्टाचार की लोकव्यापकता को रेखांकित करते हुए लिखते हैं कि "भ्रष्टाचार को व्यवस्था का परिहार्य अंग स्वीकार कर लिया गया है, बस उसे कानूनी प्रतिष्ठा देना बाकी है। आज भ्रष्टाचारी के ऊपर लोगों को क्रोध नहीं होता, उसके भाग्य से अधिकतर ईर्ष्या होती है। पहले भी बेईमानी थी, पर इतनी बेशर्मी नहीं थी। हाँ, यह अवश्य है, पहले लोग ऊपर से ही सही ईमानदारी का, सत्य का लबादा ओढ़े रहते थे, अब समझदार राजनीतिज्ञों ने वह लबादा भी उतारकर कहीं खूँटी पर टांग दिया है, कभी आँधी-वर्षा में उसकी आवश्यकता पड़े, ओढ़ लेंगे। आज निष्ठावान बेईमानों की संख्या इतनी हो गई है कि सच्चाई एक तो दुर्लभ है, दूसरे हो तो उस पर किसी को विश्वास नहीं होता। यही इस जमाने की सबसे बड़ी त्रासदी है।"[12]

(आ) राजनीति और अपराधीकरण :-

राजनीति की चकाचौंध में बने रहने के लिए, सत्तासीन होने के लिए और कुर्सी की दौड़ में अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए आज के समय में नैतिकता और सिद्धान्त के बजाय जितनी आवश्यकता धन की होती है उतनी ही छल और बल की भी। छल और बल निःसन्देह माफियाओं, दलालों और अपराधियों के बूते ही पाया जा सकता है। हरसंभव तरीके से अपने वर्चस्व की स्थापना के लिए नेताओं द्वारा दिया गया संरक्षण समय के साथ उस स्थिति में पहुँच गया जब अपराधियों और माफियाओं ने सोचा होगा कि जब नेता तैयार करने की क्षमता रखते हैं तो स्वयं भी बन सकते हैं। साथ ही राजनीति की ओढ़नी में तमाम अपराध छिपाए जा सकते हैं। संभवतः इसी वैचारिकता ने अपराधियों और माफियाओं को राजनीति में उतार दिया। राजनीतिक दलों ने भी राजनीति के अपराधीकरण की इस प्रक्रिया में अपनी रचनात्मक भूमिका ही निभाई फलतः आज कोई भी ऐसा राजनीतिक दल नहीं होगा, जिसमें अपराधियों और माफियाओं का बोलबाला न हो। राजनीति और अपराध एक दूसरे में इस तरह गुत्थमगुत्था हो गए कि दोनों को अलग

कर सकना संभव नहीं है। राजनीति के अपराधीकरण में बहुत बड़ा योगदान सिद्धान्तविहीनता का है। एक समय में राजनीतिक दलों और नेताओं के सिद्धान्त हुआ करते थे, लेकिन आज बुद्ध, कौटिल्य, गाँधी, कार्ल मार्क्स, डब्ल्यू0एफ0 हीगल, जॉन लॉक, फ्रेड्रिक एंगेल्स और वी0आई0 लेनिन के सिद्धान्त राजनीति के बदले हुए रूप के सामने अपनी चमक खो चुके हैं। ''आजादी के बाद हमारा जो काफिला नए समाज की स्थापना का लक्ष्य लेकर चला था, वह धीरे-धीरे भटकता ही चला गया। गुंडा तत्त्वों ने धड़ाधड़ राजनीतिक पार्टियों में सम्मिलित होना शुरू कर दिया। साठ के दशक को पार करते-करते स्थिति ऐसी बन गई कि प्रत्येक राजनीतिक नेता अपने गुंडे सहयोगियों को छुडाने के लिए पुलिस अधिकारियों पर दबाव बढ़ाने लगा। 70 तक कुछ ही असामाजिक तत्त्व ऐसे रहे होंगे, जो चुनकर विधानसभाओं तथा लोकसभा में पहुँचे, लेकिन बाद में ये आँकड़े बढ़ते गए और हालत यहाँ तक खराब हो गई कि अपराध प्रवृत्ति के ये लोग मंत्री पद तक पहुँचने में सफल होने लगे। सत्ता में भ्रष्ट तत्त्वों का प्रभुत्व हो गया और साम्प्रदायिकता एक प्रभावशली राजनीतिक हथियार के रूप में स्वीकार कर ली गई। ऐसे में यह समझना मुश्किल नहीं है कि समाज का वास्तविक ढाँचा कैसा बन गया है?''[13]

राजनीति के अपराधीकरण के कारण जहाँ एक ओर समाज व राष्ट्र के प्रति समर्पित, बुद्धिजीवी और सिद्धान्तवादी वर्ग राजनीति से दूर होता चला गया वहीं दूसरी ओर समाज के गरीब, निरीह और शोषित वर्ग की मुश्किलें बढ़ती ही चली गईं और भ्रष्ट तंत्र के कारनामों को मूक दर्शक बन कर देखते रहने के सिवा कोई चारा नहीं बचा। अपराध जगत को छोड़कर समर्पण के बाद नेता का लिबास पहन लेना भी आज के समय का चलन बन गया। पत्रकार और पूर्व सांसद राजनाथ सिंह 'सूर्य' लिखते हैं कि ''अपराधियों का तुष्टीकरण सत्ता चलाने के लिए मुख्य राजनीति बन गई है। लूट, भ्रष्टाचार या फिर हत्या के मामले में जिनके विरुद्ध अदालत में मुकदमे चल रहे हैं, उन्हें मंत्री बनाकर तुष्ट किया जा रहा है। दुर्भाग्य की बात है कि इसे प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री का विशेषाधिकार बताया जा रहा है।''[14]

(इ) राजनीति और वर्ग-जाति भेद :-

पन्द्रह अगस्त सन् सैंतालिस को हमें गुलामी से मुक्ति के साथ ही सम्प्रदाय के आधार पर विभाजन का दर्द भी मिला। यह विभाजन बर्तानी हुकूमत के कुचक्रों का फल था या हमारे राजनेताओं की जिद और अदूरदर्शिता का, इसे निष्पक्ष ढंग से परिभाषित नहीं किया जा सका है

लेकिन यह सच है कि भारत की गंगा-जमुनी संस्कृति को नष्ट-भ्रष्ट करने और आगे आने वाले समय में ढेरों समस्याएँ पैदा करने में विभाजन का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। धर्म के नाम पर दो देश बन गए और विकास की समस्याओं को धार्मिक उन्माद व वर्गभेद ने द्वितीयक बना दिया। आँकड़े बताते हैं कि स्वतंत्रता के बीस-तीस वर्षो तक देश में साम्प्रदायिक संगठनों की संख्या भी पन्द्रह-बीस से अधिक नहीं थी, लेकिन सदी के अन्तिम दशक तक आते-आते ऐसे संगठनों की संख्या पाँच सैकड़ा से भी अधिक हो गई। खालिस्तानी आंदोलन, नगा आन्दोलन जैसे ढेरों पृथकतावादी आन्दोलन भी चलने लगे। नेताओं ने वोट के लालच में जनता को पहले धर्म-सम्प्रदाय के आधार पर बाँटा और बाद में जातिगत विभेद भी राजनीतिक लाभ लेने का माध यम बन गया। डॉ. रामजी मिश्र लिखते हैं कि "राजनीति में अल्पशिक्षितों, अपराधियों एवं तस्करों का बोलबाला हो गया है जहाँ सिद्धान्त बेमतलब सिद्ध हो रहे हैं। जातीय उन्माद पैदा कर कुर्सी पाने की होड़ लग गई है। यहाँ राजनीतिक आदर्शवाद, यथार्थवाद एवं सिद्धान्त सब व्यर्थ सिद्ध हो रहे हैं।"[15] राजनेताओं की सिद्धान्तविहीनता और अवसरवादिता का लाभ उठाकर जाति व धर्म के ठेकेदार और चंद स्वयंभू नेता अपनी हर सही-गलत माँग मनवाने के लिए दबाव बनाने लगे। यहीं से राजनीति में तुष्टीकरण की शुरुआत हो गई। राजनीतिक दल वोट के लालच में जातिवादी और वर्गवादी राजनीतिं के कुचक्र रचकर देश की एकता और अखण्डता को सामाजिक ढाँचे को तथा विकास की गति को विखण्डित करने लगे, यहाँ तक कि तमाम महापुरुषों और स्वतंत्रता संग्राम के नायकों को भी राजनीतिक दलों और व्यक्तियों ने जाति और वर्ग के अलग-अलग खेमों में बाँट लिया। बुद्धिजीवी वर्ग भी इस षड़यंत्र से किनारा कर गया। "यह भारतीय लोकतंत्र की त्रासदी है कि प्रबुद्ध समुदाय नेक और उद्देश्यपूर्ण कामों के प्रति बहुत सतही प्रतिबद्धता प्रदर्शित करता है। दूसरी ओर संकीर्ण नजरिए वाले तत्त्व मतदाताओं के एक बड़े समूह को एकत्रित कर रहे हैं और जाति, नस्ल तथा समुदाय के नाम पर उनका फायदा उठा रहे हैं।"[16] पूर्व केन्द्रीय मंत्री जगमोहन द्वारा व्यक्त की गई यह चिंता सटीक और प्रासंगिक है। अब तो स्थिति यह है कि स्वार्थ के आगे सब कुछ नगण्य हो गया है। अन्तरात्मा की आवाज तो पहले ही अनसुनी कर दी गई थी, अब स्वाभिमान, गौरव, यहाँ तक कि राष्ट्र भी बेचने को तैयार बैठे हैं। स्वार्थपूर्ति हेतु ही जातिगत मतभेदों को उभारा जा रहा है। साहित्यकार इन चिंताओं के प्रति बराबर सजग रहा है और इन विसंगतियों को अपने साहित्य में उभारता रहा है। 'कितने पाकिस्तान' और

'महाभोज' जैसे उपन्यास इसी ओर इंगित करते हैं।

(ई) राजनीति और लालफीताशाही व पुलिस :-

देश की सर्वोच्च परीक्षा को उत्तीर्ण कर प्रशासनिक सेवा में आने वालों से देश के विकास की, राष्ट्र के कल्याण की अपेक्षा जोड़ना पुराने समय की बात हो गई है। देश की प्रशासनिक व्यवस्था को भ्रष्ट करने में राजनीतिक नेतृत्व का बहुत बड़ा योगदान है। राजनीतिक स्वार्थों की सिद्धि के लिए और आर्थिक लाभ पाने के लिए नेताओं द्वारा देश की प्रशासनिक मशीनरी का दुरुपयोग किया जाता है। इसका लाभ उठाकर उच्च पदों पर बैठे हुए अधिकारी वर्ग से लेकर स्थानीय कार्यालयों के कर्मचारियों तक भ्रष्टाचार और घूसखोरी की श्रृंखला बनी हुई है। भ्रष्टाचार हमारी जड़ों तक फैल चुका है। किसी भी तरह से काम करवा लेना हमारी संस्कृति का अंग होता जा रहा है। काम करवाने के लिए हमें हर कदम पर कानूनों को नजरअंदाज करना पड़ता है और कानून के रक्षक ही हमें कानून तोड़ने का मार्ग बताते हैं। बदले में वे नोट लें या वोट, यह उनकी प्राथमिकता होती है। यह भ्रष्टाचार, आवश्यक नहीं, केवल आर्थिक हो, राजनीतिक दबाव भी हो सकता है, साधनहीन की मजबूरी भी हो सकती है।''[17] जन्म से लेकर मृत्यु तक हर जगह भ्रष्टाचार है। नौकरी पाने के लिए भी लम्बी रकम खर्च करनी पड़ती है। सरकारी तंत्र में भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने में जहाँ एक ओर जनता की सुविधाभोगी और स्वार्थी मानसिकता दोषी है वहीं दूसरी ओर निरक्षरता और विधिक अज्ञानता का भी कम योगदान नहीं है। इसी कारण ढेरों कल्याणकारी योजनाएँ और जन-विकास के कार्यक्रम लालफीताशाही के जाल में फँसकर फाइलों में ही बन्द रह जाते हैं। आज समाज में भ्रष्टाचार कुत्सित दृष्टि से नहीं देखा जाता, भ्रष्टाचारी समाज में प्रतिष्ठा भी प्राप्त कर लेता है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति जहाँ पर भी है, जिस स्तर पर है, भ्रष्टाचार में लिप्त है। अतिरिक्त आयकर आयुक्त विश्वबंधु गुप्त का कथन यहाँ उल्लेखनीय है कि ''मात्रा के रूप में देखें तो भ्रष्टाचार का लाभ सबसे ज्यादा अफसर और सरकारी कर्मचारी उठा रहे हैं। लेकिन राजनीतिक नेताओं पर इसकी जिम्मेदारी सबसे ज्यादा बनती है क्योंकि भ्रष्ट अफसरों और सरकारी कर्मचारियों को सुरक्षा इन्ही से मिलती है। चूँकि सारी शक्ति इन्ही में केन्द्रित है और जो जनता भ्रष्टाचार की मार से सबसे ज्यादा त्रस्त है वह सत्ता विहीन है।''[18]

इधर बढ़ते भ्रष्टाचार से लोकतंत्र की सर्वोच्च संस्था-न्यायपालिका भी अछूती नहीं रह सकी। नवीं लोकसभा (1989-1991) में उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश वी० रामस्वामी

के खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोप में महाभियोग का प्रस्ताव आने पर न्यायपालिका में भ्रष्टाचार की घुसपैठ का पता चला। देश की छोटी अदालतों में जिस प्रकार भ्रष्टाचार फैला और लम्बित मुकदमों की बाढ़ आ गई, उससे गरीब और शोषित वर्ग को न्याय मिलने की उम्मीद भी क्षीण होने लगी। बंबई उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश ए0 एम0 भट्टाचार्य, कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश अजित सेनगुप्त, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के न्यायाधीश एम0 एल0 सिंह, एम0 एस0 गिल व अमरवीर सिंह, राजस्थान उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश अरुण मदान और दिल्ली उच्च न्यायालय के न्यायाधीश शमित मुखर्जी से जुड़े भ्रष्टाचार के कई प्रकार के मामले जिस प्रकार से सामने आए उससे एक ओर छोटी और जनपद स्तर की अदालतों में बढ़ते भ्रष्टाचार का आकलन लगाया जा सकता है और दूसरी ओर बढ़ते हुए भ्रष्टाचार की व्यापकता और भयावहता का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। यहाँ उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश बी0 एन0 किरपाल के विचारों का उल्लेख करना आवश्यक होगा कि "न्यायपालिका में भ्रष्टाचार का स्तर शून्य होना चाहिए, लेकिन कई बार गलत व्यक्ति का चयन हो जाता है। किसी के माथे पर नहीं लिखा होता कि वह भ्रष्ट है। आजकल जन्म प्रमाण-पत्र से लेकर मृत्यु प्रमाण-पत्र तक में रिश्वत चलती है। न्यायाधीश भी इसी माहौल से आते हैं।"[19]

निःसंदेह ऐसे वातावरण में भ्रष्टाचार पनपना स्वाभाविक है, किन्तु जब शोषित को न्याय मिलना और अपराधियों, अत्याचारियों को दण्ड मिलना बन्द हो जाएगा तब की स्थितियों की कल्पना करना भी आवश्यक है। डॉ0 प्रेमलता इन स्थितियों का विश्लेषण करते हुए लिखती हैं कि "न्याय में विलम्ब न्याय न मिल पाना ही होता है और जब न्याय नहीं मिलता तो पहली स्थिति निराशा व अवसाद की होती है किन्तु मानव मन लुटा-पिटा बहुत देर तक जीवित नहीं रह सकता। या तो वह मृतप्राय हो जाता है या विद्रोह कर बैठता है। वही विद्रोह का स्वर हमें आज पूरी व्यवस्था के विरुद्ध भी सुनाई दे रहा है। पिछले चार-पाँच दशक के स्वतंत्र भारत की जनता देश को सम्भलने के अवसर देने व शासकों पर अंधभक्ति की सीमा तक विश्वास करने के बाद मूक-बधिर बने रहना स्वीकार नहीं कर पा रही और विद्रोहात्मक रूप अपना लिया है।"[20] समूची न्यायिक व्यवस्था से जुड़े लोग-चाहे वकील हो, मुंशी या फिर पेशकार और अमीन सभी ने मिलजुल कर आज यह स्थिति पैदा की है।

न्यायपालिका और कार्यपालिका दोनों से जुड़ा पुलिस संवर्ग भी भ्रष्टाचार के दलदल में

आकण्ठ डूबा हुआ है। पुलिस और राजनेताओं की साठगाँठ जहाँ एक ओर एक दूसरे को लाभ पहुँचाने में कारगर होती है, वहीं दूसरी ओर अपराधियों को कानूनी शिकंजे से बच निकलने का रास्ता भी उपलब्ध करा देती है। राजनेता ही नहीं, पूँजीपति और समाज का शक्तिशाली वर्ग भी पुलिस का अपने हित में दुरुपयोग करने से नहीं चूकता- ''विशेष रूप से जमीन-जायदाद सम्बन्धी अपराधों के मामले में शिकायतकर्ता पुलिस को बल प्रयोग या हिंसा के लिए उकसाते हैं; ताकि संदिग्ध व्यक्ति को वश में किया जा सके। इसलिए जिस समाज में जनता मनुष्यों पर होने वाली हिंसा या बल प्रयोग के प्रति उदासीन रहती है, वहाँ पुलिस को अवैध या गैर-कानूनी कृत्यों/कार्यों के लिए भी सामाजिक समर्थन मिल जाता है।''[21] पुलिस द्वारा कानून की आड़ में बल प्रयोग किए जाने से अपराधी भले ही भयभीत न हों, सामान्य जनता और गरीब, निरीह वर्ग के लोग भयभीत ही रहते हैं। समाज में पुलिस की छवि भी भयाक्रान्ता के रूप में बनी हुई है। भारतीय पुलिस सेवा से सेवानिवृत्त हुए डॉ0 एस0 सुब्रह्मण्यम इसी संदर्भ में लिखते है कि ''कई मौकों पर इसी भय के कारण छोटे-छोटे अपराधी भी ऐसे जघन्य अपराधों में शामिल होना कबूल कर लेते हैं, जिनसे उनका दूर-दूर तक कोई वास्ता नहीं होता। चरित्रहीन पुलिस अधिकारी आम व्यक्ति के इस भय का लाभ उठाते हैं तथा हिंसा का मार्ग अपनाकर 'संदिग्ध' व्यक्ति से अपराध कबूल करवाते हैं।''[22] धन के लोभ में या पदोन्नति के लालच में या फिर अन्य स्वार्थो की पूर्ति के लिए पुलिस और नेताओं के बीच ऐसी साठगाँठ बनी है कि आम जनता को अपने प्रति हिंसा या अत्याचार से बचने का रास्ता ही नहीं सूझता, कुछ तो सहते रहते हैं और कुछ बचाव के दूसरे रास्तों और हिंसा की ओर मुड़ जाते हैं।

राजनीति से लेकर पुलिस और समाज तक जो ईमानदार है, वह अपनी ईमानदारी, निष्पक्षता, राष्ट्रवादिता और सिद्धान्तों को बचाए रख सकने हेतु संघर्षरत है और समूची व्यवस्था उसे अपने रंग में ही ढाल लेने को बाध्य किये हुए है।

इस प्रकार देखा जाए तो आठवें दशक के बाद का समूचा राजनीतिक परिदृश्य गाँधी के 'रामराज्य' और नेहरू के 'समाजवाद' से कोसों दूर नजर आता है। चूँकि लोकतांत्रिक पद्धति में संसद, विधानमण्डलों और राजनीतिक नेतृत्व की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, इस कारण देश की राजनीति जिस प्रकार की होती है उसी के अनुरूप देश की अर्थव्यवस्था, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय मानसिकता भी परिवर्तित हो जाती है। इसीलिए लोकतांत्रिक पद्धति में

राजनीतिक परिवेश का अपेक्षाकृत अधिक और निर्णायक योगदान होता है, देश भी वैसे ही चलता है।

(ख) आर्थिक :-

भारत की स्वतंत्रता के बाद देश की जनता अपने नीति-निर्माताओं से जिस राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक न्याय की अपेक्षा जोड़े हुए थी, उसे पूर्ण करने हेतु देश के संविधान को 'प्रजातांत्रिक समाजवादी' स्वरूप दिया गया। स्वाधीन भारत को कितना राजनीतिक न्याय मिल सका, उसका वृहद विवेचन पूर्ववर्ती शीर्षक में किया गया। प्रजातांत्रिक राष्ट्रों में जितनी अहम भूमिका राजनीति और राजनीतिक नेतृत्व की होती है, उतनी ही महत्त्वपूर्ण भूमिका आर्थिक नीतियों की भी होती है। अतीत का भारत आर्थिक रूप से समृद्ध था, इसी समृद्धि को देखकर पराक्रान्ताओं ने भारत को लूटा। अंग्रेजों ने अपने कारखानों के लिए कच्चा माल भारत से लिया और अपने उत्पादों को भारत में ही महँगे दामों में बेचा। विशुद्ध आर्थिक लाभ कमाने और लूट मचाने के निहितार्थ अंग्रेजों ने भारत के कृषि क्षेत्र, उद्योग, हस्तशिल्प और व्यापार को नष्ट-भ्रष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। भारत को अपनी मुक्ति के साथ ही जर्जर आर्थिक ढाँचे, गरीबी, बेकारी और भूख से जूझना पड़ा। तत्कालीन राजनेताओं ने देश के औद्योगिक और कृषि ढाँचे को समृद्ध करने का प्रयास किया लेकिन नेताओं की नई पीढ़ियों में जैसे-जैसे इच्छाशक्ति व समर्पण का अभाव होता गया और स्वार्थ लोलुपता, सत्तालोलुपता, भ्रष्टाचार व अदूरदर्शिता बढ़ती गई वैसे ही देश के नियोजित आर्थिक विकास का पहिया रूकता चला गया। आर्थिक असमानता, अशिक्षा, भूख, गरीबी, बीमारी, बेकारी और सामाजिक न्याय के खिलाफ जूझ रहे राष्ट्र की प्रतिरोधक क्षमता भी कम होती गई। एक ओर वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास की, बैंकों के राष्ट्रीयकरण की, पंचवर्षीय योजनाओं में लोकलुभावन वादों की, कल्याणकारी व स्वास्थ्य परियोजनाओं की, औद्योगीकरण तथा आर्थिक समृद्धि की आत्म प्रवंचनाएँ होती रहीं और दूसरी ओर महँगाई की बेतहाशा वृद्धि, रोजगार का अभाव, चोरबाजारी, तस्करी, भ्रष्टाचार और आर्थिक असमानता के कारण मध्यम और निम्न वर्ग की जनता त्रासद यंत्रणाएँ भोगती रही। आर्थिक विकास में असमानता के कारण देश के कुछ क्षेत्रों में अधिक विकास हुआ और कहीं पर जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं हो सकीं। बेतहाशा जनसंख्या वृद्धि व रोजगार के अवसरों के अभाव के कारण गाँवों से शहर, शहर से महानगर और महानगरों से विदेश की ओर पलायन बढ़ा।

दस्तकारी और कुटीर उद्योग नष्ट होने लगे। भारतीय अर्थव्यवस्था की जीवनरेखा- भारतीय कृषि भी उपेक्षित हो गई। केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा लगाए गए बेतहाशा करों के बोझ तले मध्यमवर्ग और निम्नवर्ग इस तरह दब गया कि उसके उज्ज्वल भविष्य की आशाएँ भी क्षीण हो गईं, जिसके परिणामस्वरूप समाज में अपराध और अपराधियों की संख्या में भी वृद्धि हुई।

देश की राजनीति जितनी दूषित हुई उससे कहीं अधिक आर्थिक समस्याओं ने देश को घेर लिया। देश की अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुँचाने में अकाल, बाढ़, सूखा और भूकम्प जैसी प्राकृतिक आपदाओं ने जितना योगदान दिया उससे कहीं अधिक समस्याएँ देश के नेतृत्व की अदूरदर्शिता ने, अफसरशाहों की गैर जिम्मेदारी ने और पूँजीपति वर्ग की मुनाफाखोर नीतियों के कारण खड़ी हुईं। कुल मिलाकर देश के समूचे आर्थिक परिदृश्य का जो चित्र उभरकर सामने आता है, उसे निम्न बिंदुओं के अन्तर्गत विश्लेषित किया जा सकता है-

(अ) आर्थिक विकास और किसान

(आ) आर्थिक विकास और श्रमिक वर्ग

(इ) पलायन की प्रवृत्ति

(ई) औद्योगीकरण

(उ) आर्थिक विकास और वैश्विक व्यापार

(ऊ) आर्थिक असमानताएँ

(अ) आर्थिक विकास और किसान :-

भारतवर्ष को कृषि प्रधान देश के रूप में जाना जाता है क्योंकि यहाँ की अर्थव्यवस्था का बड़ा भाग कृषि क्षेत्र से प्रभावित होता है। इस कारण प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में कृषि क्षेत्र के विकास को महत्त्व दिया गया, लेकिन वास्तविकता के धरातल पर विकास नदारद ही रहा। आठवें दशक की समाप्ति और नवें दशक की शुरुआत के सरकारी आँकड़ों के अनुसार पचास प्रतिशत ग्रामीण जनता गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन कर रही थी। ब्रितानी शासन में किये गए शोषण का स्वरूप मात्र बदला और साहूकार, बड़े काश्तकार, राजस्व विभाग और पुलिस विभाग के लोगों के रूप में शोषकों की नई जमात ही तैयार हो गई। इसके कारण बेगारी और मजदूरी करने वालों के साथ ही लघु और सीमान्त किसान भी शोषण के शिकार बनते गए। देश ने तकनीकी और वैज्ञानिक दिशा में जितनी प्रगति की, उतना ही कृषि क्षेत्र उपेक्षित होता चला गया,

पिछड़ता चला गया। कृषि क्षेत्र से जुड़ी देश की सत्तर प्रतिशत जनता असंगठित होने के कारण सरकारी उपेक्षा का शिकार रही। सरकार द्वारा पेश किये जाने वाले लुभावने आँकड़ों के पीछे असलियत कुछ और ही है। यहाँ हरकिशन सिंह सुरजीत का कथन उल्लेखनीय है कि "बेशक कागजों में जमीन-सुधार के बहुत से कानून पास किये गए हैं, लेकिन अगर कोई देहात में जाकर जाँच करने की कोशिश करे तो आज भी जमीन पर कुछ लोगों की इजारेदारी के कारण उसी ढंग का शोषण नजर आएगा जो आजादी से पहले था। इसमें एक बात और ध्यान में रखना जरूरी है कि देश में और खेती में पूँजीवादी विकास सामन्ती सम्बन्धों को तोड़कर नहीं किया गया, बल्कि उसी की बुनियादों पर इसकी बढ़ौती की गयी है। जिसकी वजह से गाँव का गरीब आज भी सूदखोर के रहमोकरम पर रहता है। आज भी कर्ज के भार की वजह से लाखों लोग बँधुआ मजदूर का जीवन बसर करने पर मजबूर हैं।"[23]

'नेशनल सैंपल सर्वे आर्गेनाइजेशन' द्वारा वर्ष 2003 में किये गए 'किसानों में कर्ज की स्थिति' विषयक सर्वेक्षण के आँकड़ों के अनुसार देश में कुल किसान आबादी 8.93 करोड़ में से 4.34 करोड़ किसान कर्जदार हैं, इनमें से तीस प्रतिशत किसान पूँजीपतियों और सूदखोरों के कर्जदार हैं। आँकड़े बताते हैं कि प्रति एक हजार किसानों में से लगभग 440 किसान पिछड़ी जाति के और लगभग 180 किसान अनुसूचित जाति के हैं। पिछले आठ-दस वर्षों में सरकारी ऋण बाँटकर किसानों की हालत सुधारने के सरकारी प्रयासों ने मर्ज को दवा देने के स्थान पर मर्ज देना ही प्रारम्भ कर दिया है। किसानों को उनकी मेहनत का, उनकी उपज का वाजिब दाम दिलाने और मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी कराने के स्थान पर कर्ज के बोझ तले ऐसा दाबा गया जिससे किसान आत्महत्या तक करने को मजबूर होने लगे।

कृषि क्षेत्र के प्रति सरकार की उपेक्षा के बारे में कृषि विशेषज्ञ देवेन्द्र शर्मा लिखते हैं कि "उदारीकरण की नीति का पदार्पण 1991 से हुआ। तब से लेकर आज तक सरकार की सारी की सारी नीतियाँ उद्योगों को ध्यान में रखकर बनायी गयीं। सरकार कृषि को देश की रीढ़ मानती है, बावजूद इसके उसने कृषि की घोर उपेक्षा कर रखी है।"[24] बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आगमन, मुक्त व्यापार, उदारीकरण और वैश्वीकरण ने किसानों की हालत और भी खराब कर दी। विश्व व्यापार के बड़े-बड़े व्यापारियों के सामने भारतीय कृषि उत्पादों और कृषि से जुड़े अन्य उत्पादों का लागत मूल्य और श्रम मूल्य भी निकल पाना संभव नहीं हो सका, जिसके फलस्वरूप देश

के लगभग बत्तीस करोड़ किसान और श्रमिक दो जून की रोटी भी नहीं जुटा सके और देश का लगभग 600 लाख टन अनाज यूँ ही सड़ता रहा। भारतीय आर्थिक संस्थान के कृषि अर्थशास्त्री ब्रजेश झा के विचार यहाँ उल्लेखनीय हैं कि "पिछले दशकों में कृषि का अर्थव्यवस्था में योगदान पचास प्रतिशत से घटकर पच्चीस प्रतिशत ही रह गया है। लेकिन उसी अनुपात में कृषि पर निर्भर आबादी का अनुपात नहीं घटा, अभी भी देश की लगभग साठ प्रतिशत आबादी कृषि पर ही निर्भर है। किसानों की अर्थव्यवस्था में सापेक्षिक हैसियत घटी है वे दरकिनार हुए हैं। हमने अपने यहाँ कृषि बाजार को बिना पूरी तरह से विकसित किये और किसानों को वैश्विक बाजार व्यवस्था के लिए बिना तैयार किए बाजार को अन्तरराष्ट्रीय स्पर्द्धा के लिए खोल दिया।"[25]

इस प्रकार प्राकृतिक आपदाओं- अकाल, बाढ़, सूखा के कारण; राजनीतिक उपेक्षा, पूँजीपतियों, साहूकारों और बिचौलियों के शोषण के कारण तथा बढ़ती जनसंख्या के कारण देश के लगभग सत्तर प्रतिशत किसानों को आज भी भूख, गरीबी, अशिक्षा, बेकारी, शोषण कुपोषण और अत्याचार की त्रासद यंत्रणाएँ भोगनी पड़ रहीं हैं।

(आ) आर्थिक विकास और श्रमिक वर्ग :-

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में बहुत बड़ा योगदान श्रमिकों का होता है। देश की स्वतंत्रता के बाद बड़ी तेजी से देश का औद्योगीकरण किया गया। आर्थिक नियोजन और औद्योगीकरण में जितनी तेजी दिखाई गई उतनी ही अदूरदर्शिता से कार्य किया गया, जिसके फलस्वरूप देश के औद्योगिक क्षेत्र समूचे देश में बँटने के बजाय अलग-अलग स्थानों पर सिमटकर रह गये। बढ़ती जनसंख्या, बेरोजगारी, ग्रामीण-लघु व कुटीर उद्योगों की बर्बादी और बढ़ती महँगाई के फलस्वरूप गाँवों और छोटे-छोटे शहरों से पलायन बढ़ा और देश के गिने चुने औद्योगिक क्षेत्रों/नगरों में कामगारों की फौज इकट्ठी हो गई। इतनी भारी भीड़ को रोटी, कपड़ा, मकान और शिक्षा उपलब्ध कराना तो दूर रोजगार मिलना भी आसान नहीं रहा। औद्योगिक घरानों और मिल मालिकों के सामने मजदूरों की समस्या नहीं रही और मजदूरों के पास शोषित होने के सिवा कोई विकल्प नहीं रहा। तमाम श्रम संगठन और ट्रेड यूनियन अस्तित्व में आए और शोषण से मुक्ति का रास्ता भी खुल गया। लेकिन समय के साथ ही ट्रेड यूनियन और श्रमिक संगठनों का चिन्तन व स्वरूप दोनों ही बदल गए इन संगठनों के नेता श्रमिक हितों के लिए लड़ने के बजाय व्यक्तिगत स्वार्थ साधना में लग गए तथा पूँजीपति वर्ग व श्रमिकों के बीच बिचौलिए की भूमिका निभाने लगे। गलत और

सही हर मामले में हड़ताल, चक्का जाम और बंदी जैसी घटनाओं ने जहाँ एक ओर निचले तबके के श्रमिकों को भूखों मरने हेतु मजबूर कर दिया वहीं दूसरी ओर देश की अर्थव्यवस्था को भी करारी चोट पहुँचाई। अर्थशास्त्री और न्यायविद नानी पालखीवाला 1979 की हड़ताल के बारे में लिखते हैं कि ''यह कटु सत्य है कि श्रम सम्बन्धों में कतिपय 'यूनियनें' जिस वस्तु की माँग करती हैं, वह स्वतंत्रता नहीं, मनमानी छूट है। स्वतंत्रता जब मनमानी छूट के घटिया स्तर पर आ जाती है तो लोग अपने मनचाहे उद्देश्यों को पाने के प्रयास में विधि द्वारा निषिद्ध साधनों का भी सहारा लेने लगते हैं। 1979 के वर्ष में हड़ताल के चक्कर में भारत में चार करोड़ तीस लाख कार्य-दिवस चौपट हो गए और समाज को जो क्षति पहुँची सो अलग। फल क्या निकला ? सकल राष्ट्रीय उत्पाद घट गया और मुद्रा स्फीति बढ़ गयी। कैसा घोर अनुत्तरदायी नेतृत्व! दूरगामी दृष्टि से स्वयं श्रमिकों को भी इससे कोई लाभ नहीं होता।''[26] आज तो यह स्थिति बन गई है मानो हड़ताल, बंद और चक्का जाम व्यवस्था का ही अंग हों। कतिपय श्रम संगठन अब भयादोहन की राजनीति करने लगे हैं। श्रमिकों को इससे लाभ हुआ होगा, ऐसा प्रतीत नहीं होता लेकिन देश की अर्थव्यवस्था जरूर चौपट हुई है। देश के उद्योगों का 75 प्रतिशत हिस्सा, जो सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम हैं, उनकी देश के औद्योगिक उत्पादन में हिस्सेदारी मात्र 30-40 प्रतिशत ही रह गई। निजी क्षेत्र के उद्योगों ने देश के औद्योगिक उत्पादन में पचास प्रतिशत से भी अधिक का योगदान दिया क्योंकि वहाँ श्रमिक संगठनों की नेतागिरी, कामचोरी और भ्रष्टाचार की संभावनाएँ शून्य थीं, जबकि सार्वजनिक क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयों में यह बुराई इतनी बढ़ चुकी थी कि घाटे के चलते इन इकाइयों को बंद करने की नौबत आ गई। इस स्थिति के लिए नौकरशाह और नेतागण भी बराबर के हिस्सेदार हैं। सरकार के पास घाटे में चल रही सार्वजनिक इकाइयों के लगभग दो करोड़ श्रमिकों को मुफ्त की मजदूरी देने से बचने के लिए विनिवेश का ही रास्ता बचा। 23 अगस्त 1996 को विनिवेश आयोग का गठन हुआ, आयोग की रिपोर्ट के आधार पर विनिवेश की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। 2001 में सरकार ने देश की सत्ताइस सार्वजनिक औद्योगिक इकाइयों में सरकारी भागीदारी को 27 प्रतिशत से 49 प्रतिशत तक ही सीमित कर दिया। नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक पॉलिसी से जुड़े डी0 के0 श्रीवास्तव विनिवेश प्रक्रिया के संदर्भ में अपना मत व्यक्त करते हैं कि ''आजादी के बाद से अति पिछड़े क्षेत्र के विकास के और बेरोजगारी दूर करने के नाम पर बड़ी-बड़ी सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों की स्थापना हुई प्रारंभ

में अच्छे परिणाम भी आए पर 1980 का दशक आते-आते कम्पनियों की स्थिति लगातार खराब होती चली गई। सार्वजनिक क्षेत्र की बीमार कम्पनियों को सरकार द्वारा सब्सिडी दी जाने लगी। कुछ कम्पनियों को तो इतनी सब्सिडी दी गई कि उससे नई कम्पनी खड़ी हो सकती थी। यहाँ इस सच्चाई से इंकार नहीं किया जा सकता है कि विनिवेश, निजीकरण और उद्योगों को बंद कर देने से श्रमिकों का हित प्रभावित होगा। बड़ी संख्या में श्रमिक बेरोजगार होंगे। इस समस्या का समाधान खोजा जाना चाहिए। सरकार को बंद होने वाले या फिर निजीकरण वाले उद्योगों में श्रमिकों को 'वी.आर.एस.' योजना का लाभ दिया जाना चाहिए और अगर दूसरे विभागों में श्रमिकों या कर्मचारियों को रखने की गुंजाइश हो तो उन्हें समायोजित किया जाना चाहिए।''[27] वी.आर.एस. और समायोजन के बाद भी श्रमिकों को शोषण और बेकारी से जूझना पड़ रहा है और जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ जुटाने हेतु संघर्ष भी करना पड़ रहा है। किन्तु असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों की अपेक्षा उनकी स्थिति ठीक है।

घरेलू तथा असंगठित क्षेत्र के श्रमिक (लघु उद्योग, कुटीर उद्योग और कृषि से जुड़े) शोषण और अत्याचार की वर्षो पुरानी दुर्दशा को आज भी भोग रहे हैं। गाँवों में जमींदार न सही बड़े किसान ही कम लागत पर अधिक श्रम-लाभ चाहते हैं। यही स्थिति छोटे और मंझोले उद्योगों से जुड़े श्रमिकों की भी है। रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, चिकित्सा और सामाजिक स्तर सभी कुछ ऐसे श्रमिकों के लिए सहज नहीं है। 1990 में आर्थिक उदारीकरण और भूमण्डलीकरण ने असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों को ही सबसे अधिक प्रभावित किया है। आनंद दीपायन इस संदर्भ में लिखते हैं कि ''भूमण्डलीकरण एवं उदारीकरण की योजनाओं को सुचारु रूप से लागू करने हेतु 1990 से लेकर अब तक अनगिनत संरचनात्मक परिवर्तन सरकार ने किए हैं। इस संस्थागत परिवर्तन के चलते बहुत से लोग प्रभावित हुए हैं। रोजगार से वंचित हुए हैं। तत्कालीन वित्तमंत्री ने इस कुप्रभाव से बचने के लिए विशेष कोष की स्थापना का ऐलान 1992 में किया था। मजदूर वर्ग के हितों को संरक्षित करने की बात कही गई। किन्तु सरकार ने 1992-93, 1993-94 एवं 1994-95 और बाद के वर्षो में थोड़ी सी रकम देकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर ली। फलतः असंगठित क्षेत्र के मजदूर वर्ग गरीबी, कुपोषण और बेरोजगारी के शिकार हुए हैं।''[28]

(इ) पलायन की प्रवृत्ति :-

सामाजिक असुरक्षा और शहरों की भौतिकतावादी चकाचौंध के प्रति आकर्षण सहित तमाम

कारकों के साथ ही पलायनवादी प्रवृत्ति में आर्थिक कारक भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जनसंख्या वृद्धि और कृषि उत्पादों से पर्याप्त लाभ अर्जित नहीं होने के साथ ही गाँवों में अर्थार्जन के अवसरों की कमी के कारण गाँवों से शहरों की ओर पलायन बढ़ा है। आज प्रेमचंद के 'गोबर' जैसे तमाम युवा शहरों की ओर भाग रहे हैं। उपभोक्तावादी युग में आगे निकलने की होड़ में भी पलायन को बढ़ावा मिला है। जहाँ गाँवों से लोग शहरों में आना चाहते हैं वहीं शहरों से महानगरों की ओर पलायन की प्रवृत्ति बढ़ी है। पंजाब और उत्तर प्रदेश में तो आजकल चोरी छिपे विदेश जाने और वहाँ कमाने के भी कई मामले सामने आए हैं। इस अनूठे अन्तरराष्ट्रीय अपराध को 'कबूतरबाजी' की संज्ञा दी जाती है। पलायन के कारण गाँव के गाँव खाली हो गए हैं और नगरों, महानगरों में जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की उपलब्धता की जटिल समस्या खड़ी हो गई है। कृषि मामलों के विशेषज्ञ देवेन्द्र शर्मा पलायन की प्रवृत्ति के संदर्भ में अपना विचार प्रस्तुत करते हैं कि "शहर की ओर पलायन के बारे में आकलन है कि 2010 तक भारतीय शहरों में पलायन कर चुके लोगों की संख्या ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी की कुल आबादी से दोगुनी हो जाएगी। यह आकलन डब्ल्यू0टी0ओ0 से पहले का है, जबकि मेरा मानना है कि यह पलायन पाँच गुना ज्यादा होगा।"[29]

यह पलायन की प्रवृत्ति अशिक्षितों, अल्पशिक्षितों और गरीबों तक ही सीमित नहीं है। विज्ञान और तकनीकी की उच्च शिक्षा प्राप्त युवा अपनी योग्यता और शिक्षा के बूते अधिक से अधिक धन अर्जन करने की होड़ में विदेश चले जाते हैं। इससे जहाँ एक ओर पारिवारिक और सामाजिक समस्या खड़ी होती है वहीं दूसरी ओर देश को आर्थिक क्षति भी होती है। 'अमर उजाला' समाचार-पत्र से जुड़े अरुण कुमार सूर्यवंशी के अनुसार "प्रतिभा पलायन के कारण हमें वित्तीय घाटा उठाना पड़ता है। भारत के हर दस में से चार साफ्टवेयर विशेषज्ञ अमेरिका में काम कर रहे हैं। वर्ष 1998 में आई0आई0टी0 में प्रशिक्षित तीस फीसदी कम्प्यूटर इंजीनियरों ने अमेरिका का रुख़ किया। अगर ये प्रतिभाएँ अपने देश में ही कार्य करतीं तो आयकर चुकाकर देश के विकास में भागीदार बन सकती थीं। एक अध्ययन के मुताबिक, भारत से अमेरिका जाने वाली प्रतिभाओं के कारण भारत को 700 मिलियन डॉलर की राजस्व हानि होती है, जो भारत की कुल आय का 12 प्रतिशत है।"[30] प्रतिभा पलायन के कारण न केवल आर्थिक क्षति होती है, बल्कि सामाजिक विघटन भी होता है, फिर भी पलायन की प्रवृत्ति बढ़ती ही जा रही है। धन

कमाने के लिए पलायन करने वालों में अपनी मातृभूमि के प्रति कहीं न कहीं लगाव भी छिपा रहता है। कथाकार बलराम की टिप्पणी उल्लेखनीय है कि "विकास की प्रक्रिया से जुड़ने के लिए लोग गाँव से शहर और शहर से विदेश भाग रहे हैं गाँव खाली हो रहे हैं। पर गाँव से गए लोगों की आकांक्षा है कि स्मृतियों में बसा उनका गाँव, वहाँ की सभ्यता और संस्कृति बनी रहे।"[31]

उपरोक्त बिंदुओं के अतिरिक्त विवेच्य कालखण्ड में देश की अर्थव्यवस्था को आर्थिक उदारीकरण, बाजारवाद और मुक्त व्यापार नीति ने प्रभावित किया। इनके कारण न केवल आर्थिक कारक प्रभावित हुए वरन् धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और मानसिक कारक भी प्रभावित हुए, जिनका विवेचन अग्रिम बिंदुओं में किया गया है।

(ई) औद्योगीकरण :-

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात हुए देश के औद्योगिक विकास की विसंगतियों, प्रभाव और विद्रूपताएँ आठवें दशक के बाद के वर्षों में खुलकर प्रकट होने लगीं। श्रमिकों की समस्याएँ, गाँवों से शहर की ओर पलायन और प्रदूषण जैसी समस्याओं के साथ ही देश के अनियाजित औद्योगिक विकास की विद्रूपताओं आदि पर पहले ही चर्चा की जा चुकी है। देश के तीव्र औद्योगिक विकास ने जीवन स्तर, रहन-सहन और मानसिकता को भी प्रभावित किया है। औद्योगीकरण के फलस्वरूप यांत्रिकता का वर्चस्व स्थापित हुआ। परम्परागत कृषि पद्धति और ग्रामीण कुटीर उद्योगों के साथ ही दैनन्दिन जीवन में भी यंत्रों के अधिकाधिक प्रयोग ने कृषि और ग्रामीण कुटीर उद्योगों के साथ ही स्वरोजगार और लघु उद्यमों को प्रभावित किया, बेरोजगारों और श्रमिकों की संख्या बढ़ी। इसी प्रकार शारीरिक श्रम के बजाय यंत्रों पर आश्रित रहने की मानसिकता भी प्रबल हो गयी।

औद्योगीकरण और यांत्रिकता के कारण मानसिकता भी बदली और हर कार्य को जल्द से जल्द कर डालने, शारीरिक श्रम से बचते हुए अधिक से अधिक लाभ अर्जित करने और भागती हुई जिंदगी जीने की प्रवृत्ति जोर पकड़ने लगी। इस बदलाव को 'तदर्थवाद' और 'फास्ट फूड कल्चर' का नाम दिया गया। यह बदलाव निःसन्देह औद्योगीकरण और यांत्रिकता की ही देन है जो आज के समाज में, घर-परिवार में, हर जगह, हर समय हावी है।

(उ) आर्थिक विकास और विश्व व्यापार :-

देश के आर्थिक ढाँचे को विश्व बाजार, मुक्त व्यापार और अन्तरराष्ट्रीय औद्योगिक नीतियों ने प्रभावित किया। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा देश के बाजारों पर किये गए कब्जे के कारण देशी

उद्योग-धंधे बदहाली से जूझने लगे, दूसरी ओर आयातित और विदेशी माल के प्रति देशी जनता के लगाव ने उपभोक्तावादी मानसिकता का विकास किया। भौतिक सुख और विलासिता की वस्तुओं के प्रति आकर्षण ने, दिखावे ने और आपसी होड़ ने आर्थिक विकास के मायने ही बदल दिए। कर्ज लेने के प्रति भी मानसिकता बदली और नवआधुनिक वैचारिकता ने कर्ज लेकर आलीशान मकान बनवाने, महँगी कारें खरीदने और विलासिता के ढेरों सामान खरीदने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया। इस कारण विश्व व्यापार के नए आयामों का सृजन हुआ, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए लाभ कमाने के अवसर सुलभ हो गए, आसान हो गए।

विश्व व्यापार के कारण देश का आर्थिक विकास जिस स्तर तक पहुँचा उसी अनुपात में विकृतियाँ और विद्रूपताएँ भी उपजीं। बेकारी, गरीबी, शोषण, उपेक्षा, अपराध, आत्महत्या और मनोविकृतियाँ नए रूप में सामने आईं, जीवन-स्तर बदला, समाज और परिवार में कई स्तरों पर विघटन हुआ, व्यापक बदलाव हुआ।

विश्व व्यापारीकरण और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बढ़ते वर्चस्व के कारण उपजी विकृतियों और विद्रूपताओं के साथ सुखद पक्ष भी जुड़ा हुआ है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आगमन के फलस्वरूप देश के पढ़े-लिखे, वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा प्राप्त नौजवानों को रोजगार के अवसर सुलभ हो सके। इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि अगर 'कारपोरेट जगत्' द्वारा रोजगार मुहैया नहीं कराए गए होते तो देश में बेरोजगारी की समस्या और अधिक गंभीर होती

(ऊ) आर्थिक असमानताएँ :-

असमान आर्थिक विकास, गरीबी, बेरोजगारी और संसाधनों के अभाव के कारण उपजी स्थितियों का सबसे दुखद पक्ष आर्थिक असमानता का है। नए पूँजीपति, साहूकार और शोषक वर्ग के उदय ने इस असमानता को बढ़ाया ही है। गाँवों में जमींदारी व्यवस्था समाप्त हो जाने के बावजूद बड़े भू-स्वामियों, सेठ-महाजनों और साहूकारों का वर्चस्व कायम है। शहरों में भी यही असमानता दिखाई देती है। गाँव से लेकर नगर और महानगरों में एक वर्ग ऐसा है, जो दो वक्त की रोटी का मोहताज है, जिसके पास सिर छिपाने को छत नहीं है, तन ढ़ँकने को कपड़े भी नहीं हैं और एक वर्ग ऐसा भी है, जो पाँच सितारा जिन्दगी जीते हैं, जिनके कुत्ते भी महँगी विदेशी कारों में घूमते हैं। इन दोनों वर्गों के बीच 'त्रिशंकु' की हालत में जी रहा मध्यम वर्ग दोतरफा मार खा रहा है। न तो वह गरीबों की तरह गरीबी को 'सेलिब्रेट' कर पा रहा है और न ही अमीरों

जैसा सुख भोग पा रहा है। अपनी आर्थिक स्थिति से अधिक सक्षम दिखने की होड़ में मध्यमवर्गीय लोग अवसाद और अपराध के शिकार भी हो रहे हैं।

आर्थिक असमानता की व्यापकता ने समाज में अघोषित और तीव्र प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया है, जिसका शिकार हर वर्ग है, हर व्यक्ति है। यह आर्थिक असमानता महज भौतिक विकास, सुख-साधन व विलासितापूर्ण जीवन जीने की प्रवृत्ति के कारण अधिक तीक्ष्ण और तीव्र दिखाई देती है। यहाँ पर उल्लेख करना आवश्यक होगा कि इस दौर में 'सादा जीवन उच्च विचार' जैसे आदर्श और सिद्धान्त अपनी चमक ही नहीं खो चुके हैं, वरन् अप्रासंगिक और गैरजरूरी भी हो चुके हैं। समाज भी इसे स्वीकार करता है, लिहाजा आर्थिक असमानताओं के कारण उपजी विकृतियाँ और विद्रूपताएँ आठवें दशक के बाद के वर्षो में खुलकर दिखाई देती हैं।

(ग) धार्मिक एवं सांस्कृतिक :-

भारतवर्ष अपने ज्ञात इतिहास से ही बहुधर्मीय राष्ट्र रहा है और इसी कारण भारत की संस्कृति भी विविधता भरी रही है। देश में ही जन्मे विविध मत-मतान्तरों, सम्प्रदायों और पंथों के अतिरिक्त विदेशों से आगत धर्मावलम्बियों को बिना भेदभाव के अंगीकार कर लेना ही भारतीय संस्कृति है। डॉ. प्रमोद कुमार अग्रवाल लिखते हैं कि ''भारतीय संस्कृति में धर्म 'मजहब' नहीं है और न ही 'रिलीजन' है। वह सभी को परस्पर प्रेम से रहना सिखाता है जिसका मूलभाव 'समन्वय' में सन्निहित है अर्थात् दूसरों की विचारधारा उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी स्वयं की। सहनशीलता, करुणा एवं दूसरों के दृष्टिकोण को सम्मान प्रदान करना भारतीय संस्कृति का अपरिहार्य अंग है।''[32] स्वतंत्रता संग्राम के समय में और उसके बाद की तमाम घटनाओं ने विवेच्य कालखण्ड तक आते-आते संस्कृति के तमाम पुराने मानदण्डों और प्रतिमानों को तोड़ दिया। स्वतंत्रता समर में जिस 'देशी' संस्कृति के प्रति लगाव था, वह आज उपेक्षित है उसकी जगह 'इम्पोर्टेड' संस्कृति आ गई है। बी.टी. रणदिवे इसके कारणों की खोज करते हुए लिखते हैं कि ''नयी पीढ़ी के जुझारूपन के लिए कोई 'स्कोप' ही नहीं है। इसलिए उसे भरमाने वाली संस्कृति पनप रही है जिसमें 'एडवेंचरिज्म' भी निरर्थक हो गया है, क्योंकि साहित्य, नाटक, फिल्म सभी जगह नायक को भाड़े का सिपाही बनाया जा रहा है और खलनायक को गौरवान्वित किया जा रहा है।''[33] दूसरी ओर आर्थिक उदारीकरण, मुक्त विश्व व्यापार नीति और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की धन कमाऊ होड़ ने व्यापार बढ़ाने के लिए संस्कृति पर ही हमला बोला। ''बाजार रोज नए

उत्पाद खोजता है और ज्यादा नग्न हो जाने की खोज जारी रहती है। एक तेज कामुक सामाजिक परिवर्तन घटित हो रहा है। समृद्धि जब संस्कृतिविहीन होती है तो ऐसा ही होता है। 35-40 करोड़ लोगों के पास दौलत आ गई है। हवाला, घोटाला, माफिया, अफसर और पूँजीपति वर्ग ने एक नया एंद्रिक समाज बनाया है। उसका रहन-सहन और मन लोकल से ग्लोबल हो गया है। यही नए सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का ध्वज वाहक है।''[34] हृदयनारायण दीक्षित भले ही आधुनिक संस्कृति को 'नंगा युग' का नाम दें और इसे पूँजीवादियों के सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का हमला बताएँ लेकिन सुधीश पचौरी इससे सहमत नहीं हैं। सुधीश पचौरी इस नव आधुनिक संस्कृति के दूसरे पक्ष को प्रस्तुत करते हैं कि ''खुले पूँजीवाद ने बँधे पूँजीवाद के वात्सल्य को तोड़कर यदि सबको चौराहे पर खड़ा कर विश्व मजदूर बना दिया है तो कष्ट भले बढ़े हों, कर गुजरने की इच्छाएँ भी तो बढ़ीं हैं। अब यदि आप मध्यकालीन कछुआ धर्म निभाकर, स्पर्धा के बिना आगे बढ़ लें तो बढ़ जाइए। सदियों से कथित सहयोगिता में जाति बिरादरी की ऊँच-नीच हमारी संस्कृति को सिर्फ ब्राह्मणों, ठाकुरों तक महदूद करती रहीं- अब 'मॉस कल्चर' या जनसंस्कृति को जो इस सांस्कृतिक उद्योग का उत्पाद है, सबको यानि अधिसंख्य को मिल रही है तो सिर्फ उन्हें कष्ट होता है जो इस सांस्कृतिक उद्योग का उत्पाद है, सबको यानि अधिसंख्य को मिल रही है तो सिर्फ उन्हें कष्ट होता है जो एलीट कल्चर के ठेकेदार हैं जो हाई माडर्निस्ट हैं, जिनका सतीत्व खतरे में है। वे एक मजदूर को टीवी देखते नहीं देख सकते वे नहीं समझ सकते कि इस 'मॉस कल्चर' से यह मजदूर ही अंततः निपटेगा। यदि सूचना संस्कृति न फैली होती, यदि कामनाएँ न जगी होतीं तो स्त्रियाँ और दलित लोग न जगे होते। बाजार की संस्कृति ने उन्हें प्रतियोगिता के बाजार में ला खड़ा किया है। साहित्य-संस्कृति के पुराने केंद्र लड़खडा रहे हैं। साहित्य-संस्कृति उपभोक्ता के क्षेत्र में आ रहे हैं। दलित या स्त्रियों के जागरण की राजनीतिक फसल तो सब काटना चाहते हैं, सांस्कृतिक फसल से परेशान होते हैं।''[35]

उपभोक्तावादी संस्कृति या 'मॉस कल्चर' कुछ अर्थों में भले ही उपयोगी और आधुनिकता के लिहाज से सार्थक कही जा सके, लेकिन इसके परिणाम अपेक्षाकृत सुखद नहीं हैं। भौतिकता के लिए लोगों में इतनी भूख बढ़ी है कि इसके लिए हर तरह का भ्रष्टाचार, हर तरह का अपराध और अंधी दौड़ इस तरह बढ़ी है कि देश और समाज तो दूर पारिवारिक मान्यताएँ, मर्यादाएँ और नैतिकता तक टूट गई है यहाँ तक कि व्यक्ति स्वयं में ही टूट गया है। 'मॉस कल्चर'

के इस नवयुग में मनुष्य स्वयं से ही भाग रहा है, इसकी परिणति क्या होगी? संभवतः कोई नहीं जान सकता।

संस्कृति के साथ ही धर्म में भी बदलाव आया है। धर्मनिरपेक्षता के नाम पर धर्म की परिभाषाएँ ही बदल गई हैं। मानवीय आस्थाओं के, मानवीय चिन्तन और विचारधाराओं के दायरे ही बदल गए हैं। पुराने समय में धर्म, नैतिकता, सिद्धान्त, अनुशासन और मर्यादा का गठबंधन होता था, जो सामाजिक-पारिवारिक संरचना को मजबूत बनाए रखने और राष्ट्र को चलाने में योगदान देता था। चाणक्य की 'राजनीति' और गाँधी का 'रामराज्य' धर्म से विलग नहीं था। किन्तु आज धर्म का उपयोग संकीर्ण मानसिकताओं के व्यूह गढ़ने, निहित स्वार्थो की पूर्ति करने और कुछ हद तक विखण्डन व तोड़फोड़ करने में भी होता है। यहाँ पर डॉ. विद्यानिवास मिश्र के विचारोल्लेख करना समीचीन होगा कि, "पारिवारिक भावना का ह्रास, अपनी ही छोटी-सी अस्मिता को परिवारभाव में एकात्म, गाँव, जनपद और देश को जोड़ने वाले धर्म के स्थान पर छोटे-छोटे अहंकारों के दुर्ग बन गए हैं। चाहे जाति के रूप में हो, सम्प्रदाय के रूप में हो, वर्ग के रूप में या और किसी रूप में हो। धर्म ने जिस सर्वहित की बात चलायी और सबके कल्याण में अपने कल्याण और सबके सुख में अपना सुख और सबके दुःख में अपना दुःख मानने की परम्परा चलायी थी, उसके स्थान पर एक ऐसी विकास दृष्टि आ गयी है, जो केवल अपने सुख और अपने दुःख की ही चिन्ता करती है।"[36] धर्म और राजनीति के मध्य अन्तर्सम्बन्धों के विषय में डॉ. रामजी मिश्र लिखते हैं कि "आज राजनीति में अनेक ऐसी बातों का समावेश हो गया है जो न्याय और नैतिकता की कसौटी पर ठीक नहीं उतरती। हमारे यहाँ साध्य और साधन की पवित्रता पर बड़ा जोर दिया गया है किन्तु आज राजनीति में येन केन प्रकारेण सफलता प्राप्त करना ही जीवन की श्रेष्ठतम उपलब्धि माना गया है। वहाँ न्याय नैतिकता को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। ऐसे में धर्म को राजनीति से अलग रखने की बात की जाती है।"[37]

किन्तु आज के राजनीतिक परिवेश में धर्म को अलग रखना तो दूर वोट और सत्ता पाने के लिए धर्म का बढ़-चढ़कर उपयोग होता दिखाई देता है। देश ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 1984, 1992 और 2002 में धर्म के नाम पर बड़े दंगों की त्रासदी देखी है। छोटे-छोटे दंगो और लड़ाइयों की तो गिनती ही नहीं है। इसी परिवेश से 'धर्मनिरपेक्षता' और 'साम्प्रदायिकता' जैसे मुद्दे निकलकर आए हैं। इनके शाब्दिक अर्थ समझने की तो आवश्यकता नहीं है, लेकिन गूढ़ अर्थ

और उपयोगिता को समझने हेतु के.एन. पणिक्कर के विचारों पर ध्यान देना होगा। पणिक्कर जी के अनुसार "पिछले चालीस वर्षों में धर्म निरपेक्षता, एक प्रमुख आकस्मिकता बनी रही है और समाज का बढ़ते पैमाने पर सांप्रदायीकरण होता गया है। आज पूरे भारत में धर्म पर आधारित राजनीतिक पार्टियों तथा सार्वजनिक संगठनों की खूब बाढ़ आयी हुई है। जाति पर आधारित संगठन, राजनीतिक पार्टियों का रूप धरकर सामने आ रहे हैं और विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के बीच भी जाति पर आधारित ग्रुप, अलग-अलग पहचानों के साथ, दबाव ग्रुपों के रूप में काम करते हैं। भारतीय समाज में जाति और सम्प्रदाय पर आधारित विभाजन स्पष्ट हैं। जाति तथा साम्प्रदायिक चिंताएँ राजनीति में स्वीकृत नियम ही बन गयी हैं और साम्प्रदायिक दंगे तथा तनाव, आये दिन की चीज हो गये हैं।"[38]

साम्प्रदायिकता, जातिवाद, वर्गवाद और धर्मनिरपेक्षता जैसे शब्दाडम्बरों में देश का मानस ऐसा उलझ गया कि हर ओर खेमेबंदी और आपसी वैषम्य के कारण देश का विकास रुक गया, समाज की संरचना छिन्न-भिन्न हो गई और मानव-मानव के मध्य मानवता के सम्बन्ध के बजाय ढेरों अन्तर्विरोध उभर आए। ऐसा भी नहीं है कि आपसी भाईचारा, सद्भावना और आपसी प्रेम की कहीं जगह ही न बची हो, फिर भी सापेक्षिक न्यूनता के कारण ऐसे उदात्त मानवीय गुण विवेच्य कालखण्ड में बहुत ढूँढने पर ही मिलते हैं।

(घ) सामाजिक (युवा, नारी और बालकों के विशेष सन्दर्भ में) :-

देश में जिस प्रकार का राजनीतिक वातावरण होता है, आर्थिक और धार्मिक परिवेश होता है, समाज भी वैसा ही हो जाता है। और सामाजिक अन्तःक्रियाएँ धर्म, अर्थ, राजनीति और संस्कृति को प्रभावित करतीं हैं। इस प्रकार दोनों में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होते हैं। पूर्व में वर्णित बिन्दुओं के अन्तर्गत देश के राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिवेश का वर्णन किया गया। 1980 के बाद राजनीति के अपराधीकरण, भ्रष्टाचार, सत्तालोलुपता, स्वार्थ साधना, साम्प्रदायिक उन्माद, 'पॉप कल्चर' के विकास, आधुनिकता, निजीकरण, उदारीकरण, वैश्विक व्यापारीकरण और पूँजीवादी साम्राज्य के सांस्कृतिक हमले के फलस्वरूप समाज में भी बड़े पैमाने पर बदलाव आया है। समाज में बदलाव का प्राथमिक और तीव्र प्रभाव समाज की सबसे छोटी और केन्द्रीय इकाई अर्थात् परिवार में दिखाई देता है। "पारिवारिक सम्बन्धों के बदलते स्वरूप एवं पारिवारिक संरचना व कार्यों में तीव्र परिवर्तन ने पारिवारिक जीवन में असंतुलन को प्रोत्साहित

किया है जिसके फलस्वरूप परिवार के सदस्य परस्पर सामंजस्य एवं लक्ष्यों की प्राप्ति में बाधा महसूस कर रहे हैं। यही कारण है कि आधुनिक परिवार अनेक समस्याओं से ग्रसित हो अपने संक्रान्तिकाल से गुजर रहा है।''[39] संयुक्त परिवारों की प्रथा तो बहुत पहले ही समाप्त हो चुकी थी, अब परिवार के सीमित अर्थों में पति-पत्नी और बच्चे भी अलग-थलग पड़ गए हैं और अकेला व्यक्ति भी स्वयं से भाग रहा है। सम्बन्धों की शून्यता, पारिवारिक समन्वय का अभाव, अकेलापन, अलगाव, मानसिक तनाव, अन्तर्द्वन्द्व, स्त्री मुक्ति का प्रश्न, वृद्धों की समस्याएँ और बच्चों की समस्याएँ, पारिवारिक असुरक्षा जैसी तमाम पारिवारिक समस्याएँ इस अवधि में तेजी से उभरकर आईं। ऐसी पारिवारिक समस्याएँ आज इस स्तर तक पहुँच गई है कि उनसे निबटने के लिए कानून और अदालतों की शरण लेनी पड़ रही है। दहेज और सती प्रथा निषेध कानून तो दूर, अब सरकार को वृद्धों की देखरेख और सहारे के लिए कानून बनाना पड़ रहा है। वृद्धजन (अनुरक्षण, देखभाल और संरक्षण) विधेयक, 2005 के संदर्भ में केंद्रीय सामाजिक न्याय एवं आधिकारिता मंत्री मीरा कुमार का वक्तव्य- ''औद्योगीकरण, शहरीकरण और आधुनिकीकरण के चलते बीते दो-तीन दशकों से लोगों की जीवन शैली में बदलाव आया है। संयुक्त परिवार की प्रथा खत्म होने के चलते वृद्धों को असहाय हालत में रहना पड़ रहा है। सोच में बदलाव के चलते माँ-बाप का आशीर्वाद लेने जैसी परम्पराएँ समाप्त होती जा रही हैं। लिहाजा सरकार कानून बनाकर वृद्धों को ताकतवर बनाएगी,''[40] यहाँ उल्लेखनीय है। दूसरी ओर साम्प्रदायिकता, वर्गभेद, भ्रष्टाचार, अपराध और शोषण के कारण सामाजिक विघटन, अवसरवादिता, मुक्ति का प्रश्न, व्यवस्था के प्रति विद्रोह, नशाखोरी, सामाजिक समरसता का अभाव जैसी प्रवृत्तियाँ बढ़ती गई।

''यह देखा गया है और अच्छी तरह प्रमाणित भी है कि आर्थिक विकास निस्सन्देह आवश्यक होते हुए भी हमें कुछ अनचाहे परिणामों की ओर ले जाता है। इसे कुछ खास सामाजिक लक्ष्यों से जुड़ा होना चाहिए। वृद्धि-दर, सकल राष्ट्रीय उत्पाद और प्रति व्यक्ति आय के आँकड़े प्रायः भ्रामक होते हैं। इनका आडम्बर एक बहुत बड़े समूह के बन्धन और निकृष्ट जीवन के कुरूप सत्य को ढँक लेता है।''[41] समाज के आदर्श स्वरूप को विघटन और विकृति से बचाते हुए किया जाने वाला विकास ही राष्ट्रीय जीवन के हित में होता है, लेकिन देश के राजनीतिक नेतृत्व और बुद्धिजीवी वर्ग ने इस ओर ध्यान न देकर आर्थिक विकास को सामाजिक विकास के समानुपाती बनाने के बजाय व्युत्क्रमानुपाती बना दिया और इस प्रकार देश में विकास की जो अंधी दौड़ चल

रही है, उसे अनिल चामड़िया ने कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है कि "किसी भी तरह से कर्ज लेकर मकान खड़ा करना, गाड़ियाँ खरीदना और दूसरे ऐय्याशी के सामान खरीदने की होड़ मध्यवर्ग का मूल चरित्र हो गया है। लोगों में इस तरह विकास की अंधी दौड़ का पैदा होना कोई घटना नहीं बल्कि एक निश्चित राजनीतिक योजना का हिस्सा है। कल्पना करें कि जो सरकार एक खास तरह की विकास धारा को देश पर थोपना चाहती हो उसके लिए इससे आसान रास्ता और क्या होगा कि लोग सरकार से किसी भी तरह केवल उनका विकास करने के लिए दबाव डालें। विकास की दिशा क्या है, यह बहस पीछे चली जाए। यह धारा महज आर्थिक विकास तक ही सीमित नहीं है। यह सामाजिक जीवन के पहलुओं को प्रभावित करती मिलती है।"[42] देश के असमान विकास के साथ ही मुक्त व्यापार नीति, आर्थिक उदारीकरण, बाजारवाद, 'पॉप कल्चर' और उपभोक्तावाद ने ही ऐसी जटिलताएँ खड़ी की हैं। इसने समाज के विविध पक्षों सहित समाज के तीन प्रमुख अंग- स्त्री, युवा और बालकों को विशेष रूप से प्रभावित किया है क्योंकि सामान्यतः ये समाज के संवेदनशील अंग होते हैं। आगे के बिन्दुओं में संक्षेप में इस विषय पर चर्चा करेंगे-

स्त्री और समाज :-

आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक विकास के फलस्वरूप स्त्रियों की स्थिति में भी सुधार हुआ। घर की चौखट को पार करके स्त्रियों ने शिक्षा, व्यवसाय, उद्योग और सरकारी सेवाओं से जुड़कर वैयक्तिक व सामाजिक विकास में योगदान दिया। वास्तविकता मात्र ऐसी ही नहीं है। स्त्रियों के विकास के साथ ही साथ शोषण और अत्याचार, अन्याय और अपमान के तौर-तरीके भी बदल गए। ऊँचे पदों पर कार्य करने वाली, राजनीति, समाजसेवा, शिक्षा और साहित्य से जुड़ी जानी-पहचानी महिलाओं द्वारा 'स्त्री विमर्श' की बड़ी-बड़ी बातें, स्त्रियों के अधिकारों और स्वतंत्रता के अलमबरदारों से दूर गाँवों और शहरों में स्त्रियों की स्थिति आज भी कमोबेश पहले जैसी ही है। साप्ताहिक पत्र 'सहारा समय' के 7 जून 2003 में प्रकाशित सर्वेक्षण में बताया गया है कि "दहेज की घटनाएँ विगत दशक में न सिर्फ बढ़ी हैं वरन् इसने देश के हर धर्म, जाति और वर्ग में पैठ बना ली है। देश में हर 87 मिनट पर एक दहेज प्रताड़ना या हत्या का मामला दर्ज होता है।"[43] निःसन्देह दहेज प्रताड़ना या हत्या का मामला आज की भौतिकतावादी, 'पॉप कल्चर' और पूँजीवादी व्यवस्था से जुड़ा हुआ है। निरन्तर विकास करते रहने के बाद भी कुछ पुरानी बातें आज

भी नहीं बदल पाई हैं और बदली भी हैं तो नए रूप में फिर सामने आ गई। रमेश उपाध्याय लिखते हैं कि "स्त्री-पुरुष की असमानता का पुराना 'मिथ' टूट चुका है लेकिन असमानता बनी हुई है। इसका मतलब यह नहीं कि हम उस 'मिथ' को फिर खड़ा करें और सामंती संयुक्त परिवार को 'ग्लोरिफाई' करें, लेकिन स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों को देखते हुए हमें इस तथ्य को स्वीकार करना होगा कि पूँजीवाद में कुछ स्वस्थ चीजें भी नष्ट हो रही हैं।"[44] पहले स्त्रियों के प्रति अपमान और अश्रद्धा का भाव रखने वाले को सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ता था, लेकिन अब की स्थितियाँ ऐसी नहीं हैं, स्त्री को मात्र 'भोग्या' समझा जाता है। पारिवारिक विघटन इसका महत्त्वपूर्ण कारक हो सकता है। पति-पत्नी के बीच तनाव, हिंसा और तलाक जैसे मुद्‌दे नगरों-महानगरों में ही नहीं, अब गाँवों में भी देखने को मिलते हैं। राष्ट्रीय महिला आयोग के आँकड़ों के अनुसार हर छठे घंटे में एक विवाहित महिला हिंसक अत्याचार सहती है और प्रतिवर्ष लगभग पचास हजार वाद घरेलू हिंसा से सम्बन्धित मामलों में दर्ज होते हैं।

स्त्रियों की बदहाली के लिए उपभोक्तावाद, बाजारीकरण और विश्व व्यापार की नीति भी कम उत्तरदायी नहीं है। तमाम सौंदर्य प्रतियोगिताओं, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के व्यापारिक हितों और 'पॉप कल्चर' के कारण भी स्त्रियों के प्रति समाज का दृष्टिकोण बदला है। इसी कारण बलात्कार जैसी घटनाएँ आए दिन की बात हो गई हैं। दूसरी ओर सौन्दर्य बाजार के बढ़ते प्रभाव ने महिलाओं में हीन भावना जगाने, बनावटी सौन्दर्य की ओर आकृष्ट होने और धन कमाने की होड़ पैदा करने का भी कार्य किया।

ऐसी स्थितियों के बाद भी ढेरों स्त्रीवादी संगठनों, समाजसेवियों, राजनीतिज्ञों और बुद्धिजीवियों द्वारा 'स्त्री-विमर्श' और 'नारीवाद' की जमकर वकालत की जाती है। राजनीति में अपनी जगह बनाने के लिए महिलाओं को शोषण के कितने स्तरों को पार करना पड़ता है, यह बता पाना कठिन होगा। संसद और विधानमण्डलों में महिलाओं की भागीदारी और प्रतिष्ठा को देखकर पंचायतों के स्तर पर महिलाओं की राजनीतिक स्थिति का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। इस सबके बावजूद 'स्त्री-विमर्श' और 'नारीवाद' की परिकल्पनाएँ न केवल जीती-जागती रहती हैं, बल्कि चलती भी रहती हैं। समाज को दिलासा दिलाने या किन्ही अन्य कारणों से 'स्त्री-विमर्श' और 'नारीवाद' को चलाए रखने के कारणों पर कटाक्ष करते हुए पत्रकार मृणाल पाण्डे लिखती हैं कि "दरअसल नारीवाद का विषय ही ऐसा है कम्बख्त, कि सालों पुराने

और अच्छे-खासे बुद्धिमान पुरुष मित्र भी इसको हाथ में लेते ही अपनी सहज मानवीयता छोड़कर एक पकी-पकाई पारम्परिक भाषा में न्यायाधीश के सुर में बोलने लगते हैं- सभाओं में, घरों में, सम्पादकीयों में ऐसे कई वक्ताओं की वक्तृता पढ़ते-सुनते हुए मुझे लगता है कि ऐसी बहसें अक्सर अनुभव के नहीं, आधार पर नहीं, बल्कि अंदाज के आधार पर सिर्फ बहस उठाने को छेड़ दी जाती हैं।''[45]

समाज और युवा :-

आठवें दशक के बाद देश में हुए तकनीकी विकास तथा सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक बदलाव की स्थितियों का युवाओं पर भी प्रभाव पड़ा। परम्परागत विषयों के अध्ययन के बजाय तकनीकी और वैज्ञानिक विषयों के अध्ययन के उपरांत विदेशों में जाकर नौकरी करने और धन कमाने के चलन ने युवाओं को पलायन के लिए बाध्य किया इसी तरह गाँवों में रहकर कृषि-कार्य और परम्परागत व्यवसाय से जुड़े युवा भी शहरीकरण, बाजारवाद और भौतिकता की चमक-धमक को भोगने के लिए गाँवों को छोड़कर नगरों और महानगरों की ओर भागने लगे इससे एक ओर तो परिवारों में टूट-फूट और विघटन की स्थितियाँ पैदा होने लगीं और दूसरी ओर युवाओं में चिंता अवसाद और ईर्ष्या पनपने लगी।

मुक्त व्यापार नीति, उपभोक्तावादी संस्कृति, बढ़ती जनसंख्या, शिक्षा के विस्तार और नष्ट होते परम्परागत उद्योग-धन्धों व कृषि के घटते उत्पादन के कारण देश में बेरोजगार युवाओं की फौज तैयार होने लगी। नानी पालखीवाला बढ़ती बेकारी के बारे में लिखते हैं ''अगस्त 1983 में सेवा नियोजन कार्यालयों में 2 करोड़ 11 लाख लोगों के नाम पंजीयित थे। यह संख्या प्रतिमास 1.6 लाख के परिमाण से बढ़ती जा रही है। इधर संगठित क्षेत्र में (सरकारी तथा गैर सरकारी दोनों में) धन्धों में वृद्धि उपर्युक्त दर की तुलना में एक तिहाई से भी कम है। जहाँ तक बेकारों की कुल संख्या का सम्बन्ध है, वह सेवा नियोजन कार्यालयों में अंकित संख्या से दुगुनी तो होगी ही।''[46] तब से लेकर आज तक देश की राजनीति और देश की अर्थनीति बेकारी का सार्थक हल नहीं निकाल पाई है और बेरोजगारी है, कि बढ़ती ही चली जा रही है। इस कारण भी युवाओं में अपराध, घृणा, अवसाद और हताशा फैल रही है। 7 अगस्त 1990 को तत्कालीन केन्द्र सरकार द्वारा लागू किये गए मण्डल आयोग के विरोध में आत्महत्या करने वाले सैकड़ों युवाओं की स्मृतियों के चिन्ह आज भी विद्यमान हैं। देश के राजनीतिक नेतृवर्ग द्वारा युवाओं की

शक्ति, मानसिकता और भावुकता का ऐसा दोहन किया गया कि युवा वर्ग में विद्रोह और आक्रोश की भावना पनपने लगी। नेताओं की उपेक्षा के शिकार युवाओं में मोहभंग की स्थिति पैदा हो गई। डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय मोहभंग से उपजी स्थितियों का आकलन करते हुए लिखते हैं कि "आज के नवयुवकों का आन्दोलन- राजनीतिज्ञ बिना राजनीति है, मसीहा बिना धर्म है। उन्हें बुद्ध, ईसा, मार्क्स, गाँधी आदि में विश्वास नहीं रह गया। उनकी दृष्टि में, 'The whole world needs a big wash, a big scrub down.' आज का नवयुवक, 'कामायनी' के मनु की भाँति, जीवन की सार्थकता खोकर उपलब्ध वस्तुओं से अपने जीवन के अभाव दूर करने की चेष्टा में रत है और तदनुकूल नये मूल्य स्थापित करने का प्रयास कर रहा है।"[47]

बाजारवाद की संस्कृति और आधुनिकता की अंधी दौड़ ने युवाओं को अपनी ओर सबसे ज्यादा आकृष्ट किया है। फैशन और ऐशोआराम की ढेरों वस्तुओं की विक्रेता बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए भारतीय युवा सबसे बड़ा उपभोक्ता वर्ग बन कर उभरा है। फैशन परस्ती के दौर में युवाओं ने संस्कृति और मर्यादा को एक तरफ रख दिया है। भूमण्डलीकरण के प्रभाव और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रायोजित त्योहारों- वैलेंटाइन्स डे और फ्रेण्डशिप डे जैसे आयातित सांस्कृतिक प्रभाव के कारण हर वर्ष मचने वाला हो हल्ला युवाओं की बदलती मानसिकता का परिचायक ही है।

इस प्रकार विवेच्य कालखण्ड में व्यवस्था से त्रस्त, शोषित और अंधकारमय भविष्य से भयभीत युवाओं के भीतर पनपता आक्रोश, घृणा, अवसाद और अपराधभाव, सांस्कृतिक संक्रमण के दौर में सबकुछ जल्द से जल्द पा लेने और शैक्षिक उपलब्धि को यथासंभव भौतिक उपलब्धि में परिवर्तित कर लेने की होड़ तथा इस लक्ष्य को पाने के लिए अपराध तक कर डालने की प्रवृत्ति पनपी है।

समाज और बच्चे :-

बच्चों का समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि किसी भी समाज और राष्ट्र का भविष्य बच्चों पर ही निर्भर रहता है। इसके अलावा बच्चों में परिवेश से सीखने की प्रवृत्ति भी अधिक होती है। आज के वैज्ञानिक और तकनीकी युग में शहरी बच्चों का जीवन भी उसी परिधि में सिमट गया है। परम्परागत और प्रचलित खेलों के स्थान पर वीडियों गेम, कम्प्यूटर और बाल क्लब आ गए हैं। ग्रामीण बच्चे आज भी अशिक्षा और कुपोषण से जूझ रहे हैं। अज्ञेय के 'शेखर' की तरह आज के बच्चे भी क्रान्तिकारी भूमिका में दिखते हैं। जिन बच्चों को विकास की

सही दिशा मिल जाती है वे तो अच्छी शिक्षा पा कर अपना भविष्य सँवार लेते हैं और जो बच्चे विघटित पारिवारिक परिवेश में पलते हैं, गरीबी और अशिक्षा के कारण भिक्षावृत्ति या छोटेमोटे अपराध करने लगते हैं, उनमें अपराध करने की प्रवृत्ति घर कर जाती है और वे आगे चलकर अधिकांशतः अपराधी बन जाते हैं। आधुनिकता के दौर में संयुक्त परिवारों के विघटन, परिवारों में बढ़ता तनाव, माता-पिता के झगड़े और समाज की कलुषता की अधिकता हो गई है और इसका प्रभाव सीधे बच्चों पर पड़ रहा है। अपने भविष्य के प्रति गैर जागरूक समाज, खुद में लगते इस घुन को नहीं देख पाता। इस विसंगति की ओर दृष्टिपात करते हुए नानी पालखीवाला लिखते हैं कि "शिशु मानव का निर्माता है। होनहार बिरवान के होत चिकने पात। आज के शिशु की जैसी शिक्षा-दीक्षा होगी, वैसा ही जीवन स्तर भावी भारत का होगा। यदि शिक्षा का शैशव ही पथ से भटक गया तो अतीत की भाँति विश्व पर संकट के काले बादल मँडराने लगेंगे। उसे बालक ध्रुव की भाँति घोर कष्ट झेलने पड़ेगें।"[48]

आज के समय में जिस प्रकार समाज और परिवार में विघटन पैदा हो रहा है। जनसंख्या, बेकारी और गरीबी है, इस कारण बच्चों में भी कई मानसिक विकार और अपराध पैदा हो रहे हैं। पर्यावरण असंतुलन और प्रदूषण सहित अन्य कारणों से शारीरिक विकलांग बच्चे हीनता और अपराध बोध से ग्रस्त जीवन जी रहे हैं। श्रीकृष्ण शर्मा का मत है कि "बच्चों को शिक्षा और उन्नति के बजाय समाज और परिवार की ओर से उदासीनता मिलती है, यही उदासीनता ही बच्चों को अपराध-कर्म की ओर प्रवृत्त करती है।"[49] और इस प्रकार समाज का हर छोटा बड़ा परिवर्तन बच्चों के जीवन को प्रभावित कर रहा है।

इस प्रकार विवेच्य कालखण्ड में राजनीति, अर्थ, धर्म और संस्कृति में जो बदलाव आए, उनके फलस्वरूप समाज में भी व्यापक बदलाव हुआ। सामाजिक भावना का ह्रास, परिवारों का विघटन, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में टकराव, युवाओं में अवसाद, घृणा, ईर्ष्या, अपराध व आक्रोश तथा बाल अपराध जैसे वृहद परिवर्तनों के अतिरिक्त तमाम अन्य बदलावों ने समाज के स्वरूप को ही परिवर्तित कर दिया।

(ड.) मनोवैज्ञानिक :-

मनोविज्ञान, मानसिक स्थितियों के, मनोविकृतियों के और मानव मन के अध्ययन का विज्ञान होता है। राजनीति, अर्थनीति, धर्म, संस्कृति और समाज में आने वाले बदलाव तथा

मानसिकता के मध्य अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होते हैं। राष्ट्रीयता और राष्ट्र प्रेम की मानसिकता में परिवर्तन हुआ और निजी स्वार्थ साधना की मानसिकता बनी जिस कारण राजनीति में भ्रष्टाचार, अपराध का समावेश हुआ। नैतिकता का पतन हुआ तो भौतिकता और बाजारवाद ने पैर पसारे, सामाजिक उत्तरदायित्व की मानसिकता बदलकर नितान्त वैयक्तिकवादी हो गयी तो समाज के ताने-बाने बिखर गए, पारिवारिक उत्तरदायित्व और आपसी समन्वय, समता और समभाव की मानसिकता बदली तो परिवारों का विघटन, आए दिन की कलह, मारपीट व पारिवारिक अदालतों में मुकदमों का बोझ बढ़ गया। समाज में अपराधी भी बढ़ गए। वैज्ञानिक युग के प्रभाव और तकनीकी शिक्षा के प्रसार ने परम्परागत मूल्यों को त्यागकर भौतिकतावाद, 'माडर्न कल्चर' और बाजारवाद को जन्म दिया जिसने किसानों को कृषि से, बुनकरों, हस्तशिल्पकारों और कलाकारों को उनकी परम्परागत विशिष्टताओं और कलाओं से विलग कर आधुनिकता की दौड़ में शामिल कर दिया। नगरों और महानगरों में बढ़ती भीड़, अर्थार्जन और सुख सुविधा के लिए भागते लोगों में इतना अधिक मानसिक दबाव है कि अशान्ति, अवसाद, आक्रोश, घृणा, अकेलापन, ऊब और घुटन जैसी मानसिक बीमारियाँ बढ़ती जा रहीं हैं। नव आधुनिक तकनीक के विस्तार ने मनोरोगियों की फौज खड़ी कर दी है। बदलती मानसिकता के कारण यौन अपराध भी बढ़ रहे हैं। तकनीकी विकास, पारिवारिक विघटन व संक्रमण, तनाव और कुण्ठा के कारण बदलती मानसिकता ने बलात्कार, अपहरण और हत्या जैसे अपराधों की संख्या में तेजी से वृद्धि की है।

मनोविश्लेषणवाद के जन्मदाता फ्रायड के अनुसार- मनुष्य की मूल प्रवृत्तिजन्य कामनाओं और बाह्य परिवेश के मध्य संघर्ष चलता रहता है। जब मनुष्य का अहं इस संघर्ष को संतुलित करने में असफल हो जाता है तब मनुष्य मानसिक रूप से असामान्य हो जाता है। यह असामान्यता समाज विरोधी आचरण के रूप में, यौन विकृति के रूप में, अपराध के रूप में या फिर मनोरोग के रूप में प्रकट होने लगती है। आज की परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि आन्तरिक शक्तियों, कामनाओं और बाह्य परिस्थितियों के मध्य संतुलन बिठा पाना कठिन है, इस कारण मानसिक विकृतियों, मनोरोगों और मानसिक कुण्ठाओं के साथ जीते तमाम लोग देखे जा सकते हैं। आज समाज में विभिन्न प्रकार के बढ़ते अपराधों और विद्रूपताओं में इनका योगदान कमतर नहीं है।

(च) साहित्यिक परिवेश :-

"साहित्यकार समाज का ही एक व्यक्ति होता है और समाज चाहता है कि वह उसकी

आवाज बने। यानि साहित्यकार समाज की आकांक्षाओं, स्वप्नों और संघर्षों को व्यक्त करे। समाज अपनी बहुत-सी समस्याओं को महसूस तो करता है, लेकिन इस तरह प्रस्तुत नहीं कर सकता कि एक आदमी की समस्याएँ सबकी समस्याओं के रूप में सामने आयें। साहित्यकार सबके अनुभवों को समेटकर उनमें एक व्यवस्था उत्पन्न करता है और उन्हें सबके अनुभवों के रूप में प्रस्तुत करता है। जो साहित्यकार इस तरह समाज की आवाज बन पाता है, वही समाज का साहित्यकार होता है।''[50] प्रो. मैनेजर पाण्डेय के इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि साहित्यकार को समय के सत्य को उजागर करना चाहिए और उसका परिवेश भी यथार्थ के निकट का होना चाहिए। निःसंदेह साहित्य की लोकप्रियता और पहचान इसी तथ्य पर टिकी हुई है। हिन्दी का आधुनिक कथा-साहित्य अपनी उत्पत्ति के बाद छोटे से अन्तराल में ही इसी कारण इतना लोकप्रिय हो सका है। साहित्यकार यथार्थ को जितनी निकटता से देखता है और उसे रचनाकर्म में उतारता है, वह उतना ही श्रेष्ठ और लोकप्रिय होता है। आज का साहित्यकार अपने भोगे हुए यथार्थ को साहित्य में उतारता है। सम्भव है, इसके कुछ अपवाद भी हों। साहित्य में नित नए 'वाद' और 'विमर्श' अवश्य ही साहित्य और साहित्यकारों को आपस में विभाजित कर रहे हैं। इस विभाजन को पालने पोसने में भी पूँजीवाद और राजनीतिक खेमेबन्दी का हाथ हो सकता है। उपभोक्तावाद, व्यावसायिकता और अर्थ की दौड़ ने साहित्य को भी नहीं छोड़ा है। लेखन और प्रकाशन में स्तरीय साहित्य की अपेक्षा धन का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। अधिकांश समाचार-पत्रों में भी पूँजीपतियों का स्वामित्व है। अच्छा साहित्य इतना महंगा हो गया है कि वह सामान्य व्यक्ति की पहुँच से दूर है। व्यावसायिकता ने पुराने मूल्यों और सिद्धान्तों को पीछे धकेल दिया है। नानी पालखीवाला के विचार यहाँ उल्लेखनीय हैं कि ''दुर्भाग्यवश आज अपने युग में हमने बुद्धिजीवी का मोल घटा डाला है और इस शब्द के मूल्य को मिट्टी में मिला दिया है। आज 'बुद्धिजीवी' का अर्थ बदल गया है आज 'बुद्धिजीवी' वह व्यक्ति है जो इतना चतुर एवं चालाक है कि भाँप सके कि रोटी का कौन सा भाग चिकना चुपड़ा है।''[51]

राजनीति और साहित्य के मध्य सम्बन्धों में भी बदलाव आया है। स्वाधीनता संग्राम और उसके बाद के दशकों में ढेरो ऐसे राजनीतिज्ञ थे जो ख्यातिलब्ध साहित्यकार भी थे। साहित्यिक गतिविधियों से राजनीति कोसों दूर रहती थी- ''हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशनों में राजनेता जिस भाव से सम्मिलित होते थे, वह कहीं दिखता ही नहीं। मामूली दरी पर पुरानी

चांदनी पर साहित्यकारों के बीच हाहा ठीठी करने के लिए मंत्री तक बैठ्ते थे और सारी राजनीति कुछ समय के लिए दरवाजे पर ही जूते के साथ ही उतारकर पैठ्ते थे।''[52] किन्तु आज राजनेता तो दूर, साहित्यकार और साहित्यिक गतिविधियों से जुड़े मंच/संस्थाएँ खुद ही राजनीति में इतना डूब गये हैं कि आए दिन की उठापटक, गहमा गहमी और वर्चस्व की लड़ाई सुनने को मिलती है। ऐसा लगता है कि अर्थनीति, राजनीति, धर्मनीति और समाज को रास्ता दिखाने वाला साहित्य आज खुद भीड़ में भटक गया है और पथ-प्रदर्शक तलाश रहा है।

देश की लगभग 67 प्रतिशत जनता आज भी पढ़ी-लिखी नहीं है। शिक्षितों में भी अपेक्षाकृत वह वर्ग बड़ा है जिसे स्तरीय साहित्य की अपेक्षा फूहड़ और तुक्कड़ साहित्य की अधिक दरकार रहती है। दूसरी ओर राजनीतिक लाभ लेने और विवादित विषय पर लेखन कर्म द्वारा ख्याति अर्जित करने का चलन भी आजकल जोरों पर है।

साहित्य को शिक्षा से अलग नहीं रखा जा सकता। शिक्षा का जैसा स्तर होगा वैसे ही साहित्य की मांग होगी। प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की दुर्दशा किसी से छिपी ही नहीं है। उच्च शिक्षा के केन्द्र भी बौद्धिकता से विलग हो गये हैं। ''आज हालात यह है कि अधिकांश विश्वविद्यालय या तो राजनीतिक सरगर्मियों के अखाड़े बनकर रह गये हैं या फिर डिग्रियाँ बाँटने वाली संस्था के रूप में कार्य कर रहे हैं। पाठ्यक्रमों की अव्यावहारिकता, प्रशासनिक व्यवस्था में राज्य सरकारों का हस्तक्षेप, फर्जी डिग्रियों की भरमार, शिक्षा सत्रों में विलम्ब, कार्य परिषदों एवं परीक्षा समितियों पर शिक्षा माफियाओं का बढ़ता शिकंजा, उस पर चौपट अर्थव्यवस्था तथा सरकारों की विवेकहीनता ने इन विश्वविद्यालयों को उनके उद्देश्य से पूरी तरह भटका दिया है। कहने को तो यहाँ विश्वविद्यालय अधिनियम परिनियमों के अनुकूल सारे काम किये जा रहे हैं पर सच्चाई यह है कि उच्च शिक्षा के स्तर में कोई गुणात्मक सुधार नहीं हो रहा है, उल्टे उच्च श्रेणी से उत्तीर्ण बेरोजगारों, स्नातकों, परास्नातकों की संख्या बढ़ती जा रही है।''[53] दूसरी ओर छात्र राजनीति में अपराधीकरण, धनबल, धोखाधड़ी और बाजारवाद (चुनावों के लिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा छात्रों को धन बाँटने के रूप में) के कारण छात्र संघों की स्वस्थ परम्परा भी दूषित हो गयी है। और इस प्रकार साहित्य की सेवा में लगने वाला सबसे बड़ा और प्रमुख केन्द्र ही साहित्य से दूर हो गया है।

'स्त्रीवाद' और 'दलितवाद' के नाम पर साहित्य और साहित्यकारों में राजनीतिक प्रभाव

ने भी साहित्य की निश्चलता और समानता की भावना को प्रभावित किया। बाबा विनोवा ने जिस तीसरी शक्ति को, अर्थात बुद्धिजीवी वर्ग को राजनीति से दूर रहकर उसे सही मार्ग दिखाने को कहा था, वही तीसरी शक्ति राजनीति में घुस गयी और इसके फलस्वरूप राजनीति और साहित्य दोनों की पुरानी प्रतिष्ठा शेष नहीं रह सकी।

आठवें दशक के बाद के युगीन परिदृश्य में कुछ मूलभूत तथ्य उभरकर सामने आते हैं। राजनीति में बढ़ता भ्रष्टाचार, अवसरवादिता, स्वार्थलिप्सा, राजनीति का अपराधीकरण और अपराध का राजनीतिकरण; लालफीताशाही का बढ़ता वर्चस्व, श्रृंखलाबद्ध भ्रष्टाचार, अराजकता, अनुशासनहीनता और गैरजिम्मेदारी, आए दिन के घोटाले, राष्ट्रीय भावना का ह्रास; धर्म, जाति व वर्ग के आधार पर भेदभाव की राजनीति के फलस्वरूप सामाजिक बिखराव, स्त्रियों पर बढ़ते अत्याचार, युवाओं की उपेक्षा, परम्परागत कृषि व्यवस्था व कृषि से जुड़े उद्योगों, कुटीर उद्योगों की उपेक्षा के फलस्वरूप बढ़ता पलायन, गरीबों की दुर्दशा, भौतिकता और यांत्रिकता के बढ़ते वर्चस्व के कारण विकसित होती बाजारू और पॉप संस्कृति; अच्छे साहित्य की उपेक्षा और फूहड़, तुक्कड़ व आयातित साहित्य की वृद्धि जैसे तमाम मूलभूत कारणों से व्यक्तियों में फैलते व्यवस्था विरोध, घृणा, अपराध, चिंता, अवसाद, दिशाहीनता और नैतिकता के अभाव जैसे अन्य कारण समूचे युगीन परिदृश्य में सर्वत्र दिखाई देते हैं।

सन्दर्भ

1. नानी पालखीवाला : हम भारत के लोग, 'भारत में लोकतंत्र का भविष्य', पृ. 45
2. कुलदीप नय्यर : दैनिक जागरण (कानपुर), 22 अगस्त 2005, 'आपात्काल के घाव', सम्पादकीय पृष्ठ
3. चक्रवर्ती राजगोपालाचारी : कारावास डायरी, 24 जनवरी 1922
4. सुनील : यह बर्बरता कहाँ छुपी थी, पृ. 10
5. सोमनाथ सप्रू : द पायनियर, 27 दिसम्बर 1990, सम्पादकीय पृष्ठ
6. वी.आर.कृष्ण अय्यर : पंचायतीराज व्यवस्था (संपा. देवेन्द्र उपाध्याय), 'पंचायतीराज-वास्तविकता या मृगमरीचिका', पृ. 100
7. वही, पृ. 98
8. रामदरश मिश्र : हिन्दी कहानी : अन्तरंग पहचान, 'नई कहानी : यथार्थ के विविध आयाम', पृ. 98
9. वही, पृ. 97
10. रवि राय : राष्ट्रीय सहारा, 21 अक्टूबर 2000, 'हर बड़े नेता के पास हजार करोड़ रुपये हैं', हस्तक्षेप विशेषांक
11. पवन वर्मा : राष्ट्रीय सहारा, 21 अक्टूबर 2000, हस्तक्षेप विशेषांक
12. डॉ.विद्यानिवास मिश्र : पीपल के बहाने, 'अर्थ और राजनीति', पृ. 28
13. डॉ.गिरिराज शाह : दंगे : क्यों और कैसे ?, 'राजनीति का भ्रष्ट आचारण', पृ. 8।
14. राजनाथ सिंह 'सूर्य' : दैनिक जागरण, 14 जुलाई 2005, 'तुष्टीकरण की क्षुद्र राजनीति', सम्पादकीय पृष्ठ
15. डॉ.रामजी मिश्र : धर्म और राजनीति, 'धर्म निरपेक्षता और सर्वधर्म समभाव, पृ. 77
16. जगमोहन : दैनिक जागरण, 01 सितम्बर 2005, 'लोकतंत्र की मौलिक कमजोरी', सम्पादकीय पृष्ठ
17. प्रेमलता : विधि व्यवस्था का यर्थाथ, 'भारतीय विधि व्यवस्था में संकट की स्थिति',पृ. 21
18. विश्वबन्धु गुप्त : राष्ट्रीय सहारा, 21 अक्टूबर 2000, 'हारने के लिए ही सही मगर लड़िये जरूर', हस्तक्षेप विशेषांक

19. बी.एन.किरपाल : सहारा समय, 21 जून 2003, 'पड़ताल' कालम

20. प्रेमलता : विधि व्यवस्था का यथार्थ, 'न्याय में विलम्ब से पनपती स्थितियाँ', पृ. 138

21. डॉ.एस.सुब्रह्मण्यम : पुलिस और मानवाधिकार, 'हिंसा : कारण और निदान', पृ. 44

22. वही, पृ.44

23. रमेश उपाध्याय : हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकार, 'भारत के कृषि संबंधों को समझना क्यों जरूरी है?', पृ. 85

24. देवेन्द्र शर्मा : राष्ट्रीय सहारा, 03 अगस्त 2002, 'शायद अब खुलेगी सरकार की आँख', हस्तक्षेप विशेषांक

25. बृजेश झा : राष्ट्रीय सहारा, 03 अगस्त 2002, 'डगमगाती अर्थव्यवस्था', हस्तक्षेप विशेषांक

26. नानी पालखीवाला : हम भारत के लोग, 'अप्रवर्तनीय के प्रति नमन', पृ. 29

27. डी.के.श्रीवास्तव : राष्ट्रीय सहारा, 09 जून 2001, 'अर्थव्यवस्था की मजबूती के लिए विनिवेश जरूरी है', हस्तक्षेप विशेषांक

28. आनंद दीपायन : राष्ट्रीय सहारा, 21 अक्टूबर 2000, 'गरीबों पर उदारीकरण की मार', पृ. 06

29. देवेन्द्र शर्मा : राष्ट्रीय सहारा, 21 अप्रैल 2001, 'अब कुछ और लोगों की छिनेगी रोटी', हस्तक्षेप विशेषांक

30. अरुण कुमार सूर्यवंशी : अमर उजाला, 29 मई 2003, 'प्रतिभा पलायन के जिम्मेदार कौन', पृ. 09

31. बलराम : आजकल, मई 2005, पृ. 42

32. डॉ.प्रमोद कुमार अग्रवाल : भारत के विकास की समस्याएँ और समाधान, पृ. 41

33. बी.टी.रणदिवे : हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकार (संपा. रमेश उपाध्याय), पृ. 24

34. हृदयनारायण दीक्षित : दैनिक जागरण, 25 फरवरी 2005, 'सांस्कृतिक हमले का नया रूप', सम्पादकीय पृष्ठ

35. सुधीश पचौरी : भूमण्डलीकरण और उत्तर सांस्कृतिक विमर्श, पृ. 17

36. विद्यानिवास मिश्र : पीपल के बहाने, 'धर्म ही बलि का बकरा क्यों?', पृ. 18

37. डॉ.रामजी मिश्र : धर्म और राजनीति, पृ. 68

38. के.एन.पणिक्कर : संस्कृति, चेतना, विचारधारा : एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, पृ. 36

39. एस.आर.गुप्त : आधुनिक परिवार समस्याएँ और संक्रमण, पृ. 17

40. मीरा कुमार : दैनिक जागरण, 09 सितम्बर 2005, पृ. 02

41. श्यामाचरण दुबे : विकास का समाजशास्त्र, 'सामाजिक विकास : मानवीय आवश्यकताएँ तथा जीवन की गुणवत्ता', पृ. 83

42. अनिल चमड़िया : राष्ट्रीय सहारा, 13 सितम्बर 2000, 'टिमटिमाते विकास की असलियत', सम्पादकीय पृष्ठ

43. सहारा समय, 07 जून 2003, 'पड़ताल' पृष्ठ का 'तथ्य पत्र' कालम

44. रमेश उपाध्याय : हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकार, पृ. 25

45. मृणाल पाण्डे : परिधि पर स्त्री, 'प्राक्कथन उर्फ हासिये पर मित्र संलाप', पृ. 06

46. नानी पालखीवाला : हम भारत के लोग, 'कराधान के पूरक अंश- केन्द्रीय बजट (1984-85), पृ. 359

47. डॉ.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, 'नया युग : नया परिवेश', पृ. 26

48. नानी पालखीवाला : हम भारत के लोग, 'राष्ट्र की दशा- चार असाध्य असफलताएँ',पृ07

49. श्रीकृष्ण शर्मा : भारतीय समाज और अपराध, पृ. 64

50. प्रो.मैनेजर पाण्डेय : हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकार, 'वर्तमान भारतीय समाज साहित्यकारों से क्या चाहता है', पृ. 16

51. नानी पालखीवाला : हम भारत के लोग, 'बुद्धिजीवी का विश्वासघात', पृ. 19

52. विद्यानिवास मिश्र : पीपल के बहाने, 'राजनीति कितनी छाये ?', पृ. 14

53. डॉ. सुरेश अवस्थी : दैनिक जागरण, 20 अगस्त 1995, 'अराजकता में आकण्ठ डूबे विश्वविद्यालय', रविवासरीय विशेषांक

अध्याय : तृतीय

आठवें दशक के बाद का कथा-साहित्य, कथाकार एवं उनकी कृतियाँ

[3]

आठवें दशक के बाद का कथा-साहित्य, प्रमुख कथाकार और उनकी कृतियाँ

पूर्ववर्ती अध्यायों में हिंदी के कथा-साहित्य के उद्भव से लेकर आठवें दशक की समाप्ति तक की विकास-यात्रा का सिंहावलोकन किया गया एवं नवें दशक के प्रारम्भ से अब तक के विविध परिदृश्य का एवं मानव-मूल्यों, जीवन-स्तर व विचारणा शक्ति में आए बदलावों को, उनके कारणों को जानने समझने और आजादी के बाद के वर्षो में जब तक आम जनता को आजादी का मतलब समझ में आता, उसे आजाद देश के नागरिक होने का लाभ मिल पाता, तब तक आर्थिक और राजनीतिक विप्लव ने देश की आबादी के बहुत बड़े हिस्से का जीवन दुष्कर और कष्टसाध्य बना दिया था। बेतहाशा बढ़ती महँगाई, आए दिन के घोटालों, अराजकता और भ्रष्टाचार ने अविश्वसनीयता, मोहभंग और विरोध को जन्म दिया। सीधे अर्थो में कहा जाए तो आठवें दशक की समाप्ति और नवें दशक के प्रारम्भ का कालखण्ड वह चरम बिंदु है जहाँ से व्यवस्था के प्रति विद्रोह, अनास्था, संघर्ष और टकराव का प्रारम्भ होता है। हड़तालियों ने बंदी और हड़ताल का झंडा बुलन्द किया, डकैतों ने बन्दूकें उठाईं और नक्सली व अलगाववादी अपने-अपने तरीके से विरोध करने एवं माँगें मनवाने के लिए तत्पर हो गए। लेकिन देश के शिक्षित वर्ग के लिए ये रास्ते नहीं थे, उसे तो अपनी लड़ाई कलम की ताकत से ही लड़नी थी। अपना विरोध भी लेखनी से ही प्रदर्शित करना था।

अब तक देश ने शिक्षा, विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में भी पर्याप्त प्रगति कर ली, गाँवों और शहरों में शिक्षा का, शिक्षित वर्ग का प्रतिशत बढ़ा, यातायात के साथ ही विज्ञान और प्रौद्योगिकी से जुड़े ढेरो मानवोपयोगी साधनों की भी वृद्धि हुई। सामाजिक, सांस्कृतिकऔर धार्मिक मूल्य भी बदलते चले गए। पंचायत प्रणाली के आगमन ने गाँवों के स्वरूप को बदल दिया; वर्ग वैषम्य ने जातीय और धार्मिक विद्रोह का रूप ग्रहण कर लिया। बदलाव नगरों में भी आया, जनसंख्या की बढ़ती दर, बेरोजगारी और पलायनवृत्ति ने नगरों में भी जीवन को दुरूह और दुष्कर बना दिया। सौन्दर्य प्रतियोगिताओं और विलासितापूर्ण वस्तुओं के महँगे बाजारों ने भौतिकतावाद को हवा दी। ऐसी परिस्थितियों में अविश्वास और मोहभंग होना, व्यवस्था के प्रति विद्रोह का जन्म लेना और अपराधों का बढ़ना स्वाभाविक है। अपने अंदर के वैचारिक कौतूहल को प्रकट करने के लिए, मानसिक आघातों और अन्तर्द्वन्द्व को प्रकट करने के लिए व्यवस्था के विद्रूपों, अराजकता, भ्रष्टाचार और अन्याय के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए शिक्षित वर्ग ने

कथा-साहित्य को सशक्त माध्यम बनाया क्योंकि सरसता, सुग्राह्यता, रुचि, व्यापकता और बेबाकी जैसे गुण साहित्य की दूसरी विधाओं में एकसाथ मिलना सम्भव नहीं।

आठवें दशक के बाद के सहित्यिक परिदृश्य में इसी कारण अनेक प्रतिभाशाली कथाकार उभरकर सामने आए। पुरानी पीढ़ी के कथाकारों ने भी नवयुग की मान्यताओं के प्रति आस्था प्रकट की और इस प्रकार नवीन कथ्य और शिल्प ने आठवें दशक के बाद के कथा-साहित्य को न केवल नया आयाम दिया, वरन् श्रेष्ठता के चरम-बिन्दु पर प्रतिष्ठापित भी किया। ढेरों उपन्यास और कहानी संग्रह देकर अपनी पहचान बनाने वाले साहित्यकारों के अलावा कई कथाकार ऐसे भी हैं जिनकी अत्यल्प किन्तु उत्कृष्ट साहित्य सर्जना हिन्दी के कथा-साहित्य की अमूल्य धरोहर है। निःसन्देह कई कथाकार ऐसे भी होगें, जिनकी रचनाएँ कतिपय कारणवश प्रकाशित नहीं हो सकी होंगी। प्रस्तुत अध्याय की विषय-सीमा की परिधि में रहते हुए ऐसे सभी ज्ञात-अज्ञात-अल्पज्ञात कथाकारों का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में कुछ साहित्यकारों के छूट जाने की भी संभावना है, लेकिन उन्हें छोड़ देने की मंशा नहीं रही। श्रेष्ठता-क्रम निर्धारित करने के बजाय जैसे-जैसे परिचय प्राप्त होते गए हैं, लिख दिए हैं। अध्ययन की सुलभता हेतु साहित्यकारों के संक्षिप्त परिचय को निम्नवत् तीन वर्गों में बाँटा गया है-

(अ) कहानी और कहानीकार

(आ) उपन्यास और उपन्यासकार

(इ) उपन्यासकार एवं कहानीकार व उनकी कृतियाँ

(अ) कहानी और कहानीकार :-

(1) रघुवीर सहाय :

जन्म-1929 ई., प्रतिष्ठित कवि, दो कहानी संग्रह प्रकाशित। कृतियाँ- (क)कहानी संग्रह- रास्ता इधर से है, जो आदमी हम बना रहे हैं (ख) कविता संग्रह- दूसरा सप्तक, आत्महत्या के विरुद्ध, हँसो-हँसो जल्दी हँसो, लोग भूल गए हैं, कुछ पते की चिट्ठियाँ (ग) अन्य- सीढ़ियों पर धूप में (विविधा), दिल्ली मेरा परदेस, लिखने का कारण, अर्थात (निबंध)।

(2) सुमित्रा कुमारी सिन्हा :

जन्म-1913 ई. शिक्षा- दसवीं, स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय योगदान, आकाशवाणी से नियमित रूप से सम्बद्ध रहीं। कहानी संग्रह- विहग, आशापर्व, बोलों के देवता, अचल सुहाग, वर्षगाँठ ।

(3) यशपाल बैद :

जन्म- 04 दिसम्बर 1936 ई. शिक्षा- एम. ए., पी-एच. डी. हिन्दी के चर्चित कथाकार, 1957 से लेखनरत। किसी भी आंदोलन से न जुड़कर स्वतंत्र रूप से निरंतर कहानी लेखन। कृतियाँ (क) कहानी संग्रह- आस बँध गई, सहयात्रा, पहली बरसी, जानेमन तथा अन्य कहानियाँ, सम्मान-अपमान, विशिष्ट कहानियाँ (ख) अन्य- एकांकी संकलन (सम्पादन) पुरस्कार- हरियाणा साहित्य अकादमी व अन्य साहित्यिक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत, सम्मानित।

(4) ब्रजेश्वर मदान :

जन्म- 20 अगस्त 1944 ई., कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- लेटर बक्स, बावजूद, सूली पर सूर्यास्त। पुरस्कार- 'सिनेमा-नया-सिनेमा' फिल्मी पत्रकारिता पर 1987 के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार, सम्प्रति स्वतंत्र लेखन एवं पत्रकारिता।

(5) रघुनन्दन त्रिवेदी :

जन्म- 17 जनवरी 1955 ई., शिक्षा- एम. ए. (हिन्दी) कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- यह ट्रेजडी क्यों हुई?, वह लड़की अभी जिन्दा है, हमारे शहर की भावी लोककथा (आ) अन्य- विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कई कविताएँ प्रकाशित। सम्मान- राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा 'रांगेय राघव' पुरस्कार, अंतरीप सम्मान।

(6) उदय प्रकाश :

जन्म- 1952 ई. को सीतापुर गाँव, शहडोल (म. प्र.) में, शिक्षा- सागर विश्वविद्यालय और जे. एन. यू. दिल्ली में। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- दरियाई घोड़ा, तिरिछ, और अंत में प्रार्थना, पॉल गोमरा का स्कूटर, पीली छतरी वाली लड़की (आ) अन्य- सुनो कारीगर, अबूतर-कबूतर, रात में हारमोनियम (कविता संग्रह), ईश्वर की आँख (निबन्ध लेख संग्रह)। सम्प्रति- स्वतंत्र लेखन व फिल्म निर्माण।

(7) डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय :

हिन्दी के प्रतिष्ठित कवि, कथाकार, नाटककार और समीक्षक। कृतियाँ-(अ) कहानी संग्रह- बड़ी मछली, एक और क्रान्ति, स्वप्न और सत्य, उलझन (आ) अन्य- आन्जनेय, कार्तिकेय, उत्तर हल्दीघाटी, एक अधूरा अश्वमेध (खण्डकाव्य); श्वेत शिखरों पर धूप बिम्ब, इंद्रधनुष का आठवाँ रंग, श्रमधारा, आन्तरिका, मेरे भारत मेरे देश (काव्य संग्रह); आदि सम्राट, सिंहासन, छत्रपति शिवाजी,

राग से विराग तक (नाटक); राजस्थानी काव्य में शृंगार-भावना (शोध प्रबन्ध); राजस्थानी काव्य साधना : तब और अब (समीक्षा); गीता अनुशीलन, मानस मनीषा।

(8) जगदीश चतुर्वेदी :

जन्म- 13 जनवरी 1933 को ग्वालियर में, शिक्षा- एम. ए.।कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- जीवन का संघर्ष, अंतराल के दो छोर, निहंग, अँधेरे का आदमी, विवर्त, चर्चित कहानियाँ, प्रेम सम्बन्धों की कहानियाँ, आदिम गंध (आ) अन्य- इतिहासहन्ता (कविता संग्रह); सूर्यपुत्र (मिथक काव्य); महाप्रस्थान (बल्गारियाई कवि ख्रिस्तोबोतेव की कविताओं का अनुवाद), पुरस्कार/सम्मान- अखिल भारतीय सूर पुरस्कार, उत्तर प्रदेश का विशिष्ट पुरस्कार, हिन्दी अकादमी, दिल्ली व प्रियदर्शिनी अकादमी, बम्बई तथा बल्गारिया लेखक संघ की ओर से सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान- पे गॉ सस स्वर्ण पदक से सम्मानित।

(9) मत्स्येन्द्र शुक्ल :

जन्म- प्रतापगढ़ जनपद के एक छोटे से गाँव में। शिक्षा- इलाहाबाद और सागर विश्वविद्यालय में। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- ये लोग, झोपड़े, असंतुष्ट, परिस्थितियाँ, संकल्प, सम्बन्ध, रजवंती (आ) अन्य- आरम्भ के शब्द, बादल घिरने तक, कहाँ हैं वे लोग, अँधेरी रात का सूरज, कुछ दिन जंगल में, उस तरफ देखते रहो, हवाएँ दे रहीं सन्देश, शब्दों को समझना जरूरी है (कविता संग्रह)।

(10) डॉ. किशोर काबरा :

जन्म- 26 सितम्बर 1934 को मन्दसौर (म. प्र.) में। मूलत : कवि होते हुए भी काबरा जी ने बडी सशक्त प्रभावपूर्ण और जीवन्त लघुकथाएँ लिखी हैं। कृतियाँ- (अ) लघुकथा- एक चुटकी आसमान, एक टुकड़ा जमीन (आ) अन्य- परिताप के पाँच क्षण, धनुषभंग, नरो वा कुंजरो उत्तर महाभारतम् (प्रबन्धकाव्य); जलते पनघट : बुझते मरघट, सारथी, मेरे रथ को लौटा ले, टूटा हुआ शहर, साले की कृपा, ऋतुमती है व्यास (काव्य संग्रह), इनके अतिरिक्त ढेरों शोध ग्रंथ, बाल साहित्य अनूदित कृतियाँ और पाठ्य पुस्तकें।

(11) बलराम :

जन्म- 15 नवम्बर 1951 को भाऊपुर, बिठूर (कानपुर)।शिक्षा-कानपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम. ए.। 1976 में दैनिक 'आज' में उपसंपादक, फिर संपादक। साप्ताहिक 'करंट' और 'रविवार' के संवाददाता। 1979 में 'सारिका' के उपसम्पादक और 1986 में 'नवभारत टाइम्स'

से जुड़ गए। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- कलम हुए हाथ, मृगजल, आवागमन, बलराम की कहानियाँ (आ) अन्य- औरत की पीठ पर (यात्रावृत्त); अपने आसपास (भेंटवार्ता); समकालीन हिन्दी कहानी (समीक्षा)।

(12) डॉ. उर्मिला शिरीष :

जन्म- 19 अप्रैल 1959, शिक्षा- एम. ए., पी-एच. डी., हिन्दी की सहायक प्राध्यापिका। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- वे कौन थे, मुआवजा, केंचुली, सहमा हुआ कल, शहर में अकेली लड़की (आ) अन्य- धूप की स्याही (संस्मरण), खुशबू (सम्पादन- कहानी संग्रह), सृजन यात्रा गोविन्द मिश्र (सम्पादन), पुरस्कार- समर साहित्य पुरस्कार, करवट कला परिषद द्वारा 'रत्न भारती' पुरस्कार एवं अभिनव कला परिषद् द्वारा 'शब्द शिल्पी' सम्मान।

(13) पुष्कर द्विवेदी :

जन्म- 30 अगस्त, शिक्षा- एल. एल. बी. पत्रकारिता में डिप्लोमा। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- अतीत होता भविष्य, सबसे बड़ी पूँजी (लघुकथाएँ); कलियुग, रिश्ते गुलाब नहीं होते, दिशाएँ (आ) अन्य- कथाघाट (द्विमासिक), ढला एक दिन और (कविता संग्रह), दैनिक देशधर्म, दिन-रात, इटावा मेल, प्यार की दुनिया (पत्रिकाएँ) का सम्पादन। पुरस्कार- पलाश कहानी प्रतियोगिता, गार्गी संस्थान, लखनऊ व गृहलक्ष्मी (डायमंड) आदि संस्थाओं एवं उ. प्र. व उड़ीसा के राज्यपाल द्वारा सम्मानित।

(14) मालती जोशी :

महाराष्ट्रियन परिवार में जन्म। शिक्षा-दीक्षा हिन्दी में और हिन्दी में ही एम. ए.। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- पाषाण युग, मध्यांतर, समर्पण का सुख, विश्वास गाथा, पराजय, सहचारिणी, एक घर सपनों का, पटाक्षेप, राग-विराग, मन न भये दस बीस, शोभा यात्रा, मालती जोशी की कहानियाँ, आखिरी शर्त, मोरी रंग दी चुनरिया, रहिमन धागा प्रेम का, 10 प्रतिनिधि कहानियाँ, औरत एक रात है, पिया पीर न जानी, शापित शैशव तथा अन्य कहानियाँ, अंतिम संक्षेप, बोल री कठपुतली (आ) अन्य- पाषाण परिपूर्ति (मराठी); पुरस्कार- महाराष्ट्र राज्य का पुरस्कार।

(15) आलमशाह खान :

जन्म- 31 मार्च 1936 को उदयपुर में। शिक्षा- एम. ए., पी-एच. डी.। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- परायी प्यास का सफर ,किराए की कोख, एक और सीता, एक गधे की जनम

कुंडली, साँसो का रेवड़ (आ) अन्य- राजस्थानी वचनिकाएँ : वंश भाष्कर : एक अध्ययन, मीराः लोक-तात्त्विक अध्ययन (सम्पादित)। 'किराए की कोख' और 'पराई प्यास का सफर' कहानी पर टेली फिल्म निर्मित।

(16) अशोक लव :

हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं- लघुकथा, कहानी, कविता, साक्षात्कार, आलोचना आदि में सक्रिय लेखन। रचनाएँ हिन्दी की प्रमुख पत्रिकाओं और राष्ट्रीय स्तर के पत्रों में प्रकाशित। लघुकथा संग्रह 'सलाम दिल्ली' और 'पत्थरों से बँधे पंख' चर्चित हैं। विभिन्न साहित्यकारों का साक्षात्कार और 'टूटते चक्रव्यूह' काव्य संग्रह का सम्पादन। पत्रकारिता और शैक्षिक-सामाजिक संस्थाओं से सम्बद्ध। पच्चीस से अधिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

(17) नीरजा माधव :

जन्म- 15 मार्च 1962 को जौनपुर जिले के कोतवालपुर (सरेमू) गाँव में। शिक्षा- एम. ए. (अंग्रेजी); पी-एच. डी.।कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- चिटके आकाश का सूरज, अभी ठहरो अन्धी सदी (आ) अन्य- सैकड़ों कविताएँ, कहानियाँ, नाट्य आलेख, निबन्ध और उपन्यास अभी अप्रकाशित।

(18) डॉ. रामकुमार तिवारी :

जन्म- 10 जुलाई 1956 को मधुकरपुर (बोकारो) में। शिक्षा- एम. ए. (भूगोल); पी-एच. डी.।कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- रद्दी कागज (नागपुरी कहानियों को हिन्दी में प्रवेश दिलाता पहला कथा संग्रह); झारखण्ड की श्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ भाग एक व दो, शिखंडी का युद्ध।

(19) विश्वमोहन :

जन्म- 15 फरवरी 1949 को मधुबनी (बिहार) में। शिक्षा- औद्योगिक अभियंत्रण में परास्नातक, व्यावसायिक प्रतिष्ठान से जीविकोपार्जन। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- गाँधी की एक और मौत, दुर्गा बनी रुक्मिणी, खंभे खामोश हैं, खजुराहो का खारा पानी, पोरबंदर में सिकंदर (आ) अन्य- सन्नाटे की धूप, इन्हें मत तोड़ो, उकटा पैंची (काव्य संग्रह)

(20) डॉ. उषा माहेश्वरी :

जन्म- 11 सितम्बर 1955 को जोधपुर में। शिक्षा- एम. ए., पी-एच. डी.। कहानियाँ, कविताएँ, लघुकथाएँ, नाटक, लेख, समीक्षा आदि पत्र-पत्रिकाओं तथा आकाशवाणी में प्रकाशित। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- सुबह की धूप (वर्ष 1990-91 में राजस्थान साहित्य अकादमी के

'सुमनेश जोशी' पुरस्कार से सम्मानित) सपना बहू का (आ) अन्य- 'मंगल कामना' मासिक, 'अभयदीप' व 'कोरा कागज' साप्ताहिक का अंशकालीन सम्पादन, खो गई वह लड़की (कविता संग्रह); जलाल (नाटक)।

(21) विपिन बिहारी :

जन्म- 02 जनवरी 1965 को पंचमहला, गया। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- अपना मकान, पुनर्वास, आधे पर अंत, राजमार्ग पर गोलीकाण्ड, चील।

(22) महेश दर्पण :

जन्म- 01 जुलाई 1956 को तोतारानी (धर्मशाला) में। शिक्षा- एम. ए. (हिन्दी)। अब तक छह कहानी संग्रह और 12 सम्पादित पुस्तकें प्रकाशित, सारिका, दिनमान और टाइम्स समूह के सांध्य दैनिक में पत्रकारिता। पुरस्कार- पुश्किन सम्मान (मास्को), हिन्दी कहानी के इतिहास पर शोधरत।

(23) सतीश जायसवाल :

जन्म- 17 जून 1942 कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- जाने किस बन्दरगाह पर, धूप-ताप, कहाँ से कहाँ।

(24) हरि भटनागर :

जन्म- 06 अप्रैल 1955 कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- सगीर और उसकी बस्ती के लोग, नाम में क्या रखा है, बिल्ली नहीं दीवार। पुरस्कार- श्रीकांत वर्मा पुरस्कार, दुष्यंत कुमार पुरस्कार, वागेश्वरी पुरस्कार, रूस का अंतरराष्ट्रीय 'पुश्किन' पुरस्कार। उर्दू, मलयालम, पंजाबी, अंग्रेजी और रूसी में कहानियाँ अनूदित, 'साक्षात्कार' का सम्पादन।

(25) ओमप्रकाश वाल्मीकि :

जन्म- 30 जून 1950 बरला (मुजफ्फरनगर)। शिक्षा- एम. ए.। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- सलाम, सदियों का संताप, बस्स! बहुत हो चुका। (आ) अन्य- जूठन (आत्मकथा), अनेक पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ, लेख व कहानियाँ प्रकाशित।

(26) उषा महाजन :

जन्म- 30 सितम्बर 1948 को देवरिया (उ. प्र.) में। शिक्षा- इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- और सावित्री ने कहा, तीन अन्य कहानी संग्रह प्रकाशित। (आ) अन्य- खुशवंत सिंह जिन्हें मैंने जाना (संस्मरण), अंग्रेजी की कई पुस्तकों का

हिन्दी में अनुवाद, के. के. बिड़ला फाउण्डेशन की फेलोशिप के अंतर्गत 'भारत के शहरी समाज में दाम्पत्य संबंधों के बदलते मूल्य' नाम से प्रकाशित।

(26) हृषीकेश सुलभ :

जन्म- 1955, लहेजी गाँव, सिवान (बिहार)।कृतियाँ-(अ) कहानी संग्रह- पथर कथ, वध स्थल से छलांग (आ) अन्य- अमली (नाटक), माटीगाड़ी (मृच्छकटिकम की पुनर्रचना), रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' का नाट्यांतरण।

(28) राजेश जोशी :

जन्म- 18 जुलाई 1946 को नरसिंहगढ़ में। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- सोमवार और अन्य कहानियाँ, समरगाथा, एक दिन बोलेंगे पेड़, मिट्टी का चेहरा, नेपथ्य में हँसी (आ) अन्य- जादू-जंगल, अच्छे आदमी, टंकारा का गाना (नाटक); फिल्मों की पटकथा लेखन, अभिनय और अनुवाद। सम्मान- गजानन माधव मुक्तिबोध पुरस्कार, माखनलाल चतुर्वेदी पुरस्कार, श्रीकांत वर्मा स्मृति सम्मान, शमशेर सम्मान। 'नया पथ' का सम्पादन।

(29) नवनीत मिश्र :

जन्म- 1947, लखनऊ में। शिक्षा- स्नातक लखनऊ विश्वविद्यालय से। कृतियाँ (अ) कहानी संग्रह- मणियाँ और जख्म, मैंने कुछ नहीं देखा, जो नहीं कहा गया।

(30) संतोष दीक्षित :

जन्म- 10 सितम्बर 1959 को भागलपुर में। कृतियाँ- (अ)कहानी संग्रह- आखेट, बुलडोजर और दीमक, शहर, लछिमिनिया, ललस (आ) अन्य- तीन व्यंग्य संग्रह।

(31) विभु कुमार :

जन्म- सन् 1940, पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग दुर्गा महाविद्यालय, हिन्दी अध यन मण्डल पं0 रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर। समकालीन रंगमंच में विशेष रुचि। तीन कथा संग्रह और छह नाटक प्रकाशित।

(32) हसन जमाल :

जन्म- 21 अगस्त 1942, जोधपुर। चार कथा संग्रह प्रकाशित। 'तीसरा सफर' को रांगेय राघव पुरस्कार, तिमाही 'शेष' का सम्पादन।

(33) दीपक शर्मा :

जन्म- 30 नवम्बर 1946। क्रिश्चियन कालेज, लखनऊ में रीडर (अंग्रेजी)।कृतियाँ- (अ)

कहानी संग्रह- हिंसाभास, दुर्ग भेंट, उत्तरजीवी, बवंडर, रणमार्ग आदि।

(34) आदित्य नारायण शुक्ल :

जन्म- 25 अप्रैल 1950 को ग्राम तुलसी, बिलासपुर (म. प्र.) में। शिक्षा- एम. ए. (राजनीति विज्ञान व इतिहास)।कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- प्रधानमंत्री की प्रेमिका, अक्टूबर 1975 में पहली कहानी 'प्रणयक्षुधा' मुक्ता में छपी। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित।

(35) अचला नागर :

लखनऊ में जन्म। चर्चित और सुपरिचित रंगकर्मी, निर्देशिका, कहानीकार और साहित्यकार। शिक्षा- बी. एस. सी., एम. ए, पी-एच. डी.। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- नायक खलनायक, बोल मेरी मछली। ढेरों फिल्मों एवं दूरदर्शन धारावाहिक का लेखन, अभिनय एवं निर्देशन। पुरस्कार- हिंदी संस्थान, फिल्म फेयर अवार्ड, आशीर्वाद, बलराज साहनी अवार्ड, अप्ट्रान अवार्ड, उत्तर प्रदेश फिल्म जनर्लिस्ट अवार्ड, सलाम बाम्बे अवार्ड आदि।

(36) क्षमा शर्मा :

जन्म- अक्टूबर 1955। शिक्षा- एम. ए., पत्रकरिता में डिप्लोमा।कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- काला कानून, कस्बे की लड़की, घर तथा अन्य कहानियाँ, थैंक्यू सद्दाम हुसैन (आ) अन्य- दूसरा पाठ, एक झूठी कहानी (बाल उपन्यास), मोबाइल (उपन्यास), पर्यावरण एवं महिलाओं पर एक हजार से अधिक लेख प्रकाशित।

(37) कैलास बनवासी :

जन्म- 10 मार्च 1965, शिक्षा- एम. ए. (अंग्रेजी साहित्य)।कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- लक्ष्य तथा अन्य कहानियाँ, बाजार में रामधन। सम्मान- प्रथम श्याम व्यास पुरस्कार- 1997, दैनिक भाष्कर द्वारा आयोजित रचना-पर्व में कहानी पुरस्कृत।

(38) सरयू शर्मा :

जन्म- 25 अप्रैल 1949 शिक्षा- एम. ए. दिल्ली विश्वविद्यालय से। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- कितनी बार, का घर सबसे न्यारा।

(39) शिवकुमार शिव : जन्म- 13 जुलाई 1952। शिक्षा- स्नातक। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- देहदान।

(40) सारा राय :

जन्म- 15 सितम्बर 1956 । शिक्षा- एम. ए. (अंग्रेजी)।कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह - अबाबील की उड़ान।

(41) नीलाक्षी सिंह :

जन्म- 17 मार्च 1968, शिक्षा- बी. ए. (अर्थशास्त्र), भारतीय स्टेट बैंक में कार्यरत। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- परिन्दे का इन्तजार सा कुछ....., विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित। पुरस्कार- साहित्य अकादमी का युवा पुरस्कार, कथा सम्मान, रमाकांत स्मृति कहानी पुरस्कार, बिहार सरकार का पुरस्कार।

(42) संजय खाती :

जन्म- 8 अप्रैल 1962, अल्मोड़ा में। शिक्षा- एम. ए. (हिन्दी), कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- पिंटी का साबुन, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित।

(43) बादशाह हुसैन रिजवी :

जन्म- 01 अगस्त 1937, कस्बा हल्लौर (सिद्वार्थ नगर) में, कहानी संग्रह- टूटता हुआ भय, पीड़ा गनेसिया की।

(44) सुकेश साहनी :

जन्म- 05 सितम्बर 1956, लखनऊ।शिक्षा- एम. एस. सी. (जियोलॉजी), डी. आई. आई. टी. (एलाइड़ हाइड्रोलॉजी)।कहानी संग्रह- डरे हुये लोग (लघु कथाएँ)। पंजाबी, अंग्रेजी व गुजराती में भी प्रकाशित।

(45) अर्चना वर्मा :

जन्म- 06 अप्रैल 1946। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- स्थगित। (आ) अन्य- कुछ दूर तक, लौटा है विजेता (कविता संग्रह)

(46) अशोक शुक्ल :

जन्म- 16 अक्टूबर 1956 को जबलपुर में। शिक्षा- आयुर्वेद स्नातक तथा अर्थशास्त्र में स्नातकोत्तर। कहानी संग्रह- आगमन, कुछ कहानियों का देशी-विदेशी भाषाओं में अनुवाद। कहानी 'दौड़' पर फिल्म निर्माण।

(47) मधु कांकरिया :

जन्म- 23 मार्च 1957, शिक्षा- एम. ए. (अर्थशास्त्र)।कृतियाँ- कहानी संग्रह- अंतहीन,

मरुस्थल, बीतते हुए। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित।

(47) दूर्वा सहाय :

जन्म- 16 दिसम्बर 1962, शिक्षा- स्नातक, रफ्तार (कथा संग्रह) के अलावा पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित।

(48) मनीषा कुलश्रेष्ठ :

जन्म- 26 अगस्त 1967 को जोधपुर में। शिक्षा- एम. ए. (हिन्दी), एम. फिल। कहानियाँ व लेख कई पत्रिकाओं में प्रकाशित।'बौनी होती परछाई' पहला कहानी संग्रह। सम्मान- राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा 1989 में युवा साहित्यकार सम्मान, अखिल भारतीय युवा कहानी प्रतियोगिता-2001 (कथाक्रम द्वारा आयोजित) में विशेष पुरस्कार।

(49) वीरेन्द्र मेहन्दीरत्ता :

लम्बे अर्से से कहानी लेखन में सक्रिय पंजाब के शिरोमणि हिन्दी साहित्यकार सम्मान एवं उत्तर प्रदेश के सौहार्द सम्मान से सम्मानित।

(50) डॉ. ऋता शुक्ला :

जन्म- 14 नवम्बर 1950 को देहरी-ऑन-सॉल में। शिक्षा- एम. ए. (हिन्दी), पी-एच. डी., 1975 से कहानी लेखन। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- क्रौंचवध तथा अन्य कहानियाँ, विजेता। पुरस्कार- भारतीय ज्ञानपीठ की नई पीढ़ी कथा-प्रतियोगिता का प्रथम पुरस्कार (1984)

(51) अशोक आत्रेय :

युवा पीढ़ी के सशक्त कथाकार, देश की जानी-मानी पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ, कविताएँ व लेख प्रकाशित। कला समीक्षक, पत्रकारिता, साक्षरता, सम्प्रेषण और समाजकार्य से जुड़े रहे। टाइम लाइफ बुक्स व वाइस ऑफ अमेरिका से सम्बद्ध रहे। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- मेरे पिता की विजय, उदाहरण के लिए (आ) अन्य- टाइम फीवर (मोनोग्राफ); अबूझमाड़ (लम्बी कविता); लंगड़ा घोड़ा कुबड़ा राजा (बाल नाटक); धरती का स्वर्ग (लघु उपन्यास); हाँ पक्ष ना पक्ष (लघु नाटक)

(52) सुरेश उनियाल :

जन्म- 04 फरवरी 1947, देहरादून में। शिक्षा- एम. एस. सी. (गणित), एम. ए. (हिन्दी), कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग कोर्स। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- दरअसल, यह कल्पनालोक नहीं, एक अभियान और (सम्पादित कहानी संग्रह) (आ) अन्य- भारतीय कलाचित्र संकलन (अनुवाद),

श्री माँ (अनुवाद), अंतरिक्ष का वरदान (अनुवाद); हिमाचल टाइम्स, मुक्त धारा, यूनेस्को कुरियर एवं सारिका में सम्पादन सहयोग।

(53) ज्ञानरंजन :

जन्म- 21 नवम्बर 1936, अकोला (महाराष्ट्र) में। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- फेन्स के इधर और उधर, यात्रा, सपना नहीं, क्षणजीवी (आ) अन्य- साहित्यिक पत्रिका 'पहल' का सम्पादन, प्रकाशन; जनवादी नाटकों का मंचन और प्रगतिशील साहित्यिक गतिविधियों में हिस्सेदारी; विविध भाषाओं में कहानियों का अनुवाद।

(54) अभिनव ओझा :

जन्म- 31 मई 1963, प्रयाग में। शिक्षा- इलाहाबाद विश्वविद्यालय से, गुरुकुल अकादमी और शिवार्पण सेवा सदन से जुड़े हुए। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित। वागर्थ में 'अच्छी हिन्दी' कॉलम का नियमित लेखन। 'नीलामघर' पहला कहानी संग्रह। व दो काव्य कृतियाँ प्रकाशित। आपके उपन्यासों में ऐतिहासिक, सामाजिक आंचलिक, प्रागैतिहासिक कथाभूमि प्रस्तुत की गई है।

(55) कामेश्वर पाण्डेय :

जन्म- 19 जनवरी 1961, विलासपुर (छ.ग.) शिक्षा- एम.ए. (हिन्दी), बी.जे.एम.सी.। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ कहानियाँ एवं लेखों का सतत् प्रकाशन एवं आकाशवाणी से प्रसारण। 'धूम ज्योति', 'नये मुहावरे' और 'समकालीन कविता' प्रारम्भिक काव्य संग्रह। एस.ई.सी.एल., कुसुमंडा क्षेत्र में वरिष्ठ अनुवादक (राजभाषा) के पद पर कार्यरत।

(56) नरेन्द्र अनिकेत :

जन्म- 12 अप्रैल 1967, समस्तीपुर (बिहार) में। शिक्षा-एम.ए. (हिन्दी), विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ और विविध विषयों पर आलेख प्रकाशित। दैनिक भास्कर (समाचार पत्र) से सम्बद्ध।

(57) मनोज रूपड़ा :

जन्म- 16 दिसम्बर 1963, कृतियाँ- दफन तथा अन्य कहनियाँ (कहानी संग्रह) तथा कला की विभिन्न विधाओं पर स्फुट लेख प्रकाशित।

(58) सन्तोष तिवारी :

जन्म- 2 नवम्बर 1958, कानपुर (उ.प्र.) में। शिक्षा- स्नातक (कानपुर विश्वविद्यालय से)

कृतियाँ- कहानी, धर्मयुग, रविवार, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, सारिका, प्रतिमान आदि पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ और आलेख प्रकाशित। 'मिट्टी से धूप' पहला कहानी संग्रह।

(59) महावीर 'राजी' :

जन्म- 1952, कोलकाता के एक उपनगरीय कस्बे में। शिक्षा- बी.काम., एल.एल.बी. कृतित्त्व- हंस, कथादेश, वागर्थ सहित विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें कहानियाँ प्रकाशित।

(60) नवीन सागर :

जन्म- नवम्बर 1948, सागर (म.प्र.) में। कुछ कहानियाँ और कविताएँ प्रकाशित। मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी (भोपाल) में सेवारत रहे।

(61) श्रीनाथ :

जन्म- 5 अगस्त 1940, कानपुर (उ.प्र.) में। शिक्षा- हाईस्कूल। कृतियाँ- जोंक, मुक्तिपथ (कहानी संग्रह)।

(62) कुणाल सिंह :

जन्म- 22 फरवरी 1980 को कोलकाता के समीपवर्ती एक गाँव में। शिक्षा- एम.ए. (हिन्दी)। कृतित्व- विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ और कविताएँ प्रकाशित।

(63) गौरीनाथ :

जन्म- मार्च 1969, सुपौल (बिहार) कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- नाच के बाहर, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कई कहानियाँ प्रकाशित। 'हंस' के सहायक सम्पादक, 'अन्तिका' (मैथिली त्रैमासिक) के सम्पादक। सम्मान- हिन्दी अकादमी, दिल्ली का कृति सम्मान।

(64) पैमिला मानसी :

हिन्दी और अंग्रेजी की चर्चित कथा लेखिका। अंग्रेजी और दर्शनशास्त्र से एम.ए. करने के बाद एस.पी. मुखर्जी कालेज, दिल्ली में अध्यापन। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कई कहानियाँ प्रकाशित।

(65) डॉ. शिशिर पाण्डेय :

पशु चिकित्सा एवं पशुपालन विज्ञान में स्नातक। प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में अनेक कहानियाँ और व्यंग्य प्रकाशित।

(66) सैली बलजीत :

पंजाब के सुपरिचित कथाकार। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- अपनी-अपनी दिशाएँ, गीली

मिट्टी के खिलौने, धूप में नंगे पाँव (सम्पादन)। कुछ कहानियाँ गुजराती और पंजाबी भाषाओं में अनूदित। सम्मान- पंजाब हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित।

(67) धनेश्वर प्रसाद :

सुपरिचित कथाकार। सौ से अधिक रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। 'बहकते पथ भटकती छाया' शीर्षक से एक उपन्यास प्रकाशित।

(68) कन्हैयालाल गाँधी :

प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री, राजनयिक सेवाओं से सम्बद्ध, भूतपूर्व अतिरिक्त शिक्षा निदेशक, अपने समय के लोकप्रिय कथाकार और शिक्षा से सम्बन्धित विषयों के विद्वान। कई कहानियाँ प्रकाशित और विभिन्न देशी-विदेशी भाषाओं में अनूदित।

(69) विश्वजीत :

जन्म- 1935, देवरिया (उ.प्र.)। शिक्षा- एम.ए. (हिन्दी भाषा विज्ञान), पी-एच.डी., कृतियाँ- करमजली (कहानी संग्रह) सहित विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहनियाँ प्रकाशित।

(70) महेश कटारे :

जन्म- 1948, बिल्हौरी, ग्वालियर (म.प्र.)। शिक्षा- तीन विषयों में स्नातकोत्तर उपाधि कृतियाँ- कहानी संग्रह- समर शेष है, इतिकथा- अथकथा।

(71) सृंजय :

जन्म- 25 जनवरी 1961, भोजपुर (बिहार) कृतित्व- विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ, फीचर, व्यंग्य व लघुकथाएँ प्रकाशित, दूरसंचार जिला अभियंता, आसनसोल के अन्तर्गत सेवारत।

(72) कविता :

जन्म- 15 अगस्त 1973, मुजफ्फरपुर (बिहार)। शिक्षा- स्नातकोत्तर (हिंदी)। कृतित्व- मेरी नाप के कपड़े (कहानी संग्रह) सहित देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ, कविताएँ, लेख व समीक्षाएँ प्रकाशित।

(73) अवधेश प्रीत :

जन्म- 13 जनवरी, 1958, शिक्षा- एम.ए. (हिन्दी), 'दैनिक हिन्दुस्तान (पटना) में वरिष्ठ उप सम्पादक। सम्मान- विजय वर्मा कथा सम्मान।

(74) ओमा शर्मा :

जन्म- 11 जनवरी 1963, शिक्षा- एम.फिल. (अर्थशास्त्र)।कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- भविष्य दृष्टा (आ) अन्य- साहित्य का समकोण (गद्य संग्रह), वो गुजरा जमाना (आस्ट्रियाई लेखक स्टीफन स्वईग की आत्मकथा का हिंदी अनुवाद)।

(75) पंकज मित्र :

जन्म- 15 जनवरी 1965, शिक्षा- एम.ए. (अंग्रेजी)। कृतित्व- क्विज़मास्टर और अन्य कहानियाँ (कहानी संग्रह), आकाशवाणी, हजारीबाग में प्रसारण अधिकारी, एक लघु उपन्यास 'हुडुकलुल्लु' प्रकाशित।

(76) अंजली काजल :

जन्म- 20 अक्टूबर 1978, लुधियाना।कृतित्व- कई वर्षों से लेखन में सक्रिय, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में नियमित लेखन। सम्मान- हिन्दी साहित्य अकादमी, जालंधर और श्रीकृष्ण कला साहित्य अकादमी, इंदौर द्वारा सम्मानित।

(77) वीर राजा :

जन्म- 1930, भटिण्डा। कृतित्व- प्रारम्भिक लेखन उर्दू में, खुले जंगल का शेर (कहानी संग्रह)।

(78) परितोष चक्रवर्ती :

जन्म- 1950, सक्ती (म.प्र.)। शिक्षा- एम.ए. (समाजशास्त्र), बी.जे.। कृतियाँ- अभिशप्त दाम्पत्य (कहानी संग्रह) सहित विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित।

(79) कमल चोपड़ा :

जन्म- सितम्बर 1955, पंजाब। शिक्षा- चिकित्सा स्नातक, कृतित्व- विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ और लघु कथाएँ प्रकाशित, निजी व्यवसाय में संलग्न।

(80) सी. भास्कर राव :

जन्म- 22 सितम्बर, 1941 शिक्षा- एम.ए. (हिन्दी), पी-एच.डी.। कृतित्व- हिन्दी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में सौ से ऊपर कहानियाँ प्रकाशित।

(81) अमरीक सिंह दीप :

जन्म- 5 अगस्त 1942, कानपुर (उ.प्र.)। शिक्षा- हाईस्कूल। कृतियाँ- कहाँ जाएगा सिद्धार्थ (कहानी संग्रह)। सरकारी संस्थान में तकनीकी कर्मचारी पद से सेवानिवृत्त।

(82) ध्रुव शुक्ल :

जन्म- 1953, सागर (म.प्र.), 'पूर्वग्रह' में सह सम्पादक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित।

(83) सुमति अय्यर :

शिक्षा- एम.ए., पी-एच.डी.। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- शेष संवाद (आ) अन्य- मैं, तुम और जंगल (कविता संग्रह); अपने अपने कठघरे (नाटक); तमिल व अंग्रेजी से उपन्यास, कहानियों, जीवनियों व कविताओं के अनुवाद।

(84) विनोद मिश्र :

जन्म- 1 अप्रैल 1958, जौनपुर (उ.प्र.)। शिक्षा- एम.एस.सी. (गणित)। कृतित्व- विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित, भारतीय स्टेट बैंक- भिलाई से सेवानिवृत्त।

(85) कात्यायनी :

जन्म- 7 मई 1954, शिक्षा- एम.ए. (हिन्दी)। कृतित्व- विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कई कहानियाँ और कविताएँ प्रकाशित, लेखन और नारी मोर्चे पर राजनीतिक-सामाजिक सक्रियता।

(86) आनंद संगीत :

जन्म- 6 मार्च 1956, कोटा (राजस्थान) में। कुछ कविताएँ और कहानियाँ विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित। परिवार कल्याण विभाग, कोटा से टाइपिस्ट पद से सेवानिवृत्त।

(87) सूरज प्रकाश :

जन्म- 14 मार्च 1952, देहरादून। शिक्षा- एम.ए.। कृतित्व- विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित, रिजर्व बैंक बंबई से सेवानिवृत्त।

(88) नरेश पंडित :

जन्म- 1952, मंडी (हिमांचल प्रदेश)। कृतित्व- घालू (कथा संग्रह) सहित कई कहानियाँ प्रकाशित।

(89) राम गुप्त :

जन्म- 1944, माण्टगोमरी (पाकिस्तान)। कृतित्व- हिमालय एवं अकालग्रस्त क्षेत्रों की अध्ययन-यात्राओं के साथ ही कथा-लेखन।

(90) परदेशीराम वर्मा :

जन्म- 18 जुलाई 1947, शिक्षा- एम.ए. (हिन्दी)। कृतित्व- कई कहानियाँ प्रकाशित,

भिलाई इस्पात संयंत्र में वरिष्ठ संपदा निरीक्षक।

(ख) उपन्यास और उपन्यासकार :-

(1) राही मासूम रज़ा :

जन्म- 27 अगस्त 1927, कृतियाँ- (अ) उपन्यास- आधा गाँव, टोपी शुक्ला, ओस की बूँद, हिम्मत जौनपुरी, दिल एक सादा कागज, कटरा की आरजू, अंसतोष के दिन, नीम का पेड़, सीन-75।

(2) यज्ञदत्त शर्मा :

दल रहित, वाद रहित, राजनीति रहित, अप्रतिबद्ध लेखन में प्रवृत्त। प्रायः ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के उपन्यासों की रचना। उपन्यास 'शिलन्यास' को सोवितलैण्ड नेहरू पुरस्कार प्राप्त हुआ है, इस पुरस्कार को प्राप्त करने वाला यह हिन्दी का पहला उपन्यास है। अन्य उपन्यासों में- दबदबा, परिवार, इन्सान, आचार्य चाणक्य, भारत सेवक, स्वप्न खिल उठा, चौथा रास्ता, निर्माण पथ, मुक्ति पथ, सम्राट अशोक, पराक्रमांक समुद्रगुप्त आदि पुरस्कृत हुए हैं। सत्तर से अधिक उपन्यास, लगभग 20 समीक्षा ग्रंथ व दो काव्य कृतियाँ प्रकाशित। आपके उपन्यासों में ऐतिहासिक, अर्ध ऐतिहासिक, सामाजिक, आंचलिक, प्रागैतिहासिक कथाभूमि प्रस्तुत की गई है।

(3) यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' :

हिन्दी व राजस्थानी के विख्यात लेखक। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- राजा महाराजा, रानी महारानी, बहरूपिया, एक नियति और, राजा रसीला सिंह, रक्त और तख्त, अधिकार, प्यासों के रेगिस्तान, चाँदा सेठानी और मोहभंग सहित ढेरों उपन्यास प्रकाशित। (आ) अन्य- ताश का घर, महाराजा शेखचिल्ली, मैं अश्वत्थामा, चुप हो जाओ, चार अजूबे, आखिरी पड़ाव, जीमूत वाहन, महाबली बर्बरीक (नाटक); हजार घोड़ों का सवार (दूरदर्शन धारावाहिक); गुलाबड़ी, चकवे चकवी की बात, बिडम्बना (टेली फिल्म); लाज राखो राणी सती (राजस्थान की पहली रंगीन फिल्म) पुरस्कार- साहित्य अकादमी, राजस्थान साहित्य अकादमी, मीरां, फणीश्वरनाथ रेणु, राजस्थान पत्रिका का श्रेष्ठ कहानी पुरस्कार। सम्मान- साहित्य महोपाध्याय, विद्यावाचस्पति, साहित्य श्री, साहित्य मनीषी, डॉ. राहुल सांकृत्यायन साहित्य महोपाध्याय आदि।

(4) मुद्राराक्षस :

जन्म- 21 जून 1933 को लखनऊ के बेहटा गाँव में। शिक्षा- लखनऊ में। नौकरी के

सिलसिले में लगभग दो दशक तक कलकत्ता और लखनऊ में प्रवास। 1976 से लखनऊ में स्वतंत्र लेखन। उपन्यास- एक और, प्रपंचतंत्र।

(5) विभूतिनारायण राय :

जन्म- 28 नवम्बर 1950, शिक्षा- मुख्य रूप से बनारस और इलाहाबाद में। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- घर, शहर में कर्फ्यू, किस्सा लोकतंत्र, तबादला। (आ) अन्य- एक छात्र नेता का रोजनामचा (व्यंग्य संग्रह); भारतीय पुलिस और साम्प्रदायिक दंगे, वर्तमान 'साहित्य' का प्रकाशन।

(6) दूधनाथ सिंह :

जन्म- 17 अक्टूबर 1936 को सोबन्था (बलिया) में एक सामान्य किसान परिवार में। शिक्षा- एम. ए. (हिन्दी) इलाहाबाद विश्वविद्यालय से, वहीं पर अध्यापन। कृतियाँ- (अ) उपन्साय- सपाट चेहरे वाला आदमी, सुखान्त, प्रेमकथा का अन्त न कोई, माई का शोकगीत, नमो अंधकारं, पहला कदम, आखिरी कलाम (आ) अन्य- अपनी शताब्दी के नाम, सुरंग से लौटते हुए, एक और भी आदमी है (कविता संग्रह); यमगाथा, पार्टी अफेयर (नाटक); निराला आत्महंता आस्था, उचित-अनुचित, अनुभव का अकेलापन (आलोचना), लौट आ-ओ धार (संस्मरण)।

(7) वीरेन्द्र जैन :

जन्म- शिक्षक दिवस, 1955 को गुना (म0प्र0) के सिरसौद गाँव में। उपन्यास- शब्दवध, डूब, सबसे बड़ा सिपहिया, शुभस्य शीघ्रम, प्रतिपादन। (आ) अन्य- मैं वही हूँ (कहानी संग्रह) के अतिरिक्त लगभग बीस लघु उपन्यास, कथा व्यंग्य संग्रह, किशोरोपयोगी कथा- संग्रह और चित्र कथाएँ प्रकाशित। पुरस्कार/सम्मान- मध्यप्रदेश हिन्दी के वागीश्वरी पुरस्कार, प्रेमचंद महेश सम्मान और साहित्यिक कृति पुरस्कार के साथ ही नेताजी सुभाष चन्द्र बोस राष्ट्रीय स्मृति सम्मान से सम्मानित।

(8) किशोर कुमार सिन्हा :

जन्म- 26 जनवरी 1955। शिक्षा- भौतिकी में एम.एस-सी. (दिल्ली विश्वविद्यालय से), 1978 से भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्य व उत्तर प्रदेश में कार्यरत। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- गाथा भोगनपुरी, बेताज शहर, मेला (आ) अन्य- किस्सा पंचायत राज का (नाटक)।

(9) अभिमन्यु अनत :

जन्म- 09 अगस्त 1937 को मॉरीशस में। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- लाल पसीना,

गाँधी जी बोले थे, एक बीघा प्यार, आंदोलन, घर लौट चलो वैशाली, क्यों न फिर से, चलती रहो अनुपमा, अचित्रित, एक उम्मीद और। (आ) अन्य- खामोशी के चीत्कार (कहानी संग्रह), नागफनी में उलझी साँसें (कविता संग्रह)।

(10) राजीव कुमार :

जन्म- 03 जनवरी 1975 को गाजीपुर (उ.प्र.)। शिक्षा- सेण्ट मेरीज़ अकादमी, मेरठ में, साहित्य लेखन में गहरी रुचि। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- संघर्ष (हिंदी और भोजपुरी की मिश्रित भाषा में रचित), हाकिम इलाका, अनकही। (आ) अन्य- शाही दरबार(कहानी संग्रह), ए रिट्रीट फ्राम सोवियत यूनियन (संस्मरण)।

(11) कुमारी इन्दिरा :

जन्म- 13 अक्टूबर को हैदराबाद में। शिक्षा- एम.ए. (अर्थशास्त्र), एम.ए. (समाज शास्त्र), एल.एल.बी.,एल.एल.एम., साहित्य रत्न, पी-एच.डी.। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- लिथुवानिया की एक शाम, प्रश्नों का रेगिस्तान, अनन्त श्री, मौन पीड़ा, मत्स्यगंधा, अन्त नहीं, अयनहिता, अनि-अनावृत के अतिरिक्त ढेरों उपन्यास। पुरस्कार/सम्मान- केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, दिल्ली, अंतरराष्ट्रीय कला एवं संस्कृति परिषद, नजीबाबाद, वृहत् महाराष्ट्र मण्डल, मुम्बई से पुरस्कृत; पत्र-पत्रिकाओं और आकाशवाणी से सक्रिय जुड़ाव।

(12) पंडित आनन्द कुमार :

हिन्दी, उर्दू और मराठी के विद्वान, फिल्म व्यवसाय में लेखक और निदेशक के रूप में कार्य का लम्बा अनुभव। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- बेगम का तकिया, राबिया, एक दिन और सारा जीवन, दफा चौरासी, दो सूतरी पोलटिक, सेवा-संक्राति, सिर्फ साइनबोर्ड, पायालू। (आ) अन्य- मेरा हक (उपन्यास का मराठी से हिन्दी में अनुवाद), विदाई, उधार का सिन्दूर (पटकथाएँ), बेगम का तकिया (नाटक)।

(13) डॉ. कृष्णावतार पाण्डेय :

शुक्लपुर चौरासी (इलाहाबाद) में जन्म, कृष्ण जन्माष्टमी के पर्व पर। शिक्षा- एम. एस-सी. (गणित), डी.फिल.। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- सिर्फ अहसास, कोइली, रंग गई मोर चुनरिया। (आ)- अन्य- ग्राम्य जीवन की विसंगतियों को उकेरती रचनाएँ विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।

(14) रमाशंकर श्रीवास्तव :

जन्म- 19 जून 1936 को पचरुखी (सीवान) में। शिक्षा- पी-एच.डी.(पटना विश्वविद्यालय से) कृतियाँ- (अ) उपन्यास- किसिम-किसिम के लोग, उनका अपना मन, एक थी अनु, दूसरा प्रस्ताव, बोलती क्यों नहीं, एक टुकड़ा जमीन, फिर कभी, चिट्ठी आएगी, तुम मेरी कथा, माला के फूल, उत्तर घाट, अधूरा, आखिर कब तक, चित्रगुप्त उवाच। (आ) अन्य- नमः प्रोफेसराय, हल्ला मचाओ गर्दन बचाओ!, सावधान! ये मेहमान हैं!, इण्डिया गेट की बकरी(हास्य व्यंग्य); चिड़िया चुग गई खेत,शादी हुई मगर (बाल साहित्य), रेडियो फीचरवार्ता तथा पत्र-पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित।

(15) ब्रह्मदीप सिह 'खर्ब' :

'अनुराग' नाम से प्रारम्भिक लेखन। हिन्दी के प्रतिष्ठित और सुपरिचित उपन्यासकार। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- कसक, कैदी धड़कनें, इंतजार, उलझन, कलंकिनी, ममता, इंसान, आग और दाग, सिसकते अरमान,माँ बाप, दूसरी सीता, खामोश,एक साल, शायद धब्बे, वो सारे शहर की है, उसने ये तो नहीं कहा था, एक चिट्ठी और, सारा ही शहर पराया। (आ) अन्य- अधूरी (कहानी संग्रह)। पुरस्कार/ सम्मान- उपन्यास-'अनुभव' आल इण्डिया मौलिक उपन्यास प्रतियोगिता में पुरस्कृत, 'एक चिट्ठी और' उपन्यास है और अपने समय में बेहद चर्चित रहा।

(16) प्रेमलाल भट्ट :

जन्म- 26 वैशाख, वि.सं.1988 को ग्राम - सेमन (देवप्रयाग) गढ़वाल में । कृतियाँ- (अ) उपन्यास - गंगोत्री से गंगा सागर, सन्धि-पत्र, शिल्पी, गौरा, द्रोणाचार्य की पराजय, तपोवन से स्वर्गारोहण, क्रान्तिगाथा, शेष कथा लौटकर, पितरों का घर, माँ-प्रेयसी और पत्नी, भवानी खाल की जोगणी। (आ) अन्य- उमाल, भागै लकीर (खण्डकाव्य); आँसू का आखर (कविता संग्रह)।

(17) प्रभा खेतान :

जन्म- 01 नवम्बर 1942, शिक्षा- एम.ए. (दर्शनशास्त्र), पी-एच.डी.। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- छिन्नमस्ता, तालाबन्दी, आओ पेपे घर चलें, अपने-अपने चेहरे (आ) अन्य- सार्त्र व अल्बेयर कामू पर चिन्तन कार्य।

(18) कमल :

जन्म- 1964, शिक्षा- एम.एस.सी. (वनस्पतिशास्त्र) ।कृतियाँ- (अ) उपन्यास- आखर

चौरासी, (आ) विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ, व्यंग्य, नाटक आदि प्रकाशित, आकाशवाणी व दूरदर्शन के रांची व जमशेदपुर केन्द्रों से कई कहानियाँ प्रसारित।

(19) भगवान सिंह :

जन्म- 01 जुलाई 1931, गोरखपुर (उ.प्र.)।शिक्षा- एम.ए.।कृतियाँ- (अ) उपन्यास- उन्माद, अपने-अपने राम, महाभिषग (आ) अन्य- अपने समानान्तर (कविता संग्रह); उपनिषदों की कहानियाँ, पंचतंत्र (पुर्नलेखन); इन्द्रधनुष के रंग, भारत-तब से अब तक, परमगति, सोम का सच (निबन्ध का संग्रह); हड़प्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य, दि वैदिक हड़प्पन्स (अनुसंधान परक ग्रंथ)।

(20) गौरीशंकर कपूर :

जन्म- अमृतसर में।कृतियाँ- (अ) उपन्यास- नींद से पहले, नचिकेता, सचमुच सच (आ) अन्य- स्मृति के ओर छोर (कविता संग्रह : बलदेव शर्मा के साथ)।

(21) एम. रहमान अंसारी :

जन्म- 05 अगस्त 1955, फतेहपुर में।शिक्षा- एम.काम., एल.एल.बी.।कृतियाँ- (अ) उपन्यास- अन्धरी, अन्य- उत्तर प्रदेश समाज कल्याण निर्माण निगम लिमिटेड लखनऊ में सेवारत।

(22) सुभाष नरूला :

जन्म- दिसम्बर 1945, रावलपिंडी (पाकिस्तान में)।शिक्षा- लाहौर और दिल्ली में। विभाजन के बाद दिल्ली में आकर बस गये और दिल्ली विश्वविद्यालय से सम्बद्ध एक कालेज में अध्यापन करते हुए लेखन-कर्म में प्रवृत्त। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- आधा मसीहा (आ) अन्य- कबीला, वही सुख के दिन थे, स्मृतियों की महक बढ़ रही है।

(23) दुर्गा प्रसाद शुक्ल :

हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्रिका 'कादम्बिनी' के उपसंपादक रहे। जोगती (उपन्यास) सहित कई उपन्यास और विविध आलेख प्रकाशित।

इ- उपन्यासकार व कहानीकार एवं उनकी कृतियाँ-

(1) विष्णु प्रभाकर :

जन्म- 29 जून 1912 को मिर्जापुर, मुजफ्फरनगर (उत्तर प्रदेश) में। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- निशिकांत, तट के बंधन, कोई तो, तीसरा आदमी (आ) कहानी संग्रह- धरती अब भी घूम रही है, पुल टूटने से पहले, आकाश एक है, संघर्ष के बाद, मेरी प्रिय कहानियाँ, इक्यावन

कहानियाँ, गजनन्दन लाल के कारनामे, दो मित्र, मोती किसके, तपोवन की कहानियाँ, घमण्ड का फल, हीरे की पहचान, पाप का घड़ा श्रमदान (बाल कहानियाँ) (इ) अन्य- आवारा मसीहा (जीवनी); कुहासा और किरण, अब और नहीं, तीसरा आदमी, मेरी श्रेष्ठ एकांकी, युगे- युगे-क्रांति, वन्दिनी, होरी (नाटक और एकांकी); पंखहीन, मुक्त गगन में, और पंछी उड़ गया (आत्मकथा)।

(2) भीष्म साहनी :

जन्म- 08 अगस्त 1915 को रावलपिंडी में। शिक्षा- हिन्दी, संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा घर में, एम.ए. (अंग्रेजी), पी-एच.डी.।कृतियाँ- (अ) उपन्यास- झरोखे, कड़ियाँ, तमस, बसन्ती, मय्यादास की माड़ी, कुंतो, नीलू नीलिमा नीलोफर (आ) कहानी संग्रह- भाग्य रेखा, पहला पाठ, भटकती राख, पटरियाँ, वाङ्चू, शोभायात्रा, निशिचर, पाली, डायन, प्रतिनिधि कहानियाँ (इ) अन्य- कबिरा खड़ा बाजार में, हानूश, माधवी, मुआवजे (नाटक); गुलेल का खेल(बालोपयोगी कहानियाँ) पुरस्कार/सम्मान- 'तमस' को साहित्य अकादमी पुरस्कार।

(3) रामदरश मिश्र :

जन्म- 15 अगस्त 1924 को गोरखपुर के डुमरी गाँव में। शिक्षा- एम.ए.,पी-एच.डी., दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफेसर पद से सेवामुक्त। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- पानी के प्राचीर, जल टूटता हुआ, बीच का समय (अदिम राग), सूखता हुआ तालाब, अपने लोग, रात का सफर, आकाश की छत, बिना दरवाजे का मकान, दूसरा घर, थकी हुई सुबह, बीच बरस। (आ) कहानी संग्रह- खाली घर, एक वह दिनचर्या, इकसठ कहानियाँ, चर्चित कहानियाँ, श्रेष्ठ आंचलिक कहानियाँ, मेरी प्रिय कहानियाँ। (इ) अन्य- पथ के गीत, बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ, पक गई है धूप, कंधे पर सूरज, दिन एक नदी बन गया, जुलूस कहाँ जा रहा है, आग कुछ नहीं बोलती, बारिश में भीगते बच्चे, शब्द सेतु, मेरे प्रिय गीत, बाजार से निकले हैं लोग(कविता एवं गजल संग्रह); सहचर है समय(आत्मकथा), कितने बजे हैं (ललित निबंध), तना हुआ इन्द्र धनुष, भोर का सपना (यात्रा वृतान्त)।

(4) डॉ. राजेन्द्र मोहन भटनागर :

जन्म- 02 मई 1938 को अम्बाला में। शिक्षा- एम.ए., पी-एच.डी.।कृतियाँ- (अ) उपन्यास- नीले घोड़े का सवार, सूर-श्याम, परिधि, वाग्देवी, पयस्विनी, मीरा, श्यामप्रिया, सिद्धपुरुष, शुभप्रभात, सत्यमेव जयते, सर्वोदय, जिन्दगी का एहसास, महात्मा, वसुधा, नया मसीहा, मोनालिसा, शब्द, महाबानो, मंचनायक, विकल्प, दहशत, गन्ना बेगम, टूटे आकार,

रिवोल्ट, मंत्रसिद्धि, घाटियाँ गूँजती हैं, दीदी, एक ठहरी हुई रात, दिल्ली चलो, राजराजेश्वर, युगपुरुष अम्बेडकर, सरदार, विवेकानन्द, अफसर का बेटा, अनन्त आकाश, निर्णय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, छात्र नेता, अंतिम सत्याग्रही (आ) कहानी संग्रह- गंगा और कहानियाँ, सुरभि, नतारा, मंगल कलश, मेधा, शृंगार, चाणक्य की हार, (इ) अन्य- सारथीपुत्र, महाप्रयाण, सूर्याणी, मीरा, रक्तधन, नायिका, भोरमदेव, वक्त की आवाज (नाटक); जैनेन्द्र के निबन्धों का साहित्यिक तात्विक अध्ययन, महाकवि घनानन्द, आचार्य केशवदास, जैनेन्द्र और उनका साहित्य, जैनेन्द्र के निबन्धों का नवमूल्यांकन, सामयिकी, आधुनिक हिन्दी कविता, विनोद रस्तोगी का नाट्य साहित्य, जैनेन्द्र और उनका निबन्ध साहित्य, गद्यकार प्रसाद, सूर काव्यमणि (समीक्षा/शोध ग्रन्थ); माटी की गंध, कुहरा, अनादि (स्मरण/रेखाचित्र) सम्मान/पुरस्कार- राजस्थान साहित्य अकादमी से सर्वोच्च मीरां पुरस्कार, नाहर सम्मान पुरस्कार, शिखर सम्मान पुरस्कार के अतिरिक्त अनेक राष्ट्रीय तथा प्रान्तीय पुरस्कारों से सम्मानित।

(5) गोविन्द मिश्र :

जन्म- 01 अगस्त 1939 को अतर्रा (बाँदा) उ.प्र. में। भारतीय प्रशासनिक सेवा से सेवानिवृत्ति के उपरान्त स्वतंत्र लेखन। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- वह/अपना चेहरा, उतरती हुई धूप, लाल पीली जमीन, हुजूर दरबार, तुम्हारी रोशनी में, धीर समीरे, पाँच आँगनो वाला घर, फूल-इमारतें और बंदर (आ) कहानी संग्रह- रगड़ खाती आत्महत्याएँ, नये पुराने माँ बाप, अन्तःपुर, धाँसू, खुद के खिलाफ, खाक इतिहास, पगला बाबा, आसमान कितना नीला, हवाबाज, अपाहिज (लम्बी कहानियाँ); मेरी प्रिय कहानियाँ, स्थितियाँ रेखांकित, निर्झरिणी (दो खण्डों में सम्पूर्ण कहानियाँ) (इ) अन्य- धुंधभरी सुर्खी, दरखतों के पार......शाम, झूलती जड़ें, परतों के बीच (यात्रा वृतान्त); साहित्य का सन्दर्भ, कथाभूमि, मुझमें बहते जैनेन्द्र कुमार, समय और सर्जना, (निबन्ध संग्रह); कवि के घर में चोर, आदमी का जानवर, मास्टर मन्सुखराम (बाल साहित्य); संवाद अनायास, मेरे साक्षात्कार। पुरस्कार- व्यास सम्मान, आथर्स गिल्ड ऑफ इण्डिया, प्रेमचन्द पुरस्कार (उ.प्र.), भारतीय भाषा परिषद- कलकत्ता और दिल्ली अकादमी द्वारा सम्मानित।

(6) शिवप्रसाद सिंह :

जन्म- 19 अगस्त 1928 को वाराणसी जिले के जलालपुर गाँव में। शिक्षा- काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- अलग-अलग वैतरणी, गली आगे मुड़ती है, शैलूष, मंजूशिमा, नीला चाँद, औरत, कुहरे में युद्ध, अभी दिल्ली दूर है (आ) कहानी संग्रह-

आरपार की माला, युद्ध, कर्मनाशा की हार, इन्हें भी इन्तजार है, मुर्दा सराय, अँधेरा हँसता है, भेडिए, मेरी प्रिय कहानियाँ, अंधाकूप, एक यात्रा सतह के नीचे, सुनो परीक्षित सुनो, अमता (इ) अन्य- शिखरों का सेतु, कस्तूरी मृग, चतुर्दिक, मानसी गंगा, किस-किस को नमन करूँ मैं, क्या कहूँ कुछ कहा न जाए (ललित निबन्ध); घंटियाँ गूँजती हैं, अश्मक का फूल (नाटक); अंतरिक्ष के मेहमान (रिपोर्ताज)। अनेक रचनाओं का जर्मन, डेनिश, रूसी, अंग्रेजी, फ्रेंच, पुर्तगाली आदि भाषाओं में अनुवाद।

(7) निर्मल वर्मा :

जन्म- 1929, शिमला में। शिक्षा- सेंट स्टीफेंस कालेज, दिल्ली से इतिहास में एम.ए. कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- परिन्दे, जलती झाड़ी, पिछली गर्मियों में, बीच बहस में, कव्वे और कालापानी, सूखा तथा अन्य कहानियाँ। (आ) उपन्यास- वे दिन, लाल टीन की छत, एक चिथड़ा सुख, रात का रिर्पोटर, अंतिम अरण्य (इ) अन्य- चीड़ों पर चाँदनी, हर बारिश में, शब्द और स्मृति, कला का जोखिम (निबन्ध तथा संस्मरण); तीन एकान्त (नाटक); दूसरी दुनिया, मेरी प्रिय कहानियाँ (संकलन); डेज आफ लॉगिंग(अंग्रेजी में अनूदित उपन्यास), हिल स्टेशन (अंग्रेजी में अनूदित कहानियाँ) पुरस्कार/सम्मान- म.प्र. शासन द्वारा आपके सृजन सम्मान के लिए भोपाल मे 'निराला चेयर' पर नियुक्त किया गया।

(8) कृष्ण बलदेव वैद :

जन्म- 27 जुलाई 1927, डिगा (पंजाब) में। शिक्षा- एम.ए. (अंग्रेजी), पी-एच.डी. (अंग्रेजी), हार्वर्ड विश्वविद्यालय से। हंसराज कालिज- दिल्ली, पंजाब विश्वविद्यालय- चण्डीगढ़, ब्रेन्डाइज विश्वविद्यालय अमेरिका, यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयार्क, अमेरिका और भारत भवन- भोपाल में अध्यापन। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- उसका बचपन, विमल उर्फ जाएँ तो जाएँ कहाँ, नसरीन, दूसरा न कोई, दर्द ला दवा, गुजरा हुआ जमाना, काला कोलाज, नर नारी (आ) कहानी संग्रह- बीच का दरवाजा, मेरा दुश्मन, दूसरे किनारे से, लापता, उसके बयान, मेरी प्रिय कहानियाँ, वह और मैं, खामोशी, आलाप, प्रतिनिधि कहानियाँ, लीला और अन्य कहानियाँ (इ) अन्य- भूख आग है (मौलिक नाटक), हिंदी और अंग्रेजी में ढेरों कहानियों, उपन्यासों और नाटकों का अनुवाद।

(9) रमाकांत :

जन्म- 02 दिसम्बर 1931 को बरौंधा, जिला मिर्जापुर में। शिक्षा- स्नातक, एम.ए. व

एल.एल.बी. की पढ़ाई अधूरी। इण्डियन एयर लाइन्स की नौकरी फिर पत्रकारिता और बाद में स्वतंत्र लेखन में लगे रहे। 06 सितम्बर 1991 को दिल्ली में निधन। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- जिन्दगी भर का झूठ, उसकी लड़ाई, कोई कोई और बात, कार्लो हब्शी का संदूक, विपरीत कथा (आ) उपन्यास- तीसरा देश, छोटे-छोटे महायुद्ध, जुलूस वाला आदमी, प्यादी फर्जी अर्दब, खोई हुई आवाज, दरवाजे पर आग, उपसंस्कार, समाधान, टूटते-जुड़ते स्वर, बम्बई की बिल्ली, बिस्तर और आकाश।

(10) विद्यासागर नौटियाल :

जन्म- 29 सितम्बर 1933 को मालीदेवल (टिहरी) में। शिक्षा- एम.ए., एल.एल.बी.। कृतियाँ- (अ) टिहरी की कहानियाँ (कहानी संग्रह) (आ) उपन्यास- उलझे रिश्ते, भीम अकेला, सूरज सबका है, डार से बिछड़ा।

(11) कमलेश्वर :

जन्म- 06 जनवरी 1932 को मैनपुरी (उ.प्र.) में। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- राजा निरबंसिया, मांस का दरिया, कस्बे का आदमी, इतने अच्छे दिन, महफिल, कोहरा, कथा प्रस्थान, जार्ज पंचम की नाक आदि (आ) उपन्यास- डाक बंगला, कितने पाकिस्तान, रेगिस्तान, सुबह.... दोपहर.... शाम, समुद्र में खोया, एक सड़क सत्तावन गलियाँ, एक और चन्द्रकाता दो भाग, तीसरा आदमी, काली आँधी आदि। (इ) अन्य- जो मैंने जिया, यादों के चिराग, जलती हुई नदी (आत्मकथा); हिन्दोस्तां हमारा(नाटक); परिक्रमा (साक्षात्कार); चंद्रकांता (मीडिया लेखन); हिन्दुस्तानी ग़ज़लें; तुम्हारा कमलेश्वर (पत्नी के नाम पत्र); शिखर कथा कोश(सम्पादित); बांग्लादेश युद्ध की डायरी, देश देशान्तर(संस्मरण); लगभग सौ फिल्में लिखीं; दूरदर्शन के अतिरिक्त महानिदेशक एवं कई पत्रिकाओं के सम्पादक रह चुके हैं। पुरस्कार/सम्मान- साहित्य आकादमी पुरस्कार, शलाका सम्मान (हिन्दी अकादमी-दिल्ली), भारत-भारती पुरस्कार(उ.प्र.), मैथिलीशरण गुप्त पुरुस्कार सहित देश विदेश के अनेक पुरस्कार/सम्मान।

(12) विनोद कुमार शुक्ल :

जन्म- 01 जनवरी 1937 को राजनाँदगाँव (म.प्र.) में। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- नौकर की कमीज, खिलेगा तो देखेंगे, दीवार में एक खिड़की रहती थी (आ) कहानी संग्रह- पेड़ पर कमरा। (इ) अन्य- लगभग जयहिन्द, वह आदमी चला गया नया गरम कोट पहनकर विचार की तरह, सब कुछ होना बचा रहेगा (कविता संग्रह)। पुरस्कार/सम्मान- गजानन माधव मुक्तिबोध

फैलोशिप, म.प्र. कला परिषद का वीरसिंह देव पुरस्कार एवं रजत पुरस्कार, वर्णमाला संस्था, उड़ीसा का 'सृजन भारती', रघुवीर सहाय स्मृति पुरस्कार, भवानी प्रसाद मिश्र पुरस्कार, शिखर सम्मान (म.प्र. शासन) मैथिलीशरण गुप्त सम्मान(1995-96) व भारतीय भाषा परिषद् सम्मान 2003।

(13) शैलेश मटियानी :

जन्म- 14 अक्टूबर 1931, ग्राम-बाड़ेछीना (अल्मोड़ा) में।कृतियाँ- (अ) उपन्यास- चंद औरतों का शहर, नाग वल्लरी, माया सरोवर, आकाश कितना अनन्त है, रामकली, चिट्ठीरसैन, हौलदार, बावन नदियों का संगम, मुठभेड़, उत्तरकाण्ड, गोपुली गफूरन, पर्वत से सागर तक (आ) कहानी संग्रह- चील प्यास और पत्थर, अतीत तथा अन्य कहानियाँ, प्रतिनिधि कहानियाँ, भेड़ें और गड़ेरिये, बर्फ की चट्टानें, नाच जमूरे नाच (इ) अन्य- लेखक और संवेदना, त्रिज्या, मुख्यधारा का सवाल, यदा-कदा।

(14) मृदुला गर्ग :

जन्म 1938 कलकत्ता में। शिक्षा- एम.ए. (अर्थशास्त्र), विवाह और माँ बनने के बाद 1970-71 से लेखन की शुरुआत, रचनाओं का प्रकाशन 1975 से प्रारम्भ।कृतियाँ- (अ) उपन्यास- उसके हिस्से की धूप, वंशज, चित्तकोबरा, अनित्य, मैं और मैं, कठगुलाब (आ) कहानी संग्रह- कितनी कैदें, टुकड़ा-टुकड़ा आदमी, डैफोडिल जल रहे हैं, ग्लेशियर से, उर्फ सैम, शहर के नाम, समागम, संगति विसंगति (दो खण्ड) (इ) अन्य- एक और अजनबी, जादू का कालीन, तीन कैदें (नाटक), रंग-ढंग (निबन्ध संग्रह)।

(15) मैत्रेयी पुष्पा :

जन्म- 30 नवम्बर 1944, अलीगढ़ के सिकुर्रा गाँव में। शिक्षा- एम.ए.(हिन्दी), बुन्देलखण्ड कालेज झाँसी से। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- बेतवा बहती रही, इदन्नमम, चाक, झूलानट, अल्मा कबूतरी, अगन पारखी, विजन, कहे ईसुरी फाग (आ) कहानी संग्रह- चिन्हार, गोमा हँसती है, ललमनियाँ तथा अन्य कहानियाँ (इ) अन्य- कस्तूरी कुडंल बसे(आत्मकथा), खुली खिड़कियाँ (स्त्री विमर्श) सम्मान- सार्क लिटरेरी अवार्ड, द हंगर प्रोजेक्ट (पंचायती राज) का 'सरोजिनी नायडू' पुरस्कार।

(16) मन्नू भण्डारी :

जन्म- 03 अप्रैल 1931,भानपुरा (म.प्र.) में। शिक्षा- एम.ए. दिल्ली के मिरांडा हाउस

में हिन्दी प्राध्यापिका और विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन में प्रेमचंद सृजन पीठ की अध्यक्ष रहीं कृतियाँ- (अ) उपन्यास- महाभोज, आपका बंटी, स्वामी, एक इंच मुस्कान (श्री राजेन्द्र यादव के साथ), कलवा (आ) कहानी संग्रह- एक प्लेट सैलाब, मैं हार गई, तीन निगाहों की एक तस्वीर यही सच है, त्रिशंकु, श्रेष्ठ कहानियाँ, आँखों देखा झूठ, दस प्रतिनिधि कहानियाँ (इ) अन्य- बिना दीवारों के घर (नाटक)।

(17) महीप सिंह :

जन्म- 15 अगस्त 1930 को अजगैन (उन्नाव) में। शिक्षा- एम.ए., पी-एच.डी. (हिन्दी), 1955-63 तक खालसा कालेज-मुम्बई, 1963-93 तक श्री गुरु तेगबहादुर खालसा कालेज-दिल्ली व एक वर्ष को साई विश्वविद्यालय-हीराकाता, जापान में विजिटिंग प्रोफेसर रहे। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- सुबह के फूल, उजाले के उल्लू, घिराव, कुछ और कितना, मेरी प्रिय कहानियाँ, कितने सम्बन्ध, इक्यावन कहानियाँ, चर्चित कहानियाँ, धूप की उँगलियों के निशान, और ऐसा ही है (तीन खण्डों में समग्र कहानियाँ) (आ) उपन्यास- यह भी नहीं, और अभी शेष है (इ) अन्य- सिख विचारधारा : गुरुनानक से गुरु ग्रंथ साहब तक, 'संचेतना' का सम्पादन।

(18) क्रांति त्रिवेदी :

जन्म- 28 सितम्बर 1930 को रायपुर (म.प्र.) में। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- मन की हार, अन्तिमा, तृषिता, समर्पण, स्वयंवरा, ओस की बूँद, कथा अनन्ता, अशेष, मोहभंग, कृष्ण पक्ष, फूलों का सपना, गंगादत्त, अगम, अनुलंघ्य, सगुनपंछी, चिरकल्याणी, भूमिजा, अमृत घट, राघवप्रिया, बहे सो गंगा, उत्तराधिकारी, शतरूपा के आँसू, विजेता, तपस्विनी, आठवाँ जन्म, बूँद-बूँद अमृत, राधिका, धराभोगी, मेरा मन, उड़ जा रे हंसा, शापिता स्त्री, अनोखा आरोही, (आ) कथा संग्रह- नारी, दीक्षा, दीप्त प्रश्न, नारी मन की कहानियाँ, दीक्षा और अन्य कहानियाँ, (इ) अन्य- मीठी बोल, पत्ते की नाव, गति में सरित (बाल साहित्य); मैं और मेरा समय (जीवनी); अतिथि क्षण (कविता); आँखें खुल गई (प्रौढ़ शिक्षा साहित्य)।

(19) मस्तराम कपूर :

जन्म- 22 दिसम्बर 1926 को हिमाचल प्रदेश में। 1951 से साहित्य और पत्रकारिता से सम्बद्ध। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- विपथगामी, एक अटूट सिलसिला, तीसरी आँख का दर्द, नाक का डाक्टर, रास्ता बंद काम चालू, विषय-पुरुष, एक सदी बाँझ (आ) कहानी संग्रह- एक अदद औरत, ग्यारह पत्ते (इ) अन्य- कूड़ेदान से साभार (कविता

संग्रह), पत्नी ऑन ट्रायल (नाटक) साथ ही बाल उपन्यास और बाल कहानियाँ प्रकाशित।

(20) द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण :

जन्म- 1915, बदायूँ (उ.प्र.) में। शिक्षा- आचार्य, साहित्य रत्न और एम.ए. (संस्कृत साहित्य)। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- पूर्ति, बहू जी, टीला, खोज, प्यार के भूखे, टूटे सपने, जिन्दगी, लाजवन्ती, आसरा, रस बूँद, फूल गिरते हैं, कालचक्र (आ) उपन्यास- चाँद बोला, खोया-खोया मन, ये गलियाँ, ये रास्ते, फ़ासले (इ) अन्य- विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कई कहानियाँ प्रकाशित। 'खामोशी' और 'मैं हारूँगी नहीं' कहानियों पर टेलीफिल्म का निर्माण।

(21) प्रियंवद :

जन्म- 22 दिसम्बर 1952 शिक्षा-एम.ए. (प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृत) कृतियाँ- (अ) उपन्यास- वे वहाँ कैद हैं, परछाईं नाच (अ) कहानी संग्रह- बोसीदनी, मुट्ठी में बन्द चिड़ियाँ, खरगोश।

(22) चित्रा मुद्गल :

निहाली खेड़ा (उन्नाव) में जन्म। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- इस हमाम में, ग्यारह लम्बी कहानियाँ, जहर ठहरा हुआ, लाक्षागृह, अपनी वापसी, मेरी रचना यात्रा, जगदम्बा बाबू गाँव आ रहे हैं, जिनावर (आ) उपन्यास- एक जमीन अपनी (इ) अन्य- दूसरी औरत की कहानियाँ, असफल दाम्पत्य की कहानियाँ, टूटते परिवारों की कहानियाँ (सम्पादन), विविध कहानियों का हिंदी में अनुवाद, बाल साहित्य और दूरदर्शन के लिए टेलीफिल्म का निर्माण।

(23) गिरिराज किशोर :

जन्म- 1937, मुजफ्फर नगर (उ.प्र.) में। शिक्षा- एम.एस.डब्ल्यू.। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- लोग, चिड़ियाघर, जुगलबंदी, दो, तीसरी सत्ता, दावेदार, यथा प्रस्तावित, इन्द्र सुनें, अन्तर्ध्वंस, परिशिष्ट, यात्राएँ, पहला गिरमिटिया (आ) कहानी संग्रह- नीम के फूल, चार मोती बेआब, पेपर वेट, रिश्ता और अन्य कहानियाँ, शहर दर शहर, हम प्यार कर लें, गाना बड़े गुलाम अली खाँ का, जगतरानी, वल्दरोजी, यह देह किसकी है (इ) अन्य- नरमेध, घास और घोड़ा, प्रजा ही रहने दो, जुर्म आयद, चेहरे-चेहरे किसके चेहरे, केवल मेरा नाम लो, काठ की तोप, गुलाम बेगम बादशाह (नाटक एवं एकांकी); कथ-अकथ, लिखने का तर्क, संवाद सेतु, सरोकार (निबन्ध)। सम्मान- हिन्दी संस्थान (उ.प्र.), भारतेन्दु पुरस्कार, म.प्र. साहित्य परिषद्, उत्तर प्रदेश

हिंदी सम्मेलन द्वारा 'वासुदेव सिंह स्वर्ण पदक' और 'ढाई घर' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार।

(24) कामतानाथ :

जन्म- 22 सितम्बर 1935, शिक्षा-एम.ए. (अंग्रेजी) लखनऊ विश्वविद्यालय से, कुछ दिन अध्यापन फिर रिजर्व बैंक में कार्य करने के उपरांत सेवानिवृत्त। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- सुबह होने तक, एक और हिंदुस्तान, समुद्र तट पर खुलने वाली खिड़की, तुम्हारे नाम, कालकथा (आ) कहानी संग्रह- छुट्टियाँ, तीसरी साँस, सब ठीक हो जाएगा, शिकस्त, रिश्ते नाते (इ) अन्य- कुछ नाटकों की भी रचना की है। पुरस्कार/सम्मान- 'पहल' सम्मान के अतिरिक्त म.प्र. साहित्य परिषद के 'मुक्तिबोध' पुरस्कार और उ. प्र. हिन्दी संस्थान द्वारा पुरस्कृत।

(25) स्वयं प्रकाश :

जन्म- 20 जनवरी 1974 को इन्दौर (म.प्र.) में। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- मात्रा और भार, सूरज कब निकलेगा, आसमाँ कैसे-कैसे, अगली किताब, आएँगे अच्छे दिन भी, आदमी जात का आदमी, चर्चित कहानियाँ, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, अगले जनम (आ) उपन्यास- ज्योतिरथ के सारथी, जलते जहाज पर, उत्तर-जीवन कथा, बीच में विनय (इ) अन्य- स्वांतः दुखाय (निबन्ध); फीनिक्स (नाटक); परमाणु भाई की दुनिया में; आठवें दशक में जनवादी पत्रिका 'क्यों' का सम्पादन, नाटकों का मंचन एवं कहानियों का अनुवाद; 'सुनो कहानी', 'हिन्दी की प्रगतिशील कहानियाँ' का सम्पादन ज्ञानरंजन और धनंजय के साथ। पुरस्कार- राजस्थान साहित्य अकादमी पुरस्कार, वनमाली स्मृति पुरस्कार, सुभद्राकुमारी चौहान पुरस्कार।

(26) नरेन्द्र कोहली :

जन्म- 06 जनवरी 1940, कृतियाँ- (अ) उपन्यास- अभ्युदय, महासमर, तोड़ो कारा तोड़ो, अभिज्ञान, पुनरारंभ, आतंक, साथ सहा गया दुःख, प्रीतिकथा, जंगल की कहानी, आत्मदान, मेरा अपना संसार, क्षमा करना जीजी (आ) कहानी संग्रह- मेरी तेरह कहानियाँ, परिणति, कहानी का अभाव, दृष्टिदेश में एकाएक, शटल, नमक का कैदी, निचले फ्लैट में, संचित भूख, सबसे बड़ा सत्य (इ) अन्य- एक और लाल तिकोन, पाँच एब्सर्ड उपन्यास, आश्रितों का विद्रोह, जमाने का अपराध, आधुनिक लड़की की पीड़ा, त्रासदियाँ, परेशानियाँ, आत्मा की पवित्रता, गणतंत्र का गणित (व्यंग्य रचनाएँ); शंबूक की हत्या, निर्णय रुका हुआ, हत्यारे, गारे की दीवार, संघर्ष की ओर, किष्किंधा (नाटक); माजरा क्या है (ललित निबन्ध); रंगमंच से जुड़े हुए कथाकार।

(26) राजेन्द्र यादव :

जन्म- 28 अगस्त 1929, आगरा में कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- यहाँ तक पड़ाव-एक, यहाँ तक पड़ाव-दो, देवताओं की मूर्तियाँ, खेल खिलौना, जहाँ लक्ष्मी कैद है, छोटे-छोटे ताजमहल, ढोल, टूटना, अपने पार, 10 प्रतिनिधि कहानियाँ, अभिमन्यु की आत्महत्या, चौखटे तोड़ते त्रिकोण (आ) उपन्यास- सारा आकाश, उखड़े हुए लोग, कुलटा, शह और मात, अनदेखे अनजाने पुल, एक इंच मुसकान (मन्नू भण्डारी के साथ), मंत्र-बिद्ध (सभी उपन्यास) (इ) अन्य- आवाज तेरी है (कविता संग्रह); कहानी : स्वरूप और संवेदना, प्रेमचंद की विरासत, एक दुनिया समानान्तर, अठारह उपन्यास, औरों के बहाने, काँटे की बात, कहानी : अनुभव और अभिव्यक्ति, मेरे साक्षात्कार (समीक्षा निबन्ध); कथा-दशक, हिन्दी कहानियाँ, आत्म तर्पण, अभी दिल्ली दूर है, हंस (सम्पादन)।

(28) मनोहर श्याम जोशी :

जन्म- 09 अगस्त 1933 को अजमेर में। शिक्षा- विज्ञान स्नातक,लखनऊ विश्वविद्यालय से। 1954-55 से लेखनरत्। सन् 1984 से स्वतंत्र लेखन, पत्रकार, रंगकर्मी और व्यंग्यकार सफल कथाकार। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- कुरु-कुरु स्वाहा, कसप, हरिया हरक्यूलीज़ की हैरानी, हमजाद, टा-टा प्रोफेसर (आ) कहानी संग्रह- एक दुर्लभ व्यक्तित्व, कैसे किस्सागो, मंदिर घाट की पौड़ियाँ, एक पेंच और (इ) अन्य- उत्तराधिकारिणी (रूपान्तरित उपन्यास); नेताजी कहिन (व्यंग्य); बातों-बातों में (साक्षात्कार); हमलोग, बुनियाद, मुंगेरीलाल के हसीन सपने, कक्काजी कहिन, हमराही, जमीन-आसमान (दूरदर्शन धारावाहिक); भ्रष्टाचार, अप्पूराजा, निर्माणाधीन, जमीन (फिल्म) पुरस्कार- हिन्दी संस्थान उ.प्र.,मध्य प्रदेश शासन का पुरस्कार, कासलीवाला पुरस्कार, अप्ट्रान पुरस्कार, साहित्य सम्मान 1946, अट्टहास शिखर सम्मान (1990), चकल्लस पुरस्कार (1992), शारदा सम्मान (1993), शरद जोशी सम्मान (1994) और रॉक फैलर फाउन्डेशन, अमेरिका की फैलोशिप।

(29) मोहन राकेश :

जन्म- 08 जनवरी 1925 को अमृतसर में। शिक्षा- एम.ए. (संस्कृत, हिन्दी) कृतियाँ- (अ) उपन्यास- अँधेरे बन्द कमरे, न आने वाला कल, अन्तराल (आ) कहानी संग्रह- इंसान के खण्डहर, नए बादल, जानवर और जानवर, एक और जिन्दगी, फौलाद का आकाश, मेरी प्रिय कहानियाँ, मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ। (इ) अन्य- आषाढ़ का एक दिन, लहरों के

राजहंस, आधे-अधूरे, पैर तले की जमीन (नाटक)।

(30) दिनेश पालीवाल :

जन्म- 31 जनवरी 1942, कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- दुश्मन, दूसरा आदमी, पराए शहर में, भीतर का सच, ढलते हुए सूरज का अँधेरा, अखण्डित इन्द्रधनुष, असामाजिक, एक तिनका दर्द, एक डरी हुई लड़की, सदमा, फर्क, गलत-गलत-गलत आदि (आ) उपन्यास- जो हो रहा है, पत्थर प्रश्नों के बीच, कमीना, अनसुनी आवाजें, सबसे खतरनाक आदमी (इ) अन्य- प्रतिष्ठित एवं प्रतिभाशाली कथाकार। धर्मयुग, सप्ताहिक हिन्दुस्तान, सारिका, कथादेश, कहानी कादम्बिनी, वामा, हंस, वर्तमान साहित्य, कहानियाँ, जनसत्ता, नवभारत टाइम्स, दैनिक हिन्दुस्तान, दैनिक जागरण, अमृत संदेश, नवजीवन, अमर उजाला आदि में कहानियाँ प्रकाशित, विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में इनकी कहानियाँ हैं और आपके कथा साहित्य पर कई शोधार्थी शोधरत हैं।

(31) शिवानी गौरापन्त :

जन्म- 17 अक्टूबर 1923 को राजकोट, गुजरात में। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- विष कन्या, करिए छिमा, लाल हवेली, अपराधिनी, पुष्पाहार, चार दिन, चील गाड़ी, मधुयामिनी (आ) उपन्यास- चौदह फेरे, श्मशान, चम्पा, कैंजा, भैरवी, कृष्णकली, मायापुरी, सुरंगमा।

(32) अमरकांत :

सुपरिचित कहानीकार और उपन्यासकार। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- जिन्दगी और जोंक, देश के लोग, मौत का नगर, मित्र मिलन तथा अन्य कहानियाँ, कुहासा, तूफान, कला प्रेमी, अमरकान्त की कहानियाँ (दो भाग) दस प्रतिनिधि कहानियाँ। (आ) उपन्यास- सूखा पत्ता, आकाश पक्षी, काले-उजले दिन, सुखजीवी, बीच की दीवार, ग्राम सेविका, कंटीली राह के फूल, सुन्नर पांडे की पतोह, इन्ही हथियारों से (इ) अन्य- वानर सेना, खूँटा में दाल है, नेउर भाई, सुग्गी चाची का गाँव (बाल तथा अन्य रचनाएँ)।

(33) हिमांशु जोशी :

सुपरिचित रंगकर्मी, पत्रकार और कथाकार। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- अरण्य, छाया मत छूना, मन, कगार की आग, समय साक्षी है, तुम्हारे लिए, सु-राज (आ) कहानी संग्रह- अन्ततः, रथचक्र, मनुष्य चिन्ह, जलते हुए डैने, इक्यावन कहानियाँ, तपस्या तथा अन्य कहानियाँ, प्रतिनिधि कहानियाँ, श्रेष्ठ आंचलिक कहानियाँ, चर्चित कहानियाँ, गंधर्व गाथा, आठवाँ सर्ग, यातना

शिविर में, दस प्रतिनिधि कहानियाँ।

(34) से. रा. यात्री (सेवकराम यात्री) :

जन्म- अगस्त 1933 बरवाला (मुजफ्फरनगर) में। शिक्षा- एन. आर. ई. सी. कालेज, खुर्जा एवं सागर विश्वविद्यालय से राजनीति व हिन्दी साहित्य में एम.ए.। अनेक वर्ष तक काव्य सृजन, बाद में कथा साहित्य का सृजन। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- दराजों में बन्द दस्तावेज, लौटते हुए, चाँदनी के आरपार, बीच की दरार (आ) कहानी संग्रह- दूसरे चेहरे, अलग-अलग अस्वीकार, काल विदूषक, धरातल, केवल पिता।

(35) उषा प्रियंवदा :

हिन्दी की वरिष्ठ कथाकार, इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में पी-एच.डी. दिल्ली के लेडी श्रीराम कालेज और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्यापन के उपरान्त विदेश में अध्ययन और अध्यापन। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- पचपन खंभे लाल दीवारें, रुकोगी नहीं राधिका, शेष यात्रा। (आ) कहानी संग्रह- जिंदगी और गुलाब के फूल, एक कोई दूसरा, मेरी प्रिय कहानियाँ, कितना बड़ा झूठ, शून्य तथा अन्य रचनाएँ (इ) अन्य- शून्य तथा अन्य रचनाएँ, हिन्दी कहानियाँ (अग्रेजी में अनुवाद); मीराबाई, सूरदास अंग्रेजी में लिखित।

(36) शैलेन्द्र सागर :

जन्म- 05 अप्रैल 1951, रामपुर (उ.प्र.)(शिक्षा- एम. ए. (अंग्रेजी)। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- इस जुनून में, मकान ढह रहा है (आ) उपन्यास- चतुरंग, चलो दोस्त सब ठीक है। सम्मान-उ.प्र. हिन्दी संस्थान द्वारा 1995 में पुरस्कार, विजयवर्मा कथा सम्मान-2001, 'कथाक्रम' का सम्पादन। हिन्दी कथा- साहित्य पर केन्द्रित अखिल भारतीय कार्यक्रम 'कथाक्रम' का नियमित आयोजन।

(37) मृणाल पाण्डे :

जन्म- 27 फरवरी 1946 को टीकमगढ़ (म.प्र.) में। शिक्षा- एम. ए. अंग्रेजी, प्रयाग विश्वविद्यालय- इलाहाबाद से, गंधर्व महाविद्यालय से 'संगीत विशारद' तथा कॉरकोरन स्कूल आफ.आर्ट, वाशिगंटन में चित्रकला एवं डिजाइनिंग का विधिवत अध्ययन। प्रयाग, दिल्ली व भोपाल विश्वविद्यालय में कई वर्ष अध्यापन के बाद पत्रकारिता। साप्ताहिक हिन्दुस्तान, वामा, स्टार न्यूज व कादम्बिनी का सम्पादन, दूरदर्शन से सम्बद्ध। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- विरुद्ध, पटरंगपुर पुराण, रास्तों पर भटकते हुए, अपनी गवाही (आ) कहानी संग्रह- दरम्यान, शब्दवेधी, एक नीच ट्रेजेडी,

एक स्त्री का विदागीत, यानी कि एक बात थी, बचुली चौकीदारिन की कढ़ी, चार दिन की जवानी तेरी, हमको दियो परदेस, देवी (इ) अन्य- मौजूदा हालात को देखते हुए, जो राम रचि राखा, आदमी जो मछुआरा नहीं था, चोर निकल के भागा (नाटक); देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास 'काजर की कोठरी' का इसी नाम से नाट्य रूपान्तरण; द सब्जेक्ट इज वूमन (लेख संग्रह); द डॉक्टर्स डॉक्टर (नॉवेल); देवी (उपन्यास-रिपोर्ताज); परिधि पर स्त्री (स्त्री-विमर्श सम्बन्धी निबन्ध संग्रह)।

(38) विद्यावती दुबे :

जन्म- 1960 परैसिया, तहसील-मेजा (इलाहाबाद) में। शिक्षा- एम. ए., बी.एड.,आचार्य। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- शापित यक्षिणी, बरखोजी, सिगरेट की डिबिया (आ) उपन्यास- शेफाली के फूल।

(39) मिथिलेश्वर :

जन्म- 31 दिसम्बर 1950, बिहार के भोजपुर जिले के बैसाडीह गाँव में। शिक्षा- एम. ए.,पी-एच.डी. (हिन्दी)।कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- बाबूजी, बंद रास्तों के बीच, दूसरा महाभारत, मेघना का निर्णय, तिरिया जनम, हरिहर काका, एक में अनेक, एक थे प्रो. बी. लाल, भोर होने से पहले, जमुनी, 10 प्रतिनिधि कहानियाँ (आ) उपन्यास- झुनिया, युद्धस्थल, प्रेम न बाड़ी उपजै आदि। सम्मान- म.प्र. साहित्य परिषद् द्वारा 'मुक्तिबोध' पुरस्कार; निखिल भारत बंग साहित्य सम्मेलन द्वारा राज्य के सर्वोत्कृष्ट हिन्दी लेखन के लिए वर्ष 1983 का 'अमृत पुरस्कार' एवं नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 'साहित्य मार्तण्ड' की उपाधि।

(40) रामधारी सिंह दिवाकर :

जन्म- 01 जनवरी 1945, नरपतगंज, जिला- अररिया (बिहार) में। शिक्षा- एम.ए. (हिन्दी), पी-एच.डी.। निदेशक, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना। समकालीन हिन्दी कहानी के सशक्त हस्ताक्षर। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- नये गांव में, अलग-अलग अपरिचय, बीच से टूटा हुआ, नया घर, चंदे, सरहद के पार, धरातल, मखान पोखर, माटी-पानी, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, वर्णाश्रम (आ) उपन्यास- क्या घर क्या परदेस, काली सुबह का सूरज, पंचमी तत्पुरुष, आग-पानी आकाश, टूटते दायरे।

(41) श्रीलाल शुक्ल :

जन्म- 1925 में, लखनऊ जिले के एक गाँव में। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के

स्नातक, भारतीयप्रशासनिक सेवा में 1983 में सेवानिवृत्त होने के बाद स्वतंत्र लेखन। समकालीन कथा साहित्य और व्यंग्य में विशिष्ट नाम। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- राग दरबारी, विस्रामपुर का संत, अज्ञातवास, राग विराग, उमराव नगर में कुछ दिन, सूनी घाटी का सूरज, सीमाएँ टूटती हैं, आदमी का जहर, पहला पड़ाव, मकान (आ) कहानी संग्रह- 10 प्रतिनिधि कहानियाँ, सुरक्षा तथा अन्य कहानियाँ, इस उम्र में। पुरस्कार- साहित्य अकादमी पुरस्कार 1969 एवं अन्य।

(42) कृष्णा सोबती :

जन्म- 18 फरवरी 1925 को गुजरात, पंजाब (पाकिस्तान) में। शिक्षा- दिल्ली, शिमला और लाहौर में। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- डार से बिछुड़ा, मित्रो मरजानी, यारों के यार, तिन पहाड़, सूरजमुखी अँधेरे के, जिंदगीनामा, जिंदा रुख, समय-सरगम, दिलोदानिश, ऐ लड़की, जैनी मेहरबान सिंह (आ) कहानी संग्रह- बादलों के घेरे (इ) अन्य- हम हशमत (संस्मरण), सोबती एक सोहबत (विविधा), 'डार से बिछुड़ा' और मित्रो मरजानी' का नाट्य रुपांतरण और मंचन। सम्मान-साहित्य अकादमी पुरस्कार 1980, साहित्य शिरोमणि पुरस्कार 1981, ऑनरेरी फैलो (1980-82), पंजाब विश्वविद्यालय पटियाला।

(43) डॉ. विवेकी राय :

जन्म- 19 नवम्बर 1924 को मरौली, बलिया (उ.प्र.) में। शिक्षा- एम.ए.,पी-एच.डी.। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- जीवन परिधि, नई कोयल, गूँगा जहाज, बेटे की बिक्री, कालातीत, चित्रकूट के घाट पर, अतिथि, श्रेष्ठ आंचलिक कहानियाँ (आ) उपन्यास- बबूल, पुरुष पुराण, लोक ऋण, श्वेत पत्र, सोनामाटी, समरशेष है, मंगल भवन, नमामि ग्रामम्, अमंगल हारी, देहरी के पार (इ) अन्य- अर्गला, रजनीगंधा, दीक्षा (काव्य संग्रह); फिर बैतलवा डाल पर, जुलूस रुका है, मनबोध मास्टर की डायरी, नया गाँवनामा, आम रास्ता नहीं है (ललित निबन्ध एवं व्यंग्य); त्रिधारा, किसानों का देश, गुरु गृह गयउ पढ़न रघुराई, स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य और ग्राम जीवन, हिन्दी उपन्यास : उत्तरशती की उपलब्धियाँ (निबन्ध एवं शोध समीक्षा)। पुरस्कार/सम्मान- हिन्दी संस्थान उ.प्र. द्वारा प्रेमचंद पुरस्कार (1987ई.) व साहित्य भूषण सम्मान (1994ई.), बिहार सरकार द्वारा आचार्य शिवपूजन सहाय पुरस्कार (1994ई.), म.प्र.शासन द्वारा राष्ट्रीय शरद जोशी सम्मान (1997ई.), विश्व भोजपुरी सम्मेलन, देवरिया का सेतु सम्मान (2004ई.) और केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा द्वारा महापण्डित राहुल सांकृत्यायन सम्मान सहित अनेक

पुरस्कार।

(44) मोहनदास नैमिशराय :

लेखक और पत्रकार के रूप में प्रतिष्ठित। शिक्षा- मेरठ और दिल्ली में, पत्रकारिता से जुडे। राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में दलित सवालों पर नियमित लेखन और नाट्यकार के रूप में कार्य किया। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- विरोधियों के चक्रव्यूह मे, डॉ. अम्बेडकर, आवाजें। (आ) उपन्यास- मुक्तिपर्व। (इ) अन्य- अदालतनामा (नाटक); बाबा साहेब ने कहा था, आत्मदाह, संस्कृति उद्भव और विकास, अपने-अपने पिंजरे (आत्मकथा); स्वंतत्रता संग्राम के दलित क्रान्तिकारी। पुरस्कार/सम्मान- डॉ. अम्बेडकर स्मृति सम्मान 1993, पत्रकारिता एवार्ड 1993, डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार 1992, वाणिज्य हिंदी ग्रंथ पुरस्कार (भारत सरकार), 1995-96।

(45) असगर वजाहत :

जन्म- 05 जुलाई 1946 को फतेहपुर (उ.प्र.) में। शिक्षा- अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से हिंदी साहित्य में एम.ए.।कृतियाँ- (अ) उपन्यास- सात आसमान, कैसी आग लगाई (आ) कहानी संग्रह- दिल्ली पहुँचना है, स्विमिंग पुल, सब कहाँ कुछ (इ) अन्य- अन्ना की आवाज, ओ जनम्या ही नई, पाक- नापाक, सबसे सस्ता गोश्त (नाटक); हिन्दी-उर्दू की प्रगतिशील कविता (आलोचना); पुरस्कार/सम्मान- साहित्यकार सम्मान, संस्कृति सम्मान, हिन्दी-उर्दू अवार्ड कमेटी सम्मान, कथाक्रम सम्मान 2004।

(46) सत्येन्द्र शरत :

जन्म- 10 अप्रैल 1929 को अमरावती में। शिक्षा एम. ए.।कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- कुहासा और किरण, आस्था, निष्कर्ष (आ) उपन्यास- मृगतृष्णा, स्वयंवर, शापमुक्ति, आकाश कुसुम। इ-अन्य- तार के खम्भे, इन्द्रधनुष, रिहर्सल (एकांकी), प्रतीक (द्वैमासिक) का सम्पादन, आकाशवाणी, दूरदर्शन और फिल्म जगत के साथ ही पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्य का अनुभव।

(47) कृष्णा अग्निहोत्री :

राजस्थान में जन्म। शिक्षा एम.ए. (हिन्दी, अंग्रेजी) पी-एच. डी.। कृतियाँ-(अ) कहानी-संग्रह- टीन के घेरे, विरासत, गलियारे, यही बनारसी रंग बा, पारस, नपुंसक, दूसरी ओर, जिंदा आदमी, जै सियाराम सर्पदंश, पंछी पिंजरे के।(आ)-उपन्यास- बात एक औरत की, बौनी परछाइयाँ, टपरे वाले, कुमारिकाएँ, अभिषेक टेसू की टहनियाँ, निष्कृति, नीलोफर।(इ) अन्य- लगता नहीं है दिल मेरा (आत्मकथा), भीगे मन रीते तन, प्रौढ़ साहित्य, सेवा के मोती (रिपोर्ताज)। सम्मान-राष्ट्रभाषा

प्रचार समिति व म0 प्र0 लेखक संघ भोपाल द्वारा।

(48) जितेन्द्र भाटिया :

जन्म- 1946, शिक्षा- आईआईटी, बम्बई से केमिकल इंजीनियरिंग में पी-एच. डी. कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- रक्तजीवी, शहादतनामा, सिद्धार्थ का लौटना (आ) उपन्यास- समय सीमान्त, प्रत्यक्षदर्शी, जुस्तजू ए निहाँ उर्फ रूणियाबांस की अन्तर्कथा (इ) अन्य- जंगल में खुलने वाली खिड़की (नाटक), रास्ते बंद हैं (नाट्य रूपांतरण)।

(49) चंद्रकान्ता :

जन्म- 1938, श्रीनगर (कश्मीर) में। शिक्षा- एम. ए., बी. एड.। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- अर्थान्तर, अंतिम साक्ष्य, बाकी सब खैरियत है, ऐलान गली जिंदा है, यहाँ वितस्ता बहती है, कथा सतीसर, अपने-अपने कोणार्क (आ) कहानी संग्रह- सलाखों के पीछे, गलत लोगों के बीच, पोशनूल की वापसी, दहलीज पर न्याय, ओ सोनकिसनी, पहाड़ पर वर्षा, कोठे पर कागा (इ) अन्य- विभिन्न भाषाओं में कहानियों का अनुवाद। पुरस्कार- हिंदी अकादमी का साहित्यिक कृति सम्मान एवं अन्य।

(50) मधुकर सिंह :

जन्म- 02 जनवरी 1934 कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- पूरा सन्नाटा, भाई का जख्म, अगनु का पेड, माई, असाढ़ का पहला दिन, कालचक्र कथा, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, माइकल जैक्सन की टोपी (आ) उपन्यास- सबसे बड़ा छल, सोनभद्र की राधा, सीताराम नमस्कार, सहदेवराम का इस्तीफा, जंगली सूअर, मनबोध बाबू, बदनाम, बेमतलब जिन्दगियाँ, कथा कहो कुंतीमाई। (इ) अन्य- मैक्सिम गोर्की व प्रेमचंद की जीवनियाँ, कमलेश्वर : 60 के बाद की कहानियाँ, ग्रामीण जीवन की कहानियाँ (सम्पादन)

(51) हृदयेश (हृदय नारायण मल्होत्रा) :

1930 में जन्म, हिन्दी के सशक्त कथाकार। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- गाँठ, हत्या, सफेद घोड़ा काला सवार, साँड़, नास्तिक (अनुवाद), पुनर्जन्म, दण्डनायक, पगली घण्टी, किस्सा हवेली (आ) कहानी संग्रह- छोटे शहर के लोग, अंधेरी गली का रास्ता, इतिहास, उत्तराधिकारी, अमरकथा, प्रतिनिधि कहानियाँ, नागरिक, रामलीला तथा अन्य कहानियाँ, सन् उन्नीस सौ बीस, उसी जंगल समय में, मेरी प्रिय कहानियाँ पुरस्कार व सम्मान- उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा

एवं प्रतिबद्ध सृजन यात्रा के लिए 1993 के 'पहल सम्मान' से सम्मानित।

(52) सुधाकर अदीब :

जन्म- 17 दिसम्बर 1955, फैजाबाद (उ. प्र.) में, उत्तर प्रदेश सिविल सेवा में कार्यरत, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविता, कहानी, लेख प्रकाशित। सम्पादन और शोध कार्य भी किए। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- अथ मूषक उवाच।

(53) मंजुल भगत :

वर्ष 1970 से लेखन कार्य प्रारम्भ, छिटपुट लेख समीक्षाओं से। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- 1971 में पहली कहानी 'शादी की सालगिरह' नवभारत टाइम्स में प्रकाशित। गुलमोहर के गुच्छे, आत्महत्या से पहले, कितना छोटा सफर, बावन पत्ते और एक जोकर, सफेद कौआ और दूत (आ) उपन्यास- अनारो, खातुल, तिरछी बौछार, बेगाने घर में, टूटा हुआ इंद्रधनुष, लेडीज क्लब। पुरस्कार/सम्मान- उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, हिंदी अकादमी द्वारा सम्मानित।

(54) नीलकांत :

जन्म- 22 मार्च 1942 को बराई (जौनपुर) में। शिक्षा- एम. ए. (दर्शनशास्त्र)। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- एक बीघा गोइंड, बंधुआ रामदास (आ) कहानी-संग्रह-महापात्र, अजगर और बूढ़ा बढ़ई (इ) अन्य- सौन्दर्यशास्त्र की पाश्चात्य परम्परा (निबन्ध), रामचंद्र शुक्ल (आलोचना), अमन का राग (नाटक), हाथ (त्रैमासिक पत्रिका) सम्पादन।

(55) रमेश उपाध्याय :

जन्म- 01 मार्च 1942, शिक्षा- एम. ए., पी-एच. डी.। कृतियाँ (अ) उपन्यास- चक्रबद्ध, दंड द्वीप, स्वप्नजीवी, हरे फूल की खुशबू। (आ) कहानी संग्रह- जमी हुई झील, शेष इतिहास, नदी के साथ, चतुर्दिक, पैदल अँधेरे में, कहाँ हो प्यारे लाल, राष्ट्रीय राजमार्ग, किसी देश के किसी शहर में, बदलाव से पहले, चर्चित कहानियाँ, अर्थतंत्र और अन्य कहानियाँ, दस प्रतिनिधि कहानियाँ। (इ) अन्य- पेपरवेट, सफाई चालू है, बच्चों की अदालत, भारत भाग्य विधाता (नाटक); कम्यूनिस्ट नैतिकता (आलोचना); 'कथन' और 'युग परिबोध' (सम्पादन) एवं अंग्रेजी व गुजराती कहानियों का हिन्दी अनुवाद।

(56) राकेश कुमार सिंह :

जन्म- 20 फरवरी 1960 को गुरहा गाँव, पलामू (झारखण्ड) में। शिक्षा- एम. एस. सी.

(रसायन विज्ञान) ,एल. एल. बी.। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- पठार पर कोहरा, जहाँ खिले हैं रक्त पलाशें, जो इतिहास में नहीं है, यह मुर्दों का गाँव। (आ) कहानी संग्रह- हाँका तथा अन्य कहानियाँ, ओह पलामू!, जोड़ा हारिल की रूपकथा। पुरस्कार/सम्मान- कथाक्रम 2001, कथाक्रम 2002 तथा कथाबिंब 2002 पुरुस्कार कहानियों के लिये।

(57) ममता कालिया :

जन्म- 02 नवम्बर 1940, मथुरा (उ. प्र.) में। शिक्षा- एम. ए. (अंग्रेजी), दिल्ली विश्वविद्यालय से । कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- छुटकारा, एक अदद औरत, सीट नंबर छह, उसका यौवन, प्रतिदिन, चर्चित कहानियाँ, जाँच अभी जारी है, बोलने वाली औरत, मुखौटा, निर्मोही, दस प्रतिनिधि कहानियाँ (आ) उपन्यास- बेघर, नरक दर नरक, प्रेम कहानी, लड़कियाँ, एक पत्नी के नोट्स, दौड़, मानवता के बंधन (समरसेट मॉम के उपन्यास का अनुवाद) (इ) अन्य- खाँटी घरेलू औरत (कविता संग्रह); आत्मा अठन्नी का नाम है, आप न बदलेंगे (एकांकी संग्रह); विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन। सम्मान-सर्वश्रेष्ठ कहानी पुरस्कार, सरस्वती प्रेस इलाहाबाद 1976, उ. प्र. हिंदी संस्थान का यशपाल सम्मान-1985, रचना सम्मान, अभिनव भारती, कोलकता-1990, उ. प्र. हिंदी संस्थान का महादेवी वर्मा अनुशंसा सम्मान- 1998, सावित्री बाई फुले सम्मान- 1999, उ. प्र. हिंदी संस्थान का साहित्य भूषण सम्मान-2002। सम्प्रति- निदेशक, भारतीय भाषा परिषद्, कोलकाता।

(58) राजी सेठ :

जन्म- 04 अक्टूबर 1935 शिक्षा- एम. ए. (अंग्रेजी), भारतीय दर्शन और तुलनात्मक धर्मो पर गुजरात विद्यापीठ से विशिष्ट अध्ययन। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- अंधे मोड़ से आगे, तीसरी हथेली, यात्रा मुक्त। (आ) उपन्यास- तत् सम्। (इ) अन्य- मेरे लईनई (कहानी संग्रह-पंजाबी)

(59) गीतांजलि श्री :

जन्म- 12 जून 1957, मैनपुरी में। शिक्षा- एम. ए., पी-एच. डी.। कृतियाँ- (अ)उपन्यास- माई, हमारा शहर उस बरस, तिरोहित। (आ) कहानी संग्रह- अनुगूँज, वैराग्य। (इ) अन्य-बिटवीन टू वर्ल्डर्स : एन इण्टेलेक्चुअल बायोग्राफी ऑफ प्रेमचन्द्र।

(60) नासिरा शर्मा :

जन्म- 1948, इलाहाबाद में। शिक्षा- एम. ए. (फारसी भाषा साहित्य); हिंदी, उर्दू,

अंग्रेजी व पश्तो पर गहरी पकड़। ईरानी समाज और राजनीति के अतिरिक्त साहित्य, कला व संस्कृति विषयों की विशेषज्ञ। कृतियाँ-(अ) उपन्यास- सात नदियाँ एक समन्दर, शाल्मली, ठीकरे की मँगनी, जिंदा मुहावरे, तुम डाल डाल हम पात पात (आ) कहानी संग्रह- शामी कागज, पत्थर गली, संगसार, इब्ने मरियम, सबीना के चालीस चोर, खुदा की वापसी, इंसानी नस्ल, गूँगा आसमान, दूसरा ताजमहल, बुतखाना (इ) अन्य- जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं (रिपोर्ताज), किताब के बहाने (लेख संग्रह), विभिन्न पुस्तकों का अनुवाद और विभिन्न पत्रिकाओं का सम्पादन।

(61) विभांशु दिव्याल :

जन्म 03 फरवरी 1946, एत्मादपुर (आगरा) में। शिक्षा-एम. ए. (अंग्रेजी) । कृतियाँ- (अ) उपन्यास- मनदेहरी न लाँघ, बचे हुए रास्ते, पिंजरे, परिंदे, नीड़ न आकाश (आ) कहानी संग्रह- तंत्र और अन्य कहानियाँ (पहला कहानी संग्रह)। दैनिक 'राष्ट्रीय सहारा' में सहायक सम्पादकीय सलाहकार।

(62) अरुण प्रकाश :

जन्म- 1948, ग्राम निपनियाँ, बेगूसराय में। व्यंग्य, कविता, नाटक एवं फिल्म विधाओं में लेखन। अनुवाद और गैर साहित्यिक विषयों में रुचि। पेशे से पत्रकार। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- भैया एक्सप्रेस, जल-प्रांतर, उस रात का दुःख, लाखों के बोल सहे (आ) उपन्यास- कोंपल कथा (इ) अन्य- रक्त के बारे में (कविता संग्रह) पुरस्कार- कृष्ण प्रताप स्मृति कथा पुरस्कार एवं दिनकर सम्मान से अलंकृत।

(63) विष्णु नागर :

जन्म- 14 जून 1950 कृतियाँ- (अ) उपन्यास- आदमी स्वर्ग में (आ) कहानी संग्रह- आज का दिन, आदमी की मुश्किल, कुछ दूर, आख्यान, ईश्वर की कहानियाँ (इ) अन्य- मैं फिर कहता हूँ चिड़िया, तालाब में डूबी छह लड़कियाँ, संसार बदल जाएगा, बच्चे, पिता और माँ, कुछ चीजें खोई नहीं (कविता संग्रह); जीव-जंतु पुराण, घोड़ा और घास, राष्ट्रीय नाक, नयी जनता आ चुकी है (व्यंग्य संग्रह); आज और अभी, हमें देखती आँखें, यथार्थ की भाषा (लेख-टिप्पणियाँ); 'कादम्बिनी' के सम्पादक।

(64) नसीम साकेती :

जन्म- 13 जनवरी 1945, मिझौड़ (फैजाबाद) में। शिक्षा- एम. ए. (हिन्दी)।कृतियाँ-

(अ) कहानी संग्रह- सूरज फ्यूज हो गया, अमोघ अस्त्र (आ) उपन्यास- संभवामि युगे-युगे। कई कहानियाँ पुरस्कृत।

(65) अमर गोस्वामी :

जन्म- 28 नवम्बर 1945 को मुल्तान में एक बंगभाषी परिवार में। शिक्षा- एम. ए. (हिन्दी) इलाहाबाद विश्वविद्यालय से। दस कहानी संग्रह, एक उपन्यास तथा बाल साहित्य की दर्जनों पुस्तकें प्रकाशित। बांग्ला से हिन्दी में कई पुस्तकों का अनुवाद, अध्यापन और पत्रकारिता के बाद भारतीय ज्ञानपीठ से सम्बद्ध।

(66) सी. दास. बांसल :

जन्म- 24 सितम्बर 1953 शिक्षा- बी. ए., तीन उपन्यास, पचास कहानियाँ, पचीस से अधिक कविताएँ तथा अन्य रचनाएँ प्रकाशित। 'पड़ाव' और 'सीमाओं से परे' लघुकथा संकलन का सम्पादन। 'बिका हुआ आदमी' प्रथम कथा संग्रह।

(67) पद्मा सचदेव :

जन्म- 16 अप्रैल 1940, पंजीतीर्थ मुहल्ला, पुरमण्डल गाँव (जन्मू) में। डोगरी और हिंदी की सुपरिचित कथाकार, कवयित्री और आंचलिक साहित्यकार। बाहर वर्ष की उम्र से ही लेखन कार्य प्रारम्भ। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- अब न बनेगी देहरी, नौशीन, भटको नहीं धनंजय (आ) कहानी संग्रह- गोद भरी, बूँ तूँ राजी (इ) अन्य- मेरी कविता मेरे गीत, तवी ते झन्हाँ, न्हैरियाँ गलियाँ, पोटा-पोटा निम्बल, उत्तर बैहनी (डोगरी व हिंदी के कविता संग्रह); मितवाघर, दीवानखाना (साक्षात्कार); मैं कहती हूँ आँखिन देखी (यात्रावृत्त); बूँद बावड़ी (आत्मकथा) पुरस्कार/सम्मान- साहित्य अकादमी पुरस्कार, सोवियतलैण्ड नेहरू पुरस्कार, हिंदी अकादमी पुरस्कार, उ. प्र. हिंदी अकादमी का सौहार्द पुरस्कार, जम्मू-कश्मीर सरकार के 'रोब ऑफ ऑनर' और राजा राममोहन राय पुरस्कार से सम्मानित। अनेक देशों की यात्राएँ की हैं।

(68) जया जादवानी :

जन्म- मई 1959 को कोतबा (शहडोल) में। शिक्षा- एम. ए. (हिन्दी, मनोविज्ञान) कृतियाँ- (अ) उपन्यास- तत्त्वमसि, कुछ न कुछ छूट जाता है (लघु उपन्यास) (आ) कहानी संग्रह- मुझे ही होना है बार-बार, अंदर के पानियों में कोई अपना काँपता है (इ) अन्य- मैं शब्द हूँ, अनन्त संभावनाओं के बाद भी (कविता संग्रह), कुछ कृतियों का उर्दू, अंग्रेजी, पंजाबी, बंगाली व उड़िया में अनुवाद।

(69) सतीश जमाली :

जन्म- 7 अगस्त 1940, 1964 से 67 तक व्यवसाय, 1968 से 1976 तक 'कहानी' त्रैमासिक का सम्पादन। 1977 से 1988 तक 'नई कहानी' त्रैमासिक पत्रिका का सम्पादन। 1989 से 'कथा दशक' मासिक पत्रिका का प्रकाशन। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- प्रथम पुरुष, थके हारे, ठाकुर संवाद (आ) उपन्यास- प्रतिबद्ध, तीसरी दुनिया, छप्पर टोला।

(70) राजेन्द्र लहरिया :

जन्म- 18 सितम्बर 1955, सुपावली (ग्वालियर) में। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- आदमी बाजार, यहाँ कुछ लोग थे (आ) उपन्यास- राक्षसगाथा, कुछ कहानियाँ विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनूदित।

(71) सुषमा मुनीन्द्र :

जन्म- 05 अक्टूबर 1959, रींवा में। शिक्षा- विज्ञान स्नातक। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- गृहस्थी। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ और हास्य व्यंग्य प्रकाशित। आकाशवाणी से नाटक प्रकाशित।

(72) संजीव :

जन्म- सन् 1947, ग्राम बांगर कलाँ, सुल्तानपुर में। शिक्षा- बी. एस. सी., ए. आई. सी. (भारत)। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- तीस साल का सफरनामा, आप यहाँ हैं, भूमिका और अन्य कहानियाँ, दुनिया की सबसे हसीन औरत, प्रेतमुक्ति (आ) उपन्यास- किशनगढ़ की अहेरी, सर्कस, सावधान! नीचे आग है, धार, सूत्रधार, जंगल जहाँ शुरू होता है, रानी की सराय (किशोर उपन्यास)।

(73) सुदर्शन नारंग :

जन्म- 28 अप्रैल 1940, कामों की मण्डी, गुजराँवाला (अब पाकिस्तान) में। शिक्षा- बी. ए., एल. एल. बी.। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- उस पार का अँधेरा, दायाँ हाथ, अपने विरुद्ध, एक था केशोराम, खेल-खेल में, कालरात्रि, प्रस्थान, भूमध्यरेखा, रंग महोत्सव। (आ) कहानी संग्रह- हमशक्ल, सिर्फ एक आकाश, इतना बड़ा पुल, गंगाघाट, योद्धा, संधिरेखा। अनेक भारतीय भाषाओं में कहानियाँ अनूदित।

(74) जयनंदन :

जन्म- 20 फरवरी 1956, मिलकी (नेवादा) में। शिक्षा- एम. ए. (हिन्दी)। कृतियाँ-

(अ) कहानी संग्रह- सन्नाटा भंग, विश्वबाजार का ऊँट (आ) उपन्यास- श्रममेवजयते, ऐसी नगरिया में केहि विधि रहना।

(75) जितेन ठाकुर :

जन्म- 05 अक्टूबर 1955, देहरादून में। शिक्षा- डी. फिल (हिन्दी)। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- दहशतगर्द, अजनबी शहर में (आ) उपन्यास- शेष-अवशेष, अभिशप्त (इ) अन्य- चंद साँचे चाँदनी के (कविता संग्रह), कुछ कहानियाँ अन्य भारतीय भाषाओं में अनूदित।

(76) चन्द्रकिशोर जायसवाल :

जन्म- 1940, बिहारीगंज, बिहार में। शिक्षा- एम. ए. (अर्थशास्त्र) कृतियाँ- (अ) उपन्यास- गवाह गैरहाजिर, जीवद का बेटा, युद्ध, शीर्षक (आ) कहानी संग्रह- मैं नहिं माखन खायो, मर गया दीपनाथ, हिंगवाघाट में पानी रे (इ) अन्य- सिंहासन, शृंगार (नाटक)।

(77) विलास गुप्ते :

ग्वालियर में जन्म, पत्रकार, अध्यापक, रंगकर्मी और आंचलिक साहित्यकार। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- राजा नंगा है, आखिरी हथियार, बिना पहिये का रथ, अँधेरा फेंकने वाला टार्च (आ) उपन्यास- हजार हाथों वाला आदमी (इ) अन्य- आदमी का गोश्त, आपके कर कमलों से (नाटक); आधुनिक हिंदी साहित्य को अहिंदी लेखकों का योगदान (शोध-ग्रन्थ)।

(78) लवलीन :

जन्म- 1959, अमृतसर में। शिक्षा- एम. ए., राजस्थान विश्वविद्यालय से। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- सलिल नागर कमीशन आया बनाम समाज सेवा जारी है, सुरंग पार की रोशनी, चक्रवात (आ) उपन्यास- स्वप्न ही रास्ता है, सम्मान- अंतरीप सम्मान, विजय वर्मा कथा पुरस्कार। विभिन्न महिला संगठनों से जुड़ाव।

(79) सूर्यबाला :

जन्म- 25 अक्टूबर 1944, वाराणसी में। शिक्षा- एम. ए., पी-एच. डी.। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- मेरे सन्धिपत्र, सुबह के इन्तजार तक, अग्निपंखी (आ) कहानी संग्रह- एक इंद्रधनुष, जुबैदा के नाम, दिशाहीन, थाली भर चाँद, मानुष गंध, साँझवाती (इ) अन्य- झगड़ा निपटारक दफ्तर (सरल हास्य उपन्यास)। कई रचनाओं का विविध भाषाओं में अनुवाद। आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से अनेक रचनाएँ तथा साक्षात्कार प्रकाशित।

(80) दयानंद पाण्डेय :

जन्म- 30 जनवरी 1958, बेदौली (गोरखपुर) में। शिक्षा-एम. ए. (हिन्दी), पत्रकारिता से जुड़े हुए। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- अपने-अपने युद्ध, दरकते दरवाजे, जाने-अनजाने पुल, लोक कवि अब गाते नहीं (आ) कहानी संग्रह- संवाद, बड़की दी का यक्ष प्रश्न (इ) अन्य- सूरज का शिकारी (बच्चों की कहानियाँ), प्रेमचंद व्यक्तित्व और रचना-दृष्टि (सम्पादित) व विभिन्न पुस्तकों का अनुवाद।

(81) अखिलेश :

जन्म- 1960, सुल्तानपुर (उ.प्र.) में। शिक्षा- एम.ए., इलाहाबाद विश्वविद्यालय से। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- अन्वेषण (आ) कहानी संग्रह- आदमी नहीं टूटता, मुक्ति, शाप ग्रस्त (इ) अन्य- वह जो यथार्थ था (गद्य कृति)। सम्मान- श्रीकांत वर्मा पुरस्कार, वनमाली पुरस्कार, परिमल सम्मान, इंदु शर्मा कथा सम्मान। 'तद्भव' का सम्पादन, प्रकाशन।

(82) कृष्ण देव :

होशियारपुर (पंजाब) में जन्म। शिक्षा- एम. ए. (हिन्दी), पी-एच.डी. (भाषा विज्ञान), पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ से। प्रथम कहानी 'भूखा' 1964 में प्रकाशित। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- माधुरी, कालेज चरित्र (आ) उपन्यास- भाभी और भाई।

(83) धर्मेन्द्र देव :

जन्म 17 सितम्बर 1939, ग्राम रौराकलाँ जिला-रामपुर (उ. प्र.), शिक्षा- एम.ए. (संस्कृत), एल. एल.बी./कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- तरंगिणी, महुआ की नीलामी (आ) उपन्यास- भाग्यवान (इ) अन्य- दुर्भिक्षु, दर्शन, आलोक (खण्डकाव्य); त्रिपथगा, गीत संग्रह, गीता गीत (काव्य-संग्रह)।

(84) सुरेन्द्र गोयल :

जन्म- 22 अप्रैल 1949, गोहाना, जिला-सोनीपत (हरियाणा) में। शिक्षा- स्नातक कृतियाँ- (अ) उपन्यास- अँधेरे दीप, दूसरा पति, सीता वनवास, सत्तावन गज अँधेरा (आ) कहानी संग्रह- कुम्भशतक, तीसरा महायुद्ध, खोया हुआ वर्तमान, शूर्पणखा की नाक, जंगल का न्याय (बाल कहानी) (इ) अन्य- अपना-अपना आज (सम्पादित कहानी संग्रह); लहरों के सोपान (कविता संग्रह); होप एण्ड प्लेजर (अंग्रेजी कविता संग्रह); विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

सम्मान- 1979 में उपन्यास लेखन पर शोभना पुरुस्कार।

(85) हरियश राय :

जन्म- अप्रैल 1954, कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- बर्फ होती नदी, उधर भी सहरा, पहाड़ पर धूप (आ) उपन्यास- नागफनी के जंगल में।

(86) एस. आर. हरनोट :

जन्म- 22 जनवरी 1955, चनावग (शिमला) में। शिक्षा- एम.ए. (हिन्दी), पत्रकारिता एवं लोकसम्पर्क में उपाधि कृतियाँ (अ) उपन्यास- हिडिम्बा (आ) कहानी संग्रह- पंजा, आकाश बेल, पीठ पर पहाड़, दारोश तथा अन्य कहानियाँ। सम्मान- 2003 का अन्तर्राष्ट्रीय इन्दु शर्मा कथा सम्मान, हिमाचल गौरव सम्मान।

(87) कृष्ण भावुक :

जन्म- 17 जनवरी 1941, फिरोजपुर शहर में। शिक्षा- पंजाब विश्वविद्यालय से एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट् (हिन्दी)।कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- पत्थरों के बीच, आज का आदमी, अश्वमेध, दायरे में घूमते लोग, टूटते अभिमन्यु (आ) उपन्यास- पंजाबनामा, हरा दर्पण (इ) अन्य- बाणभट्ट का संघर्ष, माघ के पीले पत्ते (नाटक); अज्ञेय की काव्य चेतना, पंछी आते हैं का रंग सौन्दर्य, भारतीय संस्कृति की महिमा : विविधि आयाम, निराला और दिनकर के काव्य में भारतीय संस्कृति, बीस कहानियाँ : एक अध्ययन, उत्तरशती कविता में राष्ट्रीय एकता (सभी आलोकात्मक एवं समीक्षात्मक ग्रंथ) सम्मान/पुरस्कार- भाषा विभाग, पंजाब के राज्य स्तरीय एवं केंद्रीय हिंदी निदेशालय, दिल्ली सहित पंजाब की वार्षिक साहित्यिक प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत।

(88) विजय :

जन्म- सितम्बर 1938, आगरा में। शिक्षा- बी.एस-सी. कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- हथेलियों का मरूस्थल, जंगल बबूल का, बाँसुरीली, नीलकंठ चुप है, अभिमन्यु की तलाश, गंगा और डेल्टा, किले, घोड़ा बाजार (आ) उपन्यास- साकेत के यूकेलिप्टस, सीमेंट के नगर, लौटेगा अभिमन्यु।

(89) राजेश जैन :

जन्म- 16 जुलाई 1949, शिक्षा- इंजीनियरिंग एवं प्रबंधन में शिक्षा। कहानी, उपन्यास, निबन्ध, नाटक, व्यंग्य, कविता आदि अनेक विधाओं में लेखन। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

(90) नरेन्द्र नागदेव :

जन्म- उज्जैन (म.प्र.) में। शिक्षा- बी. आर्क।कृतियाँ- (अ) उपन्यास- अन्वेषी (आ) कहानी संग्रह- तमाशबीन, उसी नाव में, बीमार आदमी, व्रत, इकरारनामा, वापसी के नाखून।सम्मान- म.प्र. साहित्य परिषद् का कृति पुरस्कार, हिन्दी अकादमी दिल्ली का कृति पुरस्कार।

(91) रवीन्द्र कालिया :

जन्म- 11 नवम्बर 1938, जालंधर में। शिक्षा- एम. ए. (हिन्दी)।कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- नौ साल छोटी पत्नी, सत्ताइस साल की उमर तक, गरीबी हटाओ, चकैया नीम, जरा सी रोशनी, रवीन्द्र कालिया की कहानियाँ, दस प्रतिनिधि कहानियाँ (आ) उपन्यास- खुदा सही सलामत है (दो खंड); ए.बी.सी.डी. (इ) अन्य- कामरेड मोनालिसा, स्मृतियों की जन्मपत्री, सृजन के सहयात्री, गालिब छूटी शराब (संस्मरण); नींद क्यों रात भर आती नहीं, राग मिलावट मालकौंस (व्यंग्य संग्रह); 1992 : वर्तमान साहित्य, कहानी का विशिष्ट सम्पादन। सम्मान- केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय का अहिन्दी भाषी लेखक पुरस्कार, उ. प्र. हिन्दी संस्थान का प्रेमचंद स्मृति सम्मान, हिन्दी संस्थान, म.प्र. अकादमी द्वारा पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी सम्मान-2004। 'वागर्थ' के सम्पादक।

(92) केवल सूद :

बरनाला (पंजाब) में जन्म। शिक्षा- एम.ए. (हिन्दी)। उपन्यासकार, नाटककार, कवि, कथाकार, अनुवादक, सम्पादक तथा फिल्मकार। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- बन्द गलियाँ, खुले दरवाजे, मुर्गीखाना, एकलव्य, विभाजन रेखा (आ) कहानी संग्रह- आदमी अभी तक सो रहा है, धर्मराज (इ) अन्य- रेत के घूँट, कुछ और सोचने दो (कविता-संग्रह); मुर्गीखाना, कटा हुआ बाजू (नाटक); कोई दूसरा चाणक्य, तांडव नाच (पंजाबी कहानी संग्रह)।

(93) कमल शुक्ल :

जन्म- 29 सितम्बर 1927 को मल्लावाँ (हरदोई) में। शिक्षा- हिन्दी, अंग्रेजी तथा उर्दू में उच्च शिक्षा प्राप्त। 250 से अधिक उपन्यास और 150 से अधिक बाल-साहित्य की पुस्तकों की रचना कर चुके हैं। दो उपन्यासों पर दूरदर्शन धारावाहिक भी बन चुके हैं।

(94) प्रेमपाल शर्मा :

प्रशासनिक क्षेत्र से जुड़े हुए यशस्वी कथाकार एवं उपन्यासकार। कृतियाँ- (अ) कहानी

संग्रह- पिज्जा और छेदीलाल, तीसरी चिट्ठी, अजगर करे न चाकरी (आ) उपन्यास- चौराहे (इ) अन्य- आदमी को तलाशते हुए (कविता संग्रह); समय, समाज और संस्कृति (लेख संग्रह)।

(95) मधुर कपिला :

जन्म- जालन्धर (पंजाब) में। 25 वर्ष से पत्रकारिता में सक्रिय। तीन उपन्यास और दो कहानी संग्रह प्रकाशित। पंडित जसराज के जीवन और संगीत पर एक पुस्तक।

(96) शानी (गुलशेर खान शानी) :

जन्म- 16 मई 1933, अनेक भारतीय भाषाओं के अलावा रूसी, लिथुवानिया, चेक तथा अंग्रेजी भाषाओं में रचनाएँ अनूदित। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- काला जल, साँप और सीढ़ी, फूल तोड़ना मना है, एक लड़की की डायरी (आ) कहानी संग्रह- सब एक जगह, भाग 1 व भाग 2, मेरी प्रिय कहानियाँ, (इ) अन्य- शाल वनों का द्वीप (संस्मरण), एक शहर में सपने बिकते हैं (निबन्ध), साहित्य अकादमी की त्रैमासिक पत्रिका 'समकालीन भारतीय साहित्य' का सम्पादन। पुरस्कार/सम्मान- उत्तर प्रदेश सरकार से पुरस्कृत व मध्य प्रदेश के शिखर सम्मान से अलंकृत।

(97) रमणिका गुप्ता :

जन्म-22 अप्रैल 1930, सुनाम (पंजाब) शिक्षा-एम.ए.,बी.एड.। कृतियाँ (अ) उपन्यास- सीता, मौसी, हादसे (आ) कहानी संग्रह- बहू-जुठाई (इ) अन्य- भीड़ सतर में चलने लगी है, तुम कौन, तिल-तिल नूतन, मैं आजाद हुई हूँ, आम आदमी के लिए, खूँटे अब और तक, गीत अगीत (काव्य संग्रह); स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने, दलित हस्तक्षेप, निज घरे परदेसी, दलित चेतना : साहित्यिक और सामाजिक सरोकार, दक्षिण-वाम के कठघरे, असम नरसंहार- एक रपट, राष्ट्रीय एकता, विघटन के बीच (समीक्षात्मक, आलोचनात्मक ग्रंथ); युद्धरत आम आदमी (त्रैमासिक) का सम्पादन।

(98) योगेश गुप्त :

हिन्दी के वरिष्ठ और चर्चित कथाकार, बीस उपन्यास और पाँच सौ से अधिक कहानियों सहित राजनीति और आलोचना की कई पुस्तकें प्रकाशित, दो कहानी-संग्रह अंग्रेजी में अनूदित।

(99) भगवानदास मोरवाल :

जन्म 23 जनवरी 1960, मेवात। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह - अस्सी मॉडल उर्फ सूबेदार, सूर्यास्त से पहले, सिला हुआ आदमी (आ) उपन्यास- काला पहाड़, बाबल तेरा देस में

(इ) अन्य- और दुपहरी चुप है (कविता संग्रह) सहित विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे रचनाएँ प्रकाशित।

(100) राजेन्द्र अवस्थी :

कई वर्षों तक हिन्दी की चर्चित पत्रिका 'कादम्बिनी' के सम्पादक रहे। अनेक उपन्यास और कहानी संग्रह सहित विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ, कविताएँ और आलेख प्रकाशित।

(101) पंकज बिष्ट :

जन्म-20फरवरी 1946, मुम्बई/शिक्षा- एम.ए. (अंग्रेजी)/कृतियाँ- (अ) उपन्यास- लेकिन दरवाजा, उस चिड़िया का नाम (आ) कहानी संग्रह- बच्चे गवाह नहीं हो सकते, टुंड्रा प्रदेश तथा अन्य कहानियाँ, चर्चित कहानियाँ (इ) अन्य- गोलू और भोलू (बाल उपन्यास); योजना, आजकल, समयांतर (सम्पादन); कई भाषाओं मे रचनाएँ अनूदित।

(102) शरद पगारे :

जन्म- खण्डवा (म.प्र.)/शिक्षा- एम.ए. (इतिहास), पी-एच.डी., कृतियाँ- (अ) उपन्यास- गुलारा बेगम, गंधर्व सेन, बेगम जैनाबादी, एक मुट्ठी ममता, सांध्यतारा (आ) कहानी संग्रह- ठहरी हुई जिंदगी, नारी के रूप (इ) अन्य- इतिहास पर दस पुस्तकें। पुरस्कार/सम्मान- 1981-82 में म.प्र. शासन एवं म.प्र. साहित्यकार परिषद्, भोपाल द्वारा 'विश्वनाथ सिंह पुरस्कार', 1998 में म0प्र0 हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा 'वागीश्वरी पुरस्कार' एवं 'अम्बिका प्रसाद दिव्य' पुरस्कार।

(103) देवेन्द्र उपाध्याय :

जन्म- सन् 1945 ई., खुमाण साल्ट (अल्मोड़ा)।कृतियाँ- (अ) उपन्यास- कई एक चेहरे, आँखर, जंगल चीखते हैं (आ) कहानी संग्रह- शहर में आखिरी दिन, एक और वापसी (इ) अन्य- संदर्भ, अजनबी शहर में (काव्य संग्रह); नई रोशनी, कोई न रहे बेकार (लघु उपन्यास); परिभाषा, अनास्था, कूर्मांचल व लोकभूमि का सम्पादन।

(104) मेहरून्निसा परवेज :

हिन्दी की चर्चित और प्रतिष्ठित साहित्यकार। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- आँखों की दहलीज, उसका घर, कोरजा, अकेला पलाश, रमरांगण, पासंग (आ) कहानी संग्रह- आदम और हव्वा, टहनियों पर धूप, गलत पुरुष, फालगुनी, अंतिम चढ़ाई, सोने का बेसर, अयोध्या से वापसी, ढहती कुतुबमीनारें, रिश्ते, अम्माँ, समर, लाल गुलाब, मेरी बस्तर की कहानियाँ।सम्मान/पुरस्कार- पद्म

श्री, 'अ0भा0महाराज वीर सिंह जू देव' पुरस्कार, 'सुभद्राकुमारी चौहान' पुरस्कार, साहित्य भूषण सम्मान और 'भारत भूषण' पुरस्कार सहित कई अलंकरण, व पुरस्कारों से सम्मानित।

(105) बटरोही :

जन्म- 25 अप्रैल 1946 शिक्षा- एम.ए., पी-एच.डी.। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- महर ठाकुरों का गाँव, ठेकदार किसी का नही सुनता (आ) कहानी संग्रह- सड़क का भूगोल, अनाथ मुहल्ले के ठुलदा (इ) अन्य- कहानी रचना-प्रक्रिया और स्वरूप, कहानी संवाद का तीसरा आयाम, टीप (आलोचन)

(106) राजकृष्ण मिश्र :

जन्म- 3 अगस्त 1940, वाराणसी (उ.प्र.)। शिक्षा- बी.ए. (कामर्स), लखनऊ विश्वविद्यालय से, सर्टिफिकेट कोर्स, आल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल वेलफेयर एण्ड बिजनेस मैनेजमेण्ट, कलकत्ता से। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- दारूल शफा, कुतो मनुष्यः (आ) कहानी संग्रह- कामना का क्षितिज (इ) अन्य- चालान, वापसी, वजूद, हेलो (नाटक); कई फिल्मों की पटकथा- लेखन, निर्माण और निर्देशन।

(107) काशीनाथ सिंह :

जन्म- सन् 1936ई., वाराणसी (उ.प्र.)। शिक्षा- एम.ए., पी-एच.डी.। कृतित्व- (अ) कहानी संग्रह- लोग बिस्तरों पर, सुबह का डर, नयी तारीख (आ) उपन्यास- अपना मोर्चा (इ) अन्य- धोआस (नाटक), हिन्दी में संयुक्त क्रियाएँ (शोध प्रबन्ध); विभिन्न देशी-विदेशी भाषाओं में रचनाओं का अनुवाद।

(108) सुषमा जगमोहन :

हिन्दी की नवोदित कथा लेखिका। मधुमती, हंस, इंद्रप्रस्थ भारती, प्रभासाक्षी आदि पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित। हाल ही में 'जिन्दगी ई-मेल' उपन्यास प्रकाशित।

(109) रजनी गुप्ता :

जन्म- 2 अप्रैल 1963, चिरगाँव (झाँसी)। शिक्षा- एम.ए., एम.फिल., पी-एच.डी.। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- कहीं कुछ और, किशोरी का आसमाँ (आ) कहानी संग्रह- एक नई सुबह, हाट बाजार (इ) अन्य- लगभग दो दर्जन कहानियाँ एवं पुस्तक समीक्षाएँ विभिन्न साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। सम्मान- पं. प्रतापनाराण मिश्र स्मृति युवा साहित्यकार सम्मान (2001), उ.प्र. हिंदी संस्थान द्वारा सर्जना पुरस्कार (2001), रेडसन महिला महोत्सव-2003

में मोक्ष इवेंट्स द्वारा श्रेष्ठ साहित्यकार सम्मान।

(110) राजेन्द्र राव :

जन्म- सन् 1944, शिक्षा- मैकेनिकल इंजीनियर। कृतित्व- सात कथा संग्रह और एक उपन्यास के साथ ही दर्जनों रिपोर्ताज, टी. वी. पटकथाएँ और पत्र-पत्रिकाओं में स्तंभ लेखन। सम्प्रति दैनिक जागरण (पुनर्नवा) में साहित्य सम्पादन।

(111) पुन्नी सिंह :

जन्म- 1अगस्त 1939, कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- काफिर तोता, जंगल का कोढ़, मोर्चा, जुम्मन मियाँ की घोड़ी (आ) उपन्यास- पाथर घाटी का शोर, तिलचट्टे, सहराना (इ) अन्य- रेजांगला (नाटक) सहित कई पुस्तकें प्रकाशित।

(112) एख़लाक अहमद ज़ई :

जन्म- 27 दिसम्बर 1959, बलरामपुर में। शिक्षा- एम.ए. (हिन्दी)। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- मामक सार, सोख्ता (आ) कहानी संग्रह- मेढ्की को जुकाम हो गया (इ) अन्य- आपका पत्र मिला (कविता संग्रह) सहित दो लेख संग्रह प्रकाशित। प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में अनवरत लेखन।

(113) नारायण सिंह :

चर्चित कथाकार। लगभग तीन दर्जन कहानियाँ और सौ से अधिक लेख/समीक्षाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। दो कहानी संग्रह और एक उपन्यास प्रकाशित। सम्प्रति भारत कोकिंग कोल लिमिटेड, धनबाद में वरिष्ठ अनुवादक के पद पर कार्यरत।

(114) कमलाकांत त्रिपाठी :

जन्म- 25 फरवरी 1950 को बरसौली (प्रतापगढ़) में। शिक्षा- एम.ए. (राजनीति शास्त्र) कृतियाँ- (अ) उपन्यास- पाहीघर, बेदखल (आ) कहानी संग्रह- जानकी बुआ, अंतराल (इ) अन्य- रोड टु एक्सेलेंस (शोध ग्रंथ), भारतीय राजस्व सेवा में कार्यरत।

(115) सुभाष पन्त :

जन्म-14 फरवरी 1939, शिक्षा- एम.एस-सी., एम.ए.। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- तपती हुई जमीन, चीफ के बाप की मौत, इक्कीस कहानियाँ, जिन्न और अन्य कहानियाँ, मुन्नीबाई की प्रार्थना, दस प्रतिनिधि कहानियाँ (आ) उपन्यास- सुबह का भूला, पहाड़ चोर (इ) अन्य- चिड़िया की आँख (नाटक)।

(116) ज्ञानप्रकाश विवेक :

जन्म- 30 फरवरी 1949, बहादुरगढ़ (हरियाणा) में। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- गली नम्बर तेरह, अस्तित्व (आ) कहानी संग्रह- सात कहानी संग्रह प्रकाशित (इ) अन्य- दरार में झाँकती रोशनी (कविता संग्रह)।

(117) वासुदेव :

जन्म- 16 मार्च 1952 वैशाली में। शिक्षा- पी-एच.डी., डी.लिट.। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- इस जंगल के लोग, नयी बहू की आँखे, पुंश्चली (आ) उपन्यास- सुबह के इन्तजार में।

(118) रामकुमार :

जन्म- 1924, शिमला में। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- घर बने घर टूटे, देर सबेर (आ) कहानी संग्रह- हुस्ना बीबी और अन्य कहानियाँ, एक चेहरा, समुद्र, एक लम्बा रास्ता, मेरी प्रिय कहानियाँ, दीमक तथा अन्य कहानियाँ। सम्मान- अग्रणी भारतीय चित्रकार कालिदास पुरस्कार से सम्मानित।

(119) रमेशचन्द्र शाह :

जन्म- सन् 1937ई., शिक्षा- एम.ए., पी-एच.डी.। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- गोबर गणेश, किस्सा गुलाम, पूर्वापर, जाने अनजाने (आ) कहानी संग्रह- जंगल में आग, मुहल्ले का रावण (इ) अन्य- कछुए की पीठ पर, हरिश्चंद्र आओ, नदी भागती आई, गोलू के मामा (कविता संग्रह); शैतान के बहाने, आडू का पेड़, रचना के बदले, सबद निरंतर (निबन्ध); छायावाद की प्रासंगिकता, समानांतर, वागर्थ, जयशंकर प्रसाद, भूलने के विरुद्ध (आलोचना); माराजाई खुसरो (नाटक); येट्स एण्ड एलिएट : पर्सपेक्टिव्ज ऑन इण्डिया (शोध)।

(120) (श्रीमती) कमल कुमार :

जन्म- पंजाब में। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- पहचान (आ) उपन्यास- अपार्थ (इ) अन्य- बयान, गवाह (कविता संग्रह)।

(121) रूपसिंह चन्देल :

जन्म- 12 मार्च 1951, नौगवाँ, कानपुर (उ.प्र.) शिक्षा- एम.ए. (हिन्दी), पी-एच.डी. कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- पेरिस की दो कब्रें (आ) उपन्यास- रुकेगा नहीं सबेरा (इ) अन्य- यत्किंचित (कविता संग्रह)।

(122) सत्येन कुमार :

जन्म- 20 अप्रैल 1944, दिल्ली। शिक्षा- एम.फार्म.।कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- जहाज तथा अन्य कहानियाँ, बर्फ तथा अन्य कहानियाँ, एक नाम और तथा अन्य कहानियाँ (आ) उपन्यास- छुट्टी का एक दिन (इ) अन्य- एक था बादशाह (नाटक), मंजूर एहतेशाम के साथ सह लेखन, 'कहानियाँ मासिक' का सम्पादन।

(123) शैलेश पंडित :

जन्म- 15 जून 1955, शिक्षा- एम.ए., पी-एच.डी.।कृतियाँ- देश जिंदाबाद (उपन्यास) सहित कई अन्य पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित।

(124) शशिप्रभा शास्त्री :

हिन्दी की चर्चित कथा-लेखिका। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- सीढ़ियाँ, कर्क रेखा, परसों के बाद, क्योंकि, नावें, परछाइयों के पीछे (आ) कहानी संग्रह- अनुत्तरित, दो कहानियों के बीच, पतझड़, धुली हुई शाम (इ) अन्य- कुछ कहानियों का अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं में अनुवाद।

(125) शर्मिला बोहरा जालान :

जन्म- 7 जुलाई 1972, शिक्षा- एम.ए., एम.फिल.।कृतियाँ- (अ) उपन्यास- शादी से पेशतर (आ) कहानी संग्रह- बूढ़ा चाँद (इ) सम्मान- भारतीय भाषा परिषद् कोलकाता द्वारा 2003 में 'युवा पुरस्कार'।

(126) धीरेन्द्र अस्थाना :

जन्म- 22 दिसम्बर 1956 कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- लोग हाशिये पर, आदमखोर, मुहिम, विचित्र देश की प्रेम कथा, खुल जा सिमसिम (आ) उपन्यास- समय एक शब्द भर नहीं है (इ) अन्य- आरम्भ (नाटक)।

(127) रामकुमार ओझा :

जन्म- 8 जुलाई 1926, दार्जिलिंग में। शिक्षा- साहित्यरत्न।कृतियाँ- (अ) उपन्यास- काँटे कंकड़ और इंसान (आ) कहानी संग्रह- करवट, सूरज अभी मरा नहीं (इ) अन्य- निशीथ (कविता संग्रह)।

(128) रमेश गुप्त :

हिन्दी के चर्चित कथाकार। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- शीशे की दीवार, रेत छाया,

कैदखाना, लौटता हुआ अतीत, कफन में लिपटे गुलाब, बैसाखियों पर टिका ईमान (आ) उपन्यास- एक के बाद, रेगिस्तान में, युद्धरत, कठपुतली।

(129) अलका सरावगी :

जन्म- नवम्बर 1960, कोलकाता। कृतियाँ- (अ) उपन्यास- कलिकथा वाया बाईपास, शेष कादंबरी और कोई बात नहीं (आ) कहानी संग्रह- कहानी की तलाश में, दूसरी कहानी (इ) अन्य- रघुवीर सहाय पर शोध-ग्रंथ। पुरस्कार- 'कलिकथा' के लिए वर्ष 2002 का साहित्य अकादमी पुरस्कार।

(130) सिद्धेश :

जन्म- 17 अगस्त 1938, कन्हौली (बिहार) में। शिक्षा- एम.ए. (हिन्दी) कलकत्ता विश्वविद्यालय से। कृतित्व- आठ कहानी संग्रह, दो उपन्यास और दो कविता संकलन प्रकाशित। हिन्दी एवं भारतीय भाषाओं की कहानियों का बंगला में सम्पादन, विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं के सम्पादक/सहायक सम्पादक। सम्मान- 'अपनी भाषा' द्वारा सम्मानित।

(131) शमोएल अहमद :

जन्म- 1950, भागलपुर। हिन्दी व उर्दू में समान रूप से लेखन। कृतियाँ- (अ) कहानी संग्रह- बगोले, सिंगारदान, अलकम्बूस की गर्दन (आ) उपन्यास- नदी, महामारी (इ) अन्य- ज्योतिष पत्रिका 'आज्ञाचक्र' का सम्पादन। बिहार सरकार के लोक स्वास्थ्य अभियंत्रण विभाग में मुख्य अभियंता रहे।

उपरोक्त कथाकारों सहित कृष्ण सुकमार, श्रवणकुमार गोस्वामी, दयानंद अनंत, विजयमोहन सिंह, सुधा अरोड़ा, जगदीश चन्द्र, स्वदेश भारती, देवीशंकर नवीन, हरिमोहन, गोपाल चौरसिया, राजेन्द्र दानी और उर्मिला मिश्रा आदि अनेक साहित्यकारों ने आठवें दशक के बाद के वर्षों में अपनी प्रखर लेखनी और सशक्त कृतियों के माध्यम से हिन्दी कथा-साहित्य को समृद्ध किया है और आज भी रचनाकर्म से जुड़े रहकर कथा-साहित्य को नित नई ऊँचाइयों की ओर ले जा रहे हैं, नए कीर्तिमान स्थापित कर रहे हैं।

आठवें दशक के बाद के वर्षों में हिन्दी कथा-साहित्य के लेखन के क्षेत्र में उतरे साहित्यसेवियों की विपुलता को देखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि पूर्ववर्ती युगों में प्रचलित और स्थापित 'साहित्यकार' के बंध इस दौर में टूटे हैं। चाहे वय:सन्धि काल से

ही रचनाकर्म में प्रवृत्त हो जाने वाले कथाकार हों या अपनी उम्र में आखिरी पड़ाव पर पहुँचकर भी पूरी तन्मयता के साथ उत्कृष्ट कृतियों की रचना हेतु तत्पर वयोवृद्ध साहित्यकार हों, कथा-साहित्य को समृद्ध करने, जीवन के विविध रंगो को कथा-साहित्य में उतारने और समय के सत्य को बेबाकी के साथ अपनी कृतियों में उघाड़कर रख देने हेतु ऐसे रचनाकारों के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार चाहे शिक्षक हो, डॉक्टर या इंजीनियर हो, छात्र-पत्रकार, अधिवक्ता हो, पुलिस-प्रशासन से जुड़ा अधिकारी हो या फिर किसी कार्यालय में कार्यरत अदना सा कर्मचारी हो, पेशेवर साहित्यकारों से इतर हर क्षेत्र से सम्बन्ध रखने वाले ऐसे कथाकारों की उत्कृष्ट साहित्यिक उपलब्धियाँ भी आठवें दशक के बाद के हिन्दी कथा-साहित्य से सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण पहलू है।

आठवें दशक के बाद के वर्षों में कथा साहित्य-लेखन में संलग्न कथाकारों के जीवन-परिचय को प्रस्तुत करते हुए यह कहा जा सकता है कि कृतियों के क्षेत्र में हो या कृतिकारों के सन्दर्भ में, विविधता और व्यापकता का जैसा स्वरूप आठवें दशक के बाद हिन्दी कथा-साहित्य में दिखाई देता है, वह पूर्ववर्ती युगों में संभवतः अप्राप्य ही रहा है।

कथ्य का ताना-बाना :-

कथा-साहित्य के दो महत्त्वपूर्ण साहित्यांग कथ्य और शिल्प होते हैं। इनमें से किसी की भी अनुपस्थिति में कथा-साहित्य के उद्भव की कल्पना नहीं की जा सकती। कथा-साहित्य के उद्भव काल में, जबकि कथाओं और किस्सों की रचना मनोविनोद के लिये की जाती थी या फिर नीति और ज्ञान की बातें बताने के लिये की जाती थी तब कथा-साहित्य का कथ्य पक्ष अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण हो जाता था। किन्तु आधुनिक युग में पाश्चात्य प्रभाव के कारण उद्भूत कथा-साहित्य (उपन्यास और कहानी) में कथ्य का महत्त्व अधिक है। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने भी अर्थ-सघनता के बढ़ने के साथ ही नए काव्य-रूपों के विकसित होने की बात कही है। श्री चतुर्वेदी का मत है कि "अर्थ-सघनता की वृद्धि के फलस्वरूप पहले उपन्यास फिर कहानी और नाटक की उत्पत्ति और विकास हुआ।"[1] प्रकारांतर से इस 'अर्थ-सघनता' को 'कथ्य' ही कहा जाएगा। अर्थ-सघनता का दबाव जब कविता पर पड़ने लगा तो कविता भी गद्यात्मक हो चली। कालिका प्रसाद भी अपने 'वृहत् हिन्दी कोश' में 'कथ्य' का आशय कहे जाने योग्य या 'कथनीय' से प्रकट करते हैं।[2] इस प्रकार 'कथ्य' किसी कहानी या उपन्यास में निहित मूलभाव, विचार समस्या या

चुनौती आदि होती है। प्रगतिशील होते कथा-साहित्य में वैचारिकता और यथार्थ का प्रयोग ज्यों-ज्यों बढ़ता गया उसी अनुपात में 'कथ्य' की प्रभावोत्पादकता बढ़ती गई। समकालीन सामाजिक जीवन की 'कथ्य' से निकटता ही कथा-साहित्य के यथार्थ-बोध का निर्धारण करती है। आदर्शवादी, भाग्यवादी और परम्परावादी समीक्षक व लेखक साहित्य को सामाजिक परिवेश से निरपेक्ष और स्वतंत्र एक विशिष्ट चेतना या भावजगत की उपज मानते हैं, जबकि मार्क्सवादी विचारकों का मत है कि सामाजिक और भौतिक जीवन ही साहित्य का उद्‌गम है। मार्क्सवाद, सामाजिक जीवन के गहन यथार्थ को बेबाकी के साथ उघाड़ देने वाले साहित्य को ही जीवन्त, श्रेष्ठ और सार्थक मानता है। यद्यपि मार्क्सवादी विचारों की परिधि से इतर पौराणिक ऐतिहासिक आख्यानों और साहित्य के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता तथापि विगत तीन-चार दशक पूर्व में रचे गए कथा-साहित्य को विशिष्टता प्राप्त होने का कारण उसकी विस्तृत दृष्टि और खुले कथ्य में गहन परिवेशगत यथार्थ का चित्रण ही है। यथार्थ चित्रण और नयापन लाने की प्रवृत्ति ने कथाकारों को दर्शक मात्र बना दिया, जो दूर से बैठकर घटित यथार्थ को देखता और लिख देता। इस प्रकार कथा-साहित्य का कथ्य भोगे हुए यथार्थ का लेखा जोखा होने के बजाय देखे हुए यथार्थ का, नये अनुभव और परिवेश का विवरण मात्र रह गया। उत्तर-आधुनिक युग में होने वाले बदलावों ने सबसे पहले कथ्य के इसी बंध को तोड़ा। इसके अतिरिक्त जीवन की बढ़ती जटिलताओं, संघर्ष, यंत्रणाओं, त्रासदियों और वैज्ञानिक-तकनीकी-औद्योगिक क्रान्ति ने भी बहुत कुछ बदलकर रख दिया।

विवेच्य कालखण्ड अर्थात् आठवें दशक के बाद उपन्यास और कहानियों के कथ्य में यह बदलाव खुलकर सामने आ जाता है। आज का कथाकार यथार्थ को दूर से बैठकर नहीं देखता, बल्कि उसे भोगता है। सामाजिक जीवन और वैयक्तिक जीवन के दैनन्दिन कार्यो के बीच कथाकार को जो भी नया अनुभव मिलता है, वही कथा-साहित्य का कथ्य बन जाता है। यद्यपि विचक्षणता (विज़न) के अभाव में कथ्य और परिवेश के दायरे सिमट जाने के कारण कुछ कथाकारों की कुछ रचनाएँ प्रभावोत्पादक और अविस्मरणीय नहीं रहीं हैं, तथापि आठवें दशक के बाद के तमाम कथाकारों ने अपने कृतित्व द्वारा हिन्दी कथा-साहित्य को समृद्ध किया है।

समसामयिकता और नवीन युगबोध से सम्पृक्त, विज्ञान-तकनीक-सूचना क्रांति और परमाणु विज्ञान के विकास के फलस्वरूप उत्पन्न गतिशीलता, स्वातंत्र्य चेतना, तार्किकता,

भावुकता, यथार्थ परकता, औपचारिकता, यांत्रिकता, दिशाहीनता, व्यस्तता, निराशा, संत्रास, कुंठा, अजनबीपन और उदासीनता,: भाग्यवाद की अपेक्षा कर्मवाद का प्राधान्य और इस प्रकार आत्मनिर्णय में विश्वास और मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा; नवीन चुनौतियों से जूझने की जिज्ञासा और प्रश्नाकुलताओं के कारण पुरातन मान्यताओं, आदर्शों और सिद्धान्तों को नकारकर नवीनता की स्थापना; रोमानियत का त्याग कर आधुनिक बनने और भूख, गरीबी, बेकारी जैसे जीवन के मूलभूत और ज्वलंत प्रश्न विवेच्य कालखण्ड की कहानियों और उपन्यासों में कथ्य के रूप में प्रमुख तौर से उभरे हैं। ऐसे उपन्यास और कहानियों ने प्रश्नों का समाधान भले ही न सुझाया हो, लेकिन सार्थक परिणाम तक अवश्य पहुँचाया है।

इस अवधि में ऐतिहासिक और पौराणिक आख्यानों से जुड़ी रचनाएँ भी सामने आई हैं, कुछ का परिवेश तो समसामयिक नहीं है, किन्तु कुछ रचनाएँ ऐसी भी हैं, जिनमें ऐतिहासिक तथ्यों और घटनाओं को बिम्ब बनाकर आज के बारे में कहा गया है, समसामयिक समस्या को उकेरा गया है। ऐसे सभी उपन्यास और कहानियों के कथ्य पर विस्तृत विवेचन अगले अध्यायों में किया जाएगा।

सन्दर्भ

1. रामस्वरूप चतुर्वेदी : हिन्दी गद्य : विन्यास और विकास, पृ. 98

2. कालिका प्रसाद : वृहत् हिन्दी कोश, पृ. 237

अध्याय : चतुर्थ

आठवें दशक के बाद की कहानियों के कथ्यात्मक चिंतन के सन्दर्भ

[4]

आठवें दशक के बाद की कहानियों के कथ्यात्मक चिंतन के सन्दर्भ

पूर्ववर्ती अध्यायों में हिन्दी कहानी के उद्भव से लेकर उसकी विकास-यात्रा का, कहानीकारों के संक्षिप्त परिचय का एवं कथ्य के ताने-बाने का अध्ययन किया। आठवें दशक के बाद के युगीन परिदृश्य को भी पूर्ववर्ती अध्याय में जानने-समझने का प्रयास किया गया है। आठवें दशक के बाद जीवन की जटिलताएँ बढ़ती चली गईं, समाज की व्यवस्था बदल गई; राजनीति में भ्रष्टाचार, अपराधीकरण, स्वार्थलिप्सा और धन का बोलबाला हो गया; धर्म और जाति के नाम पर विद्वेष, आतंक, अलगाव और झगड़े-दंगे फैलाने वालों का वर्चस्व हो गया; वैश्वीकरण, आधुनिकता, बाजारीकरण और भौतिकता ने न केवल सुखी-समृद्ध जीवन की परिभाषाएँ बदल दीं वरन् मानसिक अवसाद, अपराध, मनोविकृतियों, सनक और पागलपन को बढ़ावा दिया; टूटते-बिखरते आदर्शों, सिद्धान्तों, सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यताओं की विकृति और 'पॉप कल्चर' के आगमन ने शहरों में ही नहीं बल्कि गाँवों में भी सामाजिक व्यवस्था को इतने भीतर तक तोड़ कर रख दिया कि परिवार के दायरे भी सिकुड़कर रह गए।

कुल मिलाकर सामान्य व्यक्ति हो या विशिष्ट व्यक्ति, जीवन की दुरूहताओं और विषमताओं से बचकर नहीं निकल सकता। ऐसी स्थिति में कहानीकारों का बच पाना तो संभव ही नहीं है। इसीलिए आज की कहानी में जीवन के विविध आयाम समग्र यथार्थ के साथ परिलक्षित होते हैं। इसका महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि आज के कथाकार वर्तमान जीवन के यथार्थ के मात्र दृष्टा और भोक्ता नहीं हैं, वरन् इस व्यवस्था के अंग भी हैं। लिहाजा उन्होंने अपने भोगे हुए यथार्थ को कहानियों के कथ्य के रूप में सामने ला दिया है।

आठवें दशक के बाद की कहानियों के कथ्यात्मक चिंतन के विविध संदर्भों के अध्ययन के लिए आठवें दशक के बाद के प्रतिनिधि कहानीकारों की सभी कृतियों के बजाय सभी कहानीकारों की प्रतिनिधि रचनाओं का समावेश करना सर्वथा विषयानुकूल, समीचीन और व्यावहारिक होगा, साथ ही व्यापक दृष्टिकोण के साथ विविध आयामों से किये गए अध्ययन द्वारा प्राप्त निष्कर्ष भी विषय की व्यापकता और प्रामाणिकता के अधिक निकट होंगे। अतः आठवें दशक के बाद के चर्चित-अल्पचर्चित-अचर्चित सभी कथाकारों की प्रतिनिधि कहानियों के कथ्यात्मक चिन्तन को निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा रहा है-

(क) जीवन की जटिलताएँ और समस्याएँ

(ख) व्यवस्था विरोध, चिंता और घृणा (धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक)

(ग) टूटते-बिखरते युवा

(घ) मानसिक उद्वेलन और आवेग

(ङ) स्त्री-पुरुष के मध्य सम्बन्ध

(च) नारी के प्रति दृष्टिकोण

(छ) विविध अन्य

(क) जीवन की जटिलताएँ और समस्याएँ :-

आठवें दशक के बाद की कहानियों में जटिल से जटिलतर होते जीवन, जीवन जीने की मजबूरियों, भूख, अभाव और बेकारी के साथ ही साथ आर्थिक असमानताओं और गरीबी का बेबाक चित्रण हुआ है। *वल्लभ सिद्धार्थ* की कहानी *इक्कीसवीं शताब्दी की ओर* का बूढ़ा बाप अपने पेट की भूख मिटाने के लिए अपने सामने बेटी को तन बेचते हुए देखने को मजबूर होता है।

वृहद अर्थो में कहानी के पात्र- अधेड़ बाप, बेटी नंदिनी, पुरुष और तीन बच्चे- राजे, अन्नी और पुरु मिलकर पूरे राष्ट्रीय चरित्र को प्रस्तुत करते हैं, जिसमें देश का नेतृ वर्ग (अधेड़) देश की आजादी (नंदिनी) को बार-बार पूँजीपति और शोषक वर्ग (पुरुष) के समक्ष भोगे जाने के लिए प्रस्तुत करके अपने भोजन के लिए जुगाड़ करता है। देश की अभावग्रस्त, निरीह, अधिकारविहीन जनता (बच्चे) अपने हक की रोटी छिनते हुए देखकर अपने अधिकारों की माँग करके किसी भी तरह कुछ भी पाकर संतुष्ट हो जाते हैं और सब कुछ जानते हुए भी कुछ पाने की लालसा में आँखे मूँदे रहते हैं। वल्लभ सिद्धार्थ की कहानी 'चौबीसवाँ नरक' वर्तमान जीवन की विसंगतियों के साथ ही साथ भ्रष्टाचार के कारण दुष्कर होते जीवन की जटिलताओं को उजागर करती है। कहानी के पात्र द्वारा संसद में फैले भ्रष्टाचार पर की गई टिप्पणी 'चौबीसवें नरक' से साक्षात्कार करा देती है।

राजेश शर्मा की कहानी का *नया कानून* भीख माँगने को अपराध घोषित करता है। पूँजीपतियों, अफसरों और नेताओं के यहाँ आए दिन उत्सव होते हैं, बढ़िया पकवान और साज-सज्जा के लिए लाखों रुपए खर्च किये जाते हैं और दूसरी ओर समाज का बड़ा वर्ग दो

रोटी और तन ढँकने के लिए कपड़े को मोहताज रहता है। *नया कानून* की भिखारिन ने अपनी जवान बेटी का तन ढँकने के लिए मंत्री के दरवाजे से पर्दा चुराया, बदले में चौकीदार ने उसकी बेटी को इतना मारा कि वह मर गई और भिखारिन जेल में तड़पकर मर गई। इसी प्रकार *महावीर राजी* की कहानी *शिनाख्त* गरीबी और बेकारी के ज्वलन्त आयाम की शिनाख्त करती है, जिसमें पत्नी अपने पति की नौकरी और गरीबी से निजात पाने के लिए सीमाओं को लाँघकर अपना तन भी बेच देने को मजबूर हो जाती है।

हृदयेश की कहानी *नगर गाथा* का नगर अधकचरे विकास और अधकचरी आधुनिकता को ढोते हुए पुरातनता व नवीनता के बीच संक्रमण के दौर में घिसट रहा है, आधुनिक बनने के नाम पर असमानताएँ बढ़ती जा रहीं हैं। गुटबाजी, भ्रष्टाचार, हताशा बढ़ रही है संक्रमण के दौर में फँसे ऐसे कई 'नगरों' की गाथा वर्तमान का यथार्थ है। नगरीय और ग्रामीण जीवन की त्रासदी पलायन की स्थितियाँ पैदा कर देती हैं लेकिन वहाँ से भाग पाना संभव नहीं होता। *कमलचन्द्र वर्मा* की कहानी *कल्पना और यथार्थ* का पात्र रतनलाल शहर की आपाधापी, भागदौड़, लूटखसोट और बेईमानी से आजिज आकर गाँव जाना चाहता है, जबकि गजानन्द को गाँव में फैली गरीबी, अशिक्षा और बेकारी शहर जाने के लिए प्रेरित करती है दोनों की इच्छाएँ कल्पना बनकर ही रह जाती हैं।

राजकमल की कहानी *फिर भी* आधुनिक समाज की पाशविकता और मिटती इंसानियत के साथ ही सभ्य होने के नाम पर निरंतर असभ्य और बर्बर होते जा रहे समाज का यथार्थ प्रस्तुत करती है।

इसी तरह की कई कहानियों में जीवन की जटिलताओं और विद्रूपताओं का बेबाक प्रस्तुतीकरण हुआ है। आठवें दशक के बाद की कहानियों के कथ्यात्मक चिन्तन के सन्दर्भ में जीवन की जटिलताओं और समस्याओं को निम्न बिंदुओं के अंतर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है-

(1) आर्थिक असमानताएँ और गरीबी

(2) महँगाई

(3) भूख

(4) बेरोजगारी

(5) आधुनिकता और नैतिकता

(6) भौतिकतावाद और बाजारीकरण के दुष्प्रभाव एवं मानवीय सम्बन्धों के विघटन की स्थितियाँ

(7) भ्रष्टाचार और सिद्धान्तों की बलि

(8) नगरीय और महानगरीय जीवन की त्रासदी

(9) गाँवों का बदलता स्वरूप और ग्रामीण जीवन की त्रासदी

(1) आर्थिक असमानताएँ और गरीबी :-

समाज में आर्थिक असमानता के कारण अमीर-गरीब व पूँजीपति-मेहनतकश के बीच मानवीय सम्बन्ध नहीं, बल्कि अविश्वास और घृणा होती है। आर्थिक असमानता के कारण उपजी यही विकृत सोच *रजनी गुप्ता* की कहानी *नियुक्ति-पत्र* में उजागर हुई है। *विलास गुप्ते* की कहानी *कुत्ता-दर-कुत्ता* के बत्रा साहब अपनी सेवा-खुशामद के लिए, सुरक्षा और लड़ाई-झगड़े के लिए कुछ लोगों को कुत्ते की तरह पाले हुए हैं, जिन्हें घर का बचा हुआ खाना और पुराने कपड़े देकर उपकृत करते रहते हैं। बत्रा साहब की पत्नी द्वारा बिहरवा को रॉकी के पुराने कपड़े देते समय बत्रा साहब की आँखों में उपकृत करने वाली चमक उभर आती है, जो बाहरी कुत्ते को बची-खुची रोटी खिलाते समय उभर आयी थी। कमोबेश यही स्थितियाँ विलास गुप्ते की कहानी 'सिर्फ एक और' में भी प्रकट हुई हैं।

आम और खास के बीच की असमानता को *महेश कटारे* ने अपनी कहानी *मुर्दा स्थगित* में नए तरीके से पेश किया है। माननीयों की बेटी की शादी में निकलने वाली शाही सवारी के लिए पूरे शहर को सजाने में अनाप-शनाप रकम खर्च की गई। इस वर्ष को सरकार ने 'सूखा वर्ष' घोषित किया है लेकिन गरीब किसानों और भूखों मरने वाले परिवारों को सहायता देने के बजाय बेतहाशा धन खर्च करके गाँवों से मिट्टी लाकर और पेड़-पौधों की डालियाँ रोपकर शहर में हरियाली दिखाने का प्रयास किया गया है। ''कई स्वागत द्वार तो इतने कीमती कि जिनकी लागत में बेचारे बापों की दो-दो लड़कियाँ निपट जायें।''[1] गरीब की बदबू मारती लाश की अंतिम क्रिया से ज्यादा महत्त्वपूर्ण शाही सवारी है इसीलिए शाही सवारी के निकलने पर मुर्दे को छिपा दिया जाता है। सिर मुँड़ाए और सफेद धोती पहने हाथ में फूल लिए खड़ा मृत बाप का बेटा माननीय की ओर फूल उछाल देता है, मानों असली मुरदा वही हो। *कुन्दन सिंह परिहार* की कहानी *संकट* में रिक्शा चालक चंपतलाल के ऊपर सबसे बड़ा संकट फटे नोट को

लेकर है, जिसे रईस बाप की औलाद दीपक ने तुरंत दूर कर दिया, फटे नोट के बदले दूसरा नोट दे दिया और फटे नोट के चार टुकड़े करके फेंक दिया। दीपक के लिए उस नोट की कोई अहमियत नहीं थी, जिसके लिए चंपतलाल परेशान था। *विश्वमोहन* की कहानी *अर्थतंत्र* में पूँजीपति और मेहनतकश के बीच के अन्तर को प्रकट किया गया है। मेहनतकश जिंदगी भर मेहनत ही करता रहता है और पूँजीपति सुख भोगते हैं।

नसीम साकेती की कहानी *सूरज फ्यूज हो गया* में कार्य एवं पद के कारण उपेक्षा और असमानता के व्यवहार को भोगते व्यक्ति की व्यथा-कथा है। वह एक साधारण क्लर्क है जबकि उसका बड़ा भाई केन्द्रीय सरकार का गजटेड आफीसर है। इसलिए जब बड़ा भाई गाँव जाता है तो गाँव और घर-परिवार के लोग बड़े भाई का जितने उल्लास से स्वागत सत्कार करते हैं उतनी ही उपेक्षा और तिरस्कार उसके हिस्से में आता है। असमानता के कारण उपेक्षा और तिरस्कार भोगते-भोगते लोग अपने जैसे लोगों के सामने भी गरीबी और बेबसी को प्रकट नहीं होने देना चाहते। *डॉ. अशोक गुजराती* की कहानी *अंगुलीहीन हथेली* का रस्वीर और उसके दोस्त एक दूसरे से इसीलिए अपनी बेबसी और लाचारी को छिपाते हैं। लेकिन *अरुण प्रकाश* की कहानी *तुम्हारा सपना नहीं* का चुन्नी इस असमानता के कारण मिलने वाली उपेक्षा का मुँहतोड़ जवाब देता है। भल्ला लम्बी कमाई करने के बावजूद जीवन की जरूरतों को पूरा नहीं कर पाता है अपने लिए एक मकान तक नहीं बनवा पाता जबकि चुन्नी कम आमदनी में ही, गंदी जगह में ही सही, हर संभव प्रयास करके अपने लिए खोली का इंतजाम कर लेता है।

सूर्यबाला की कहानी *सजायाफ्ता* के पात्र के लिए उसकी गरीबी नहीं बल्कि भौतिकता, दिखावा और शानो-शौकत अभिशाप बन जाती है क्योंकि उसकी बहन की ससुराल की आर्थिक स्थिति की अपेक्षा उसकी आर्थिक स्थिति बुरी और दयनीय है इस कारण बहन की ससुराल वालों की शानो-शौकत और अमीरी के आगे वह स्वयं को तुच्छ और उपेक्षित समझे जाने की मानसिक उथल-पुथल में जीता है। *संतोष दीक्षित* की कहानी *कचरे में लिपिस्टिक* अभाव और गरीबी में जीने की विवशता के बीच पनपते वर्गीय विरोधाभास की विद्रूपताओं को उजागर करती है-"उस पार सुख, समृद्धि और ललक है, इस पार दुख, गरीबी और हताशा। उस पार फेयर और स्लिम होने की प्रतिस्पर्धा है, इस पार तन को पीसने और ढँकने की विवशता। आज का शहर विरोधाभासों का अजायबघर बन चुका है। यहाँ बाइस्कोप भी है और इण्टरनेट भी। बैलगाड़ी भी

है और बी. एम. डब्ल्यू. भी। चलाजोर गरम है तो हांट-डांग भी।"[2]

उच्च वर्गीय लोगों के लिए निम्न आर्थिक स्थिति वाले लोग जितने हेय और तिरस्कृत होते हैं उतने ही उनसे ऊँचे आर्थिक स्तर वाले पूज्यनीय होते हैं। मानवीय दृष्टिकोण के बजाय आर्थिक स्तर पर लोगों को तौलने और उसी के अनुरूप व्यवहार करने, रूआब झाड़ने और दिखावा करने की होड़ को प्रदर्शित करती है– *प्रेमपाल शर्मा* की कहानी *मेड इन इंग्लैण्ड*। *दिनेश पाठक* की कहानी *वह आदमी* में भी यही स्थितियाँ प्रकट होती हैं। और इस कहानी के आगे की कथा *पाठक जी* की ही कहानी *किसके लिए* में चलती हुई दिखाई देती है। आर्थिक सम्पन्नता और ऐशो-आराम की ढेरों चीजों के बीच आत्मीयता, मानवीय संवेदना और सहजता छूट जाने के बाद भौतिक सुख-साधन और धन-दौलत शेष बचते हैं। कहानी प्रश्न उठाती है कि आत्महंता जीवन में भौतिक सुख साधन आखिर 'किसके लिए' हैं? *अचला नागर* की कहानी *अनुत्तरित* भी धन की होड़ में भागते जीवन में अनुत्तरित रह गये प्रश्नों को तलाशने का प्रयास करती है।

समाज में व्याप्त आर्थिक असमानताओं और गरीबी के कारण विघटन, बिखराव और नैतिकता के पतन की स्थितियों के साथ ही उपजी तमाम विद्रूपताओं और खामियों को इस दौर की कहानियों में विदग्धता के साथ प्रकट किया गया है।

(2) महँगाई :-

बेतहाशा बढ़ती महँगाई में मजदूर और अल्प वेतनभोगी अपनी मनोकांक्षाओं की पूर्ति कर पाना तो दूर, जीवन की जरूरतें भी पूरी नहीं कर पाते। संयुक्त परिवार में रहते हुए कम आय पर अधिक खर्च और महँगाई के कारण नवयुगल द्वारा मनोकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर पाने की इसी त्रासदी को *प्रताप दीक्षित* की कहानी *डबल बेड* उजागर करती है। कहानी के दम्पत्ति की त्रासदी आज के हर मध्यमवर्गीय परिवार की त्रासदी है। महँगाई की मार सुखी और संपन्न दाम्पत्य जीवन के स्वनों को धूल-धूसरित कर देती है।

बढ़ती महँगाई के साथ ही परिवार और रिश्तेदारी में धन और दिखावे के बढ़ते वर्चस्व के पीछे भागते हुए, जी-तोड़ मेहनत के बावजूद कम वेतन मिलने पर दूसरे रास्तों से धन कमाने की इच्छा भ्रष्टाचार को भी बढ़ावा देती है। इसी कारण ईमानदार से भ्रष्ट होने को मजबूर व्यक्ति की मानसिकता *अचला नागर* की कहानी *वंचित* में उजागर होती है। जबकि *कृष्ण भावुक* की कहानी *व्यक्तित्व* का प्रोफेसर महँगाई की मार को झेलता रहता है लेकिन अपने सिद्धान्तों से

नहीं डिगता, हालाँकि इस कारण उसे उपेक्षा का भी शिकार होना पड़ता है। यह उपेक्षा समाज में ही नहीं वरन् परिवार में भी भोगनी पड़ती है। बेतहाशा महँगाई और छोटी नौकरी में मिलने वाला अल्प वेतन तमाम आकांक्षाओं और सपनों पर पानी फेर देता है। *नसीम साकेती* की कहानी *नववर्ष* में इसी कारण परिवार की उपेक्षा का शिकार होते व्यक्ति की कथा है। उसे नववर्ष के आगमन की ख़ुशी किस बात पर हो,जबकि उसे पहली जनवरी को मिलने वाला वेतन उधारी चुकाने में ही चुक गया और बच्चों के लिए मिठाई भी नहीं ला सका। *क्रांति त्रिवेदी* की कहानी *बचत धन* भी महँगाई की मार से टूटे हुए परिवार की व्यथा-कथा कहती है।

कृष्ण सुकुमार की कहानी *मदारी* में भी महँगाई की मार से आहत परिवार की व्यथा उजागर की गई है। कहानी में महँगाई और अभाव से आहत बच्चे कल्पना करते हैं कि किसी मदारी की तरह जादू से उनके पापा के पास भी इतने पैसे हों कि अभाव न रह जाए। बच्चों की संवेदनशीलता और परिस्थितियों को परखने की उनकी दृष्टि खेल के अंत में मदारी द्वारा भीख माँगते देखकर कटु यथार्थ में केन्द्रित हो जाती है। बच्चे अभाव में जी लेना चाहते हैं लेकिन खेल के मदारी की तरह अपने पापा को भिखारी बनते नहीं देखना चाहते।

कमर तोड़ महँगाई के कारण दुष्कर होते जीवन, जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के अभाव में जीने की मजबूरी, पारिवारिक विघटन और विकृतियों के साथ बच्चों की मनःस्थिति पर पड़ते दुष्प्रभावों को समग्रता के साथ कहानियों में उजागर किया गया है।

(3) भूख :-

आर्थिक असमानता, गरीबी और महँगाई के साथ जुड़ा हुआ अहम पक्ष भूख का भी है। देश के असीमित (तथाकथित) विकास के बावजूद आज भी अनेक लोग दो वक्त की रोटी के मोहताज हैं। *नीरजा माधव* की कहानी *अभी ठहरो अंधी सदी* में इसी ज्वलंत और मार्मिक समस्या को, सरकार की जनकल्याणकारी योजनाओं के पीछे छिपी असलियत और समाज की त्रासद विडम्बनाओं को उजागर किया गया है। कहानी के पात्र- नथई मुसहर, उसकी बीबी परकलिया, जवान होती बेटी सेचनी व बेटा जगना के लिए सरकारी आरक्षण और कल्याणकारी योजनाओं का कोई मतलब नहीं है क्योंकि उन्हें तो अपनी भूख शांत करने के लिए परिश्रम करते हुए दिन गुजार देना होता है। खेतों की कटाई के बाद पड़े रह गए अनाज को बीनकर, जानवरों के गोबर में से अनाज निकालकर और शादी-बारातों में लुटाए गए पैसों को बीनकर नथई

मुसहर और उसका परिवार अपना पेट भरता है। *शिवकुमार शिव* की कहानी *मुरदा* के पात्र छोटू और उसके उस्ताद को संतुष्टि है कि वे तो मुरदा होने का ढोंग करके मुरदों के नाम पर अपना पेट पाल रहे हैं, यहाँ लोग मुरदों की सहानुभूति से सरकार बना रहे हैं, देश चला रहे हैं।

पेट की आग शांत करने के लिए *हसन जमाल* की कहानी *शर्मगाह* की रूबीना को इस्लाम धर्म के निर्देशों को तोड़ देना पड़ता है। लड़ाई में मारे जा चुके अपने परिजनों की मौत के बाद घर में कोई कमाने वाला नहीं बचा, लिहाजा बच्चों को भूख से तड़पते देखकर चंद डालरों के लिए अपना तन तो बेच देती है लेकिन उसका मन कचोटता रहता है। इसीलिए "तिलावत करते-करते रूबीना चिल्ला उठी- किसकी हिफाजत करूँ मेरे रब? अपने व अपने बच्चों के साथ पेट क्यों बनाया?"[3]

भूखों मरने की स्थितियाँ पारिवारिक बंधन और मर्यादाओं को भी तोड़ देती हैं। पेट की आग शांत करने के लिए तन बेचने वालियों और उनकी दलाली करने वाले पति और भाइयों की मजबूरी को *सूरज प्रकाश* ने अपनी कहानी *आँख मिचौली* में बड़ी बेबाकी से उघाड़ा है। कहानी में सर्वे टीम के पीछे-पीछे चलती वेश्याओं और उनके परिवार के खेमे को देखकर कैम्प अधिकारी उलझन में पड़ जाता है और सर्वे टीम के पीछे छिपते-छिपाते चलते हुए वेश्याओं के खेमे की असलियत जानना चाहता है। उसका खानसामा बताता है कि "इस पूरे इलाके में बहुत गरीबी है। पेट भरना ही मुश्किल होता है। पानी न होने की वजह से खेती-बाड़ी होती नहीं, काम न होने से आदमी और भी नाकारा हो गए हैं। एक दो रूपये मिल जाये कहीं से तो उसकी भी दारू पी लेते हैं। पेट की आग ही उन्हें यहाँ खींच लायी है। अब आगे-आगे हमारा कैंप होगा और पीछे-पीछे उनके कैंप। हर साल ऐसा ही होता है, साब।"[4] कमोबेश यही स्थितियाँ *से. रा. यात्री* की कहानी *भूख* में भी दिखती हैं। कहानी का चरन भी अपने पेट की भूख मिटाने के खातिर इवा की यौनेच्छा की पूर्ति करने हेतु स्वयं को समर्पित कर देता है। चरन के पास पेट भरने के लिए पैसे नहीं हैं और इवा जैसी चालाक औरतें ऐसे नौजवानों की मजबूरी का लाभ उठाना जानती हैं इसीलिए खाना खिलाने का लालच देकर इवा, चरन को अपने घर ले आई और चरन के शरीर से खेलने लगी। सब जानने के बावजूद चरन अपने पेट की मजबूरी में फँसता चला गया।

जोगिन्दर पॉल की कहानी *खुराक* में पाँच लोगों की बातचीत में भूख का यथार्थ प्रकट होता है। वर्तमान वैज्ञानिक व भौतिक विकास के युग में भूख मिटाने के लिए आटा और आलू चुराने में महारथ हासिल किए हुए कहानी के पात्र समूची व्यवस्था के खोखलेपन का उपहास करते प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार *केवल सूद* की कहानी *साथ-साथ आकाश* में भी भूख से संघर्ष करते हुए लोगों के जीवन के भयावह यथार्थ को प्रकट किया गया है।

अपने पेट की आग शान्त करने के लिए किसी भी हद तक गिर जाने को मजबूर होने वाले लोगों की दयनीयता बड़ी बेबाकी के साथ इन कहानियों में प्रकट हुई है।

(4) बेरोजगारी :-

बेताहाशा फैली बेरोजगारी भी वर्तमान का कटु यथार्थ है। अनपढ़ और शारीरिक रूप से अक्षम लोग तो दूर, पढ़े-लिखे लोगों को भी बेरोजगारी के कारण त्रासद यंत्रणाएँ भोगनी पड़ती हैं। एम. ए. पास बेटा रात-दिन की भाग-दौड़ के बावजूद नौकरी पाने में असफल रहता है और बेटे की बेकारी, बढ़ती महँगाई व पेंशन से मिलने वाले धन से घर चलाने में आने वाली मजबूरियाँ बाप को घुन की तरह खाए जा रही हैं। *सुरेश उनियाल* की कहानी *घुन* के पात्र की यही विवशताएँ आज के दौर का कड़वा सच है। *पुष्पा सक्सेना* की कहानी *उस एक पल के नाम* का किशोर भी नौकरी नहीं मिलने की हताशा में और परिवार चलाने की जिम्मेदारी निभाने के लिए फैक्ट्री में मजदूरी करने को तैयार होता है और मजदूरी को ही अपनी नियति मानकर स्थाई मजदूर होने के चक्कर में अपना हाथ गँवा बैठता है। लेकिन *मधुकर सिंह* की कहानी *उसका सपना* का केशोराम इंजीनियर की नौकरी पाने के अपने सपने को इतनी आसानी से नहीं मरने देता और घर में विद्रोह करने तक को उतारू हो जाता है। इंजीनियरिंग की पढ़ाई पढ़ने के बाद भी केशोराम को नौकरी नहीं मिलती। वह गाँव तो लौट जाता है लेकिन खेती-किसानी नहीं करना चाहता।

बेरोजगारी के कारण आर्थिक अभावों से जूझते युवाओं का दर्द कहानियों में दिखाई पड़ता है। *यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'* की कहानी *छेदवाली जेब* का जयन्त "आठ-नौ माह से बेकार है। वह अपनी बी. ए. की डिग्री लिए हुए कई जगह घूमा। कहीं कोरे उत्तर और कहीं खोखले आश्वासन कहीं ओवर एज की दीवार और कहीं सौ की जगह चालीस रुपयों का पेमेंट। हद का भ्रष्टाचार............और इस कशमकश में उसकी जेब के छेद बढ़ते ही गए।"[5] खाली जेब ने उसे

भूखों तो मारा ही, उसके मनोभावों और प्रेम को भी मार डाला और कचोटते मन के बावजूद अपना पेट भरने के लिए वह चोरी करने को मजबूर हो गया। बेरोजगारी के कारण युवाओं के समक्ष जीवन की जटिल समस्याएँ इस प्रकार खड़ी हो जाती हैं कि उन्हें जीवन में बार-बार मरने की बजाय एक बार मर जाना अधिक आसान लगता है इसीलिए *घनी आबादी वाला शहर (विश्वमोहन)* अब आत्महत्या की इक्का-दुक्का घटनाओं से नहीं बल्कि आए दिन होती आत्महत्याओं के कारण चर्चा में रहता है। ''अचम्भे की बात थी कि आत्महत्या करने वालों में अधिकतर 18 से 30 साल के युवक थे, युवतियाँ थीं। वे बेकार थे, उनके पास कोई काम नहीं था और जब काम नहीं था, तो उन्हें खाने को रोटी कहाँ से मिलती ? तन ढँकने को कपड़े कहाँ से मिलते ? सब तरह से वे थक गये थे, हार गये थे, जीने का कोई कंसेप्शन ही नहीं मिल रहा था उन्हें। पल प्रतिपल घुटघुट कर मरने की अपेक्षा एक बार ही मर जाना बेहतर समझने लगे थे।''[6] लेकिन नीति निर्धारकों ने आत्महत्या के असली कारण का हल ढूँढने के बजाय रेल लाइन को आबादी से दूर बिछाने का सुझाव दिया।

बेकारी से उत्पन्न निराश और कुण्ठा से अजिज आकर नवयुवक पथभ्रष्ट हो जाते हैं और अपनी ऊर्जा का प्रयोग गलत कार्यों में करने लगते हैं, इस सत्य को उजागर करती है- *कृष्ण भावुक* की कहानी *समान्तर*। कहानी का पात्र अपनी बेकारी से निराश होकर कोठे पर जाता है। और बाद में किसी तरह धन कमाने के चक्कर में ठगी का शिकार हो जाता है। अपने बाप के सपने को पूरा करने के लिए *कृष्ण सुकुमार* की कहानी *रामचंद्र बनाम छित्तर* का रामचंद्र चपरासी की नौकरी तो पा जाता है लेकिन उसे इसके लिए पंडित से एस. सी. बनना पड़ता है, छित्तर बनना पड़ता है क्योंकि रामचंदर तो शहर में उपेक्षित है।

उपेक्षित तो योग्यता भी होती है, इसीलिए पढ़े-लिखे बेरोजगारों को उनकी योग्यता के अनुरूप काम नहीं मिलता, लिहाजा अपनी कमाई से परिवार को दो जून की रोटी का इंतजाम करने की मजबूरी उन्हें शोषित होने के लिए मजबूर कर देती है। *डॉ. रामदरश मिश्र* की कहानी *रोटी* का कथ्य इसी शोषण को उजागर करता है। कहानी का नवयुवक भी मजबूर होकर फैक्ट्री में काम करने पहुँचता है और महीने भर की मजदूरी के बाद उसे तय हुए करार से कम पगार दी जाती है। नवयुवक मजबूरी में इस शोषण को सहता है और सेठ खुश होता है। ''उसे लगा कि उसने बड़ी आसानी से इस ग्रेजुएट का शोषण कर लिया कोई अपढ़ मजदूर होता तो

लड़ बैठता और इतनी आसानी से अपना पैसा नहीं छोड़ता।''[7] नवयुवक ने लौटते समय रोटी के लिए संघर्ष करते मरियल कुत्ते को देखा, जिसने सेठ के मोटे कुत्ते के ऊपर हमला करके उसे भागने को मजबूर कर दिया। ''उसे लगा कि मरियल कुत्ता उसके भीतर उतर आया है और वह क्वार्टर की ओर न जाकर फैक्टरी के सेठ की ओर चल पड़ा।''[8] अपने छीने गए हक को वापस लेने के लिए। *पंकज बिष्ट* की कहानी *आवेदन करो* देश में फैली बेरोजगारी को बड़ी शिद्दत से उजागर करती है। बेरोजगार युवक कुँवर सिंह का सिटी बस से टकराकर मर जाना और 'मैं' के घर पर खून से लथपथ पहुँच जाना, 'मैं' के बेटे मुन्ना की रोजगार पंजीयन संख्या और कुँवर के बेटे मुन्ना की रोजगार पंजीयन संख्या एक समान होना आदि के माध्यम से बेरोजगार युवकों के माता-पिता के भीतर समाए डर को भी उजागर किया गया है।

इस प्रकार बेरोजगारी की समस्या के कारण परिवार और समाज में जटिल हुई स्थितियों, युवाओं में उपजी निराशा, कुंठा, हताशा और आपराधिक प्रवृत्ति के साथ ही शोषक मानसिकता का बेबाक चित्रण इस दौर की कहानियों में हुआ है।

(5) आधुनिकता और नैतिकता :-

आधुनिकता के पीछे भागती जिन्दगी में अधूरे सपनों को पूरा करने के लिए दौड़ते लोगों की *अनन्त यात्रा (नरेन्द्र अनिकेत)* हर युग में हर समय चलती रहती है और इसमें नैतिकता-अनैतिकता कोई मायने नहीं रखती। आधुनिकता की इस दौड़ में जिंदगी की ख़ुशी के महत्त्वपूर्ण पल भी कब और कहाँ छूट गए इसका पता योगेश जैसे धनलोलुपों को तब होता है, जब वक्त बहुत आगे निकल चुका होता है। *मधु काँकरिया* की कहानी *लोड शेडिंग* का पात्र योगेश अपने बीबी-बच्चों की सुध लिए बगैर ''सदैव ही पेट की सरहद में जकड़ा.......जीवन के बन्दोबस्त में लगा.....भावहीन कीड़ा। भावशून्यता की बदबू छोड़ता''[9] सिर्फ धन कमाने के लिए दौड़ता रहता है। वह शुभाशीष के सामने बिलकुल दरिद्र है क्योंकि शुभाशीष स्नेह और प्रेम के धरातल पर खड़ा है।

विभांशु दिव्याल की कहानी *कहीं कुछ अटका हुआ* का बिटुआ, जो अब अफसर बन गया है, अपने अतीत से बचकर भागना चाहता है। उसकी अति आधुनिक पत्नी हर बार 'स्टेटस' का ध्यान दिलाकर उसके कदम रोक देती है। लिहाजा अपनी गरिमा और 'स्टेटस' की खातिर वह गाँव से आए रमेसुर कक्का से पूरी आत्मीयता से नहीं मिलता जबकि रमेसुर कक्का

की ही मेहनत और मदद से पढ़-लिख कर वह इस स्थिति में पहुँचा है। इसी तरह की मानसिकता *मृणाल पाण्डे* की कहानी *पितृदाय* में उजागर हुई है। *नीरजा माधव* की कहानियों *घर बड़ा हो जाएगा* और लाक्षागृह में भी बदलते मानवीय मूल्यों, आधुनिकता और अपसंस्कृति के कारण टूटते-बिखरते परिवार, आधुनिक मानसिकता के कारण बेटों द्वारा उपेक्षित होते बुर्जुर्गों के हृदय की पीड़ा को व्यक्त किया गया है।

नये और पुराने, आधुनिकता और पुरातनता का द्वन्द्व भी वर्तमान का क्रूर यथार्थ है। *ऋता शुक्ला* की कहानी *समय की गति* बाप-बेटे के बीच छिड़ी पुरातनता बनाम आधुनिकता की जंग में दोनों के कट्टरता से डटे रहने की मानसिकता उजागर करती है। रघुनाथ काका परम्परावादी हैं, जबकि उनका बेटा आधुनिकता का पोषक है। पीढ़ियों का अंतर दोनों के बीच मानसिकता की इतनी तगड़ी दीवार खड़ी कर देता है कि दोनों ही अपनी स्थितियों को नही छोड़ना चाहते। विवशता के कारण ही रघुनाथ काका की पुरातनपंथी कट्टरता बेटे की चरम आधुनिकता के सामने झुकने को मजबूर तो हो जाती है लेकिन रघुनाथ काका खुद को बदल नहीं पाते और उसी पुराने मकान में ही जिंदगी गुजार देते हैं।

शारीरिक समर्पण और प्रेम का ढोंग रचकर अपने काम निकलवाने की मानसिकता भी आधुनिकता की ही देन है। *से. रा. यात्री* की कहानी *नीतिरक्षा* के मिस्टर और मिसेज विनोद इसी मानसिकता में जीते हैं, लेकिन जब उनका पहाड़ी नौकर और नौकरानी उनके पद चिन्हों पर चलने लगते हैं तो उन्हें नीति की रक्षा ध्यान में आती है और ठिठुरती रात में दोनों को घर से बाहर निकाल देते हैं। *शशिभूषण द्विवेदी* की कहानी *अभिशप्त* के शशांक और वीरेश्वर जैसे युवक, जया और महारानी सुजाता जैसी अति महत्त्वाकांक्षी और आधुनिकता के पीछे भागती युवतियों के लिए पायदान बनने को अभिशप्त हैं। *यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'* की कहानी *लाश का बयान* की शकुन्त शर्मा के मन में उसके मामूली क्लर्क पति को लेकर हीन भावना और आधुनिक बनने की महत्त्वकांक्षा उसका मारवाड़ी समाज ही भरता है और जब शकुन्त शर्मा व्यक्तिगत स्वतंत्रता चाहती है, पति से तलाक लेकर शरीर की भूख मिटाने के लिए पर पुरुष से सम्बन्ध बनाती है तो उसकी आधुनिकता के खिलाफ भी मारवाड़ी समाज खड़ा हो जाता है और रूढ़ियों व आधुनिकता के बीच पिसती शकुन्त शर्मा आत्महत्या करने को मजबूर हो जाती है।

कुल मिलाकर आधुनिकता और नैतिक पतन ने जितने स्तरों पर समाज को तोड़ा है, परिवारों को विघटित किया है, मानसिकता को विकृत किया है और तमाम विद्रूपताओं को जन्म दिया है, लगभग हर स्थिति को, प्रत्येक विकृति को आठवें दशक के बाद की कहानियों में देखा जा सकता है।

(6) भौतिकतावाद और बाजारीकरण के दुष्प्रभाव एवं मानवीय सम्बन्धोंके विघटन की स्थितियाँ :-

औद्योगिक क्रान्ति, भूमण्डलीकरण और पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण ने बहुत कुछ बदलकर रख दिया है। आधुनिकता के पीछे भागते लोगों, पश्चिमी देशों के तानाशाहीपूर्ण रवैये, बाजारवादी-विस्तारवादी नीति के गुलाम हो चुके लोगों के अंदर मर चुकी प्रतिरोधक क्षमता को उंघाड़ती और समूचे तंत्र की बदलती मनोवृत्ति को उद्‌घाटित करती कहानी है, *उदय प्रकाश* की *वारेन हेस्टिंग्स का साँड़* कहानी की शुरुआत में ही कथाकार उस सच को उजागर कर देता है जो ढाई सौ साल बीत जाने के बाद भी ज्यों-का-त्यों है। उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से प्रशासन चलाने के लिए दिए गए अधिकारों के द्वारा लूट-खसोट और ठगी-जालसाजी करके भौतिक सुख-साधन जुटाने वाले धनाढ्यों की बेइंतहा दौलतपरस्ती के फलस्वरूप भोग-विलासिता का भीषण रूप आज भी है। वारेन हेस्टिंग्स को भविष्य वक्ता लडके से यह जानने की उत्सुकता थी कि "जब अंग्रेज मालामाल होकर अपने वतन लौट जाएँगे और इंडिया में उनके जैसे ही नेटिवों का राज होगा तो क्या ये नेटिव शासक इंडिया को लूटने और बेचने के साथ-साथ इस हवा को भी बेच डालेंगे और खत्म कर डालेंगे ?"[10] वारेन हेस्टिंग्स की उत्सुकता वर्तमान परिस्थितियों के सापेक्ष थी। आज भौतिकता के पीछे दौड़ते-भागते लोगों ने तमाम आदर्शो और मूल्यों को तहस-नहस कर दिया है। वारेन हेस्टिंग्स का साँड अपनी संस्कृति, सभ्यता और नैसर्गिक मूल्यों के संरक्षण के लिए, भौतिकता और बाजारीकरण के कुप्रभावों से लड़ने के लिए अपनी पूरी प्रतिरोध क्षमता के साथ तैयार खड़ा है। आज के दौर में हेस्टिंग्स के साँड के समक्ष तगड़ी चुनौतियाँ हैं क्योंकि भौतिकता की अंधी दौड़ में पीछे कोई नहीं रहना चाहता। कर्जदार होकर भी भौतिकता में किसी से पीछे नहीं रहने की यही मानसिकता *रामधारी सिंह* की कहानी *स्वयंसाक्षी* में उजागर होती है। *इन्दु जैन* की कहानी *मक्खी* के बाँकेलाल जैसे लोगों का कोई चरित्र नहीं होता, वे भौतिकता और व्यक्तिगत स्वार्थ साधना के लिए किसी भी हद तक गिर सकते हैं।

इन्कम टैक्स बचाने के लिए पत्नी से तलाक और सम्पत्ति का बँटवारा होना दिखाकर बाँकेलाल पूरा इन्कम टैक्स बचा लेता है और अपनी बेटी की शादी के लिए लडके की तलाश करते हुए बड़े वीभत्स तरीके से बेटी के शारीरिक गठन का वर्णन करता है। *सन्तोष तिवारी* की कहानी *मिट्टी से जो छूटा* का अमर अब अपने अतीत के परिवेश से घृणा करता है, जिस परिवेश में पल-बढ़कर वह प्रशासनिक अधिकारी बना है वहाँ भौतिकता का वह स्तर नहीं है जिसे वह आज भोग रहा हैं इसीलिए वह अब वापस लौटने के लिए सपने में भी नहीं सोचना चाहता।

तरक्की और भौतिकता के पीछे भागते लोगों के अंदर मानवीय संवेदनाएँ, सहानुभूतियाँ और आपसी सम्बन्धों में समर्पण के बजाय व्यावसायिकता और स्वार्थी मानसिकता काम करती है। *भगवानदास मोरवाल* की कहानी *सूतक* के खन्ना, मिस केसरवानी और कुमार इसी मानसिकता का पोषण करते हुए पांडे और आनंद की मौत पर बाहर से तो दुःख प्रकट करते हैं, लेकिन भीतर-भीतर उनके अंदर खुशी के फव्वारे फूटते रहते हैं। मिसेज केसरवानी तो रात-दिन यही प्रार्थना करती है कि कब उसके आगे वाला उसके रास्ते से हटे और कब वह छलांग मारकर टॉप पर पहुँच जाए।

चंद्रकांता की कहानी *खुदा बाकी रहे* के दत्ता, मुजीब और कपूर जैसे लोग धन कमाने के लिए अपने घर, परिवार, शहर और वतन को छोड़कर सागर में भटकते फिरते हैं। "वे जान गए हैं कि उनके सपनों का पलड़ा खनकते सिक्कों के पलड़े के मुकाबले हल्का पड़ गया है। घर से आते पत्र ही उन्हें खुरदुरे यथार्थ का बोध कराते रहते हैं- अभी जवान हो, दो चार कांट्रेक्ट और कर लो, कुछ पैसा-वैसा इकट्ठा कर लो। सेटल होने को तो उम्र पड़ी है।"[11] *गोविन्द मिश्र* की कहानी *आक्रा माला* के हंसा और उसका पति भी भौतिकता और अमीरी के ख्वाब के पीछे भागने की मानसिकता के वशीभूत बम्बई भागकर आ जाते हैं लेकिन मेहनत-मजदूरी के भरोसे अमीरी का ख्वाब पूरा नहीं होते देखकर चोरी पर उतर आते है। हंसा का मन इस माहौल में नहीं लगता लेकिन पति की महत्त्वाकांक्षा उन्हें चोर होने की बदनामी ढोते हुए शहर से चिपके रहने को मजबूर कर देती है, अमीर बनने के लिए। भौतिकता और बाजारीकरण के दुष्प्रभाव से सभ्यता और संस्कृति की विशिष्टताओं और पहचान नष्ट होते जाने की स्थितियाँ *भीष्म साहनी* की कहानी *आवाजें* में उजागर होती हैं। विभाजन के बाद पाकिस्तान से भागकर दिल्ली में बस गए शरणार्थियों का मोहल्ला अजीब और अलग-अलग तहजीब, पहनावे और रहन-सहन वाले

लोगों के कारण विविधता से भरा था। अपनी भौतिक प्रगति के लिए मक्खनलाल, आहूजा, डॉ. मोहकमचंद जैसे लोग जी-जान से जुट जाते हैं। समय के साथ कई तरह की चीजें और समस्याएँ उस मोहल्ले की विविधता, समरसता व आपसी प्रेम भाव को समाप्त कर देती हैं। इंग्लैण्ड से लौटी आहूजा की अविवाहित बेटी के अलग-थलग रवैये के कारण कोहली की वर्कशाप के नौकरों की बदतमीजी, मोहन लाल और उसकी बीबी के प्रति उनके बच्चों की उपेक्षा और तिरस्कार, दहेज के लोभ में फँसे चड्ढ़ा और उसके बेटे के खिलाफ जनता का विरोध जैसी घटनाएँ भौतिकता और बाजारीकरण के दुष्प्रभाव के कारण सामने आती हैं और सामाजिक व पारिवारिक मूल्यों-मर्यादाओं को ध्वस्त कर देती हैं। अकील कैस की कहानी 'उजबक' आर्थिक दबाव, भौतिकता और बाजारीकरण की ओर झुकाव के कारण हर रिश्ते को धन से तौलने के कारण पारिवारिक सम्बन्धों में छा गई मनहूसियत और दिखावे को उजागर करती है।

चन्द्रकिशोर जायसवाल की कहानी *दुतारा* में महानगरीय सभ्यता, आधुनिक भौतिकतावादी युग, वैश्वीकरण और बाजारीकरण के दौर में एकाकीपन, टूटते परिवार, बिखरते रिश्तों और सम्बन्धों की सिमटती सीमाओं के खिलाफ दो बूढ़े हो चले भाइयों- विनीत बाबू और मिथिलेश का साझा संघर्ष चल रहा है। आज के दौर में विनीत बाबू और मिथिलेश के बीच जीवन्त और गहन आत्मीय रिश्ते विरले ही मिलते हैं। घर में जब फैशनपरस्ती और भौतिकता का दबाव बढ़ जाता है तब *एक और अव्यावहारिक आदमी (आशा जोशी)* पैदा हो जाता है। जब से बिन्नी अपनी ब्यूटी पार्लर चलाने लगी, धन कमाकर ऊँचे ख्वाब देखने लगी और बेटी को भी फैशनपरस्त बनाने लगी तो विनीत घर में अव्यावहारिक और अवांछनीय हो गया, क्योंकि वह ऐसे फैशन को पसंद नहीं करता था लिहाजा अपने 'सादा जीवन' के सिद्धान्त को ढोते हुए वह एकाकी और कुंठित जीवन जीने को मजबूर हो गया। *आशा जोशी* की ही कहानी *अन्तर्द्वन्द्व* में यही दर्द मेघा भोगती है। असीमित महत्त्वाकांक्षा और भौतिकता के पीछे भागते लोगों की जिंदगी खत्म हो जाती है, परिवार और रिश्ते टूट जाते हैं लेकिन *सपनों की सीमा (डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय)* खत्म नहीं होती। सुनील शेयर मार्केट के द्वारा लम्बी कमाई करने के लिए रात की शराब पार्टियों में दूसरी औरतों के साथ नाचने में और अपनी पत्नी को गैर मर्दो के साथ नचाने में परहेज नहीं करता, लेकिन विनीता को यह पसंद नहीं इस कारण सुनील दूसरी लडकियों की ओर आकृष्ट होजा है।

आधुनिकता की विद्रूपताएँ सुखमय पारिवारिक जीवन को भी नष्ट कर देती हैं। *पुष्पा सक्सेना* की कहानी *यादों के नाम* का मनीष विदेश जाकर अपनी पत्नी अनीता को भूल जाता है। उसने विदेशी महिला रोजी से शादी की और बच्चे भी पैदा किए। रोजी और उसके बच्चे मनीष को तिरस्कार की दृष्टि से इसलिए देखते हैं क्योंकि वह पिछड़े देश से आया है। रोजी के तिरस्कार को भोगते हुए अब मनीष को अपना देश याद आता है, जहाँ कम से कम विवाह जैसे पवित्र बंधन सुरक्षित हैं, स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में केवल व्यावसायिकता नहीं है, समर्पण भी है। बाजारीकरण और भौतिक समृद्धि की लालसा विवाह जैसे पवित्र बंधन को भी नष्ट कर देते हैं। *विश्वमोहन* की कहानी *सौदागर* का पति अपनी भौतिक समृद्धि के लिए अपने दाम्पत्य जीवन का सौदा करने से पीछे नहीं हटता। अपनी पत्नी के ट्रांसफर के लिए पत्नी की बॉस को भोगता है और अपनी पत्नी के प्रतिकार के बावजूद अपनी पदोन्नति के लिए अपनी पत्नी को बॉस के लिए प्रस्तुत कर देता है। *धीरेन्द्र अस्थाना* की कहानी *पिता* के राहुल बजाज को अपनी स्वच्छंदता और मन की अलग दुनिया बसाने के लिए केतकी से ब्याह करके माँ-बाप, भाइ-बहन को भूल जाने, उनके प्रति प्रेम-स्नेह की भावनाएँ मिटा देने के दर्द का उपेक्षा का एहसास तब होता है जब उसका बेटा विकास यही सब उसके साथ करता है। तब लाचार पिता के सामने बेटे के नवीन जीवन-मूल्यों को स्वीकार कर लेने के सिवा कोई चारा शेष नहीं बचता। *ज्ञानरंजन* की कहानी *पिता* का पिता स्वयं समर्पित हो जाने के बजाय अपने बेटों को झकने के लिए बाध्य कर देता है वह अपने बेटों की आधुनिक लेकिन ढुलमुल विश्वासों की मान्यताओं को ढ़हाकर पुरानी मान्यताओं को थोपने में कामयाब हो जाता है।

बाजारीकरण और भौतिकता के कारण उपजे विद्रूपों, पारिवारिक विघटन और मानसिकता में आए बदलाव के साथ ही मानवीय सम्बन्धों के सिमटते अस्तित्व और विद्रूपताओं व बदलाव के खिलाफ संघर्ष करते हुए मानवता, सौहार्द व आपसी प्रेम आदि को बचाए रखने के रक्षोपायों को आठवें दशक के बाद की कहानियों ने समग्रता के साथ प्रकट किया है।

(7) भ्रष्टाचार और सिद्धान्तों की बलि :-

आज के दौर की सबसे बड़ी विसंगति भ्रष्टाचार की भी है। भौतिक सुख-साधनों को पाने की होड़ ने भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया है। समूची व्यवस्था में मजबूत पकड बना चुके भ्रष्टाचार के कारण ईमानदारी और सिद्धान्तों से विश्वास उठता जा रहा है। भ्रष्टाचार की भयावहता और

उसके पनपने की स्थितियों को बतलाने का प्रयास *पैमिला मानसी* ने अपनी कहानी *कोई और राह* में किया है। पत्रात्मक शैली में लिखी गई इस कहानी में भ्रष्टाचार और सिद्धान्तविहीनता के एक छोर पर अशोक सक्सेना खड़ा है और ईमानदारी, आदर्श और सिद्धान्तों के दूसरे छोर पर सत्येन्द्र सिन्हा। ईमानदार व्यक्ति को अपने पक्ष में मिलाने के लिए भ्रष्टाचारी कई प्रत्यन करते हैं और नाकाम होने पर ईमानदार को बेईमान ठहराने की कोशिश करते हैं, इसी मानसिकता को उजागर करती कहानी है, हेतु *भारद्वाज* की *यात्रा में।*

सतीश जमाली की कहानी *दुख-दर्द* में भ्रष्टाचार के कारण अपराध पनपने की स्थितियाँ उजागर होती हैं। ओमप्रकाश जैसे भ्रष्ट अफसर अपराधियों के लूट के माल में कमीशन लेकर उन्हें छोड देते हैं इस कारण अपराध बढ़ते हैं और अपराधी बेखौफ होकर कानून से बच निकलते हैं। न्यायपालिका में भी सत्य के ऊपर असत्य की जीत हो जाती है और कुछ आर्थिक लाभ पहुँचाने पर अपराधी न्यायालय से भी बच निकलते है। यही कथ्य *हृदयेश* ने *नागरिक* कहानी में उजागर किया है। *शैलेश मटियानी* की कहानी *जुलूस* में भ्रष्टाचार की भयावहता उजागर करते हुए रईस अपराधियों के बच निकलने और गरीब अपराधियों के दण्ड भोगने की नियति उजागर की गई है। *नीरजा माधव* की कहानी *पुन्नो के दारजी* की बुढ़िया भी इस व्यवस्था को, भ्रष्टाचार और घूसखोरी को देखकर यह सोचने को बाध्य हो गई है कि क्या यह आजादी है, या सिर्फ आजादी का नाटक, जिसमें लाभ लेने के लिए किसी भी सीमा तक गिरना, भ्रष्टाचार करना सभी मुनासिब है।

द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' की कहानी *कालचक्र* का साधारण सा अध्यापक जिन्दगी भर सिद्धान्तों पर अडिग रहा और भ्रष्टाचार से दूर रहा लेकिन अपने बेरोजगार बेटे की नौकरी के लिए और बेटी की शादी के लिए उसे भी अपने सिद्धान्तों को ताक पर रखकर और घूस देकर बेटे की नौकरी लगवाकर 'काल' के 'चक्र' में फँस जाना पड़ा। उसे स्वीकार करना पड़ा कि "लोग अपना ईमान बेच रहे हैं, अपना धर्म बेच रहे हैं, आस्था और निष्ठा बेच रहे हैं। बदले में ऊँचे-ऊँचे पद पा रहे हैं। नोटों से अपनी तिजोरियाँ भर रहे हैं। और खुश हो रहे हैं। शामत का मारा मैं भी भीड़ में जा खड़ा हुआ। मैंने क्या किया कि- अपनी औलाद ही बेच दी। दोनों बच्चों की बिक्री हो गई।"[12] *डॉ.रामकुमार तिवारी* की कहानी *चेतनशून्य* के विद्वान और सिद्धान्तवादी प्रोफेसर को उनके जीते-जी ग्रेच्युटी की रकम इसलिए नहीं मिल सकी क्योंकि

विश्वविद्यालय के बाबुओं को घूस देना उनके सिद्धान्तों के खिलाफ था। अपने सांसद शिष्य की पैरोकारी पर बीमार पत्नी के इलाज के लिए मात्र पन्द्रह प्रतिशत ग्रेच्युटी तब मिली जब उनकी पत्नी ने इलाज के अभाव में दम तोड़ दिया।

कार्यालयों में कर्मचारियों से लेकर अधिकारियों तक भ्रष्टाचार की, घूसखोरी और कुव्यवस्था की पूरी श्रृंखला बनी हुई है। इसके बीच में आने वाले किसी भी ईमानदार सिद्धान्तवादी अधिकारी या कर्मचारी को व्यवस्था पचा नहीं पाती और उसके खिलाफ षडयन्त्र रचे जाते हैं। *नीरजा माधव* की कहानी *उट्र-उट्र ही सही* की विद्योत्तमा को इसी कारण अपने विभाग के कर्मचारियों और अधिकारियों के कुचक्रों, फर्जी शिकायतों और चरित्र पर लगाए गए लांछनों को बर्दाश्त करना पड़ता है। फिर भी विद्योत्तमा अपने सिद्धान्तों पर अडिग रहती है और उसे एक कालिदास की तलाश है, जो 'उष्ट्र-उष्ट्र' न सही 'उट्र-उट्र' ही बोले।

गोविन्द मिश्र की कहानी *निष्कासित* के रामेश्वर राय ने अपने मातहत मोहन को घूसखोरी और भ्रष्टाचार के आरोप में नौकरी से निष्कासित करके आने वाली पीढ़ी को सीख दी है। रामेश्वर राय को मोहनलाल के परिवार के समक्ष उत्पन्न हो गए आर्थिक संकट का कष्ट अवश्य है लेकिन भ्रष्टाचार का विरोध और सिद्धान्तों की स्थापना करने की उसे संतुष्टि भी है। लेकिन *अंतिम पड़ाव (पुष्पा सक्सेना)* आते-आते बाबू जी के सिद्धान्तों और उच्च आदर्शों को जीते-जी उनके बच्चे ही तिरस्कृत करने लगते हैं, क्योंकि समूची भ्रष्ट व्यवस्था के विपरीत चल पाना और अपने सिद्धान्तों की रक्षा कर पाना बड़े आत्मबल से ही संभव हो सकता है। इसी तरह *राजेन्द्र लहरिया* की कहानी *उर्फ गाँधी* का मनीष वर्मा प्रभावशाली व्यक्तियों की औलादों द्वारा बिना वजह अपमानित किए जाने और मारे जाने पर अपने गाँधीवादी सिद्धान्तों पर शर्मसार हो जाता है।

भ्रष्टाचारी और ईमानदार के बीच आर्थिक सम्पन्नता का अंतर होना स्वाभाविक होता है। इस कारण ईमानदार व्यक्ति को उपेक्षा और तिरस्कार की वेदना झेलनी पड़ती है। यह वेदना नसीम साकेती की कहानी *घोंसला* में उजागर हुई है। भ्रष्ट और घूसखोर अपनी काली कमाई से आलीशान बिल्डिंगें खड़ी कर लेते हैं, जबकि ईमानदारी से नौकरी करने वाला व्यक्ति अपनी मेहनत की कमाई से 'घोंसला' भी नहीं बना पाता, लिहाजा उपेक्षित और तिरस्कृत होता है। यह तिरस्कार समाज में ही नहीं घर में भी भोगना पड़ता है। *नसीम साकेती* की कहानी *शंकर*

का तीसरा नेत्र में भ्रष्टाचार द्वारा कमाए गए काले धन से वैभवपूर्ण और विलासितापूर्ण जीवन जीने वाले लोगों की दुखद परिणति को प्रकट किया गया है। *स्वयं प्रकाश* की कहानी *दस साल बाद* के भ्रष्ट संजू को भी दण्ड मिलता है। संजू कमाऊ विभाग में है। ''ऊपर से नीचे तक चेन बना रखी है। पैसे खिलाकर अपने ही टेण्डर पास करवा लेता है और आगे भी खूब गपड़-शपड़ चलती है। खूब अच्छी दौलत बना ली है दस सालों में। पर इसके पास इससे भी बड़ी एक दौलत थी। शायद वह इसने खो दी है और अंदर से एकदम कंगाल हो गया है।''[13] अपने अंदर के जमीर, स्वाभिमान और आत्मीयता को खोकर संजू इतना बदल चुका है कि दस साल बाद उससे मिलने आया उसका दोस्त व दोस्त की पत्नी दिखावे के वातावरण से आजिज आकर जल्दी ही वापस लौट जाते हैं।

भौतिकता के वर्चस्व, अमीर दिखने की लालसा और होड़ ने भ्रष्टाचार को तेजी के साथ विकसित किया है और समूचे तंत्र को भ्रष्ट कर दिया है। आठवें दशक के बाद की कहानियों ने इस ज्वलंत समस्या को, उसके हर पहलू को प्रकट किया है, इसके साथ ही भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष करने वाले सिद्धान्त और आदर्श पर डटे रहने वाले लोगों के जीवट को भी कहानियों में प्रकट किया गया है।

(8) नगरीय और महानगरीय जीवन की त्रासदी :-

बाजारीकरण, आधुनिकता, पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण, भौतिकता और मानसिकता में बदलाव का प्रभाव सबसे पहले नगरों और महानगरों में दिखाई देता है। तेजी से आए बदलाव, नई इमारतों के निर्माण, घटते मैदानों, उखड़ती-टूटती सड़कों आदि भौतिक बदलाव के साथ ही कार्यालयों में फैले भ्रष्टाचार, शिक्षकों और छात्रों की बदलती मानसिकता आदि के द्वारा *धर्मेन्द्र देव* ने अपनी कहानी *रूपान्तर* में नगरों और महानगरों के रूपान्तरण को बताने का प्रयास किया है। इसी प्रकार *विजय* की कहानी *भायखला फ्लाई ओवर* में महानगरीय जीवन की त्रासद विडम्बनाओं को उजागर किया गया है।

गाँव से शहर आये लोगों को शहर में तमाम दिक्कतों, शोषण और अत्याचार का सामना करना पड़ता है। *हृदयेश* की कहानी *गाँव* भी गाँव से शहर आए सीधे-सादे लोगों को ठगे जाने की व्यथा-कथा कहती है। गाँव से मुकदमा लड़ने आए नौरंगीलाल को बस कंडक्टर ने, होटल वाले ने, गाय का तमाशा दिखाने वाले ने, पेशकार ने, अर्दली ने, मुंशी ने, वकील ने और फिर

जेबकतरे ने ऐसा ठगा कि वापस लौटने पर उसकी जेब में पैसे ही नहीं बचे और उसने एक निर्दोष आदमी को जेबकतरी के इल्जाम में मजबूरन फँसा दिया। इन सबके बावजूद बड़ा आदमी बनने का ख्वाब या धन कमाने की मजबूरी गाँव के लोगों को शहर खींच लाती है। *कैलासचन्द्र शर्मा* की कहानी *मोहभंग* का रामनाथ अपने चाचा की तरह बड़ा आदमी बनने के फेर में शहर तो आ जाता है, लेकिन शहर की कुटिलताओं व चाची और उसके चचेरे भाइयों की उपेक्षा के कारण उसे अपना गाँव याद आता है। अपना गाँव विद्यासागर को भी याद आता है, जब उसके साथ शहर में नौकरों जैसा ही बर्ताव किया जाता है। गाँव जैसा सम्मान, इज्जत, स्नेह और अस्मिता शहर में नहीं रह जाती। पांडे जी के बच्चों के लिए वह केवल 'सरवेण्ट' और *बिद्दू अंकल (शैलेश मटियानी)* रह जाता है। इसी तरह गाँव से शहर आए रामू को सुख-साधन और फैशन की चीजें तो मिलीं, लेकिन उसकी जिंदगी नौकर की तरह ही रही। शहर के लोगों की उपेक्षा और बड़ा आदमी बनने की लालसा रामू को चोरी करने के लिए बाध्य करती है। चोरी में पकड़े जाने का भय उसे गाँव भागने को विवश करता है, किन्तु अब गाँव भी बदल चुके हैं। *कांति देब* की कहानी *त्रिशंकु* रामू जैसे 'त्रिशंकु' की स्थिति में लटके युवाओं की व्यथा-कथा कहती है।

श्याम व्यास की कहानी *महानगर एक दहशत है* में महानगरीय जीवन के आतंक-अपराध, भीड़-भाड़, दुर्घटना, अनहोनी, मारपीट, चोरी, डकैती और व्याभिचार की रोज-रोज होती घटनाओं से आहत और भयग्रस्त व्यक्ति की कथा है। महानगर के जटिल और दुष्कर जीवन की त्रासदाओं में सूखते सपनों का दर्द *धीरेन्द्र अस्थाना* की कहानी *सूखा* में उजागर हुआ है। *मनोज रूपड़ा* की कहानी *दफन* के बेटे को अपनी माई का अंतिम संस्कार हिंदू रीति से नहीं कर पाने का कष्ट है। माई की अंतिम क्रिया के लिए किसी ने मदद नहीं की। दीनू के दिए हुए सौ रुपयों से किसी तरह वह माई की लाश को श्मशान ले गया लेकिन वहाँ के लम्बे खर्चे की वजह से मजबूरी में और टैक्सी ड्राइवर की सलाह पर कब्रिस्तान में माई को दफनाने ले आया। ड्राइवर ने उसके साथ नेकनीयती करते हुए, उसकी मजबूरी को देखते हुए अपना भाड़ा छोड़ दिया। उसे अपनी पहचान छिपाकर माई को मुस्लिम रिवाज से दफन करते हुए हार्दिक कष्ट हुआ। उसे यह कष्ट सालता रहा, उसने अपनी दोनों हथेलियाँ आसमान की ओर उठाईं, दुआ माँगने के लिए नहीं बल्कि चाँद-सितारों से मुँह छिपाने के लिए।

अपने घर का सपना देखते-देखते जिंदगी समाप्त हो जाना, महानगरीय जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी है। महानगर की महँगाई में मध्यमवर्गीय, नौकरीपेशा और अल्प आय वालों के इस सपने के चूर-चूर हो जाने की व्यथा *अचला नागर* की कहानी *अपना घर* में उजागर होती है। कर्ज को भरने पर घर की जिम्मेदारियाँ पूरी नहीं हो पातीं, लिहाजा अपने लिए एक कमरा छोड़कर बाकी घर किराए से उठाना पड़ता है और स्थितियाँ ज्यों-की-त्यों ही रह जाती हैं। *जितेन्द्र भाटिया* की कहानी *साँप, सीढ़ी और साँप* में रोजी-रोटी के लिए जलालत झेलते, घर-परिवार बसाकर भविष्य के सुखद सपनों के पीछे दौड़ते उन तमाम युवा दम्पत्तियों की कथा है, जिन्हें महानगरों में बमुश्किल एक कमरा रहने को मिल पाता है, जिसमें बच्चे पैदा करने की इजाजत नहीं, बहुत कम पगार वाली नौकरी से मजबूरन चिपके रहकर बॉस के शोषण का शिकार भी होना पड़ता है। *मंजुल भगत* की कहानी *शैतानबाजा* के गिंदौरी और रामफल यातनाएँ सहकर भी शहर नहीं छोड़ना चाहते। जब तक उनके बच्चा नहीं हुआ तब तक वे बन रहे मकानों में ही दिन में मजदूरी करते और रात भी वहीं गुजार देते, लेकिन परिवार बढ़ने के साथ ही गिंदौरी और रामफल को अपने मकान की जरूरत भी महसूस होती है। इसी के साथ गिंदौरी के गहने बिकना शुरू होते हैं।

महानगरीय जीवन की त्रासदी गाँव लौटने को भी विवश कर देती है। इसी विवशता से साक्षात्कार कराती चन्द्रकांता की कहानी किस्सा नारायण राव का के पात्र नारायण को अपनी नौकरी छोड़कर गाँव लौट जाना पड़ता है। *शैलेश मटियानी* की कहानी *उत्तरापथ* के एस. सी. पांडे को शहर की चकाचौंध और नौकरी के चक्कर में अपना गाँव-घर याद नहीं रहता लेकिन जब उसके बेटे और बहू अपनी दुनिया में रम जाते हैं तो उसी शहर का अकेलापन, और भागती जिंदगी और अस्तित्व का संकट बुढ़ापे में उन्हें अपना गाँव-घर याद करने के लिए मजबूर कर देता है। *शीतांशु भारद्वाज* की कहानी *गाँव की गंध* के सुल्तान का मन भी दिल्ली के अजनबीपन, अपराध और कई तरह की मजबूरियों के कारण उखड़ जाता है और धन कमाने के सपने को त्यागकर अपनी नौकरी और दिल्ली को हमेशा के लिए छोड़कर गाँव लौट आता है।

नगरों और महानगरों की जिंदगी की चकाचौंध जितना आकर्षित करती है, उतनी ही जटिलता और त्रासदियों से भरी होती है। नगरीय और महानगरीय जीवन की जटिलताओं और संत्रास को भोगते लोगों की दयनीयता और कटु यथार्थ को समग्रता के साथ इस दौर की

कहानियों में प्रकट किया गया है।

(9) गाँवों का बदलता स्वरूप और ग्रामीण जीवन की त्रासदी :-

औद्योगीकरण, भौतिकता और बदलते जीवन-मूल्यों के कारण गाँवों का स्वरूप भी बदला है। गाँवों में हो रहे विकास और पंचायतीराज प्रणाली ने गाँवों के सामाजिक ढाँचे को भी अस्त-व्यस्त कर दिया है। *कैलासचन्द्र शर्मा* की कहानी *सुरस्ती ताई* बदलाव के कारण गाँवों में पारिवारिक और सामाजिक सम्बन्धों के बिखराव और बढ़ती अन्तर्कलह को उजागर करती है। कैलास बनवासी की कहानी एक गाँव फुलझर गाँवों में पैर पसारते मशीनीकरण के कारण फैलती बेकारी को बयाँ करती है। गाँव में फैक्ट्री लगने वाली है और वहाँ पहली बार जे. सी. बी. मशीन आई है। गुरु जी इन सबसे इतना चिंतित हो जाते हैं कि सपने में उन्हें विद्यालय की जगह रासायनिक गंध युक्त पदार्थों का ढेर नजर आता है। बेकारी के कारण गरीबी और अशिक्षा ने गाँवों की दुर्दशा कर दी है। *रामधारी सिंह दिवाकर* की कहानी *आतंक* का शिवेश अपने गाँव में पहले जैसे शान्त वातावरण की बजाय मारपीट, डकैती, चोरी और अपराध देखकर यह सोचने को मजबूर हो जाता है कि "अपने गाँव से ज्यादा सुरक्षित तो मेरा शहर है.............कुछ होता भी है तो कम-से-कम मुझ जैसे गाँव के लोगों के मन में मोह के आइने तो नहीं टूटते हैं। यह संतोष तो रहता है कि चलो, यह शहर पराया है.......अपना गाँव थोड़े ही है।........."[14]

चन्द्रकिशोर जायसवाल की कहानी *हिंगवा घाट में पानी रे* के गाँव वाले हिंगवाघाट में पुल नहीं बनने के कारण असहाय और असुरक्षित हैं। सरकार द्वारा पुल बनवाए जाने की आशा भी उन्हें नहीं रही फिर भी नेताओं द्वारा पुल बनवाने के अश्वासनों पर जीते हुए भनटा जैसे सीधे-सादे ग्रामीण चंदा देने से पीछे नहीं हटते। वह जानता था कि "वे लोग झूठ बोल रहे थे, जनता को ठग रहे थे। इतनी दूर से आए थे, इतनी दौड़-धूप कर रहे थे, चीख रहे थे, चिल्ला रहे थे, उछल-उछल कर भाषण दे रहे थे, किसलिए? अपने बाल-बच्चों के लिए ही न ? पेट भरने के लिए आदमी क्या-क्या धंधा नहीं कर रहा है ? अब अगर मुझे उनके बाल-बच्चों का ख्याल आ ही गया, तो क्या बुरा हो गया ? जैसे भिखमंगे को हम कुछ दे देते हैं। वैसे ही उन्हें भी कुछ दे दिया।"[15] भनटा जैसे खुदगर्ज और सीधे-सादे ग्रामीणों की खुदगर्जी और सीधेपन को गँवारपन समझा जाता है और इसी का लाभ उठाकर सरकारी मुलाजिम, गाँव के सरपंच, साहूकार और इनके गुर्गे सरकारी योजनाओं का बंदरबाँट करते रहते हैं। *हरिहर वैष्णव*

की कहानी *मुनादी* में व्यवस्था के इसी खोखलेपन को उजागर किया गया है। बीस सूत्रीय कार्यक्रम का लाभ देने के लिए गाँव पहुँचे सरकारी कर्मचारियों को दावत और लड़कियों में उलझा दिया। सरपंच की गुण्डई के कारण गाँव वाले मुनादी सुनकर भी घरों से नहीं आए। ईमानदार और सिद्धान्तवादी तहसीलदार भी गाँव वालों के नहीं आने पर कुछ भी नहीं कर सका और सरपंच के गुर्गों ने ऐसा पंचनामा भरा कि कानूनी तौर से सरपंच और सेठ जैसे भ्रष्टाचारी, आततायी और शोषक तहसीलदार की पकड़ से दूर हो गए। *दयानंद पाण्डे* की *मेड़ की दूब* कहानी गाँवों के प्रति सरकार की उपेक्षा, कोरी बयानबाजी और ढपोरशंखी योजनाओं पर कुठाराघात करती है। सरकारी अधिकारियों के साथ ही स्थानीय भूस्वामी, साहूकार और दबंग लोग भी निरीह ग्रामीणों का शोषण करते हैं। *शैलेश पंडित* की कहानी *वंदे भगवती* का परमुख जी विश्वसनीयता के आवरण में अपनी व्यापारिक बुद्धि से छल-कपट करके निरीह ग्रामीणों की सम्पत्ति हड़प कर हमेशा बंधुआ मजदूर बनाए रखने की मानसिकता में जीता है। कहानी के मस्तूल मियाँ, नन्हकू, रामकिसुन उपधिया जी और नागपत्ती बाबा चाहकर भी विद्रोह नहीं कर पाते और परमुख जी की चिकनी-चुपड़ी बातों में आ जाते हैं। कहानी के स्वामी सरबदानंद जी भी ग्रामीणों की भावनाओं से खेलने में पीछे नहीं रहते। सीधेपन और गरीबी के कारण गाँवों में न केवल आर्थिक शोषण होता है वरन् शारीरिक शोषण भी होता है। *संजीव* की कहानी *तिरबेनी का तड़बन्ना* में तिरबेनी को बँधुआ मजदूर बनकर रहना पड़ता है, तिरबेनी बहू को ठाकुर चंन्ना सिंह के यौन शोषण का शिकार होना पड़ता है। इस कारण तिरबेनी बहू अपने पति से गाँव छोड़ने को कहती है। तिरबेनी बहू की तरह *झाम्बा (कृष्ण सुकुमार)* की पत्नी झाम्बा से गाँव छोड़ने को नहीं कहती, बल्कि गाँव में चौधरी के जुल्म के खिलाफ बोलने को कहती है। लेकिन झाम्बा जानता है कि पुलिस चौधरी का ही साथ देगी और चौधरी के कहने पर उसे मार-मार कर अपंग बना देगी। झाम्बा अपनी खीझ निकालने के लिए अपनी पत्नी को मारता है। *धर्मेन्द्र देव* की कहानी *उथल-पुथल* में दबंग, पढ़े-लिखे और ऊँची जाति के काश्तकारों द्वारा सरकारी कानून को ताक पर रखकर चालीस एकड़ से अधिक भूमि को दूसरे तरीके से अपने पास ही रखने के खिलाफ विरोध में खड़े होने वाले नीचे जाति के बेसहारा लोगों के संघर्ष की कथा है।

ऊँच-नीच व जाति भेद के कारण अस्तित्व और अस्मिता का संघर्ष ग्रामीण जीवन की

शांति को भंग कर देता है। *भवानी सिंह* की कहानी *सपनों में साइकिल* इसी अस्तित्व संघर्ष पर केन्द्रित है। कहानी के पात्र खूबीराम ने ऊँची जाति की अधिनायकवादी मानसिकता के खिलाफ मोर्चा खोल दिया है। *पुन्नी सिंह* की कहानी *सैनिक लोग* के सैनिक, गाँव की छोटी जातियों के वो नवयुवक हैं, जिन्होंने ऊँची जाति के प्रभावशाली और आर्थिक शक्तिसम्पन्न लोगों के जुल्म से आजिज आकर अपने लोगों के बीच जागरूकता फैलाई और पंचायत चुनाव में प्रत्याशी बन गए।

शहरों में फैलते 'पॉप कल्चर', फैशन और भौतिकता की ओर झुकाव से गाँव भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। *ऋता शुक्ला* की कहानी *सरबहारा* में इस प्रभाव के कारण गाँवों में आए बदलाव को उजागर किया गया है। कहानी के तिलकधारी पंडित को अपने पोते शिवा से उम्मीद थी कि वह शहर में पढ़ते हुए अपने गॉव को नहीं भूलेगा लेकिन उनकी उम्मीद धूल-धूसरित हो गई।

गाँव अब गाँव नहीं रह गया है........" खेतों की मेड़ पर पतलून के चौड़े-चौड़े पॉयचे उठाए दुखिया के झार की ओर तेज-तेज भागे जा रहे नये नोहार लड़कों को देखकर मचान पर बैठे तिलकधारी बाबा लम्बी उसाँस लेते हैं- "कौन कहेगा कि ये मरद के बच्चे हैं ? मरदानगी का यही रूप होता है ? दाढ़ी मूँछ मुँडी हुई, बड़े-बड़े रूखड़े केस लिलार से लेकर कनपटियों और गले तक फहराते हुए......जैसे मरियल घोड़े की गरदन पर झूल रहे बालों की उलझी हुई गाँठें हों।[16]

गाँवों के नवयुवक शहर की फैशनपरस्ती के पीछे भागते हैं और शहर की नीरस, डरावनी और भागदौड़ भरी जिंदगी से आजिज आ चुके लोग गाँव मे बस जाना चाहते हैं। गाँव का घर कहानी का सचन बम्बई के एक कारखाने में विस्फोट मे अपने पूरे परिवार को खो देने के बाद महानगर की जिन्दगी से इतना भयग्रस्त हो जाता है कि अपना सबकुछ बम्बई में ही छोड़कर गाँव के घर में अपनी जिन्दगी बिताना चाहता है। *अवधेश प्रीत* की कहानी *मुलुक* का बुधना कलकत्ता से लौटकर अब गाँव में ही रहना चाहता है और पंजाब में मची मारकाट व आतंक से भागकर प्रमेश्वर चमार का बेटा धनिया भी गाँव आ जाता है। *राजेन्द्र लहरिया* की कहानी *आवर्त* का रामरतन भी गाँव के लोगो की मानसिकता में आए बदलाव और गॉवों में बढ़ते अपराध से आजिज आकर गाँव से शहर आ जाता है लेकिन शहर में भी वही स्वार्थ, विकृत

मानसिकता और अपराध के कारण फिर से गाँव लौट जाता है।

गाँवों में आते सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक बदलाव के साथ ही शोषण, विकृत राजनीति, पलायन और विकृत मानसिकता के विविध पहलू समग्रता के साथ इस दौर की कहानियों में उजागर होते हैं। विकास के कारण उपजे अन्तर्विरोध और सुकून की तलाश में शहर से गाँव और गाँवों से शहरों की ओर भागते लोगों की नियति भी कहानियों में प्रकट होती है।

(ख) व्यवस्था विरोध, चिन्ता और घृणा (धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक) :-

बढ़ते भ्रष्टाचार, मुनाफाखोरी, भाई भतीजावाद, अपराध और बदलती मानसिकता के कारण समूची व्यवस्था इस तरह ध्वस्त हो चुकी है कि आम आदमी त्रस्त है। देश की अधिकांश जनता निर्धनता, असहायता, भूख और बेकारी से आहत है। यही असली भारतमाता है, जिसकी न तो संसद मे बैठे नेताओं को चिंता है और न ही पत्रकारों, समाजसेवकों तथा कार्यपालिका में न्यायपालिका में बैठे लोगों को। सभी अपने स्वार्थ में लगे हैं। *विश्वमोहन* की कहानी *पार्लियामेण्ट स्ट्रीट* की बूढ़ी औरत प्रतीकात्मक रूप से भारत की जनता है, जो न तो गाँधी के रास्ते में जाना चाहती है और न ही लेनिन, तुंग के रास्ते में, वह तो भूख मिटाना चाहती है, तन के लिए कपड़े चाहती है। आम आदमी के उठते विश्वास के कारण जनतंत्र *वनतंत्र (कृष्ण भावुक)* बन गया है। *उदय प्रकाश* की कहानी *भाई का सत्याग्रह* में इसीलिए 'उसे' अपनी ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा पर क्षोभ होने लगता है। "उसे तस्कर, अपराधी, राष्ट्रघाती, दलाल या बेईमान होना चाहिए था। उसने तो पॉच साल पहले हिन्दी अखबार की नौकरी इसीलिए छोडी थी कि उसके जरिए बाबरी मस्जिद के मामले में नंगी और घृणित साम्प्रदायिकता का प्रचार किया जा रहा था। वह तो देश के संविधान के प्रति अपनी नागरिक और पेशे प्रतिबद्धता की हिफाजत के लिए ही लड़ रहा था। उसे याद आया जब उसने नौकरी से इस्तीफा दिया, तो धीरे-धीरे उसके पास फोन आने बंद हो गए। वह सबसे अलग-थलग पड़ गया। मकान का किराया, बच्चों की पढ़ाई, बिजली-पानी का बिल। पत्नी टूट गई थी और उसके प्रति आक्रामक हो गई थी।"[17]

शानी की कहानी *चौथी सत्ता* में चौथी सत्ता (मीडिया और प्रेस) में बढ़ते भ्रष्टाचार, स्त्रियों के दैहिक शोषण, नेताओं के पिछलग्गूपन और बड़ी पूँजीपति फर्मों के दलालों की तरह कार्य करते प्रेस और पत्रकारों की असलियत उजागर करती है, तो *मृणाल पाण्डे* की कहानी *लेडीज* में समाजसेवा और कल्याणकारी कार्यों के नाम पर ढ़ोग करने, दिखावा करने तथा

समाज में इज्जत पाने व वाहवाही लूटने के फेर में चल रहे कल्याण संगठन के कार्यकर्ताओं की भ्रष्ट मानसिकता उजागर हुई है। इसी प्रकार *देवेन्द्र* की कहानी *रंगमंच पर थोड़ा रुक कर* और *गुलुश स्वामी* की कहानी *नियति* में कार्यपालिका, पुलिस और न्यायपालिका में व्याप्त भ्रष्टाचार, शोषण और अव्यवस्था पर तीखा कटाक्ष किया गया है।

भ्रष्ट व्यवस्था के कारण आम आदमी के मन में उपजी घृणा भी इस दौर की कहानियों में उजागर की गई है। *रमेश उपाध्याय* की कहानी *लाइ लो* के टैक्सी ड्राइवर भीका जी को नेता, मंत्री और अधिकारियों द्वारा झूठ बोलने, फरेब करने से चिढ़ है और मजबूर आदमी का, सच्चाई का साथ देना उसकी आदत है। इस आदत के कारण कई बार उसे कष्ठ उठाना पड़ता है। असहाय लड़की को उसने सेठ के चंगुल से बचाया लेकिन लड़की ने लम्बी रकम लेकर अदालत में सेठ के पक्ष में गवाही दी और भीका जी को सजा हो गई। इसी प्रकार *सी. दास बांसल* की कहानी *मैं सुकरात नहीं हूँ* और हेतु *भारद्वाज* की कहानी *पटाक्षेप* नहीं होगा में व्यवस्था की खामियों के कारण उपजी घृणा के साथ ही व्यवस्था के विद्रूपों से टकराव की प्रखर संघर्ष चेतना भी उकेरी गयी है।

व्यवस्था की खामियों को मजबूरी में भोगते-ढोते हुए जीने की पराकाष्ठा भविष्य के प्रति चिन्ता, घृणा और अविश्वास उत्पन्न कर देती है और व्यवस्था के प्रति विद्रोह की पृष्ठभूमि भी तैयार कर देती है। आठवें दशक के बाद की कहानियों में व्यवस्था विरोध, चिन्ता और घृणा को उजागर किया गया है, जिसे निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत रखा जा सकता है—

(अ) व्यवस्था विरोध -

देश के बहुमुखी विकास के साथ ही अराजकता, भ्रष्टाचार, शोषण और अत्याचार की भी वृद्धि हुई और हर क्षेत्र में हर जगह *कैक्टस के जंगल (कैलासचन्द्र शर्मा)* तैयार हो गए जहाँ "पूरा-का-पूरा एक वर्ग भूखा मर रहा है और दूसरा वर्ग मौजमस्ती करता हुआ बजट से बढ़ रही महँगाई पर बहस कर रहा है। बजट में बढ़ाए गए टैक्स और किराए का विरोध करते हुए हवाई जहाजों में सैर करता है। महँगी शराब पीकर पंचतारा होटलों में अय्याशी करता है।"[18] दूसरी ओर निर्मल चतुर्वेदी और गौतम घोष जैसे नवयुवक अपने भविष्य के सुनहरे सपनों पर बेकारी, अभावग्रस्तता और उपेक्षा की धुंध से जूझने को मजबूर होते है, अंततः समूची व्यवस्था से प्रतिशोध लेने पर उतारू हो जाते हैं। *परिपूर्णानन्द वर्मा* की कहानी *डाकू* में स्वतंत्रता संग्राम

सेनानी अपनी पेंशन बनवाने के लिए भागदौड़ करते हुए देखता है कि अपात्र भी पैसा देकर प्रमाण-पत्र प्राप्त कर रहे हैं, पेंशन ले रहे हैं। चारों ओर भ्रष्टाचार देखकर वह भी भ्रष्टाचार में डूब जाता है, पकड़े जाने के बाद जेल में अपराधियों की संगत पाकर डाकू बन जाता है लेकिन अपने उसूल और धर्म-कर्म नहीं छोड़ता। *ऋता शुक्ला* की कहानी *बिसात* की गंगा देवी अपने शहीद पति के जमाधन को पाने के लिए सरकारी तंत्र के भ्रष्टाचार, शहीद के परिजनों के प्रति उपेक्षा, उदासीनता और कुदृष्टि को सहते-भोगते हुए इतना व्यथित हो जाती है कि मुख्यमंत्री और अधिकारियों के सामने अपनी पीड़ा कहने के बाद वीरता पदक लेने से इंकार कर देती है। *शीतांशु भारद्वाज* की कहानी *मुसाफिर* में पूरन को डाक्टरों के हड़ताल पर चले जाने पर अस्पताल बिल्कुल मुसाफिरखाना लगता है, जहाँ इलाज के बगैर मरीज परेशान होते रहते हैं, मरते रहते हैं और डाक्टर *गाँधी जी के सुराज (एस. एल. मीणा)* के हथियार-हडताल की आड़ में अपने कर्तव्यों से भागते रहते हैं।

अपराधियों से साठगाँठ करके निर्दोष व्यक्ति को जबरिया फँसा देने का *वर्दियों का षड़यन्त्र (हृदयेश)* चलता रहता है और इसके विरोध में खड़े होने वाले व्यक्ति को न्याय मिलने की क्षीण उम्मीदों के कारण व्यवस्था पर विश्वास नहीं रह जाता है। लेकिन *घिराव (धर्मेन्द्र देव)* कहानी का भ्रष्ट दरोगा इल्म सिंह निर्दोष और गरीब लोगों को जबरदस्ती चोरी, डकैती के इल्जाम में फँसाने, मारपीट करने, कुचक्र रचने, सांसदों-विधायकों और अपराधियों से साठगाँठ करके पदोन्नति पाने और लाभ कमाने दण्ड जरूर भोगेगा, निर्दोष जनता को इस बात का विश्वास है।

आज के समाज में पनप रही नई राजनीतिक चेतना के कारण, समाज और राजनीति के बदलते समीकरणों के कारण, रोजी-रोटी के संघर्ष के बावजूद अव्यवस्थाओं से आजिज आकर विद्रोह का स्वर मुखरित हुआ है। आम आदमी हो या कर्मचारी, फैक्ट्री मजदूर, दिहाड़ी मजदूर हो या फिर परम्परागत उद्यमी, जीवन की जिजीविषा के बावजूद विद्रोह और विरोध करने की क्षमता से युक्त है। आठवें दशक के बाद की कहानियों में मुखरित हुए इस विरोध को निम्न बिंदुओं के अंतर्गत रखकर जाना-समझा जा सकता है-

(1) शोषण और अत्याचार का विरोध

(2) लालफीताशाही व कर्मचारियों के शोषण का विरोध

(3) फैक्ट्री मजदूरों की समस्याएँ और विरोध

(4) खेतिहर-दिहाड़ी मजदूरों की समस्याएँ और विरोध

(5) घरेलू नौकरों का शोषण और विरोध

(6) परम्परागत उद्यमियों, हस्तशिल्पियों व स्वरोजगार में लगे लोगों की समस्याएँ और विरोध

(1) शोषण और अत्याचार का विरोध :-

सभ्यता के विकास के साथ ही, शिक्षा व संसाधनों की वृद्धि के साथ ही जागरूकता बढ़ी है तो शोषण और अत्याचार भी बढ़ा है। *नई सदी का आदमी* दोहरे चरित्र को जीता है, अपने स्वार्थ के लिए शोषित होने को प्रस्तुत रहता है और कमजोर तबके के लोगों का शोषण करने से भी पीछे नहीं रहता। *कुन्दन सिंह परिहार* ने अपनी कहानी में यही बात कहनी चाही है। कहानी का दर्शनलाल नई सदी का आदमी है, जिसके पास अपना हर सही-गलत काम करवाने के लिए दुम निकल आती है और वह काम के आदमी के सामने दुम हिलाने लगता है तथा नौकरो- मजदूरों से काम निकालने के लिए, शोषण करने के लिए बड़े-बड़े दाँत और नाखून निकल आते हैं। ऐसे लोग चाहे गाँव में हों या शहर में, *कुन्दन सिंह परिहार* के *दरिद्रनारायण* का शोषण हर जगह करते हैं। *विश्वमोहन* की कहानी *आदमखोर* का नन्दू किराए का रिक्शा लेकर जब तक चलाता रहा तब तक उसका शोषण सेठ करता रहा और जब उसने बैंक से कर्ज लेकर रिक्शा खरीदा तो बैंक वाले साहब के शोषण का शिकार होना पड़ा और जब उसने विरोध किया तो उसके रिक्शे में बैंक का ताला पड़ गया। *विश्वमोहन* की कहानी *हम बीस सूत्रीय कार्यक्रम का समर्थन करते है* में भी छोटा-मोटा धंधा करके अपने परिवार को पालने वाले गरीबों के कभी सरकारी कर्मचारियों द्वारा तो कभी नेताओं द्वारा शोषण किए जाने की व्यथा-कथा है। *नीलकांत* की कहानी *अनसुनी चीख* की निराश्रित, गरीब और असहाय बेवा सोनबरसा के साथ हुए शोषण के कारण उसे मर ही जाना पड़ा क्योंकि उसकी चीख अनसुनी ही रह गई। बीस सूत्रीय कार्यक्रम के तहत जमीन का पट्टा देने का लालच देकर तहसीलदार, नायब तहसीलदार, पटवारी, चपरासी और गाँव के प्रधान ने एक साथ उसके शरीर को बर्बरतापूर्वक भोगकर "किसी लोकातीत सत्ता की अंतिम इच्छा की तामील करके अंततः कर्मचारियों ने यह सिद्ध कर दिया था कि भूमिहीनों को जमीन की कतई जरूरत नहीं।"[19]

आर्थिक संकट और गरीबी के बोझ तले दबे हुए समाज के सबसे निचले तबके के लोगों को मजबूरी में शोषण के लिए मजबूर होना पड़ता है। *चित्रा मुद्गल* की कहानी *लेन* की महेन्दरी का पति गुण्डों द्वारा मारे जाने के कारण रीढ़ की हड्डी में गंभीर चोट की वजह से रिक्शा चलाने में अक्षम हो जाता है। महेन्दरी उन गुण्डों को पहिचान लेती है और दण्ड दिलवाना चाहती है लेकिन घर के समक्ष उत्पन्न हो गए आर्थिक संकट और परिवार चलाने की मजबूरियों के कारण गुण्डों द्वारा दिये गए पाँच हजार रुपये ले लेती है। हालाँकि उसका जमीर गवारा नहीं करता, फिर भी पति की जान का सौदा करना उसकी मजबूरी हो जाती है। *कैलास वानखेड़े* की कहानी *स्कालरशिप* का दलित युवक स्कालरशिप की खातिर कई स्तरों से गुजरते हुए हर जगह शोषण, अपमान और तिरस्कार को भोगता है और आजिज आकर पढ़ाई छोड़कर पैतृक धंधे व मजदूरी में लग जाना चाहता है लेकिन पिता के अरमानो के कारण पीछे नहीं हट पाता और शोषण का शिकार होता रहता है ।

उपेक्षा और अन्याय की पराकाष्ठा शोषित व्यक्ति को प्रतिशोध लेने पर मजबूर कर देती है। *शैलेश मटियानी* की कहानी *अहिंसा* का जगेसर अपनी बीबी के इलाज में अस्पताल के डॉक्टरों और नर्सों की उपेक्षा व आर्थिक शोषण को भोगता है। बीबी के अपरेशन के लिए वह चारपाई बिन कर किसी तरह एक हजार रुपये डॉक्टर को देता है तभी डॉक्टरो की हड़ताल हो जाती है और उसकी बीबी बिना इलाज के मर जाती है। अपने साथ हुए अन्याय से आहत होकर जगेसर ने डॉक्टर गुदौलिया को मार डाला। *अरुण प्रकाश* की *ये अधूरी कहानी* में विलियम का साथ उसके परिजनों और पत्नी ने भी नहीं दिया वह चापलूसी, मक्कारी व बेईमानी के विरोध तथा अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए होटल की नौकरियाँ बदलता ही रह गया, विरोध ही करता रह गया। विलियम और रामलाल जैसे जुझारू लोगों की यही अधूरी कहानी है कि वे समय के अनुरूप स्वयं को बदल नहीं पाते। ओम भारती की कहानी बदअमनी का बिहारी भैया खुद गरीबी का दर्द झेल रहा था, इसीलिए नत्थू सेठ द्वारा सट्टा खिलाकर गरीबों को बर्बाद किये जाने का विरोध करता था। नत्थू सेठ ने बिहारी बाबू को इसीलिए न केवल मरवाया व्‌रन् सट्टा खिलाने और मोहल्ले में बदअमनी फैलाने के झूठे आरोप लगवाकर जेल में बंद करा दिया।

इस प्रकार आठवें दशक के बाद की कहानियों में शोषण और अत्याचार का विरोध करने

के साथ ही कभी स्वार्थवश तो कभी मजबूरी में अन्याय और अत्याचार को, शोषण को सहते रहने की स्थितियाँ उजागर हुई हैं। इसके साथ ही अत्याचार व शोषण के खिलाफ सक्रिय चेतना को भी इस दौर की कहानियों में खुलकर प्रकट किया गया है।

(2) लालफीताशाही व कर्मचारियों के शोषण का विरोध :-

व्यवस्था में गहराई तक पैठ बना चुके शोषण और भ्रष्टाचार से दो-चार हुए बिना जीवन-यापन की निःशेष संभावनाएँ वर्तमान जीवन की बड़ी विद्रूपता है। अफसरशाही के बीच दम तोड़ती लाभकारी, जनकल्याणकारी योजनाएँ, लालफीताशाही, कामचोरी, भ्रष्टाचार और लूट-खसोट वर्तमान व्यवस्था का यथार्थ है और आठवें दशक के बाद की कहानियों में यह *कालचक्र कथा (मधुकर सिंह)* परिपक्व कथा-कौशल के साथ कही गई है। जिसमें मंत्री से लगाकर चपरासी तक व्याप्त भ्रष्टाचार है, घूसखोरी है, सरकारी पदों के दुरुपयोग की कहानी है। सरकारी विभागों के कर्मचारियों की कोरी आँकड़ेबाजी के बीच दम तोड़ती सरकारी योजनाओं को यही *राजरोग* लगा हुआ है। *जितेन्द्र भटिया* की कहानी इसी असलियत को उजागर करती है। कहानी में कोरे आँकड़े पेश करके अपने कर्तव्यों से इतिश्री कर ली गई है। *अरुण प्रकाश* की कहानी *जल प्रान्तर* में पहाड़ी घाट और उसके आसपास के गाँव में आई बाढ़ की विभीषिका पर सरकारी तंत्र द्वारा कमाई किये जाने को लेकर व्यवस्था के विद्रूप चेहरे को बड़ी सफाई के साथ उजागर किया गया है। सरकारी मदद और योजनाएँ कागज में ही पूरी हो जाती हैं और पहाड़ी घाट पर बाढ़ हर साल आ जाती है। अगर बाढ़ न आए तो राहत कार्य के नाम पर कमाई का जरिया नहीं रह जाएगा। "अजीब यह था कि गुप्ता बाँध पर हर साल बाढ़ नियंत्रण के नाम पर कागजी तौर पर मिट्‌टी डाली जाती थी। पर गंगा की कोख में भरते बालू के ढेर को साफ नहीं किया जाता था। गंगा का तल गहरा हो जाता तो शासन तंत्र की हरियाली सूख जाती। गंगा में आई बाढ़ राजधानी पटना में भी पूछ फटकारने लगी थी। फिर भी बाढ़ के कई फायदे थे। बाढ़ का प्रकोप असंतोष, राजनीतिक उठा-पटक, हड़ताल सबको स्थगित कर देती थी और सालो तक रिश्वत के पानी से शासन की जड़ों को सींचती रहती थी। राजधानी से दूरदराज के इलाकों में बाढ़ आती तो हेलिकाप्टर से उडान भरने का मजा भी साथ लाती। सिमरिया गाँव तो बाढ को दाद की तरह हर साल खुजलाता।"[20] सिमरिया गाँव के लोग हर साल बाढ की विभीषिका से ज्यादा सरकारी कर्मचारियों के शोषण, उपेक्षा और भ्रष्टाचार को भोगते। *देवेन्द्र*

सिंह की कहानी *सूली पर टँगा सत्य* भी भ्रष्टाचार के आगे दम तोड़ती नैतिकता और मानवीय संवेदना के यथार्थ को उजागर करती है।

भ्रष्टाचार और अनैतिकता के विस्तार ने तमाम सिद्धान्त, आदर्श और मान्यताओं को तोड़कर रख दिया है। ऐसी स्थितियों के कारण सिद्धान्तवादी लोगों के मन में उपजी चिंता और संघर्षशीलता भी कहानियों में प्रकट हुई है। *कृष्ण भावुक* की कहानी *विदेशी* का 'वह' अपने गाँधीवादी आदर्शो के कारण अपने ही देश में स्वयं को विदेशी महसूस करता है, क्योंकि गाँधीवाद और गाँधी के आदर्श सभी बेकार हो गये हैं और इन पर चलते हुए व्यक्ति का जीना आसान नहीं रह गया है। गाँधी के आदर्शों पर चलते हुए 'वह' जब तक चिट्स फण्ड के मैनेजर से अपना रुपया माँगता रहा तब तक उसे टरकाया गया और जिस दिन 'वह' मार्क्सवाद को अपनाकर मैनेजर को मारने के लिए उतारू हो गया, उसी दिन उसे अपना रुपया मिल गया। *प्रेमपाल शर्मा* की कहानी *सोचा* में भी परिवेश और मजबूरी के कारण एक ईमानदार अधिकारी के भ्रष्ट और घूसखोर हो जाने की स्थितियों को प्रकट किया गया है। कहानी समूची लोकतांत्रिक व्यवस्था के, प्रशासन तंत्र के भ्रष्ट हो जाने की प्रक्रिया को भी उजागर करती है।

कार्यालयों में फैले भ्रष्टाचार, घूसखोरी और लूट-खसोट की अपसंस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष कर्मचारियों का शोषण भी है। कभी अपने उसूलों के कारण तो कभी अपनी दयनीय दशा के कारण कर्मचारी शोषण का शिकार होते रहते हैं। *अनिल कुमार सिन्हा* की कहानी *एक क्लर्क की मौत* का "अशोक कभी-कभी यह महसूस करता था कि वह स्वंय ही अपना सबसे बड़ा शत्रु है। वह उस समय क्यों इतना शुष्क और सख्त बना रहा, थोथे नियमों से बँधा रहा, जिस समय उसके साथी बदलते समय के अनुरूप अपने आप को बड़ी आसानी के साथ ढालते जा रहे थे और जीवन के उस सुख को अपने हाथों मे पकड ले पा रहे थे जिनकी आम आदमी आकाँक्षा रखता है।"[21] अब उसके सिद्धान्तों, ईमानदारी और कर्मठता के ऊपर घूसखोरों और भ्रष्टाचारियों की कामचोरी व बेईमानी भारी पड़ रही है, लिहाजा उसका प्रमोशन नहीं हो पा रहा है। *शीतांशु भारद्वाज* की कहानी *धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र* की पूनम ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा के साथ कार्य करने का जज्बा लेकर नौकरी की शुरुआत करती है और अपने सहकर्मियों की अराजकता, देर से आना-जल्दी चले जाना, परसेन्टेज के रूप में घूस की रकम लेना, घूस न मिलने पर फाइल रोके रहना आदि क्रियाकलाप देखती है, उसके पास भी घूस के प्रस्ताव आने

लगते हैं। उसके पिता भी समय के अनुरूप बदल जाने की सलाह देते हैं। इन परिस्थितियों में पूनम मानसिक अन्तर्द्वन्द्व से जूझते हुए अंततः अपने सिद्धान्तों पर ही टिके रहने का निर्णय लेती है। *नसीम साकेती* की कहानी *जहाँ मस्तिष्क कैद है* में निर्माण कार्य विभाग के ईमानदार इंजीनियर को हटाने के लिए उच्च अधिकारियों, सहकर्मियों, मातहत कर्मचारियों और ठेकेदारों द्वारा रचे जाते कुचक्रों को उजागर किया गया है क्योंकि उसके रहने से कमीशनखोरी नहीं हो पाती है। *संजीव की कहानी मकतल* में भी कार्यालयी अपसंस्कृति, घृणा, चापलूसी और द्वेष भावना को प्रकट किया गया है। *यशपाल बैद* की कहानी *कटीजेब* के मेहता, घनश्याम और भाटिया अपनी नौकरी की मजबूरी और बॉस का खासमखास बने रहने की जद्दोजहद में अपने घर के जरूरी खर्चो की कटौती करके बॉस के लड़के की शादी में इक्कीस-इक्कीस रुपए और मुबारकबाद देकर उदास मन से घर को लौट जाते हैं। उन्हें घर के जरूरी खर्चो में कटौती का मलाल रहता है। *प्रेमपाल शर्मा* की कहानी *सत्संग* का वीरबहादुर 'सत्संग' की बजाय रोड पर झाडू लगाना ज्यादा पसंद करता है, लेकिन सरकारी धन से बॉस द्वारा कराए जा रहे सत्संग में मजबूरी में उसे अपनी बीबी को भेजना पड़ता है। *राजेन्द्र राव* की कहानी *मुठभेड़* का जहाज अपनी कर्मठ्ता, योग्यता और कार्यक्षमता के शोषण और अपमान को चुपचाप सहते रहने के बजाय 'मुठभेड़' पर उतारू हो जाता है। अपने तेज स्वभाव के कारण कई बार स्थानांतरण और जवाब-तलब के बावजूद वह झुका भी नहीं और हार भी नहीं मानी। *धनेश्वर प्रसाद* की कहानी *छटपटाहट* भी ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा और सत्यनिष्ठा के ऊपर भारी पड़ते भ्रष्टाचार, चापलूसी, कामचोरी और चमचागिरी के कारण छटपटाते कर्मचारी की व्यथा-कथा है।

राजेश शर्मा की कहानी *अण्डर अबव सरकम स्ट्रान्सेज* और *नसीम साकेती* की कहानी *अमोघ अस्त्र,* लालफीताशाहों द्वारा दैहिक शोषण किये जाने और अपना काम निकलवाने के लिए व्याभिचार का सहारा लेने की मानसिकता उजागर करतीं हैं। पहली कहानी की पात्र रीता अपने घर की मजबूरियों के कारण नौकरी करती है। उसकी मजबूरी व कमसिन उम्र को कम्पनी का मैनेजर और उसका लड़का दोनों भोगना चाहते हैं और दूसरी कहानी के खुराना साहब की बीबी ही वह 'अमोघ अस्त्र' है, जिसके बूते उसने कई तरक्कियाँ पाई और भ्रष्टाचार करके खूब धन कमाया।

कुल मिलाकर समूचे व्यवस्था तंत्र में लगे भ्रष्टाचार व लालफीताशाही के घुन के साथ

ही छोटे स्तर के कर्मचारियों के शोषण, उपेक्षा व कुण्ठा से उपजी विकृतियों और अव्यवस्थाओं की सभी स्थितियों को कहानियों में उजागर किया गया है।

(3) फैक्ट्री मजदूरों की समस्याएँ और विरोध :-

तेजी से पाँव पसारते औद्योगीकरण, बाजारीकरण और वैश्वीकरण के दौर में कारखानों और व्यावसायिक संगठनों से जुड़े हुए लोगों का जीवन न केवल संघर्षमय है वरन् जटिलताओं और शोषण से भरा हुआ है। नवें दशक के शुरुआती दौर में इस दुनिया के लोगों के जीवन और समस्याओं पर केन्द्रित कहानियाँ कम ही लिखी गई हैं। संचार माध्यमों की सक्रियता, ट्रेड यूनियनों के संघर्ष में आती तेजी और मुखर विरोध के लिए आगे आते लोगों के कारण, औद्योगीकरण और व्यवसायीकरण के विस्तार के कारण फैक्ट्री मजदूरों की समस्याएँ, विरोध, विसंगतियाँ और क्रूरताएँ पूरी शिद्दत और गहराई के साथ कहानियों में उजागर हुई हैं। औधोगिक संस्थानों के मालिकों, ठेकेदारों और ट्रेड यूनियन के नेताओं के चक्रव्यूह में पिसते, रोजी-रोटी के लिए संघर्ष करते और मरते-खपते लोगों की कहानी है- *जितेन्द्र भटिया* की *चक्रव्यूह*। फैक्ट्री का मैनेजिंग डायरेक्टर अपना टैक्स बचाने के लिए अपने परिवार के सदस्यों को फैक्ट्री का कर्मचारी होना दिखाता है और उनके नाम से पगार भी खुद हजम कर जाता है, लेकिन फैक्ट्री मजदूरों को बोनस नहीं देता। बोनस के लिए जब कर्मचारी संघर्ष करते हैं तो यूनियन के नेताओं और मजदूरों को आपस में लड़ाने के लिए फैक्ट्री बंद कर दी जाती है। लिहाजा फैक्ट्री के मजदूर अपने नेता को ही मारते हैं क्योंकि उन्हें रोजी-रोटी छिन जाने का भय है।

महेश कटारे 'सुगम' की कहानी *मुट्ठी भर आग* में मशीनीकरण के फलस्वरूप बढ़ती बेरोजगारी और छँटनी के कारण फैक्ट्री मजदूरों के समक्ष उत्पन्न हो गए जीवन-यापन के संकट को उजागर किया गया है। *जितेन्द्र भटिया* की कहानी *शहादतनामा* में फैक्ट्री मजदूरों के हित के लिए कम्पनी प्रबन्धन से और अपने साथ कुछ चापलूस किस्म के लोगों से लड़ते-लड़ते मर जाने वाले फैक्ट्री मजदूर की शहादत की कहानी है। कहानी बताती है कि "कम्पनी में तकरीबन सात सौ मजदूर ऐसे थे, जो कुशल कारीगर होते हुए भी पूरी तरह अस्थाई थे। इन्हें कम्पनी पाँच रुपए रोज के हिसाब से पैसा देती थी और इनसे मनमाना काम लेती थी। इनमें कई पिछले दस या बारह सालों से कम्पनी में काम कर रहे थे, पर इनकी

हैसियत में कोई फर्क नहीं आया था।....... ये सब मजदूर हमेशा एक अनाम-से बोझ से दबे रहते थे और कम्पनी इस हकीकत का पूरा फायदा उठाती थी। इन सभी लोगों से हर तरह का भारी काम बहुत बेरहमी से लिया जाता था, क्योंकि ये जरा भी प्रतिवाद करने की स्थिति में नहीं थे।''[22] अमरजीत इन मजदूरों को स्थाई कराने के लिए अकेले दम पर संघर्ष में जुट गया। रॉड्रिग्स के कारण यूनियन से त्यागपत्र दे दिया। कम्पनी प्रबंधन के कुछ चापलूस किस्म के मजदूरों ने धोखे से अमरजीत को मार डाला और कम्पनी प्रबंधन ने अमरजीत की हत्या के चश्मदीद गवाह को पदोन्नति देकर मुँह बन्द कर दिया।

अनिल कुमार सिन्हा की कहानी *हड़ताल* में मजदूर यूनियन के नेताओं द्वारा अपनी नेतागिरी चमकाने के खातिर बलि का बकरा बनाए गये फैक्ट्री मजदूर सोहनलाल की व्यथा-कथा है। यूनियन के नेताओं ने अपनी नेतागिरी की हनक बनाए रखने के लिए सोहनलाल के पाँच दिन के मेहनताने के मामूली मामले को तूल देकर इतना उकसाया कि फैक्ट्री में हड़ताल हुई, मारपीट भी हुई हालाँकि सोहनलाल बातचीत से ही मामले को सुलझाना चाहता था। उसकी पत्नी बीमार थी लेकिन यूनियन के नेताओं की नेतागिरी के कारण उसे जेल जाना पड़ा और 'क्रिमिनल केस' चलने के कारण काम से भी हटा दिया गया। अब उसके पास बेकार रहने और उधार मांगने के सिवा कुछ नहीं बचा। *डॉ.दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय'* की कहानी *धुँए के छल्ले* में यूनियन के नेताओं के साथ जुडी हुई जनशक्ति के दुरुपयोग को उजागर किया गया है। पुलिस विभाग का भ्रष्ट दरोगा मल्होत्रा प्रापर्टी डीलर कपूर से अपना कमीशन नहीं पाने पर यूनियन के नेताओं को उस जमीन पर नेतागिरी करने को उकसा देता है। हालाँकि वह जमीन सरकारी है लेकिन नेताओं की नेतागिरी और मल्होत्रा के भ्रष्टाचार के कारण सरकारी जमीन का बंदरबाँट हो जाता है।

सतीश जमाली की कहानी *निर्णय* का छेदीलाल यूनियन के नेताओं की कोरी बयानबाजी, भाषणबाजी और नेतागिरी करके धन कमाने की मानसिकता से आजिज आकर हड़ताल में शामिल नहीं होना चाहता, लेकिन जब उसे एहसास होता है कि छोटी-छोटी समस्याओं के लिए बड़े लक्ष्य से भटकना और व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए मजदूरों के हक की लड़ाई को कमजोर करना उचित नहीं है तब वह भी हड़ताल पर बैठने का निर्णय ले लेता है।
सतीश जमाली की ही कहानी *गोली बंदूक से निकलती है* में फैक्ट्री मजदूरों के आन्दोलन

को दबाने के लिए छल-बल का प्रयोग करने की पूँजीपतियों और फैक्ट्री मालिकों की साजिश के खिलाफ संघर्ष को बतलाया गया है। फैक्ट्री के अन्दर ही मजदूर ऐसा वातावरण बना देते हैं कि फैक्ट्री मालिक को उनकी माँगे माननी पड़ती हैं। लेकिन फैक्ट्री से बाहर निकलते ही पुलिस की साठगाँठ से फैक्ट्री मालिक मजदूरों पर गोलियाँ चलवा देता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी *प्रमोशन* में मजदूरों के बीच फैली असमानता और विभेद की मानसिकता को उजागर किया गया है। कहानी के पात्र सुरेश का प्रमोशन 'स्वीपर' से 'लेबर' में हो गया तो उसने भी लाल झण्डे वाली पार्टी का सदस्य बनकर सक्रियता से काम करने के अपने अरमान को पूरा करना चाहा, लेकिन यूनियन में उसकी अहमियत सबसे निचले दर्जे की ही रही। भाषण देने और अखबारों में फोटो छपवाने वाले तो अपना काम करके चले जाते, बाकी काम सुरेश ही करता था। उसके प्रति सभी तिरस्कार का भाव ही रखते थे, इसीलिए जब वह दूध बाँटने को लाया तो किसी ने भी उससे दूध नहीं लिया। "मजदूर-मजदूर भाई-भाई का नारा आज उसके रक्त प्रवाह को तेज नहीं कर रहा था। उसकी आँखों के सामने एक अजीब-सा अँधेरा घिर रहा था। उसने सुपरवाइजर की ओर देखा, वह बहुत गुस्से में उसकी ओर आ रहा था। चीखकर बोला- जाओ उस पांडे को बुला लाओ!"[23] *जितेन्द्र भाटिया* की कहानी *सिद्धार्थ का लौटना* एक ऐसे नवयुवक की कहानी है, जो फैक्ट्री के मलिकों, उच्च पदों पर बैठे फैक्ट्री के अधिकारियों और मजदूरों के बीच असमानता की गहरी खाई के कारण उपजी शोषण और अत्याचार की स्थितियों तथा कुचक्रों से आजिज आकर अपने गाँव लौट जाना चाहता है, दूसरी ओर मजदूरों की दयनीय हालत देखकर वह संघर्ष में सहभागी भी होना चाहता है अंततः वह मजदूरों का साथ देने का निर्णय लेता है।

फैक्ट्री मालिकों, पुलिस और यूनियन के नेताओं द्वारा अपने लाभ के लिए मजदूरों का शोषण किये जाने और शोषण के खिलाफ मजदूरों की संगठित शक्ति को प्रकट करते हुए फैक्ट्री मजदूरों के दयनीय जीवन की दशा और प्रखर संघर्षशीलता को भी हिन्दी कहानियों में बेबाकी के साथ प्रकट किया गया है।

(4) खेतिहर-दिहाड़ी मजदूरों की समस्याएँ और विरोध-

फैक्ट्री मजदूरों से अलग श्रमिकों का एक वर्ग ऐसा भी होता है, जो दैनिक मजदूरी पर कार्य करता है। गावों में हलवाही, चरवाही और कृषि सम्बन्धी अन्य कार्यों हेतु दैनिक मजदूरी

के हिसाब से या कार्य विशेष हेतु तय मजदूरी के हिसाब से गल्ला या रुपया पाने वाले खेतिहर मजदूर कहलाते हैं। इसी प्रकार शहरों में मकान-निर्माण, सड़क निर्माण, ईंट भट्ठा के अतिरिक्त सामान ढुलाई आदि का कार्य दैनिक मजदूरी के आधार पर करने वाले दिहाड़ी मजदूर होते हैं। दोनों प्रकार के मजदूरों के कार्य का, कार्य के समय का और मजदूरी का कोई मानक या स्थाई आधार और श्रमिक संगठन नहीं होने के कारण ये सबसे अधिक शोषित-उपेक्षित और प्रताड़ित होते हैं। सामन्तवादी और पूँजीवादी मानसिकता के पोषक वर्ग का गुजारा भी इनके बिना नहीं हो सकता। नवें दशक के उत्तरार्द्ध तक ऐसे मजदूरों के जीवन की विसंगतियाँ, समस्याएँ, शोषण और अत्याचार कहानी की पहुँच से दूर थे। लेकिन इधर की कहानियों में खेतिहर-दिहाड़ी मजदूरों के जीवन-संघर्ष को, शोषण को और विरोध को खुलकर उजागर किया गया है।

खेतिहर-दिहाड़ी मजदूरों को हाड़तोड़ मेहनत के बाद मजदूरी तो कम मिलती ही है, साथ ही उपेक्षा, प्रताड़ना और दैहिक-यौन शोषण भी भोगना पड़ता है। *कमलाकांत त्रिपाठी* की कहानी *पुण्यात्मा* का रामदास लोभ-लालच के बिना अपने मालिक के खेतों की रखवाली करता है। वह और उसका परिवार अक्सर भूखे पेट सो जाने के बावजूद ईमानदारी को नहीं छोड़ते लेकिन बम्बई से वर्षो बाद लौटा उसका मालिक उस पर विश्वास नहीं करता और रामदास पर चोरी का इल्जाम लगा देता है। *संजीव* की कहानी *तिरबेनी का तड़बन्ना* का तिरबेनी मेहनती और कर्मठ होने के बावजूद गाँव में उपेक्षित रहता है। उसे इस बात का अहसास हो जाता है कि ठाकुर चन्ना सिंह की जी भर सेवा करने के बाद भी उसे ताड़ी उतारने का अधिकार नहीं मिलेगा। हालाँकि उस तड़बन्ने पर उसका भी उतना ही अधिकार है जितना ठाकुर चन्ना सिंह का, क्योंकि वह तड़बन्ना ग्राम पंचायत की जमीन पर लगा हुआ है। तिरबेनी और उसकी बीबी की आर्थिक दयनीयता और पराश्रितता का लाभ उठाकर ठाकुर चन्ना सिंह तिरबेनी बहू का दैहिक शोषण भी करना चाहता है। *अरुण प्रकाश* की *कहानी नहीं* के ठाकुर देवनंदन सिंह अपने यहाँ मजदूरी करने वाली मुसहर जाति की गरीब युवती सवितरी के शरीर को भोगने की गरज से उसके साथ प्रेम का ढोंग रचाते हैं। देवनंदन सिंह के सच्चे प्यार के झाँसे में हर बार सवितरी लुटती रही और जब वह गर्भवती हो गयी तो देवनंदन सिंह ने उसे मार डाला।

सेठ-साहूकारों और पूँजीपतियों द्वारा मजदूरों को बंधुआ बनाए जाने की स्थितियाँ *विजेन्द्र अनिल* की कहानी *विस्फोट* में उजागर होती हैं। अपनी जमीन रेहन रखने के बाद रमुआ और

उसकी बीबी खेतिहर मजदूर होकर रह जाते हैं। 'सात साल के बाद रेहन की जमीन उसके मालिक को वापस कर देने' का सरकारी कानून उनके लिए बेमतलब हो जाता है और बंधुआ-खेतिहर मजदूर अभाव और बेबसी भरी जिंदगी जीने को मजबूर हो जाते है। *विजेन्द्र अनिल* की कहानी *हल* के बैजू और भिखारी दिनभर बैल की तरह अपने मालिक के खेत में काम करने के बावजूद सिर्फ तीन रुपए पाकर असमंजस की स्थिति में पड़ जाते हैं कि इतनी कम मजदूरी से परिवार का खर्च कैसे पूरा करें- "नहीं वह चावल नहीं खरीदेगा। आटा ही खरीदेगा। पौने दो रुपये सेर के भाव से मिलता है। दो सेर आटा खरीद लेगा। मगर दो सेर आटा खरीदने में भी साढ़े तीन रुपया लगेगा। आठ आना उधार लगा देगा। पर उधार देगा कौन ?"[24] यही उसकी जिंदगी में लगा यक्ष प्रश्न है, जिसका उसके पास कोई 'हल' नहीं। इसीलिए जानते हुए भी स्वयं को शोषण के लिए प्रस्तुत करते रहना इन मजदूरों की नियति है। *विजयकांत* की कहानी *बीच का समर* के बैजनाथ साहनी और उसकी बीबी को ठकुराइन पार्वती सिंह के खेतों में काम करने के साथ ही साथ उसके घर में भी बेगार करनी पड़ती है।

खेतिहर-दिहाड़ी मजदूरों में जागृत होती संघर्ष चेतना और नेताओं द्वारा इन मजदूरों का अपने हित में उपयोग किये जाने की स्थितियाँ भी कहानियों में प्रकट हुई हैं। *सृंजय* की कहानी *कामरेड का कोट* में यही स्थितियाँ उजागर होती हैं। अत्याधिक शोषण और हाड़-तोड़ मेहनत के बावजूद भूखों मरने की नौबत ही खेतिहर मजदूरों को शोषण के खिलाफ संघर्ष के लिए प्रेरित करती है। ग्रामीण कार्यकर्ता कामरेड कमलाकांत उपाध्याय अपने शीर्ष नेतृत्व के खिलाफ भड़क उठता है क्योंकि वे कोरी बकवासबाजी करने, मूल समस्या से मुँह चुराने और खुलकर संघर्ष करने के बजाय बातचीत करके मामले का हल निकालने पर जोर देते हैं। भूमिहार जगतनारायण सिंह के आतंक से निजात दिलाने और भूखों मर रहे मजदूरों को राहत देने के बजाय उनके हाल पर जीने के लिए छोड़ देने के अघोषित निर्णय के साथ ही पार्टी की मीटिंग खत्म हो जाती है। लिहाजा कमलाकांत उपाध्याय और तमाम खेतिहर मजदूर अपने बूते ही संघर्ष करने को उद्यत हो जाते हैं। *चन्द्रमोहन प्रधान* की कहानी *एनकाउण्टर* में खेतिहर मजदूरों द्वारा अपने हक के लिए आवाज उठाये जाने पर उन्हें नक्सली कह कर गोली मार दी जाती है। छोटे बच्चों और महिलाओं का भी एनकाउटंर करने से पुलिस और प्रशासन पीछे नहीं हटते। *मधुकर सिंह* की कहानी *मेरे गाँव के लोग* का खेतिहर मजदूर, भूस्वामी और पुलिस के अत्याचारों को झेलते

हुए जेल मे बंद रहकर भी अपने संघर्ष की ऊर्जा को प्रस्फुटित करता है।

चन्द्रमोहन प्रधान की कहानी *एहि नगरिया में केहि विधि रहना* का सोनालाल गाँव के ठाकुरों द्वारा किए गए नरसंहार का चश्मदीद गवाह है। वह अपनी जान बचाकर भागता है और अपने टोले के दूसरे लोगों की जान बचाने व दोषियों को दण्ड दिखाने का आसरा बाँधकर पुलिस कमिश्नर के पास जा कर पूरी बात बताता है। लेकिन वहाँ भी न्याय की उम्मीद नहीं देखकर भागता है और हीरा बाबू की जीप से कुचलकर मारा जाता है। *मदन मोहन* की कहानी *बच्चे बड़े हो रहे हैं* में खेतिहर मजदूर चंदर का बेटा अपने बाप के साथ गाँव के ठाकुर द्वारा किये गए अत्याचार और डकैती के फर्जी मुकदमे में जेल भिजवाए जाने से इतना आक्रोशित हो जाता है कि अपनी बालसुलभ चंचलता को समय से पहले ही त्याग देता है, रात-रात भर जागता है और अपनी माँ से 'एकठो बखुनिया' माँगता है, ताकि बाप के के साथ हुए अत्याचारों का बदला ले सके। *मिथिलेश्वर* की कहानी *मेघना का निर्णय* के पात्र मेघना और उसके साथियों को शहर में उसके गाँव का भूस्वामी इसलिए डॉटता-फटकारता और अपमानित करता है क्योंकि मेघना और उसके साथी रेलबाबू से अपनी वाजिब मजदूरी की माँग कर रहे थे। मेघना को इस बात पर गुस्सा आता है कि "दिन-भर जी तोड़कर खटने के बाद वह भीख की तरह पैसे क्यों माँगे?"[25] अंततः वह अपने साथियों से विचार-विमर्श करके इस ज्यादती के खिलाफ लड़ने का निर्णय लेता है।

गाँव में खेती-किसानी का काम नहीं मिलने पर शहर आकर भवन-निर्माण, मरम्मत, सड़क निर्माण, कुलीगिरी, रिक्शा चलाने आदि का कार्य करने वाले दिहाड़ी मजदूरों का जितना शोषण पूँजीपति वर्ग, अधिकारी वर्ग, पुलिस, नेता, गुण्डे और अराजक तत्त्व आदि करते हैं, उतनी ही मार उन्हें बढ़ते औद्योगीकरण, बाजारीकरण, मशीनीकरण, महँगाई, आर्थिक असमानता और वर्गीय विभेद के कारण झेलनी पड़ती है। *प्रेमपाल शर्मा* की कहानी *सूबेदार* काम की तलाश में भटकने वाले दिहाड़ी मजदूरों की जीवन-चर्या उजागर करती है। सुबह होते ही शहर के मुख्य चौराहे पर मजदूरी हेतु ये इकट्ठे होते है, जिनको काम नहीं मिलता वे दिन चढ़ने तक काम मिलने की आस में बैठे ही रहते हैं, और जिन्हें काम मिल जाता है उनको कम मजदूरी दी जाती है या बिना मजदूरी दिये काम से भगा दिया जाता है। *हृदयेश* की कहानी *मजदूर* का विकलांग मजदूर काम के लिए भटकते हुए बड़ी मुश्किल से काम पाता है और बड़ी निष्ठा से काम करते

हुए जब भूलवश उससे गलती हो जाती है तो अपमानित करके और आधी मजदूरी देकर उसे काम से निकाल दिया जाता है। *हरि भटनागर* की कहानी *खूँखार लोग* के मालिक और मेट ही वह खूँखार लोग हैं, जो बाबूलाल से काम तो जी भर कर लेते है लेकिन मजदूरी से लम्बा कमीशन काट लेते हैं और मारपीट भी करते हैं। *जितेन्द्र भाटिया* की कहानी *अनुष्ठान* के अनपढ़ और दिहाड़ी मजदूर पाण्डू से वह काम भी लिया जाता है, जिसे वह नहीं जानता और न ही उसे वह काम करने की इजाजत थी, लिहाजा चूक होने पर उसकी मौत हो जाती है और कम्पनी उसकी माँ को सौ रुपए देकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेती है।

जितेन्द्र भाटिया की कहानी *ग्लोबलाइजेशन* में एक ओर ग्लोबलाइजेशन के तहत फैक्ट्री के शेयर विदेशी कम्पनी को बेचे जाने का विरोध चल रहा है तो दूसरी ओर दिहाड़ी मजदूर अपनी वीभत्स दिनचर्या जीते हुए फैक्ट्री के ठेकेदारों और फैक्ट्री के नियमित कामगारों के शोषण के शिकार हो रहे हैं, उनकी मेहनत की कमाई में कमीशनखोरी हो रही है और हाड़तोड़ मेहनत के बावजूद मारपीट भी हो रही है। इस ओर किसी का ध्यान नहीं जाता और न ही कोई विरोध को तैयार होता है। पूरी मेहनत के बावजूद *उसकी रोटी (सी.दास बांसल)* पर पूँजीपतियों का कब्जा हो जाता है और शोषण के शिकार होकर भूखे पेट मरते हुए मजबूरी में मजदूरों को भीख तक माँगनी पड़ती है। *एखलाक अहमद ज़ई* की कहानी *खटमल* में मेहनत-मजदूरी करके अपने परिवार को चलाने के लिए जूझ रहे मजदूरों की कमाई को हजम कर जाने वाले पेशेवर और शातिर दिमाग लोगों की मानसिकता को उजागर किया गया है। *कामेश्वर पाण्डेय* की कहानी *अच्छा तो फिर ठीक है* और *सतीश जमाली* की कहानी *ठाकुर संवाद* में भी इसी मानसिकता को उजागर किया गया है।

नीरजा माधव की कहानी *नया फ्लैट* बेघर मजदूरों की व्यथा-कथा है। जगरनाथ और उसकी बीबी गंगा ने नाले के ऊपर बरसाती और ईंट वगैरह से अपना 'फ्लैट' तैयार करके सिर छिपाने का बन्दोबस्त किया है। दूसरों की आलीशान हवेलियाँ तैयार करने के लिए मेहनत-मजदूरी करने वाले ऐसे ढेरों मजदूर घर का सपना लेकर पैदा होते हैं और यह सपना अपनी आने वाली पीढ़ी को सौंपकर मर जाते हैं। *गोविन्द मिश्र* की कहानी *प्रतिमोह* में भी बेघर मजदूरों की व्यथा उजागर हुई है। मालिक इन मजदूरों को निर्माणाधीन भवन में ही झोपड़पट्टी इसलिए बना लेने देता है, ताकि मजदूरों का भरपूर उपयोग किया जा सके, लेकिन जैसे ही मकान तैयार होता

है, वैसे ही झोपड़पट्टी उजाड़ दी जाती है - "इमारत पर काम चालू आहे तो सेठ बोलता कि-यहाँ रहो, आने-जाने मे टायम खोटी नई होयेगा। बस देखते-देखते उधरीच झोपड़पट्टी उग जायेंगे। इमारत पूरा हुआ कि झोपड़पट्टी फोड़ा माफक हो गया ......चलो भागो, उठाओ यह गंदगी ..."[26] *अरुण प्रकाश* की कहानी *मँझधार किनारे* में मेहनत-मजदूरी करने वालों की झुग्गी-झोपड़ियों में मँडराते चोर-उचक्कों, गुण्डों और पुलिस के साये में भयग्रस्त जीवन जी रहे मजदूरों का दर्द उजागर किया गया है। बंगाल से भाग कर आये असलम और रंजो सहित तमाम मजदूरों के झोपड़पट्टी वाले इलाके में बलबन दा और उसके गुण्डे अपना टैक्स वसूल करते, पुलिस अपना टैक्स वसूल करती और नेता वोट के चक्कर में मौन धारण किए रहते। असलम को अपनी मजदूरी से मिला पैसा गुण्डा टैक्स के रूप में देना पसंद नहीं, लेकिन दूसरे लोग साथ देने को तैयार नहीं अंततः असलम ही इन गुण्डों का सफाया करके खुद टैक्स वसूलने लगता है।

शिवमूर्ति की कहानी *तिरिया चरित्तर* का ईंट भट्ठा मालिक भट्ठे में काम करने वाली विमली का शोषण अलग तरीके से करता है। उसने विमली को कोयला लेकर आने वाले 'डरेवर बाबू' की सेवा खुशामद के लिए लगा रखा है ताकि 'डरेवर बाबू' से फायदा उठाया जा सके। विमली उसके लिए खाना बनाती है, बर्तन धोती है और खाना खिलाती भी है। भट्ठे के बाकी मजदूर इस कारण विमली से चिढ़ते हैं, उसका मजाक उड़ाते हैं और उसकी बदनामी करते हैं, जबकि विमली तीन चार घण्टे के लिए ईंट ढोने और मजदूरी करने से फुर्सत पाने की गरज से सेवा में लगी रहती है। भट्ठा मालिक द्वारा किए जा रहे अमानवीय बर्ताव और शोषण के खिलाफ आवाज उठाने के बजाय विमली अपने लोगों के बीच में, मजदूरों के बीच में ही अप्रासंगिक और हेय हो जाती है। उसी को तिरस्कृत किया जाता है। *विश्वमोहन* की कहानी *गुलाम* और *हृषीकेश सुलभ* की कहानी *बड़े राजकुमार* में भी कमोबेश इन्ही स्थितियों को प्रकट किया गया है।

अरुण प्रकाश की कहानी *भैया एक्सप्रेस* बिहार के भूस्वामियों, जमींदारों और सामन्तवादी मानसिकता के लोगों की प्रताड़ना, शोषण और अत्याचार से आजिज आकर पेट की भूख मिटाने के खातिर पंजाब गए लोगों के साथ वहाँ होने वाले शोषण और हत्या तथा उपेक्षा का दर्द उजागर करती है। बिहार के मजदूरों का पलायन प्रतीकात्मक विरोध दर्ज कराता है, जो गहरी मानवीय संवेदनाओं और पीड़ा के साथ अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए चलता रहता है।

सी. भास्कर राव की कहानी *दौड़ते रहो दंडपाणि* में मजदूरों की लड़ाई को रोटी और भूख मिटाने तक सीमित करने वाले धीमे जहर के खिलाफ उसे अस्तित्व और आजादी तक ले जाने और इस संघर्ष के दमन के रूप में सामने आने वाली कठिनाइयों को उजागर किया गया है। इसी संघर्ष को *हसन जमाल* ने अपनी कहानी *एक दिन* में प्रकट किया गया है। उपेक्षित, तिरस्कृत और अपने मालिकों की दया पर पलने वाले श्रमिक और मजदूर वर्ग की बगावत इस समूची व्यवस्था के खिलाफ एक दिन अवश्य खड़ी हो जाएगी। लाख अक्षम और असमर्थ होने के बावजूद ठीक उसी तरह जैसे वह मरियल कुत्ता अपने मालिक की उंगलियों को काट लेता है।

इस प्रकार खेतिहर-दिहाड़ी मजदूरों की जिन्दगी, उनके शोषण व अत्याचार की स्थितियों के साथ ही शिक्षा, स्वास्थ्य और मकान जैसी मूलभूत जरूरतों के अभाव में गुजर-बसर करने की मजबूरियों का बेबाक और सटीक चित्रण इस दौर की कहानियों में हुआ है।

(5) घरेलू नौकरों का शोषण और विरोध -

खेतिहर और दिहाड़ी मजदूरों की तरह ही घरेलू नौकरों को बदहाली और बेबसी भरा जीवन जीना पड़ता है और चौबीसों घण्टे अपने नियोक्ता की सेवा के लिए प्रस्तुत रहना पड़ता है। *रवीन्द्र वर्मा* की कहानी *घर में नौकर का घर* नौकरीपेशा और कामकाजी लोगों की विवशता और दर्द को उजागर करती है। अधिकारी हो या घर का नौकर, अपने मालिक के सामने दोनों ही एकसमान परिस्थितियों को भोगते हैं और इस कारण कई जगह नौकर और मालिक अपना वजूद ही खो बैठते हैं। अग्निहोत्री साहब की नौकरानी मालती को अपने पति के साथ अंतरंग क्षणों के सुख को छोड़कर अग्निहोत्री साहब की बीबी के लिए कुएँ का पानी लेने जाना पड़ता है। दूसरी ओर अग्निहोत्री साहब के बॉस की फटकार के कारण रात में अग्निहोत्री साहब का 'मूड' खराब हो जाता है। चाहे वह मालती हो या अग्निहोत्री, विवशता दोनों की ही है और यह विवशता पेट पालने की है, परिवार चलाने की है। इस विवशता को एकसाथ भोगते हुए भी नौकर और मालिक के बीच के सम्बध शोषित और शोषक के ही होते हैं। हिन्दी कहनियों में घरेलू नौकरों की दयनीय दशा और उनकी जिंदगी की वास्तविकताओं को उजागर किया गया है। दिन और रात का अंतर किए बगैर अपने मालिकानों की सेवा में लगे रहने वाले घरेलू नौकर को बदले में अपमान, गाली-गलौज, तिरस्कार और मारपीट ही मिलती है। स्थितियाँ बदतर हो जाने पर ये घर छोड़ने को मजबूर भी हो जाते हैं। *अमरकांत* की कहानी *बहादुर* का

दिलबहारदुर इन्ही यातनाओं को भोगते हुए आजिज आकर भागने को विवश हो जाता है। *भीष्म साहनी* की कहानी *संभल के बाबू* का नत्थू भी अपने मालिक की यातना से आजिज आ जाता है और मालिक द्वारा काम छोड़ देने के लिए कहने पर सहर्ष तैयार हो जाता है, लेकिन काम छोड़ने से पहले अपनी पूरी पगार और एक महीने की अग्रिम पगार की माँग भी करता है। *अखिलेश* की कहानी *खोया हुआ पुल* की नौकरानी से भूलवश बर्तन टूट जाने पर उसे इतना अधिक अपमानित किया जाता है कि वह घर छोड़कर भाग जाती है।

अर्चना वर्मा की कहानी *राजपाट* के घरेलू नौकर बाबूलाल और गंगा एक दूसरे से प्रेम कर बैठते हैं। दोनो का एक सपना है कि 'अपना घर' हो, जहाँ वे अपनी जिंदगी सुख-चैन से गुजार सकें। गंगा अपनी मालकिन को नहीं छोड़ना चाहती लेकिन मालकिन को अब गंगा की जरूरत नहीं है, क्योंकि उसके बच्चे बड़े हो गए हैं। इसलिए मालकिन भी चाहती है कि गंगा की शादी बाबूलाल से हो जाए और दोनों ही घर से निकल जाएं। इसी तरह *नारायण सिंह* की कहानी *चारा* की पात्र मीठू को अपने प्रेम में फँसाकर अधिक से अधिक काम लेने के लिए मीठू की मालकिन अपने छोटे भाई को प्रेरित करती है। सीधी सादी मीठू उसके प्रेम में फँसकर मालकिन के घर को अपना ही घर समझकर जी-तोड मेहनत करती है। जब उसे प्यार के इस ढोंग का पता चलता है तो असलियत को स्वीकार करने के सिवा उसके पास कोई चारा नहीं रह जाता।

घरेलू नौकरानियों के साथ ही वृद्ध घरेलू नौकरों की जिंदगी भी बड़ी दयनीय होती है और उनकी सारी जिंदगी की तपस्या बुढ़ापे में अपने मालिकानों के ताने-उलाहने सुनने का सबब बन जाती है। इसी प्रकार की व्यथा *जवाहर सिंह* की कहानी *रेतघर* में उजागर होती है। कहानी का पात्र रामधन अपने बुढ़ापे में मेहनत के दूसरे काम कर सकने की अक्षमता के कारण मजदूरी में कई कष्ट सहते हुए भी उस घर में नौकर बना रहना चाहता है जहाँ उसने सारी उम्र गुजार दी है। रामधन की शारीरिक अक्षमता के कारण उसे ढेरों ताने-उलाहने सुनने पड़ते हैं।

समाज भी घरेलू नौकरों को हेय दृष्टि से देखता है। *दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय'* की कहानी *कड़वा थूक* में हेमंत के विभाग के ठेकेदार तँवरलाल, भँवरलाल और कँवरलाल अपने स्वार्थ के लिए हेमन्त के कुत्ते को भी अपनी गोद में उठाकर खिला सकते हैं, दुलरा सकते हैं लेकिन पास मे गिट्टी मे गिरकर घायल हुए नौकरानी के छोटे से बच्चे को नहीं उठा सकते,

क्योंकि उस नौकरानी और उसके बच्चे से उनका कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं होना है। *विश्वमोहन* की कहानी *गरीबी हटाओ* के लाला नत्थूमल भूटानी की बीबी और लड़का नौकरानी के बेटे थामस को इतना पीटते हैं कि वह मर जाता है, क्योंकि थामस अपनी सेठानी की कुतिया को गली के आवारा कुत्ते से नहीं बचा पाया। *चित्रा मुद्‌गल* की कहानी *इस हमाम में* की अंजा की तरह दिन भर के शोषण और कड़ी मेहनत से थक कर अपना गुस्सा अपने परिवार पर निकालकर फिर उसी तरह से काम के लिए घरेलू नौकर खटने लगते हैं क्योंकि उन्हें अपना पेट भरना होता है, परिवार चलाना होता है।

घरेलू नौकरों की उपेक्षित-दयनीय जिंदगी के विविध चित्र और नौकरानियों के दैहिक शोषण के साथ ही आर्थिक व शारीरिक शोषण को समूचे यथार्थ के साथ इस दौर की कहानियों में प्रकट किया गया है।

(6) परम्परागत उद्यमियों, हस्तशिल्पियों व स्वरोजगार में लगे लोगों की समस्याएँ और विरोध-

बढ़ती महँगाई, औद्योगीकरण और भौतिकतावादी मानसिकता ने हस्तशिल्पों और परम्परागत उद्यमों की कमर तोड़ कर रख दी है। *आलमशाह खान* की कहानी *जूतों का कफन* में एक नामीगिरामी मोची की बर्बादी की कहानी के बहाने औद्योगीकरण और मशीनीकरण से कुटीर और लघु उद्यमियों के सामने खड़े हो गये रोजी-रोटी के संकट को उजागर किया गया है। *नीलकांत* की कहानी *ताँत के बोल* का कड़ेदीन अपने गाँव के भोपाल बाबू द्वारा आटा पिसाई, तेल पिराई और रुई धुनाई की मशीनें लगवाए जाने के कारण बन्द हो गई जाँत और कोल्हू को देखकर अपना भी हश्र जान गया है और इसी लिये अपनी बीबी सगीना को कहता है कि बेटे अशरफ को इस धुनकी पर हाथ न लगाने देना। *अमितेश्वर* की कहानी *धंधा* का कलईवाला दिन भर गलियों में घूम-घूम कर बर्तनों में कलई करने का धंधा करता है। बढ़िया काम और पूरी मेहनत के बावजूद वह इतना भी नहीं कमा पाता कि अपने परिवार की जरूरतों को पूरा कर सके। *हरि भटनागर* की कहानी *सगीर और उसकी बस्ती के लोग* का सगीर नालसाज़ी के काम में माहिर होने के बावजूद बाजार में उपेक्षित है, लोग उससे नालसाजी करवाना पसंद नहीं करते और अक्सर सगीर और उसकी अम्मा को भूखे ही रह जाना पड़ता है। सगीर की बस्ती के लोग भी उसी की तरह पुश्तैनी धंधों या स्वरोजगार से जुड़े हुए हैं, जो

शहर के उस वर्ग से बिल्कुल अलग हैं जो बढ़िया पकवान, केक, और सॉस खाते हैं, खाने के लिए 'कॉटेदार चम्मच' का उपयोग करते हैं।

मधुसूदन आनन्द की कहानी *मिस्त्री सईद अहमद शेरकोट वाले* मशीनीकरण और आधुनिकीकरण के कारण शिल्पकारों और कामगारों की छिनती रोजी-रोटी और बढ़ती महगाई के फलस्वरूप उनके पलायन और फिर शोषण की समस्या पर केन्द्रित है। मशीनों से काम करवाने और स्टील के फर्नीचरों के चलन में आ जाने के कारण सईद मिस्त्री का बढ़ईगिरी का धंधा बंद होने की कगार पर आ जाता है। सईद मिस्त्री शेरकोट को छोड़कर नहीं जाना चाहते, उनका छोटा भाई रईस अहमद पैसा कमाने के लिए विदेश चला जाता है और वहाँ उसका शोषण होता है। सईद अहमद दस्तकारी और लकड़ी की सजावटी चीजों में पीतल की नक्काशी वाला सामान तैयार करते हैं, लेकिन वे भी बजार मे नहीं बिकते। अंततः रईस जब घर लौटकर आता है तब तक सबकुछ खत्म हो चुका होता है और सईद अहमद भी मौत के करीब होते हैं। *शीतांशु भारद्वाज* की कहानी *यात्री* में गरीबी और परम्परागत व्यवसाय के भरोसे परिवार चलाने में उत्पन्न होने वाली कठिनाई के कारण परम्परागत व्यवसाय छोड़कर शहर की ओर पलायन करने वाले लोगों की व्यथा-कथा है।

पुश्तैनी धंधा बंद हो जाने के कारण मजदूरी करने को बाध्य होने वाले लघु उद्यमियों और हस्त शिल्पकारों के जीवन की दयनीयता को *यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'* की कहानी *वे दोनों* में प्रकट किया गया है। कहानी के पात्र ललिया और उसकी बीबी बिज्जी को नहर खुदाई की मजदूरी पाँच-पाँच रुपये मिल रही है और अँगूठा आठ-आठ रुपये में लगाने के लिये मजबूर होना पड़ा क्योंकि उनका पुश्तैनी धंधा छिन गया था और परिवार को भूखों मरने से बचाने के लिये इसके सिवा कोई दूसरा चारा नहीं था। ललिया का बाप, सौतेली माँ, ललिया और बिज्जी चारों लोग हड्डी और चमडे के अपने पुश्तैनी धंधे में लगे रहकर पेट पालते थे, लेकिन इस बार चमड़े का ठेका एक बनिया ने ले किया था और वे चारों बेकार हो गये थे। *चित्रा मुद्गल* की कहानी *जनावर* का ताँगे वाला अपने ताँगे की बीमार घोड़ी को जान बूझकर मोटरगाड़ी से भिड़ा देता है ताकि मुआवजे की रकम पा सके। मोटरगाड़ियों के चलन के कारण ताँगे-इक्के को लोग अब पसन्द नहीं करते इस कारण असलम की आमदनी कम हो गई है और परिवार की जरूरतों को पूरा कर पाना उसके लिये कठिन हो गया है दूसरी ओर उसकी घोड़ी सरवरी भी बीमार रहती

है, उसके बचने की भी उम्मीद कम है। लिहाजा असलम न चाहते हुये भी सरवरी के प्रति अपने लगाव को कुर्बान करके अपने परिवार की खातिर उसे मोटरगाड़ी से भिड़ा देता है। असलम द्वारा अपनी घोड़ी को मोटरगाड़ी से भिड़ाया जाना और घोड़ी का मर जाना प्रकारान्तर से मशीनीकरण और मशीनी शक्ति से टकराकर दम तोड़ती मानवशक्ति की व्यथा को भी उजागर करती है।

ऋता शुक्ला की कहानी *सरबराहा* में शहर की फैशनपरस्ती और भौतिकता के प्रभाव से गॉवो के पुश्तैनी धंधों, खेती-किसानी और ग्रामीण कुटीर उद्योगों के विनाश की स्थितियाँ उजागर हुई हैं। गाँव के नवयुवक शहर से लौटकर शहरी संस्कृति को गॉव ले आते हैं, साथ ही पुश्तैनी धंधे, खेती-किसानी, घर परिवार और बूढ़े मॉ-बाप-बाबा आदि को बेकार सिद्ध करने की मानसिकता को भी ले आते हैं। *गिरिराज किशोर* की कहानी *वल्द रोजी* का विकास दस्तकार की अपेक्षा चपरासी होना ज्यादा अच्छा समझता था। ''उसकी शिक्षा को देखते हुए उसे 'चतुर्थ श्रेणी अधिकारी' का काम ही मिल सकता था। दस्तकार वह बनना नहीं चाहता था। एक तो जानमारी, दूसरे हुकूमत का 'टच' नदारद। चतुर्थ श्रेणी में कम-से-कम यह तो रहता ही है कि इधर बैठो, उधर न बैठो, साहब हैं, साहब नहीं हैं, बकवास मत, कर शोर मत मचाओ, कल आना-साहब सलाम, सलाम के पॉच रुपये-कागज........कागज दिखाने के दस और फोटोकापी के बीस ....वगैरह वगैरह। दस्तकार बनो, तो दस चीजों के लिये दस तरह की खुशामद करो। उधार लेना, माल बेचना, देर-सबेर के लिये गाली गलौज सुनना आदि। चाहे दस्तकारी जितना पवित्र और आदर्श काम हो, पर है भागदौड़।''[27] विकास जैसे नवयुवकों की मानसिकता भी परम्परागत उघमों के विनाश और बढ़ती बेकारी का एक कारण है। अपने पुश्तैनी धंधो के बजाय नौकरी की ओर भागने वाले ऐसे नवयुवक शोषण का शिकार भी होते हैं।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि परम्परागत उद्यमों के विनाश की जटिल स्थितियों को, परम्परागत उद्यम से जुड़े लोगों की समस्याओं और युवा पीढ़ी में परम्परागत उद्यमों और हस्तशिल्प के कार्य के प्रति पनपती अरुचि की स्थितियों को बड़ी विदग्धता के साथ आठवें दशक के बाद की कहानियों में उजागर किया गया है-

(आ) चिन्ता (भविष्य की चिन्ता और वर्तमान व्यवस्था के कारण उपजा अविश्वास)

जीवन की जटिलताओं, व्यवस्था की विद्रूपताओं, सिमटती मानवीय संवेदनाओं, भौतिकता, बाजारीकरण, अपसंस्कृति के फैलाव, स्वार्थी-व्यावसायिक मानसिकता और आपराधिक मनोवृत्ति के

कारण भविष्य के प्रति चिन्तित, भयग्रस्त रहना आज के जीवन की आम बात हो गई है। हिन्दी कहनियों में इस चिन्ता और अविश्वास को बड़ी गहराई और शिद्दत के साथ उजागर किया गया है। *सुभाष पंत* की कहानी *गदाधर जोशी का दुख* के गदाधर जोशी को नई सदी के बदलाव के कारण नष्ट होती परम्पराओं और आपसी सम्बन्धों में आते बिखराव के कारण भविष्य में उत्पन्न होने वाले संकट की चिन्ता है। नई पीढ़ी के बच्चे किस्से-कहानी सुनने के बजाय कम्प्यूटर पर खेलना पसंद करते हैं, इस कारण दो पीढ़ियों के आपसी सम्बन्धों में रिक्तता आ रही है और स्नेह, वात्सल्य समाप्त हो रहा है। जोशी जी चिंतित होते हैं कि मीडिया का हिंसक प्रभाव बालमन को विकृत कर रहा है। विक्की और टीना भाई-बहन होने के बजाय अभी से एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी हो रहे हैं और खेल में ही सही, अधिक से अधिक हत्याएँ करने का उन्माद उनकी मानसिकता को दूषित कर रहा है। *उदय प्रकाश* की कहानी *तिरिछ* के रामस्वारथ प्रसाद एक्स स्कूल हेडमास्टर तिरिछ (बिचखापड़) के काटने से या धतूरे के बीजों के नशे की वजह से नहीं मरे थे, बल्कि अपने संस्कारों और आदर्शों को बचा न सकने, शहर की संवेदनहीनता और शहर के बाबुओं की निर्ममता के बीच अपने बच्चों की अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर सकने की चिन्ता में पागल होकर मरे थे- ''यह सोचने के करीब पहुँचना ही बुरी तरह बेचैन कर डालने वाला है कि उस समय पिता जी सिर्फ तिरिछ के जहर और धतूरे के नशे के खिलाफ नहीं लड रहे थे बल्कि हमारे मकान को बचाने की चिंता भी कहीं न कहीं उनके नशे की नींद में से बार-बार सिर उठा रही थी।''[28]

नवीन सागर की कहानी *लौटा तो कहीं नहीं* का 'मैं' जिन्दगी के व्यर्थ और अर्थहीन हो जाने के अहसास से, अवसादग्रस्तता, निरर्थकताबोध और अलगाव से घिरकर अपने परिवार से उखड़ गया है। निरन्तर अभावों को ढोते हुए, मनोकॉक्षाओं के विपरीत उत्पन्न होती परिस्थितियों को भोगते हुए उसे सारे सम्बन्ध निरर्थक और उबाऊ लगने लगे हैं क्योंकि भविष्य में सुखद क्षणों की प्राप्त्याशा भी क्षीण हो जाने की चिन्ता उसके मन में बैठ चुकी है। *ममता कालिया* की कहानी *परदेश* में अपने अस्तित्व की स्वाधीनता के लिए छटपटाती स्त्रियों की व्यथा है। दोनों माताएँ एक ओर तो अपने बेटों के लिए तड़पती हैं और दूसरी ओर विदेश में निज अस्तित्व के समाप्त हो जाने पर चिंतित हो जाती हैं। *से. रा. यात्री* की कहानी *अन्तर* का कथावाचक अपने पिता द्वारा उसकी पढ़ाई के अन्तिम वर्ष में खर्च देने में कटौती किए जाने के

कारण अपने भविष्य के प्रति चिन्तित है फिर भी अपनी पढ़ाई पूरी करने के लिए भूखे पेट रह लेता है और जब उससे भूख बर्दाश्त नहीं होती तो कचरे के ढेर से रोटियाँ बीनकर खाने के लिये उठाता है।

राजकमल की कहानी *फिर भी* में मासूम बच्ची के साथ बलात्कार के बहाने समाज की पाशविकता और मिटती इंसानियत को उजागर किया गया है। इसी कारण भाई का भाई के प्रति अविश्वास, पति-पत्नी के बीच, परिचितों-सगे सम्बन्धियों के बीच अविश्वास पनप रहा है और असभ्यता व बर्बरता समाज में बढ़ती जा रही है, फिर भी लोग सभ्य होते जाने के छलावे में जी रहे हैं। *मिथिलेश्वर* की कहानी *नदी किनारे* के गरीब और लंगड़े गबरू पर उसकी गरीबी और बेकारी के कारण विश्वास नहीं किया जाता, लेकिन जब आपद्स्थिति आती है तो वही गबरू काम आता है। गरीबी और असहायता अविश्वास करने का सबब बन जाती है, विश्वसनीयता को रहन-सहन और धन-दौलत से तौला जाता है। *मिथिलेश्वर* की दूसरी कहानी *बारिश की रात* भी यही यथार्थ उजागर करती है। आज की परिस्थितियाँ ही ऐसी हैं कि आदमी से आदमी का विश्वास उठ गया है और इसी अविश्वास के कारण, आदमी की स्वार्थपरकता के कारण अपराध भी बढ़ रहे हैं।

भौतिकता, जीवन की जटिलता, भागदौड़ और तनाव भरी जिंदगी ने आदमी को व्यथित, चिंतित और भयग्रस्त कर दिया है। मानव-मन की इस वेदना को पढ़ने में इस दौर की कहानियाँ सर्वथा सक्षम सिद्ध हुई हैं।

(इ) घृणा :-

धर्म के नाम पर होती राजनीति, धार्मिक उन्माद, अपसंस्कृति के फैलाव के कारण पुरातनता बनाम नवीनता के संघर्ष, हर क्षेत्र में बढ़ती स्वार्थलिप्सा और शिक्षा व साहित्य की दुर्दशा आदि कारकों ने मिलकर घृणा का ऐसा वातावरण तैयार किया है जिससे कोई भी अछूता नहीं रह गया। *सुमति अय्यर* की कहानी *देशान्तर* में आजादी के बाद भाषा और धर्म के नाम पर बँट गए लोगों के बीच खिंच गई असंतोष, भय और घृणा की दीवारों को उजागर किया गया है। कहानी में शर्मा, भाटिया औरमद्रासी समाज व परिवार के बंधनों के बीच रहते हुए भी अपने अविश्वास और घृणा को त्याग नहीं पाते। *श्रीनाथ* की कहानी *रणभेरी* के हाता छंगामल में कनाई घोष, अवधेश बाबू, दिवाकर गुणपुले, अस्थाना और सतनारायण मिस्तरी ने धर्म के नाम

पर तो कभी सांस्कृतिक आयोजनों के नाम पर गली मोहल्ले में लगाए जाने वाले ध्वनि विस्तारक यंत्रों से फैलने वाले शोरगुल का विरोध करके प्रतीकात्मक रूप से धार्मिक उन्माद और अपसंस्कृति के खिलाफ जंग की रणभेरी बजाई है। उनकी बात थाने में नहीं सुनी जाती है और नेताओं से तो उम्मीद ही नहीं है, क्योंकि मंदिर कमेटी से तो लड़ा जा सकता है, लेकिन चुनाव-प्रचार के शोर को नहीं रोका जा सकता। अतंतः विरोध करने वाले बेबस होकर सहने को मजबूर हो जाते हैं। लेकिन उनके अन्दर घृणा की आग सुलगती ही रहती है। इसी तरह *गोविन्द मिश्र* की कहानी के *पगला बाबा* को धार्मिक पाखण्ड और दिखावे से घृणा है और वह सच्ची मानव सेवा पर विश्वास रखता है। इसीलिए लावारिस लाशों को मणिकर्णिका घाट ले जाकर उनकी अंतिम क्रिया करना ही उसकी दिनचर्या बन गई है। उसकी नर सेवा आज के जमाने के लिए कौतूहल का विषय है इस कारण लोग उसे 'पगला बाबा' कहकर पुकारते हैं। *एस. एल. मीणा* की कहानी *आसरा* में सांस्कृतिक संक्रमण के कारण उपजी स्थितियों को प्रकट किया गया है। शहर पहुँचकर रामपाल एकदम बदल जाता है और शहरी (अप) संस्कृति में रच-बस कर वह अपने गाँव, घर, माँ-बाप, भाई-बहिन और यहाँ तक कि अपने नाम से भी घृणा करने लगता है। उसे सभी गँवार और बेकार लगते हैं। इसलिए अब अपने गाँव सिर्फ रुपया लेने ही जाता है और शहर में रहकर फिल्में देखने व सिगरेट पीने का शौक पूरा करता है। *हिमांशु जोशी* की कहानी *हत्यारे* में समाज की विकृत, विद्रूप मानसिकता के प्रति उपजी घृणा का वीभत्स रूप देखने को मिलता है। *दिनेश पालीवाल* की कहानी के *कुछ संवेदनशील लोग* पुण्य कमाने के लिए, समाजसेवा के लिए ऐसा ढोंग करते हैं कि अनजान लोगों की उनके प्रति श्रद्धा उमड़ पड़ती है और वे सीधे-सादे लोगों की सहृदयता की आड़ में अपने स्वार्थ सिद्ध करते हैं। *दिनेश पालीवाल* की कहानी *कार्यकर्ता* में चुनाव-प्रचार में लगे हुए कार्यकर्ता वे नवयुवक हैं, जो ढेरों डिग्रियाँ लेकर भी नौकरी नहीं मिलने पर चंद रुपयों की खातिर अपनी योग्यता को ताक पर रखकर नेताओं के 'पिछलग्गू' बनकर घूम रहे हैं। वे जानते हैं कि चुनाव के बाद उन्हें नहीं, बल्कि अपराधियों को पूछा जाएगा इसलिए उन्हें अपराध की दुनिया में कदम रखने में भी कोई गुरेज नहीं।

कुल मिलाकर धर्म हो या राजनीति, समाज हो या संस्कृति या फिर साहित्य, हर जगह बदलाव आया है, विकृतियाँ उपजी हैं और इस कारण घृणा भी पनपी है। इसके विविध आयामों

का विस्तृत अध्ययन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जाना उचित होगा-

(1) धार्मिक

(2) सांस्कृतिक

(3) सामाजिक

(4) राजनीतिक

(5) शिक्षा, साहित्य एवं कला

(1) धार्मिक :-

समाज के आधुनिक हो जाने और विज्ञान के तरक्की कर जाने के बावजूद धार्मिक कट्टरता और वहशीपन कमजोर नहीं पड़ा है, वरन् बढ़ा है। इसका लाभ उठाकर समाज विरोधी तत्त्व अशांति फैलाने से बाज नहीं आते। *राकेश कुमार सिंह* की कहानी *रूपनगर की रूपकथा* में इसी बात को उजागर किया गया है। एक बुत, जिसका चेहरा-मोहरा, नाम वगैरह कोई नहीं जानता था। सभी धर्मों के लोग उसे मानते थे। किसी के द्वारा उस बुत को जूतों की माला पहना देने पर रूपनगर में अफवाहें फैलीं। धर्म के ठेकेदार, छुटभैये नेता, समाजसेवी और समाजचिंतक सभी इस घटना को लेकर उत्तेजित हुए और सभी उस बुत को अपनी जाति व धर्म का बताकर उस पर हक जताने लगे। अखबारों में खबरें छपीं, बड़े शहरों और राजधानियों में हंगामे हुए। राजनीति की रोटियाँ सेकी जाने लगीं। दलगत और जातिगत आधार पर वोटों की राजनीति के चक्कर में दंगे हुए, जनजीवन अस्त-व्यस्त हुआ, लूट हुई, मार-काट हुई और आम जनता त्रस्त हो गई। रूपनगर के लोग जानते हैं कि यह शरारत किसकी है, लेकिन इस शरारत के कारण शुरू हुए पूरे घटनाक्रम का सभी अपने तरीके से फायदा उठाना चाहते हैं। *नसीम साकेती* की कहानी *अफवाह* में चुनावी रंजिश निकालने के लिए साम्प्रदायिक दंगे भड़काने की विकृत मानसिकता उजागर हुई है।

आलमशाह खान की कहानी *मौत का मजहब* में कब्रिस्तान और श्मशान की जमीनों के बँटवारे को लेकर दो धर्मों के लोगों के बीच छिड़ी जंग की कहानी है। *पुन्नी सिंह* की कहानी *काफिर तोता* हर बात को साम्प्रदायिकता के नजरिए से देखने की मानसिकता उजागर करती है। नूरी का तोता वह नहीं सीख पाता जो नूरी उसे सिखाना चाहती है। इसलिए नूरी उस तोते को 'काफिर' कहती है। नूरी का पति जावेद मियाँ धर्मान्धता के खिलाफ है और नूरी को

समझाता है कि दो धर्मो के लोगों के बीच की लड़ाई आपसी स्वार्थ की है, इस साम्प्रदायिकता के जहर से कम से कम परिन्दों को तो बचा रहने दो।

जब निजी स्वार्थ टकराते हैं तब धर्म और धार्मिक कट्टरता अपना वजूद खो देती है। *कृष्ण भावुक* की कहानी *जो पाप नहीं* में ऐसी ही स्थितियाँ उजागर होती हैं। कहानी के पात्र राम और रहीम ने गीता और कुरान की कसम खाई है, शराब नहीं पीने की। लेकिन मन के न मानने पर गिलास की अदला-बदली करके शराब पी लेते हैं, जो पाप नहीं है। व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति के खातिर धार्मिक आस्थाएँ टूट जाती हैं और धर्म की आड़ में समाज के कई स्वार्थ पूरे होते हैं। तिवारीडीह के देवधाम में पुजारी बटुकनाथ और उसके रिश्तेदारों द्वारा पीपल के वृक्ष के नीचे 'तिरिया मेला' लगाकर धन कमाने और अनैतिक यौनाचार कराने की घटना के माध्यम से *मिथिलेश्वर* ने अपनी कहानी *अजगर करै न चाकरी* में इसी मानसिकता को उजागर किया है। मेले में जाने वाली संतानेच्छुक महिलाओं को अभीष्ट की प्राप्ति होती थी क्योंकि रात में देवधाम से लगे परमेश्वरी भट्ट के अरहर के खेतों में गाँव के मुस्टंडे और ओझा इन महिलाओं के साथ अनैतिक यौनाचार करते थे और महिलाएँ भी इस हेतु सहर्ष प्रस्तुत होती रहती थीं। दोनों का हित सधता था, इस कारण देवधाम की असलियत उजागर नहीं होती थी। किंतु जब गाँव की पढ़ी-लिखी गजेन्द्र बहू के साथ भी ऐसा हुआ तब परमेश्वरी भट्ट और गजेन्द्र बहू ने मिलकर धर्म के नाम पर किए जा रहे अनैतिक यौनाचार और स्वार्थ सिद्धि का पर्दाफाश कर दिया।

विष्णु प्रभाकर की कहानी *ये बंधन* में धर्म के नाम पर महिलाओं के साथ होते अत्याचार की व्यथा-कथा है। अनीला और सुरैया इंसानी रिश्तों के कारण एक दूसरे की पक्की दोस्त हैं, लेकिन धार्मिक कट्टरता वाले परिवेश में रहते हुए दोनों की मित्रता में वह सहजता नहीं है, जो मैत्री को प्रगाढ़ बनाती है। *विष्णु प्रभाकर* की कहानी *मेरा बेटा* में समाज के समक्ष यह ज्वलंत प्रश्न उठाया गया है कि क्या इंसानी रिश्ते इतने कमजोर होते हैं कि मजहब उन्हें तोड़ देता है? क्या मजहब बदल जाने से रिश्ते भी बदल जाते हैं?

विष्णु प्रभाकर की ही कहानी *आखिर क्यों* का पात्र शंकर जानना चाहता है कि भले ही हिंदू और मुसलमान अपनी तहजीब, बोली, रहन-सहन और धार्मिक मान्यताओं के कारण अलग-अलग हों, लेकिन इंसान ही तो हैं फिर एक दूसरे की जान के दुश्मन क्यों बने हुए हैं?

आखिर क्यों धर्म के नाम पर या धर्म के बहाने मनुष्य एक दूसरे का दुश्मन हो गया है? इस सवाल के जवाब की खोज में लगे शंकर को मारने के लिए आने वाला मुस्लिम युवक शंकर की बातों से प्रभावित होकर, शर्मिन्दा होकर लौट जाता है। धर्म की आड़ में होने वाले अत्याचार को *नरेश पंडित* ने भी अपनी कहानी *छुनकी* में उजागर किया है। धर्म की शुद्धि, धर्म की पवित्रता और धर्म की रक्षा के नाम पर समाज का तथाकथित 'प्रभु वर्ग' अत्याचार करने से बाज नहीं आता, यहाँ तक कि छोटे बच्चे भी इसका शिकार हो जाते हैं।

धर्म के ठेकेदारों का अत्याचार और जोर जबरदस्ती नवयुवकों की स्वतंत्रता को भी बाधित करती है, लिहाजा धर्म के बंधनों को टूटने में भी देर नहीं लगती। *विश्वमोहन* की कहानी *सूर्योदय* दकियानूसी समाज की इसी समस्या पर केन्द्रित है। *डॉ.दयाकृष्ण विजयवर्गीय* की कहानी *तुम देखते रहियो* के तनु और कनु भी धर्म की आड़ में थोपी गयी मनमर्जी और कट्टरता को भोगते हैं। *मालती जोशी* की कहानी *स्नेह बंध* की मीता और ध्रुव के अंतर्जातीय विवाह को उनके परिवार वाले ही नहीं पचा पाते और मीता की आधुनिकता, स्वच्छंदता और बेबाकी को उसकी सास 'चरित्रहीनता' का नाम देकर उलाहने देती है। संकट के समय मीता ने जिस धैर्य और साहस के साथ परिवार को उबारा उससे ध्रुव की माँ को मीता के चरित्र की महानता का एहसास होता है। इसी प्रकार *एच. भीष्मपाल* की कहानी *असाधारण पुरुष*, *नीरजा माधव* की कहानी *दादी माँ का चौरा* और *पंकट बिष्ट* की कहानी *खून* में भी समाज के पुरातनपंथी, कट्टर और साम्प्रदायिक विकारों के कारण कष्ट भोगते युवाओं के दर्द को प्रकट किया गया है।

कृष्ण शुक्ल की कहानी *सांता क्लास की वापसी* में धर्मान्धता का नया आयाम उजागर हुआ है। बच्चों के पापा ने प्रेम विवाह करने के लिए ईसाई धर्म भले ही स्वीकार कर लिया हो, लेकिन मन में परिवर्तन नहीं आया और इसीलिए कई वर्षो बाद धर्म परिवर्तन कर पुनः हिंदू हो गए। बच्चों को क्रिसमस मनाने और सांताक्लाज़ से खिलौने पाने का उत्साह इस धर्म परिवर्तन के कारण कम नहीं हुआ। उन्हें अपने पिता के धर्म परिवर्तन और धार्मिक कट्टरता से क्या लेना देना? बच्चों के मन को पिता नहीं समझ सका क्योंकि उसकी आँखों में धर्मान्धता का, धार्मिक वहशीपन और कट्टरता का पर्दा पड़ा हुआ था। छोटी बच्ची टुनी ने अपने छोटे भाई के दर्द को समझा और इसीलिए अपने जेबखर्च के पैसे बचाकर खिलौने खरीदे और

क्रिसमस की रात सांताक्लाज़ बनकर राजू के बिस्तर में खिलौने रख दिए।

साम्प्रदायिक वहशीपन के बीच भी कई ऐसे लोग हैं जो धर्म के बंधनों, कट्टरता और विद्वेष से ऊपर उठकर मानवता का धर्म निभाते हैं, लेकिन धर्मान्ध, वहशियों से अपनी जान बचाना भी उन्हें मुश्किल हो जाता है। धर्मान्ध लोगों के बीच फँसे एक ऐसे ही युवक की कहानी है, केवल सूद की *कटा हुआ बाजू*। *विष्णु प्रभाकर* की कहानियों *सफर के साथी* और *आज होली है* में धर्म की संकीर्ण मानसिकता से ऊपर उठकर मानवीय सम्बन्धों और इंसानियत को महत्त्व देने वाले लोगों की मानसिकता को उजागर करते हुए धर्मान्धता पर कड़ा प्रहार किया गया है। विष्णु प्रभाकर की कहानियों *इतनी सी बात* और *अधूरी कहानी* के पात्र धर्म की आड़ में मानवीय रिश्तों की अनदेखी करके अपने स्वार्थों की पूर्ति करने की मानसिकता का मुँहतोड़ जवाब देते हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानी *आधा फूल आधा शव* के प्रधानाचार्य कवि यानि बाबू साहब धार्मिक कट्टरता के कारण जल रहे समाज में भी सिर उठाये खड़े हैं क्योंकि सभी धर्मों के लोग उनकी दृष्टि में समान हैं। पड़रौना महाविद्यालय के प्रधानाचार्य कवि यानि बाबू साहब जैसा व्यक्तित्व नसीम साकेती की कहानी *सद्दौ चाची* की सद्दो का है, जो हर जाति-धर्म के लोगों के बीच सद्दौ चाची के नाम से ख्यातिलब्ध है। उसका न कोई धर्म है, न कोई मजहब सिर्फ मानव की सेवा, मानवता की रक्षा और बेसहारा जरूरतमंद लोगों की मदद करना ही उसका धर्म है। विश्वजीत की कहानी *पाठालोचन (अकला बुआ)* की अकला बुआ मिथक के रूप में हमेशा जीवित रहने वाली, सभी धर्मों, सभी जतियों से श्रद्धा और विश्वास के साथ जुड़ी हुई थी, बिना किसी भेदभाव के। ''वे किसी देवी का अवतार नहीं थीं, एक मामूली, अति परिश्रमी महिला थी, उन्होंने कोई क्रान्ति नहीं की, केवल सबको अपना समझा।''[29]

डॉ. कामिनी की कहानी *दिल जोड़ने वाली सुगन्ध* में सुगन्ध उस इत्र की है, जिसे उसके अब्बा हर तीज-त्योहार में बिना किसी मजहबी भेदभाव के लोगों को लगाते थे और इसी से परिवार का पालन-पोषण करते थे। अब्बा की मौत के बाद 'उसने' अपना सिलाई का धंधा तो चला ही रखा था, साथ ही अब्बा द्वारा इत्र लगाने की रस्म को भी निभाने चल पड़ा क्योंकि उसे यकीन हो गया था कि ''मशीन से कपड़े सिले जा सकते हैं, दरके हुए दिल नहीं। अब्बा के हाथों में महक थी, अच्छी सुगन्ध थी और उस सुगन्ध में दिल जोड़ने की ताकत थी।''[30]

धर्मान्धता और धार्मिक वहशीपन के साथ ही साथ धार्मिक अंधविश्वास की जड़ें भी

पढ़े-लिखे लोगों से लेकर अनपढ़ों तक इस कदर फैली हुई हैं कि प्रायः इस कारण लोगों को समस्याओं से जूझना पड़ जाता है, या फिर ठगा जाना होता है। *मुद्राराक्षस* ने अपनी कहानी *एक बंदर की मौत* में लोगों की धर्म के प्रति कट्टरता और धार्मिक अंधविश्वास का लाभ उठाकर अपना स्वार्थ पूरा करने वाले और धन कमाने वाले लोगों की मानसिकता उजागर की है। कहानी के पात्र मुचडू ने बंदर की लाश को चौराहे में रखकर चढ़ावे में चढ़ाये गये धन से अपना खर्च चलाने की जुगत भिड़ा रखी थी। अब यही चीज वह अतीक के बंदर नन्हें के साथ करना चाहता था, नन्हें को मार डालना चाहता था, लेकिन बिजली के करेण्ट से खुद भी मर गया। धार्मिक अंधविश्वास का लाभ मुचडू जैसी मानसिकता वाले लोग बखूबी उठाते हैं और कभी-कभी मारे भी जाते हैं। *आदित्य नारायण शुक्ल* की कहानी *महायज्ञ* में धार्मिक अंधविश्वास, ढ़ोंग-दिखावे और पूजा-यज्ञ आदि पर करारी चोट की गई है।

नीलकांत की कहानी *दलिद्दर* की मनसा काकी और उनका बेटा जिन्दगी की समस्याओं से लड़ने के बजाय हार चुके हैं और इस कारण अंधविश्वास और मिथ्या चेतना में विश्वास करने लगे। जीवन के तमाम अभावों, समस्याओं और बीमारियों से टूट जाने के कारण मनसा काकी अंधविश्वास के फेर में पड़ गई और अपने बेटे को जीवन के लिए संघर्ष को प्रेरित करने के बजाय धार्मिक अंधविश्वास के जरिए अपनी मनोकांक्षाओं की पूर्ति हेतु प्रेरित करने लगी। *दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय'* की कहानी *पुत्र-मोह* के शाह जी और उनकी पत्नी पद्मा पुत्र प्राप्ति के मोह में व्यावहारिक बुद्धि और विवेक को खोकर अंधविश्वास और ज्योतिष के फेर में इस तरह पड़े कि अपनी बेटी पल्लविनी को मरवा डालने को उतारू हो गये। *ऋता शुक्ला* की कहानी *सातवीं बेटी* की छोटकी काकी भी इसी अंधविश्वास से ग्रस्त है और बेटे की उम्मीद में पहले ही छः बेटियाँ पैदा कर चुकी है। अब सातवीं बार फिर बेटे की उम्मीद है, लेकिन बेटी ही होती है और मर जाती है। छोटकी काकी को बेटी के मर जाने से ज्यादा दुख बेटा पैदा नहीं होने का होता है।

धार्मिक अंधविश्वास में जकड़े लोगों के समक्ष मानवीय संवेदनाएँ और भावनाएँ अप्रासंगिक हो जाती हैं। विधवा, निःसंतान या परित्यक्ता स्त्री को इसी कारण समाज में उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ ही इसे बढ़ावा देती हैं। औरतें अपने परिवार की विधवा और निःसंतान औरतों के साथ उपेक्षित बर्ताव करती हैं। *मालती जोशी* की कहानी

सती की निःसंतान नीलम इन्हीं सब उपेक्षाओं और तिरस्कारों से आजिज आकर कुएँ में कूदकर आत्महत्या करने को मजबूर हो जाती है।

धर्म की आड़ में समाज द्वारा सिद्ध किए जाते स्वार्थ, धार्मिक कट्टरता, अंधविश्वास और धर्म के नाम पर रची जाती राजनीतिक साजिशों के कारण दुष्कर हो गये जीवन की दयनीयता के साथ ही नई पीढ़ी की निजी जिंदगी में धर्म के दखल के कारण उपजी विद्रोह की भावना को आठवें दशक के बाद की कहानियों में समग्र यथार्थ के साथ प्रकट किया गया है।

(2) सांस्कृतिक :-

आधुनिकता, पॉप कल्चर, भौतिकता और पाश्चात्य अंधानुकरण की मानसिकता हर जगह और हर तबके के लोगों में इतनी गहराई तक घर कर चुकी है कि अपनी संस्कृति पिछड़ी और दकियानूस लगती है। आधुनिकता बोध के फेर में अपनी संस्कृति से उखड़े लोगों की मानसिकता को जानने-समझने और उद्घाटित करने का वृहद कार्य हिन्दी कहानियों में हुआ है। *चन्द्रकांता* की कहानी में *अलग से हटकर* दिखने की चाहत में "वे लोग चुन-चुनकर ऐसे कपड़े पहनते थे, जिनमें वे दूसरों से अलग दिखें। परम्परा और संस्कार शब्द उन्हें ततैये की तरह काटते थे। पारम्परिक लिबास उन्हें बेहूद और बोर लगता था। वे कहते थे कि ये कपड़े उनका धारदार व्यक्तित्व भोथरा कर देते हैं।"[31]

चन्द्रकान्ता की इस कहानी के बीनू और मीतू जैसे युवाओं को बाद में महसूस होता है कि खुशी तभी महत्त्वपूर्ण होती है जब उसे देखने वाला भी कोई हो, लेकिन इतना एहसास करने से पहले ही अपने 'असूल' बनाने और संस्कृति-परम्परा की तथाकथित दकियानूसी मानसिकता के शोषण से लड़ने के फेर में बहुत देर हो चुकी होती है। *चन्द्रकान्ता* की कहानी *एक और परदेस* का मनीष तो देश के पिछड़ेपन और दकियानूसी मान्यताओं को कोसते हुए विदेश में बस गया, लेकिन अपने बूढ़े माँ-बाप को देश में रहते हुए भी परदेसी बना दिया।

पाश्चात्य अंधानुकरण की आँधी में सादगी, संवेदना, सामाजिकता और समर्पण जैसे उदात्त मूल्यों के कारण प्रतिष्ठित भारतीय संस्कृति को बचाए रखने की जद्दोजहद को उद्घाटित करते हुए *नीरजा माधव* की कहानी *चेक पोस्ट* सांस्कृतिक मूल्यों में आ रहे बदलावों के कारणों सहित पैदा हुई विसंगतियों की पड़ताल करती है। *कन्हैयालाल गाँधी* की कहानी *आईरीना* में भारतीय और पाश्चात्य सभ्यता को लेकर नरेन और सावित्री के बीच उत्पन्न हुई कटुता को

उजागर किया गया है। अमेरिका में रहते हुए सावित्री अभी भी भारतीय परम्पराओं से बँधी है, जबकि नरेन को पश्चिमी संस्कृति से लगाव है। जब नरेन ने मारिया का साड़ी प्रेम और आईरीना की भारतीय वेदान्त के प्रति श्रद्धा देखी तब उसके विचार बदले लेकिन तब तक देर हो चुकी थी और सावित्री भारत लौट चुकी थी।

नीरजा माधव की कहानी *पृष्ठ संख्या उन्नीस सौ निन्यानबे* में भारतीय संस्कृति को त्यागकर भारतीयता की बात करने वाले लोगों की मानसिकता पर कड़ा प्रहार किया गया है। "क्या हमारी संस्कृति की गरिमा का एहसास बाहर (विदेशों) से आए लोग कराएँगे? क्या साड़ियाँ और सलवार-सूट पहने विदेशी युवतियाँ, बेतरतीब कटे-छँटे वस्त्रों और जीन्स संस्कृति वाली भारतीय छोरियों को उनसे ही वेश-भूषा और संस्कृति का परिचय कराएँगी?"[32] राष्ट्रीय पर्व मना लेने भर से भारत के प्रति सम्मान अदायगी नहीं हो जाती। भारतीय संस्कृति के प्रति सम्मान का पाठ तो विदेशी पढ़ा जाते हैं और हम भारतीय अपनी संस्कृति पर ही शर्मसार होते रहते हैं।

रवीन्द्र वर्मा की कहानी *सारनाथ में सन्नाटा* ऐतिहासिक और धार्मिक स्थलों में बढ़ती भीड़ और व्यावसायिकता के कारण नष्ट होती सांस्कृतिक परम्पराओं, धरोहरों और लुप्त हो रहे नैसर्गिक सौन्दर्य को रेखांकित करती है। बनारस में पूजा और आस्था आर्थिक लाभ कमाने का साधन बन गई है तो दूसरी ओर महात्मा बुद्ध के पावन स्थल सारनाथ में बौद्ध भिक्षु अपने हाथ में सोने की चेन वाली घड़ी पहनकर प्रार्थना कर रहा है। भौतिकता और व्यावसायिकता ने सांस्कृतिक विरासत को अपने आगोश में ले लिया है। अपराध भी बढ़ रहे हैं। कहानी बताती है कि सारनाथ में सांस्कृतिक गौरव का, परम्पराओं का, मर्यादाओं और आदर्शों का सन्नाटा छा गया है।

उदय प्रकाश की कहानी *रामसजीवन की प्रेमकथा* का रामसजीवन ग्रामीण जीवन और निम्न आर्थिक स्तर से निकलकर शहर आया है, दिल्ली में पढ़ते हुए उसे अब ग्रामीण संस्कृति, परम्पराएँ घर-परिवार और मान्यताएँ सभी दकियानूसी, पिछड़ी और बेकार लगने लगी हैं। रामसजीवन भरसक प्रयास करता है कि शहरी जीवन की संस्कृति में घुलमिल जाए लेकिन यह संभव नहीं हो पाता और 'अधकचरी' स्थिति में फँसे रह जाने के कारण, उपजी कुण्ठा के कारण गाँव में फैली असमानता, शोषण और वर्गीय अन्तर्विरोध के खिलाफ केवल कागजी संघर्ष

छेड़े रहता है, गाँव जाना फिर भी पसंद नहीं करता। *रामधारी सिंह 'दिवाकर'* की कहानी *नवजात* के नकछेदी महतो और उनकी बीबी सरोसती भी अपने लोगों और अपनी संस्कृति को त्यागने के बाद 'हाई-फाई सोसायटी' में सहज नहीं हो पाते और 'अधकचरी' स्थिति में फँसे रह जाते हैं। *कृष्ण सुकुमार* की कहानी *बिरादरी* और रामधारी सिंह दिवाकर की कहानी धरातल भी इसी मानसिकता को उजागर करतीं हैं।

भीष्म साहनी की कहानी *सेमिनार* में सांस्कृतिक कलाकारों की कला को प्रोत्साहित करने, संरक्षित और संवर्द्धित करने के बजाय समाजसेवी संगठनों और कार्यकर्ताओं द्वारा व्यावसायिक उपयोग करने की मानसिकता उजागर की गई है। कहानी के पात्र सेठी ने व्यापार, बाजार और सांस्कृतिक कार्यक्रम को एक साथ जोड़ दिया लिहाजा 'सेमिनार' अपनी मूल भावना को खोकर प्रचार करने का साधन बन गया। *परदेसीराम वर्मा* की कहानी *नेपथ्य और मंच* में लोककला की दुर्दशा, लोककलाकारों का शोषण और उनके नाम पर कमाई करने की मानसिकता की कथा है। पंडित जी को लोककलाकारों की बजाय शासन के अधिकारियों और पत्रकारों की चिंता है। लोककलाकारों के आयोजन में ही अपेक्षित है चिकरहा को पंडित जी के इस कृत्य से नफरत थी, क्योंकि इससे लोककलाकारों का भला नहीं होने वाला था। लिहाजा चिकरहा विद्रोह पर उतर आया और उद्घाटन के बाद चिकरहा ने मंच पर जबरदस्ती चढ़कर अपना कार्यक्रम शुरू कर दिया। पंडित जी ने उसे पागल बतलाकर मंच से उतारना चाहा लेकिन जनता चिकरहा का कार्यक्रम ही देखना चाहती थी, अंततः पंडित जी अपने मुँह की खाकर रह गये।

भौतिकता और आधुनिकता के विस्तार के फलस्वरूप उपजी सांस्कृतिक संक्रमण की स्थितियों, लोगों की मानसिकता में आए बदलाव और विकृत होते पारिवारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों की तमाम स्थितियों को आठवें दशक के बाद की कहानियों में बड़ी कुशलता के साथ उजागर किया गया है।

(3) सामाजिक :-

शिक्षा, विज्ञान, भौतिकता और आधुनिकता के बढ़ते जाने के बावजूद समाज में व्याप्त रूढ़ियों, वर्गीय अन्तर्विरोध, संकीर्ण मानसिकता और वैर-भाव कम नहीं हुआ है। स्त्रियों, बच्चों और वृद्धों को आज भी दुष्कर परिस्थितियों का, शोषण का सामना करना पड़ता है। समाज के

लिए निःस्वार्थ भाव से कार्य करने वाले लोग अप्रासंगिक होते जा रहे हैं और असामाजिक तत्त्वों का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। *दिनेश पालीवाल* की कहानी *असामाजिक* समाज में अपराधी, गुण्डे, पूँजीपति और स्वार्थी वर्ग के बढ़ते वर्चस्व के कारण पैदा हो गई विषम परिस्थितियों को रेखांकित करती है। समाज के लिए निःस्वार्थ भाव से सेवा करने वाले 'पद्मश्री' से सम्मानित 'हेड साहब' की लाश लावारिसों की तरह अस्पताल के मुर्दाघर में पड़ी हुई है और समाज में इतनी भी संवेदनशीलता नहीं रह गई है कि कम-से-कम उनका अंतिम संस्कार तो कर दें। पत्रकार ने 'हेड साहब' के अंतिम संस्कार के लिए बॉक्स में खबर निकलवाकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर दी। दूसरी ओर एक अपराधी किस्म के व्यक्ति की लाश पर मुख्यमंत्री फूलमाला चढ़ा रहे हैं, इसके लिए सांसदों, विधायकों और शहर की जनता ने मुख्यमंत्री पर दबाव डाला है। अंततः कथावाचक ही अपनी पेंशन से कुछ रुपये लेकर 'हेड साहब' की अन्त्येष्टि करता है। समाज की मानसिकता में आए बदलाव के कारण निष्कपट और आदर्श जीवन की राह में चलने वाले हेड साहब जैसे लोग 'असामाजिक' हो जाते हैं, क्योंकि ऐसे लोगों से समाज के स्वार्थ पूरे नहीं होते। इसी कारण बुद्धिजीवी की श्रेणी में गिने जाने वाले समाज के 'अगुवे' अपने उत्तरदायित्व से भागने के लिए कई तरह के बहानों और लांछनों का सहारा लेते हैं। *डॉ. रामकुमार तिवारी* की कहानी *उत्तरदायित्व* इसी सोच का खुलासा करती है।

मिथिलेश्वर की कहानी *सायास* में शक्करडीह गाँव के लोग अपने घर के बजाय पड़ोसी के बारे में ज्यादा चिंतित रहते हैं और पूरे समय दूसरों के घर की आलोचना में ही लगे रहते हैं- अनायास नहीं सायास। इसीलिए इंस्पेक्टर लोहित सिंह की मौत के कारणों, उनकी मौत के बाद दत्तक पुत्र की भूमिका के विविध आयामों और सम्पत्ति के बँटवारे आदि विषयों पर शक्करडीह के लोग इतना चिंतित हो जाते हैं कि उन्हें अपने घर की सुध ही नहीं रह जाती। *आदित्य नारायण शुक्ल* की कहानी *प्रधानमंत्री की प्रेमिका* में भी इसी मानसिकता के लोगों द्वारा फैलाई जाती अफवाहों द्वारा भलाई को बुराई में बदलने वाले लोगों की नीयत को उजागर किया गया है। *विलास गुप्ते* की कहानी *आहट* में अविश्वास, शंका और भय की आहटें हैं। कहानी का पात्र शंका, अंधविश्वास, लोकलाज और धोखे से भयाक्रान्त होकर महेश्वरी के ऊपर शक करता है और उसकी बेटी के बारे में महेश्वरी द्वारा पूछे जाने पर चिंतित हो उठता है, जबकि महेश्वरी, सुनीता में अपनी बेटी का अक्स देखता है। समाज में इतनी विकृतियाँ और अपराध

पनपे हैं कि इस प्रकार की स्थितियाँ पैदा होना स्वाभाविक ही है।

सामाजिक संरचना में विभिन्न वर्गों के बीच उत्पन्न वर्गीय अन्तर्विरोध को आज की कहानियों में शिद्दत के साथ उजागर किया गया है। *अशोक अग्रवाल* की कहानी *कूड़ेदान* का के. के. गाँव से निकलकर प्रशासनिक अधिकारी बना है। उसने अपनी बुद्धिमत्ता और मेहनत से आदर्श गाँव का मॉडल बनाकर भले ही वाहवाही लूटी हो, लेकिन आदर्श गाँव में वह समता और लोकप्रिय समाज की स्थापना नहीं कर सका क्योंकि वह स्वयं वर्गीय अन्तर्विरोधों को बढ़ावा देता रहा। *अजय नावरिया* की कहानी *चीख* में चीख कथावाचक की है, जिसने अपने पिता और बाबा पर गाँव के पटेलों द्वारा किए गये अत्याचार को देखा है। पटेल का बेटा विनायक उस पर भी अत्याचार करना चाहता है और वह प्रतिशोध लेने के लिए ऊँची पढ़ाई करना चाहता है। अधिक से अधिक धन इकठ्ठा करके वह पटेल को नीचा दिखाना चाहता है। इसके लिए वह 'जिगोलो' बनने में भी नहीं हिचकता। सम्पन्न और प्रतिष्ठित परिवार की स्त्री को भोगते हुए उसे गर्व और संतुष्टि मिलती है। हालाँकि उसका बाबा प्रतिशोध लेने के इस तरीके से सहमत नहीं है। *अंशु मालवीय* की कहानी *14 अप्रैल* भी वर्गगत असमानता से मुक्ति की खातिर पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलने वाली संघर्ष की प्रक्रिया को और इसमें लगे लोगों की मानसिकता को, कम उम्र में ही बच्चों के इस टकराव, वर्गीय असमानता और वैचारिक संकीर्णता के कारण अपने आक्रोश में शामिल हो जाने के कारण छिनते बचपन की व्यथा-कथा कहती है। *रत्नकुमार सांभरिया* की कहानी *फुलवा* में वर्गीय संघर्ष की परिणति के एक आयाम को उजागर किया गया है। अपनी गुलामी, शोषण, अत्याचार और वर्गीय असमानता के कारण समाज में उपेक्षा और तिरस्कार को भोगते हुए, संघर्ष करते हुए फुलवा अपनी वैचारिक प्रखरता, शिक्षा और व्यवहार से गाँव के ठाकुर को नीचा दिखा देती है। यहाँ फुलवा की जीत उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितनी ठाकुर की हार। सामाजिक अन्तर्विरोध और वर्ग संघर्ष के इस महत्त्वपूर्ण और ज्वलंत पहलू को *मधुकर सिंह* ने भी अपनी कहानी *दुश्मन* के माध्यम से उकेरा है।

गोविन्द मिश्र की कहानी *छवि* का तपन स्वयं को समाज के पिछड़े लोगों के हित चिन्तक के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहता है और वर्गगत असमानता को दूर करने वाले समाजसेवक की छवि बनाने की खातिर बाबूलाल की बेटी सावित्री से ब्याह करना चाहता है। सावित्री पढ़ी-लिखी भी है और देखने में सुंदर भी, लिहाजा उसे इसमें कोई घाटा नहीं, लेकिन

बाबूलाल जानता है कि तपन जैसे लोग अपनी ख्याति और अपने लाभ के चक्कर में इस तरह का दिखावा करते हैं इसलिए वह अपनी बेटी जावित्री से विवाह के लिए तपन से कहता है। जावित्री अनपढ़ गँवार है और सुंदर भी नहीं है। बाबूलाल के इस प्रस्ताव से तपन को अपनी बेवकूफी और बाबूलाल की राजनीति, घाघपन और चालाकी का एहसास होता है। *मोहनदास नैमिशराय* की कहानी *सुनो बरखुरदार* वर्गगत असमानता और विद्वेष के खिलाफ संघर्ष के नाम पर राजनीति करने वालों और लाभ कमाने वालों की मानसिकता पर कड़ा प्रहार करती है।

प्रेम प्रसंगों को समाज की स्वीकृति प्राप्त नहीं होती है। स्वयं की अतृप्त रह गई आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं हो पाने की कुण्ठा युवाओं को देखकर बलवती हो जाती है और सामाजिक मर्यादाओं का लबादा ओढ़कर कड़े बंधनों और विद्रूपता-वीभत्सता का रूप ले लेती है। *रामधारी सिंह दिवाकर* की कहानी *काकपद* में दो पीढ़ियों के बीच इसी मानसिकता के कारण उपजे अन्तर्विरोधों को प्रस्तुत किया गया है। शिवनाथ और सुभद्रा के प्रेम विवाह पर सारा गाँव व परिवार नाराज है और उन्हें बहिष्कृत भी कर दिया है। अपनी अतृप्त आकांक्षाओं के पूरा नहीं हो पाने की कुण्ठा वे शिवनाथ और सुभद्रा पर निकाल रहे हैं और दूसरी ओर इन सबसे अलग वे दोनों अपने मनोवांछित जीवन-साथी को पाकर प्रसन्नतापूर्वक जीवन जी रहे हैं। *नीलाक्षी सिंह* की कहानी *रंगमहल में नाची राधा* की दीवानबाई समाज के बंधनों को नहीं तोड़ पाती, परिवार की इच्छाओं के विपरीत अपनी आकांक्षाओं को पूरा नहीं कर पाती और वांछित प्यार को न पा सकने की कसक और घुटन में जीती है। *कृष्ण सुकुमार* की कहानी *अनुत्तरित* में भी कमोबेश इसी तथ्य को उजागर किया गया है।

चाहे निःस्वार्थ प्रेम की कामना में अपना सर्वस्व न्यौछावर करने वाली स्त्रियाँ हों या परिवार और समाज के खातिर मरती-खपती महिलाएँ हों, समाज में उपेक्षित और दोयम दर्जे की भूमिका में ही रहती हैं और शोषित व तिरस्कृत होती रहती हैं। *कृष्ण सुकुमार* की कहानी *रेत पर उगा बसन्त* इसी मानसिकता की पड़ताल करती है। *कृष्ण सुकुमार* की कहानी *फटीचर* में समाज व परिवार की लड़कियों के प्रति मानसिकता को अनूठे ढंग से उजागर किया गया है। सात बेटियों के पैदा हो जाने के बाद भी पिता को पुत्र प्राप्ति का मोह है, क्योंकि पुत्र कुलतारण होता है। 'उसने' जन्म लेकर पिता के कुल का तो उद्धार कर दिया लेकिन खुद फटीचर हो गया।

समाज में पुरुषवादी सत्ता के वर्चस्व और दबाव के बीच जीती महिलाओं के ऊपर रीतियों और परम्पराओं को इस कदर हावी कर दिया जाता है कि वे *गूलर का कीड़ा (कृष्ण सुकुमार)* बनकर ही रह जाती हैं, बंद और सीमित दायरे में पैदा होकर वहीं मर जाने के लिए। मानकुँवर का बाल विवाह हो चुका है और गजेन्द्र को पाने की आकांक्षा को दबाए रखकर उसे अपने पति के डॉक्टर बनकर आने और विदा करा ले जाने का इंतजार रहता है, लेकिन उसका पति एक्सीडेंट में मारा जाता है और अब नवयौवना वधू को 'सती' करके उससे छुटकारा पाने के सिवा समाज और परिवार के पास कोई विकल्प नहीं रह जाता। स्त्रियों की संवेदनाएँ, भावनाएँ और इच्छाएँ समाज की परम्पराओं और कुरीतियों के सामने कोई अहमियत नहीं रखतीं। *रश्मि बड़थ्वाल* की कहानी *बेताल प्रश्नों के बीच* में स्त्री मुक्ति के यथार्थ को खोजने का प्रयास किया गया है। समाज द्वारा सताई गई स्त्रियों की व्यथा-कथा को अतिरेकी तरीके से प्रस्तुत करके महिला संगठन, नेत्रियाँ और समाज सेविकाएँ अपनी प्रतिष्ठा की स्थापना तो कर लेती हैं, लेकिन इनके प्रयासों से समाज की मानसिकता नहीं बदलती, महिलाएँ बदस्तूर शोषण का शिकार होती रहती हैं। प्रायः समाज और परिवार में सताई गई स्त्रियाँ इन संगठनों की पहुँच से दूर ही रह जाती हैं। *सी. दास बांसल* की कहानी *कार्टूनिस्ट* की श्यामला ने समाज के ठेकेदारों द्वारा स्त्रियों के शोषण, अलग-अलग आदमियों के नकाबपोश चेहरों के पीछे छिपे समाज के नग्न यथार्थ और स्त्रियों को मात्र उपभोग की वस्तु मानने की मानसिकता के खिलाफ संघर्ष का अनूठा रास्ता चुना है। उसने कार्टूनिस्ट बनकर समाज के नग्न यथार्थ को, उसके लोगों की वास्तविकताओं को कार्टून के माध्यम से उजागर करने की ठानी है।

सामाजिक रूढ़ियों, वर्गीय असमानताओं और वैरभाव से संघर्ष करने वाले लोग भी कम नहीं हैं। *मिथिलेश्वर* की कहानी *गाँव का मधेसर* का मधेसर गाँव के वर्ग वैषम्य और प्रचलित कुरीतियों के खिलाफ संघर्ष के लिए अनाथ और बेबस युवती रधिया को अपनाता है, अपनी बिरादरी में हेय माने जाने वाले कार्यो को करने से पीछे नहीं हटता। आज जब गाँव में दो वर्गो के लोग आमने-सामने आ खड़े हुए हैं तो दोनों को ही मधेसर से उम्मीद है। *मिथिलेश्वर* की कहानी *मनबोध मउआर* के पात्र मनबोध अपने समय के नामी-गिरामी पहलवान रहे हैं। वृद्ध मनबोध के दुश्मन वही लोग हैं, जो अपराधी या अत्याचारी हैं। आजकल ऐसा समय नहीं है कि अन्याय के खिलाफ बोला जाय, लेकिन मनबोध का कहना है कि अन्यायी से ज्यादा दोषी उसको

देखकर चुप रहने वाला होता है। इसी कारण मनबोध मउआर को तमाम दिक्कतों और हमलों का सामना करना पड़ता है, लेकिन वे अडिग रहते हैं। आजकल ऐसे जीवट वाले लोग दुर्लभ हो गए हैं। इस कारण भी समाज में विषमताएँ और शोषण बेरोक-टोक बढ़ रहे हैं।

समाज की वर्तमान स्थिति का, समाज में प्रचलित रूढ़ियों, अंधविश्वासों और संकीर्ण मानसिकता के साथ ही आधुनिकता के कारण आते बदलाव का व्यापक और सटीक चित्रण समूचे यथार्थ के साथ इस दौर की कहानियों में हुआ है।

(4) राजनीतिक :-

देश के नेताओं द्वारा की जा रही वोट की राजनीति, अवसरवादिता, धर्म के नाम पर जनता को लड़ाकर लाभ उठाने की मानसिकता और भ्रष्ट होती नैतिकता हिन्दी कहानियों में बड़ी बेबाकी के साथ उजागर की गई है। *हिमांशु जोशी* की कहानी *समुद्र और सूर्य के बीच* के राजनेता ने इतना भ्रष्टाचार किया, धन का घोटाला किया और जनता के साथ विश्वासघात किया कि उसकी आत्मा उसे कचोटती रही, लेकिन बाहर से वह उसी तरह आचरण करता रहा। न्यायालय द्वारा दण्डित किए जाने के भय से उसे रात में नींद नहीं आती थी, भयानक सपने आते थे। मुद्दतों बाद उसे उस रात नींद आई तो उसके काले कारनामों के सपनों की दहशत से वह सुबह मरा हुआ पाया गया। हिमांशु जोशी की यह कहानी देश के नेताओं के नैतिक पतन की भयावहता को बड़ी बेबाकी के साथ प्रस्तुत करती है। *विष्णु नागर* की कहानी *जंगल में डेमोक्रेसी* जंगल का बिम्ब बनाकर वर्तमान राजनीति के चरित्र को प्रस्तुत करती है। राजनीति में बढ़ रहे अपराध और अहिंसा को चोला पहनकर हिंसक, क्रूर और आततायियों द्वारा शासन-सत्ता पर कब्जा जमाने के यथार्थ को कहानी चित्रित करती है।

हेतु भारद्वाज की कहानी के *भुवन बिहारी की जीत* चुनावों में गुण्डा बल्लू दादा के सहयोग से हो सकी थी, अब बल्लू दादा नेता भुवन बिहारी से इसका प्रतिफल चाहता है। राजनीति और अपराध की साठगाँठ हद से ज्यादा बढ़ चुकी है। इसीलिए *निर्वाचन के बाद (राजेश शर्मा)* पूँजीपतियों, अपराधियों और बाहुबली लोगों की पौ-बारह हो जाती है।

केवल सूद की कहानी *कोई दूसरा चाणक्य* में अतीत के सुनहरे सब्जबाग दिखाकर वर्तमान की कटु सच्चाइयों से मुँह फेरने वाले नेताओं के समक्ष देश की लचर व्यवस्था और भ्रष्ट-कमजोर नेतृत्व को ढोते रहने की विवशता का प्रश्न उठाया गया है। *विश्वमोहन* की कहानी

गहरे नाले का काम चल रहा है में राजनीतिक स्वार्थों की सिद्धि के लिए नेताओं द्वारा निरीह, गरीब, अशिक्षित, अल्पशिक्षित और निचले तबके के लोगों के जीवन की चिंता किए बिना उपयोग करने और काम निकल जाने के बाद दुत्कार देने की मानसिकता को उजागर किया गया है।

मुद्राराक्षस की कहानी *युसूफ मियाँ की मृत्यु और प्रधानमंत्री का पानी*, राजनेता और जनता के बीच असमानता की खाई को उजागर करती है। सब्जी विक्रेता युसुफ मियाँ प्रधानमंत्री के पीने के लिए विदेश से मँगाए गए पानी को ढोने वाली विशेष गाड़ी को देखने गए और वहाँ पर पानी की व्यवस्था नहीं होने से कई आदमियों के साथ ही युसुफ मियाँ भी प्यास से तड़पकर मर जाते हैं। एक ओर तो पीने के पानी के लिए लाखों खर्च हो रहे हैं और दूसरी ओर कई लोग पानी के अभाव में मर रहे हैं। देश की सेवा करने के नाम पर सरकार में बैठे नेता और मंत्री आते हैं तो बिजली, सड़क और पानी सभी चकाचक हो जाते हैं। रातों-रात न जाने कितने लोग बेघर हो जाते हैं, झुग्गी-झोपड़ियाँ और गुमटियाँ बनाकर किसी तरह अपना सिर छुपाने का इंतजाम करने वाले ऐसे गरीब लोगों को सुरक्षा के नाम पर हटा दिया जाता है, झुग्गी-झोपड़ियाँ ढहा दी जाती हैं। मंत्री और नेता भी इन्हीं सब के बीच से जाते हैं, लेकिन इन गरीबों के दर्द का कहीं एहसास तक नहीं रहता। ऐसी राजनीति पर प्रश्न चिन्ह लगाती कहानी है- *नीरजा माधव* की *घलुआ* । *सुरेश उनियाल* की कहानी बताती है कि *उस राज्य में* नेता जब तक सत्ता में नहीं होता तब तक जनता की बात करता है और शासन पाते ही वह भी जनता का खून चूसने लगता है। आखिर जनता का खून पिया ही जाता है। हर बार शासक बदलते रहते हैं, नेता बदलते रहते हैं और जनता को उसी स्थिति में जीना होता है।

डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय' की कहानी *एक और क्रान्ति* में राजनीति की पेंचबाजी, छल-छद्‌म के बीच छले जाते लोग हैं और वाहवाही लूटते नेता हैं। *उर्मिला शिरीष* की कहानी *किसका चेहरा* में चुनावी राजनीति के खातिर भाड़े पर खरीदी गई भीड़ की रेल यात्रा का वर्णन है, जिसे अपना हित साधने के बाद जानवरों की तरह छोड़ दिया गया है।

स्वयं प्रकाश की कहानी *सम्मान* के प्रशान्त जी ने अपने जीते-जी सिद्धान्तों को नहीं छोडा, अभावों को भी झेलते रहे, तब किसी नेता ने उनकी खबर नहीं ली, अब उनकी मृत्यु के बाद आने वाले चुनावों में लाभ लेने के खातिर मुख्यमंत्री उनके अंतिम संस्कार में शामिल होने आ रहे हैं। तमाशाई, पत्रकार, पुलिस और नेता सभी इस मौके का लाभ उठाना चाहते हैं किसी

को न तो गिल्लू जी की चिंता है और न ही उनके बाप प्रशान्त जी की लाश की। मुख्यमंत्री के आगमन और उनकी शोक संवेदना के लिए जारी इंतजार से ऊबकर अततः गिल्लू जी का धैर्य चुक जाता है और वे क्रोध में चिल्लाने लगते हैं- "उनके दिमाग में चार छह बड़ी-बड़ी गालियाँ दौड़ीं ...... किसी के लिए नहीं रुका मेरा बाप। किसी के लिए नहीं रुकेगी उसकी लाश। जिस साले को आना हो आए ...... नहीं आना, भाड़ में जाए। टू हैल विद देयर ....."[33]

राजनीति में आम आदमी के शोषण के साथ ही लाभ कमाने और वोट पाने के लिए धर्म का, धार्मिक भावनाओं का और धार्मिक आस्थाओं का इस कदर दोहन किया गया है कि देश की गंगा-जमुनी तहजीब भी विकृत और विद्रूप हो गई है। *ए. असफल* की कहानी *विश्वासमत* में गुजरात दंगों की त्रासदी के आलोक में राजनीति और साम्प्रदायिकता की विद्रूपताओं के पीछे काम करती इसी मानसिकता को उजागर करते हुए कोमल और सहज मानवीय भावनाओं के टूटने-बिखरने और नष्ट होने की व्यथा-कथा है। हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्यता का लाभ उठाकर राजनीति करने की साजिश में बढ़ती दूरियों के शिकार होते आम आदमी की व्यथा उजागर करते हुए सुखद भविष्य की कल्पना करती कहानी है *कविता* की *फिर आएँगे कबूतर* । *नीरजा माधव* की कहानी *कतरनों वाली फाइल* में धर्म-निरपेक्षता के नाम पर राजनीति करने वालों और देश में साम्प्रदायिक उन्माद फैलाने वालों के खिलाफ अनूठा विरोध प्रदर्शित किया गया है। कहानी के पात्र राजकिशोर जी ने अपना विरोध प्रदर्शित करने के लिए अखबारों से सम्प्रदायिक दंगों, घटनाओं वाली खबरों की कतरनें काट कर फाइल बना रखी है।

राजनीति की चकाचौंध के आकर्षण के कारण तो कभी मजबूरी में फँसी महिलाओं का नेताओं द्वारा जमकर शोषण किया जाता है और अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए महिलाओं का उपयोग भी किया जाता है। *विभांशु दिव्याल* की कहानी *तंत्र* का कथावाचक एक नेता है और दूसरों के सही-गलत काम करवाने के लिए नजराने के तौर पर लड़कियों-औरतों को भोगना वह अपनी नैतिकता का ही हिस्सा मानता है- "मैं स्वीकार कर चुका हूँ कि पत्नी के रहते हुए भी निरंतर अन्य औरतों के माध्यम से तमाम तनावों और परेशानियों से कुछ देर मुक्ति पा लेने से मेरी कोई नैतिकता खंडित नहीं होती। राजनीति की अपनी अलग नैतिकता है। दूध के धुले बने रहिए, आप पर कीचड़ उछालती रहेगी। कीचड़ में डूबे रहिए आप को दूध का धुला साबित करने वालों की एक पूरी जमात आपके आगे-पीछे घूमती रहेगी। सिद्धान्ततः अब मुझे अपनी किसी

बदनामी का भय नहीं लगता।"[34] यह स्वागत कथन नेताओं के नैतिक चरित्र को उजागर करने के लिए काफी है। *दयानंद पाण्डेय* की कहानी *देह-दंश, राजेन्द्र मोहन भटनागर* की कहानी *एक दूसरी जिंदगी के लिए* और *धर्मेन्द्र देव* की कहानी *जनसेवक* में भी महिलाओं के शोषण की दयनीय स्थिति को उकेरा गया है।

विश्वमोहन की कहानी *मंत्री की बेटी* में मंत्री और उद्योगपति के बीच लाभ कमाने के लिए साठ्गाँठ करने के लिए मंत्री की बेटी ही मोहरा बन जाती है और काम निकालने के बाद उसे छोड़ दिया जाता है। उद्योगपति के बेटे नरेश ने मंत्री की बेटी नीलिमा को अपने प्रेम के जाल में फँसाया। मंत्री ने भी इसे मौन स्वीकृति दे दी। नरेश ने उसकी इज्जत भी लूटी और नीलिमा सच्चे प्यार के फेर में अपना सर्वस्व कुर्बान करती रही। जब नीलिमा के पिता का मंत्री पद छिन गया तो नरेश ने नीलिमा को छोड़ दिया । राजनीति की रोटियाॅ सेंकने में माहिर नेतागण मानवीय संवेदनाओं का मजाक बनानें मे भी पीछे नहीं रहते। *राजाराम सिंह* की कहानी *विवर्ण* इसी मानसिकता को उद्घाटित करती है। कहानी में यूनियन के आसन्न चुनावों के लिए मुद्दा तलाश रहे नेताओं ने बेसहारा औरत और उसके नवजात शिशु को लेकर नेतागिरी चालू कर रखी है। *धर्मेन्द्र देव* की कहानी *गुल्लू बाबू जिंदाबाद* के गुल्लू बाबू ने रामलोचन की बेटी के साथ दुष्कर्म करने के प्रयास में नकाम हो जाने के गुस्से मे उसका कत्ल कर दिया है। ईमानदार दरोगा, एस.पी. और डी.एम. पीड़ित रामलोचन को न्याय दिलाना चाहते थे, लेकिन आला अफसरों ने मामले को इस तरह मोड़ दिया कि न्याय मिलना तो दूर रहा उन ईमानदार अफसरों का तबादला हो गया और बाद में गुल्लू बाबू वहीं से चुनाव जीतकर उस क्षेत्र के मसीहा बन गये। कहानी में नेताओं और प्रशासनिक अधिकारियों की मिलीभगत में पिसते और न्याय की अपेक्षा में दर-दर की ठोकरें खाते गरीब-असहायों का दर्द भी यक्साँ है।

राजेन्द्रमोहन भटनागर की कहानी *उत्तराधिकार की तलाश* में जनता की सेवा के नाम पर राजनीति करने वालों की भीतरी दुनिया, उनके बीच के घमासान, खींच-तान और उठा-पटक को उजागर किया गया है। प्रदेश का मुख्यमंत्री के. के. अमेरिका में जिंदगी और मौत से जूझ रहा है। उसके उत्तराधिकारी बनने के दावेदार उसकी जिन्दगी के बजाय मौत की दुआ मॉग रहे हैं। के. के. का असली उत्तराधिकारी प्रकाश देवड़ा है लेकिन माधवी नय्यर अपनी रूपमोहिनी से अपने सुंदर शरीर की बदौलत देवड़ा की दावेदारी पर भारी पडती है। माधवी के

पास के. के. की पत्नी की दावेदारी को कमजोर करने के भी तर्क हैं। इसके साथ ही देवरत्नाकार के विरोध को वह अपने हुस्न की आग में जला देती है। प्रभात देवड़ा एक बार फिर पिटे मोहरे की तरह माधवी नय्यर की खूबसूरती, चालाकी और अपनी हार को स्वीकार करने को विवश हो जाता है। कहानी में राजनीति में घुसी महिलाओं द्वारा अपने सौन्दर्य और शारीरिक सौष्ठव का व्यापार करके तरक्की करने की मानसिकता उजागर की गई है। *अरुण प्रकाश* की कहानी *छाया-युद्ध* संसद में मच रही उथल-पुथल को रेखांकित करती है। जीवन भर अपने विरोधियों से लडने वाले नेतागण वास्तव में स्वयं से ही लड़ते रहते हैं। *राजेन्द्रमोहन भटनागर* की कहानी *चाणक्य की हार* में भी नेताओं के अंदर चल रहे मानसिक द्वन्द्व को उजागर किया गया है।

सतीश जमाली की कहानी *अर्थतंत्र* राजनीति में फैली गंदगी, भ्रष्टाचार अराजकता और दूषित मानसिकता के खिलाफ जनाक्रोश को उजागर करती है। प्रधानमंत्री के आगमन के लिए इंतजार में खड़ी जनता के समक्ष जब प्रधानमंत्री का कत्ल हो जाता है तो जिस व्यक्ति को कातिल समझकर गिरफ्तार किया जाता है उसे प्रधानमंत्री के कातिल होने पर गर्वानुभूति होती है। वह सोचता है कि ''देश के करोड़ों लोग उससे खुश होंगे कि इतना जरूरी और इतना बडा काम कर दिखाया। उसकी कुर्बानी को हमेशा-हमेशा के याद किया जाएगा। आने वाली संतानें उसे हीरो के रूप में आदर करती रहेंगी।''[35] कहानी के पात्र का यह विचार राजनीति मे फैली गंदगी के खिलाफ उपजे जनाक्रोश की पराकाष्ठा है। *यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'* की कहानी *अहसास* में जनता द्वारा नेताओं को मूलभूत जरूरतों के बगैर जीवन जीने की दिक्कतों का असली अहसास कराने का संघर्ष प्रकट किया गया है। दौरे पर निकले एम. एल. ए. की जीप की पेट्रोल टंकी में ठाकुर ने बालू भर दी तब रेगिस्तान मे भटकने के बाद एम. एल. ए. को समझ मे आया कि वहा कि जनता पानी के बिना किस तरह जीती है। *शीतांशु भारद्वाज* की कहानी *राष्ट्रभक्त* में देश के नेताओं की खोखली भाषणबाजी और बयानबाजी से आहत जनता और क्रान्तिकारी युवकों द्वारा बुलन्द किये गए विरोध के स्वर से भयाक्रान्त नेता की कहानी है जो स्वयं को स्वतंत्रता संग्राम का सेनानी बताता था, सेनानी का फर्जी बिल्ला लगाकर अपना और अपने परिचितों का हित साधता था। पोल खुल जाने के बाद युवाओं ने मुखर विरोध चालू कर दिया।

कुल मिलाकर वर्तमान राजनीतिक परिवेश के सभी पहलू और राजनीति में पनपी विद्रूपताओं, शोषण और विकृतियों के खिलाफ संगठित और सक्रिय जनचेतना बड़ी कुशलता के साथ आठवें दशक के बाद की कहानियों में प्रकट हुई है।

(5)शिक्षा, साहित्य एवं कला-

बदलते जीवन-मूल्यों एवं समय के अनुसार शिक्षा, साहित्य और कला में भी बदलाव आया है। कभी समाज में प्रतिष्ठा और सम्मान पाने वाले कलाकार और साहित्यकार अपनी पहचान बचाने और जीवन चलाने की जद्दोजहद से दो चार हो रहे है। सरकारी स्तर पर मिलने वाले संरक्षण और सहायता में भी राजनीति के प्रवेश ने शिक्षालयों का स्वरूप तो बदल ही दिया है, शिक्षक-छात्र के रिश्तों की परिभाषाएँ भी बदल दी हैं। यह बदलाव हिंदी कहानियों से अछूता नहीं है। *यशपाल बैद* की कहानी *सौदा,* शिक्षा के गिरते मूल्यों और व्यवसायीकरण के कारण शिक्षा केन्द्रों की होती दुर्दशा, महाविद्यालयों में बढ़ती गुण्डागर्दी, अराजकता और अपराधी किस्म के छात्रों से भयाक्रान्त अध्यापकों की मजबूरी को उकेरती कहानी है- *राजेश शर्मा* की *घटना-दुर्घटना*। कहानी में विद्या की देवी सरस्वती की तुलना बीच चौराहे पर पड़ी, जमकर काले पड़ गए रक्त के कारण विद्रूप हो गई लावारिस स्त्री की लाश से की गई है

विद्यालयों मे बिगड़ते शिक्षा के स्वरूप और हावी होती धन की राजनीति पर चिंता व्यक्त करती कहानी है- *सुशीला झा* की *चुनाव।* कानवेण्ट स्कूलों में रईसों के बच्चे धन का प्रदर्शन करने से बाज नहीं आते। विद्यालय में मॉनीटरशिप के चुनाव में उद्योगपति का बेटा राकेश प्रथम मॉनीटर बनता है क्योंकि उसने टॉफी बॉटकर वोट मॉगे थे। अब राजू विद्यालय की टीम का कैप्टन बनने के खातिर आइसक्रीम बाँटने के लिए माँ से सौ रुपये माँगता है। विद्यालयों में टॉफी और आइसक्रीम बाँटने की सोच धन से वोट खरीदने की आज की राजनीतिक विद्रूपता के परिणामस्वरूप ही विकसित हुई है। अपने परिवेश से सीखकर उसी के अनुरूप आचरण करने की प्रवृत्ति उम्र बढ़ने के साथ ही गलत कार्यो के लिए प्रेरित करती है।

कन्हैयालाल गाँधी की कहानी *साक्षात्कार* की छात्रा अलका को डॉ. सतीश की कमजोरी पता है और इसका लाभ उठाकर विश्वविघालय में प्रथम स्थान पाने के लिए स्वयं को डॉ. सतीश के समक्ष प्रस्तुत कर देती है। डॉ. सतीश अपनी छात्रा अलका के सौन्दर्य और रूप लावण्य का रसास्वदन करते रहे। डॉ. सतीश ने अपने इंचार्ज द्वारा इस विषय पर आक्षेप लगाए

जाने से क्रुद्ध होकर त्यागपत्र दे दिया तो अलका ने भी उन्हें छोड़ दिया, जबकि डॉ. सतीश को अलका के साथ रहने का पूरा विश्वास था। कहानी में छात्र और शिक्षक के बीच सम्बन्धों की शुचिता पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए आ रहे बदलाव को शिद्दत के साथ उजागर करने का प्रयास किया गया है।

ज्ञानप्रकाश विवेक की कहानी *हमारे स्कूल की मैडम* गिरते शैक्षिक स्तर के बीच अध्यापन के पेशे के आदर्शों और संवेदनाओं को जिंदा रखने वाले लोगों के जीवन-संघर्ष को उजागर करती है। *रजनी गुप्ता* की कहानी *यथावत्* की मेधा चतुर्वेदी ने महाविद्यालय में बढ़ती अराजकता, परीक्षा के समय नकल का जोर, कालेज प्रशासन द्वारा बेरोकटोक कराई जा रही नकल और सरकार द्वारा छात्रनेताओं को दी जा रही शह का विरोध किया तो उसे शान्त रहने की सलाह दी गई लेकिन मेधा अपने सिद्धान्तों से नही हटी- "ये सत्ता के ठेकेदार मेरा पद जरूर छीन सकते हैं परंतु मेरे विचारों की ताकत तो नहीं छीन सकते। कोई बात नहीं मेरी जगह कोई और आएगा तब भी यही सब होता रहेगा। मैं कहीं और गई तो वहाँ भी कमोबेश यही हाल होगा। इसी तरह निजी स्वार्थों में लिप्त, देश, समाज, और शिक्षण कार्यों को बलि चढ़ाते हुए होगा नई पीढी का निर्माण- क्या खूब होगी आज की युवा पीढ़ी- अच्छे मूल्यों और संस्कारों से लैस ..... ?"[36] मेधा चतुर्वेदी का संघर्ष एक महाविद्यालय की व्यवस्था के खिलाफ नहीं वरन् समूची व्यवस्था की विद्रूपताओं के खिलाफ है। *यशपाल बैद* की कहानी *फैसला* के प्रोफेसर कुलदीप भी अपने सिद्धान्तों के कारण यातना भोगने को मजबूर हैं। कालेज के एक छात्र ने अपने नंबर बढ़वाने के लिए प्रो. कुलदीप पर दबाव के साथ मारपीट की। कालेज की गुटबाजी के कारण किसी भी शिक्षक ने प्रो. कुलदीप का साथ नहीं दिया। छात्र का बाप भी लच्छेदार बातें बनाकर चला गया। अब प्रो. कुलदीप को फैसला लेना है कि अकेले दम इस लडाई को आगे बढ़ाएँ या अपने सिद्धान्तों और आदर्शों को त्याग दें। *मिथिलेश्वर* की कहानी *अपने घर से* के प्रो. कैलासचन्द्र अपने सिद्धान्तों पर अडिग रहने का फैसला ही लेते हैं अपने बढ़े हुए कदम पीछे नहीं करते। नकलविहीन परीक्षा कराने को कटिबद्ध प्रो. कैलासचन्द्र को डराया और धमकाया भी गया, लेकिन उन्होंने पक्षपात रहित ढंग से नकल रोकी और अपने भतीजे को भी दण्ड दिया। धमकियों से डरे बगैर वे अपने सिद्धान्त पर अडिग रहे किन्तु व्यवस्था ही ऐसी है कि ऐसे ईमानदार शिक्षक को ड्यूटी पर ही नहीं लगाया जाता। वीक्षण कार्य पर नहीं लगाए जाने के दुख

के बजाय उन्हें अपने सिद्धान्तों की रक्षा की ख़ुशी है।

अपने सिद्धान्तों और शिक्षक होने के नाते अपना आदर्श स्थापित करने वाले शिक्षकगण अपनों के बीच आलोचना के पात्र बन जाते हैं क्योंकि शिक्षा जगत् में दिखावटीपन और कोरी विशिष्टता के प्रदर्शन का ही बोलबाला हो गया है। *मिथिलेश्वर* की कहानी *एक थे प्रो. बी. लाल* में इसी स्थिति को उजागर किया गया है। प्रो. बी. लाल की सादगी और सहजता को दिल्ली से आए प्रो. बोस ने अनपढ और गँवारू समझ रखा था, जबकि प्रो. लाल अपने से कमजोर और जरूरतमंद से भिनकने के बजाय उनके सुख-दुख मे शरीक होने को ही महानता मानते थे। प्रो. बी. लाल की सिद्धान्तवादिता, सहजता और सरलता प्रो. बोस जैसे शिक्षकों के लिए सीख से कमतर नहीं है। लेकिन समूचा तंत्र ही ऐसा है जिसमे *कन्हैयालाल गाँधी* की कहानी *शमशीर सिंह का थैला* के मास्टर शमशीर सिंह जैसे लोग ही सफल हो पाते हैं। मास्टर शमशीर सिंह अपनी बेटी की शादी के लिए रुपयों व जेवर का जुगाड़ करने और सरकारी स्कूल में अपनी नौकरी पक्की कराने के लिए भ्रष्टाचार में डूबे मैनेजर को भी खुश करते हैं और मैनेजर के विरोधी गुट के प्रधानाचार्य, शिक्षकों और सतर्कता विभाग के अधिकारियों को भी खुश करते हैं। शमशीर सिंह अपने साथ हमेशा लिए रहने वाले थैले में भ्रष्टाचार के सबूत वाले आवश्यक कागज होने के नाम पर सभी को 'ब्लैकमेल' करते हैं और अपना काम निकल जाने पर थैला चोरी हो जाने की रिपोर्ट दर्ज कराकर अखबारों में खबर छपवाकर व सम्बन्धित पक्षों को एफ. आई. आर. की फोटो कॉपी भेजकर शातिर ढंग से अलग हो जाते है।

शिक्षा के अवमूल्यन, शिक्षकों की सिद्धान्तहीनता और अनैतिकता का खामियाजा भोगते युवाओं की व्यथा भी इस दौर की कहानियों में उजागर हुई है। *भीष्म साहनी* की कहानी *चोरी* में बस कण्डक्टर अपनी उच्च शिक्षा के बावजूद कण्डक्टर की नौकरी करते हुए हीन भावना से ग्रस्त है और वीणा की खोई हुई किताब वापस करते हुए उसके मन में दबी आकांक्षाएँ प्रस्फुटित हो उठती हैं। वह कॉलिज के भीतर जाना चाहता है, लेकिन बस कण्डक्टर की अपनी वर्दी के कारण सकुचाकर रह जाता है। *डॉ. शिशिर पाण्डेय* की कहानी *जींस और लूजर* का केशव एक ओर पी. सी. एस. की परीक्षा में बैठ चुका है और दूसरी ओर अपनी डिग्रियों के सम्मान को एक किनारे रखकर चपरासी की नौकरी कर रहा है। पढ़े-लिखे केशव की योग्यता अब साहब के घर में कपड़े धोने, बर्तन माँजने और बाजार से सौदा लाने में देखी जा रही है।

शिक्षा के साथ ही वर्तमान का साहित्य भी अपनी राह से भटक गया है, साहित्यकारों को भी उपेक्षा का दंश भोगना पड़ रहा है। *गिरिराज किशोर* ने अपनी कहानी *स्वप्न-दंश* में साहित्यकार रामानुज की दयनीय हालत के माध्यम से देश में साहित्य और साहित्यकारों की दुर्दशा को पेश किया है। देश का जाना-माना साहित्यकार अपनी निजी जिंदगी इतने अभाव में जीता है कि मकान मालिक को किराया तक नहीं दे पाता, ढंग के कपड़े और भोजन से भी वंचित रहता है। उससे मिलने आए विदेशी मेहमानों के सामने ही मकान मालिक उससे गाली गलौज करने लगता है। रामानुज अभावों से जूझने के बावजूद क्रिस्टी और पैट के मकान में नहीं रहना चाहता क्योंकि वहाँ रहते हुए उसकी रचनात्मकता और सहजता में जड़ता आ जाने का अंदेशा है। लिहाजा वहॉ से बिना बताए चला आता है। रामानुज को न तो उसका मकान मालिक समझ सका और न ही उसके विदेशी मित्र। भीष्म साहनी की कहानी प्रादुर्भाव में सरकारी तंत्र द्वारा लेखकों के शोषण को उजागर किया गया है। सरकारी तंत्र में बैठे हुए अधिकारियों की हमेशा लाभ कमाने की ही नीयत रहती है, लेखकों से किसी लाभ की अपेक्षा नहीं होने के कारण उनका शोषण किया जाता है और उनको मिलने वाले पारिश्रमिक का बंदरबाँट कर दिया जाता है। फिर भी लेखन कर्म द्वारा अपने परिवार को पालने वाले लेखकों को अपने सम्पादकों की मर्जी के मुताबिक ही चलना पडता है। *नसीम साकेती* की कहानी *तलाश जारी है* में लेखक इसी मजबूरी के कारण घर की जरूरतों को पूरा नहीं कर पाता। सम्पादक द्वारा प्रेम कहानी लिखकर लाने पर तगड़ा पारिश्रमिक देने की बात कहे जाने पर कहानीकार प्रेम कहानी के लिए विषय तलाश रहा है। दूसरी ओर शहर में साम्प्रदायिकता की आग लगी हुई है शहर की शांति भंग हो चुकी है। इस वातावरण में, महँगाई, भ्रष्टाचार, सम्प्रदायिकता और अराजकता के बीच इस यथार्थ को लेकर तो युगों तक लिखने पर भी खत्म न होने वाली कहानियॉ दे सकता है, लेकिन प्रेम कहानी कहॉ से लाए जब कही प्रेम ही नही। फिर भी कहानीकार की तलाश जारी है, शायद प्रेम कहानी की खातिर या शायद पेट की भूख मिटाने के खातिर। *विभांशु दिव्याल* की *असली कहानी* में कहानी लेखकों, प्रकाशकों, वितरकों और समीक्षकों की दुनिया में राजनीति की उठापटक व चोंचलेबाजी की है।

समाज और व्यवस्था तंत्र द्वारा कलाकारों और साहित्यकारों की उपेक्षा भी वर्तमान का नग्न यथार्थ है। कलाकारों और साहित्यकारों की आर्थिक स्थिति व प्रतिष्ठा के अनुरूप समाज का नजरिया बदल जाता है, मानसिकता बदल जाती है। *से.रा.यात्री* की कहानी *दोहरे मापदण्ड*

में यही स्थितियाँ प्रकट होती हैं। कहानी के पात्र ने अपनी योग्यता, श्रम और लगन से संगीत सीखा, अपनी कला को प्रदर्शित करने के लिए जब उसने कीर्तन मण्डली में फिल्मी गाना गा दिया तो उसको उत्साहित करना तो दूर रहा, अपमानित और तिरस्कृत करके भगा दिया गया। *श्रीप्रकाश शुक्ल* की कहानी *लोफर* के लोफर, सीधे-सादे लेखक और अधयापक- पंकज और पवन हैं, जिन्हें पुलिसिया रोब और प्रताड़ना ने लोफर बनने को मजबूर कर दिया है।

कुल मिलाकर आठवें दशक के बाद की कहानियों में साहित्य की वर्तमान स्थिति और साहित्यकारों के निजी जीवन के संघर्षो को जिस बेबाकी के साथ प्रस्तुत किया गया है वह वास्तव में वर्तमान का क्रूर यथार्थ है।

(ग) टूटते-बिखरते युवा-

जीवन की विद्रूपताओं, विसंगतियों के बीच जीने की मजबूरी के साथ ही अभाव, गरीबी, बेकारी, शोषण, फैशन, आधुनिकीकरण उपेक्षा और वर्ग-भेद से जूझते युवाओं की दशा-दुर्दशा का चित्रण हिंदी कहानियों मे बडी गहराई के साथ किया गया है। *सी. दास बांसल* की कहानी *वक्त काटता है* जिन्दगी की आपाधापी और अत्यल्प विकल्पो के समक्ष असहायता और असमंजस की स्थिति में भटकते युवक शरीन की कहानी है। *कुन्दन सिंह परिहार* की कहानी *वह दुनिया* का होनहार और होशियार त्रिवेणी गरीब परिवार से आया है और शहर में अपने आस-पास के वातावरण व सहपाठी छात्रों के रहन-सहन को देखकर इस कदर हीन भावना और आत्मविश्वास की कमी से ग्रस्त हो जाता है कि न चाहते हुए भी हर किसी के सामने वह असहज हो जाता है।

मिथिलेश्वर की कहानी *प्रेत की जट* में नौकरी दिलाने के नाम पर युवाओं के शोषण को उजागर किया गया है। घर से गरीब, किन्तु पढ़ा-लिखा लड़का अनिमेष घूसखोर प्रफुल्ल राय की चाकरी और सेवा खुशामद इसलिए करता था ताकि उसे भी नौकरी मिल जाय। अनिमेष से रूपये मिलने की उम्मीद नहीं थी, इसलिए नौकरी दिलाने के बदले प्रफुल्ल राय अपनी लंगड़ी और अंधी लड़की के साथ शादी करने की शर्त रखता है। अनिमेष मान लेता है लेकिन नौकरी मिलने के सप्ताह भर बाद वह इस शर्त को तोड़ देता है, ठीक उसी तरह जिस प्रकार पहलवान बिरदा सिंह की चाकरी करते हुए एक दिन प्रेत को बिरदा सिंह के कब्जे से अपनी जट मिल गई और वह 'जट मिल गई कट ले लो' कहकर चिढ़ाते हुए भाग जाता है। *सतीश जमाली* की

कहानी *सहपाठी* के मदनलाल, प्रभुदयाल, इन्द्रजीत और मुरारी के अन्दर जीवन की जटिलताओं और अभावों को भोगते हुए इतना आक्रोश भरा है कि वे राजनीति के नाम पर लूट-खसोट करने वालों, अपनी तिजोरियों में नोटों का ढेर लगाने वाले साहूकारों, भ्रष्ट और घूसखोर अधिकारियों से बदला लेने के लिए लूट की योजना तक बना डालते हैं।

कृष्ण भावुक की कहानी *टूटते अभिमन्यु* में मिथकीय प्रतीकों का प्रयोग करते हुए वर्तमान व्यवस्था के चक्रव्यूह में फँसे होनहार युवक की दयनीयता को प्रकट किया गया है। कलियुगी पैंतरेबाजी को भेदना नहीं जानने के कारण अभिमन्यु विद्यालय में लेक्चरर ही बना रह जाता है और हर बार इण्टरव्यू में बेहतर प्रदर्शन के बाद चयन समिति अपने ही किसी चहेते का रीडर पद पर चयन कर लेती है। *नीलाक्षी सिंह* की कहानी *स्वांग* के पात्र स्वामी की प्रतिभा और विलक्षण बुद्धि का अपमान, मजाक और तिरस्कार उसकी गरीबी और युवावस्था के कारण होता है, जबकि कम्प्यूटर कम्पनी आईबीएम द्वारा 'ब्लू आइज कम्प्यूटर' का विकास करने के बहुत पहले ही स्वामी ने इसी किस्म का आविष्कार कर लिया था। तब उसकी खोज पर लोग हँसते थे। ऊँची शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी स्वामी को महानगर में अपना पेट पालने के लिये गेटकीपरी की नौकरी करनी पड़ी थी। अब भी दिन भर वह रोजगार दफ्तरों में चक्कर लगाता है और रात में कम्प्यूटर के साथ कुछ नया ईजाद करने के प्रयास में लगा रहता है। ईमानदारी के साथ अपना तन बेचकर गुजारा करने वाली नवयौवना के अलावा किसी ने भी उसकी मेहनत और प्रतिभा को तवज्जो नहीं दी। स्वामी जैसी कई युवा प्रतिभाएँ अपनी गरीबी, उम्र के तकाजे, संसाधनों की कमी और प्रोत्साहन के अभाव में गुमनामी और हाशिए की जिन्दगी जी रहे हैं। *रघुनंदन त्रिवेदी* की कहानी *गुड्डू बाबू की सेल* में भी आर्थिक समस्या के कारण टूटते-बिखरते युवाओं का दर्द उजागर हुआ है। पढ़े लिखे बेरोजगार नवयुवक कोई पैतृक व्यवसाय नहीं होने और पिता के जल्द ही 'रिटायर' हो जाने पर आने वाली आर्थिक समस्या को सुलझाने के लिए अपने सहपाठी गुड्डू बाबू की वाशिंग मशीन की सेल में सेल्समैन का काम करने तक को तैयार हो जाते हैं। लेकिन 'सेल्सगर्ल्स' के आगे उनकी काबिलियत ओछी पड़ जाती है।

डॉ.रामदरश मिश्र की कहानी *रोटी* का फैक्ट्री मालिक ग्रेजुएट युवक का बड़ी आसानी से शोषण कर लेने पर खुश होता है, जबकि वह युवक अपनी मजबूरी में 'रोटी' के लिए संघर्ष करते हुए स्वयं को शोषण के लिए प्रस्तुत कर देता है। जब शोषण अपनी हदें पार कर जाता

है तो विद्रोही युवा मन किसी भी हद तक जा सकता है, भटकाव की ओर भी मुड़ जाता है। *अखिलेश* की कहानी *ऊसर* के चन्द्रप्रकाश और विद्याधर जैसे तमाम युवा राजनीति की चकाचौंध के प्रति आकृष्ट होकर कूद जाते हैं, लेकिन राजनीति से लाभ कमाने, ऊँचा पद पा जाने और मंत्री-विधायक बनने के सपने पूरे होने के बजाय उनका शोषण ही किया जाता है। *यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'* की कहानी *स्वयं को निगलते हुए* का युवक अपनी नौकरी छूट जाने के बाद बेकारी और हताशा से जूझते हुए अपनी बीमार माँ के इलाज के खातिर धन का जुगाड़ करने के लिए अपनी कहानियाँ और उपन्यास बेचता है। पर्याप्त धन इकट्ठा नहीं होने पर उसे अश्लील साहित्य लिखना पड़ता है। प्रकाशक से हुए करार के मुताबिक जब तक उसे पैसा मिलता है, तब तक उसकी माँ मर जाती है, इलाज के अभाव में। अंततः वह अश्लील साहित्य की बिक्री से मिले पैसों से जमकर शराब पीता है। अपने जमीर को मारकर अश्लील साहित्य लिखने और माँ का इलाज नहीं करा पाने के दुख में अपने होने के वजूद को निगलते हुए वह गम मिटाने को शराबी बन जाता है।

डॉ अशोक गुजराती की कहानी *भड़ास* का किशोर अपनी अपंगता और अतीत में सौतेले पिता के अत्याचार, माँ की मेहनत व दुर्दशा, अभाव और पीड़ा की भड़ास दूसरों पर निकालता है लिहाजा झूठे मुकदमे फँसाकर निलम्बित कर दिया जाता है। घरेलू परिस्थितियाँ और परिवारिक विघटन-तनाव सुवा मन को बहुत जल्दी उद्वेलित कर देते हैं और इस तनाव में युवा कुछ भी करने को उतारू हो जाते हैं। *हिमांशु जोशी* की कहानी *झुका हुआ आकाश* का छुट्टा अपने घर की दयनीय दशा के लिए स्वयं को दोषी मान बैठता है और उसके कारण परिवार के लोगों के समक्ष खड़ी हो गई दिक्कतों से व्यथित होकर कभी बहुत पढ़ाई करके कुछ कर दिखाने के अरमान सँजोता है और कभी आत्महत्या करके अपना जीवन समाप्त कर लेना चाहता है। विभांशु दिव्याल की कहानी *पिता* और *मत्स्येन्द्र शुक्ल* की कहानी *खामोश* में भी पारिवारिक विघटन, माँ-बाप के आपसी द्वन्द्व और अहं के टकराव के कारण उपजी स्थितियों और भटकाव की त्रासदी को भोगने हेतु विवश युवाओं की व्यथा-कथा कही गयी है। *रामकुमार* की कहानी *पिता* का पिता अपनी व्यक्तिगत आकांक्षाओं की तृप्ति में लिप्त रहते हुए, परिवार की व बेटे की चिंता नहीं करते हुए सम्पूर्ण अधिकार सुख को अकेले ही भोग लेने की मानसिकता में जीते हुए मिसेज रोहतगी के प्रति पूर्ण समर्पित था। दूसरी ओर बेटा अपने पिता की उपेक्षा, घुटन भरे

पारिवारिक माहौल और असमंजस की हालत में जीते हुए नफरत की पराकाष्ठा में उस समय पहुँच जाता है, जब उसे पता चलता है कि उसका पिता अपना बंगला मिसेज रोहतगी को देने वाला है। वह प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है और सारे फसाद की जड़ मिसेज रोहतगी को मानते हुए उसका कत्ल कर देता है, तभी उसे मानसिक शांति मिलती है। *स्वयं प्रकाश* की कहानी *मूलचंद,* बाप तथा अन्य का मूलचंद भी अपने बाप से इसी कारण नाराज रहता है।

परितोष चक्रवर्ती की *एक अधूरी कहानी के लिए* में अवैध धन्धों को छोड़कर शरीफ बन गए युवक को समाज में मिलने वाली उपेक्षा के परिणामों को खोजने की कोशिश की गई है। अनवर जब तक अवैध धंधे में लिप्त रहा तब तक अपने साथियों के बीच सबसे ज्यादा 'बोल्ड' रहा। घरेलू बातों को बर्दाश्त न कर पाने पर वह आत्महत्या को उतारू हो गया, वह बच तो गया लेकिन उसने अवैध धन्धों और अवैध सम्बन्धों को पूरी तरह से छोड़ दिया है। शराफत की जिंदगी जीने के बावजूद समाज के तथाकथित 'भले लोग' अब भी उसे हिकारत की नजर से देखते हैं, उसके प्रति अब भी अविश्वास है। कथावाचक चिंतित है कि "कहीं अनवर कथित अच्छे लोगों की दुनिया में भी कोई चोट न खा जाए, और दुगुने वेग से फिर लौट आए। तब गजब हो जाएगा क्योंकि वह उन चारों में सबसे अधिक बोल्ड है।"[37]

समाज में युवाओं को हमेशा शंका और अविश्वास की दृष्टि से देखा जाता है। दकियानूसी परम्पराओं का विरोध करने के कारण युवाओं को उपेक्षा तो मिलती ही है, उन्हें दबाने का भी भरसक प्रयास किया जाता है। *रजनी गुप्ता* की कहानी *गंतव्य* की तरुणी निशा का गंतव्य शादी करके घर-परिवार में सिमट जाना नहीं है, बल्कि जिंदगी में कुछ कर दिखाना है। लेकिन उसके परिवार के लोग ज्यादा पढ़ाने के बजाय उसकी शादी कर देना चाहते हैं। निशा भी विरोध में उतर आती है और दकियानूसी परम्पराओं का विरोध करते हुए जी-जान से पढ़ाई करके जब अपना नाम रोशन करती है, तब उसकी अहमियत गाँव, घर और मोहल्ले वालों को समझ में आती है।

इस प्रकार समाज व परिवार में उपेक्षापूर्ण जिंदगी जीने को मजबूर, आर्थिक अभाव, बेरोजगारी और शोषण को झेलते हुए व्यवस्था तंत्र के विद्रूपों से टकराने और वैयक्तिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष को आतुर युवाओं की दयनीयता को, जिजीविषा को विविध कोणों से देखने का सार्थक प्रयास इस दौर की कहानियों में हुआ है।

(घ) मानसिक उद्वेलन और आवेग :-

जीवन की जटिलताओं और वर्तमान व्यवस्था की त्रासद यंत्रणाओं के बीच जीते हुए अपने एकाकीपन व अजनबीपन की पराकाष्ठा के कारण, पारिवारिक कलह व विघटन के कारण; क्षोभ, घृणा, उपेक्षा व तिरस्कार के कारण; वर्गगत विषमता व पीढ़ियों के अन्तर से उपजे टकराव के कारण और ऐसे ही तमाम कारणों से उत्पन्न होने वाला मानसिक आवेग, बिना सोचे-विचारे कुछ कर बैठने की अंतः प्रेरणा और मानसिक अशांति आज के जीवन की आम बात हो गई है। इसी कारण मनोरोगियों की संख्या भी बढ़ गई है। आठवें दशक के बाद के कथाकारों ने इस स्थिति की गहराई तक पहुँचने का प्रयास किया है और बेबाकी के साथ अपनी कहानियों में उजागर भी किया है। *शैलेश मटियानी* की कहानी के *सदायशी बाबू* व्यवस्था की खामियों और जीवन की जटिलताओं से इतना भयाक्रान्त हैं कि हर क्षण अपशकुन और अनहोनी की मानसिक उथल-पुथल में ही लगे रहते हैं। जिस गजोधर बाबू को 'काना' कहे जाने पर वे जेलर से लड़ गए थे, उसी को सुबह देख लेने पर कुढ़ गए। भिखारी के बच्चे पर दया की, लेकिन उसके कारण गिर पड़ने पर नाराज हो गए। *ममता कालिया* की कहानी *एक रंगकर्मी की उदासी* में परिवेश के खिलाफ चलने वाले मनमौजी रंगकर्मी की मनोव्यथा को प्रस्तुत किया गया है। *कैलासचन्द्र शर्मा* की कहानी *हादसे* का नायक आए दिन बम धमाकों की खबर सुनते-सुनते इतना भयभीत हो गया है कि हर जगह, हर समय उसे खौफ बना रहता है। उसको अपने घर में, दफ्तर में, बाजार में, हर जगह साजिश रचे जाने की शंका बनी रहती है। इस खौफ और शंका के बीच अपनी जिंदगी बचाए रखने की जद्दोजहद में 'वह' कभी-कभी पागलों जैसी हरकतें करने से भी बाज नहीं आता। *केवल सूद* की कहानियाँ- *दुख के गाड़ीवान, गलत आदमी गलत जगह* और *शहर-शहर* में जीवन की विद्रूपताओं से संघर्ष करते हुए मानसिक तौर पर विचलित और अशांत होकर अजनबीपन, भय और अशांति से छटपटाते लोगों की व्यथा-कथा है। *कृष्ण भावुक* की कहानी *पेण्डुलम* में होनी-अनहोनी के भय से ग्रस्त लोगों की ज्योतिष के सम्बन्ध में द्विविधा और ज्योतिष द्वारा बताए गए भविष्यफल के सही या गलत सिद्ध होने आशंका में पेण्डुलम की भांति भटकते लोगों की मनःस्थिति उजागर की गई है। परिवार और समाज की विषम स्थितियों के कारण भी मानसिक विक्षिप्तता पैदा हो जाती है। कमोबेश यही स्थितियाँ *हिमांशु जोशी* की कहानी *अंतराल* में प्रकट होती हैं।

समाज और परिवार के लोगों के बीच सम्बन्धों में आती शीतलता के कारण अपनी असुरक्षा और अजनबीपन के कारण मन के अनुकूल जगह पाने के लिए भटकाव होता है। *रक्षा शुक्ला* की कहानी *अजनबियों के बीच* की औरत को हर रिश्ते में स्वार्थ छिपा नजर आता है और आपसी सम्बन्धों में शीतलता के कारण वह स्वयं को अजनबियों के बीच महसूस करती है। *अचला नागर* की कहानी *बोल मेरी मछली* की नायिका भी इसी मनोस्थिति में जीते हुए निःछल, निःस्वार्थ प्रेम की तलाश में भटकती रहती है। *मृणाल पाण्डे* की कहानी *प्रतिशोध* के मधूसूदन बाबू अपनी अतृप्त रह गई मनोकांक्षाओं के कारण मानसिक रूप से विक्षिप्त हो गए हैं और अपने से आधी उम्र की लड़की दमयंती के साथ ही अपने ख्वाब सजाने लगे हैं। जब दमयंती किसी आफिस में नौकरी के लिए जाने वाली थी तो उस कम्पनी के पते पर दमयंती के बारे में ढेरों अनाप-शनाप बातें लिखकर चिठ्ठियाँ भेजते हैं, ताकि दमयंती को नौकरी न मिल सके और वह उनकी निगाहों के सामने ही रहे, ताकि मधूसूधन बाबू उसे देखकर तृप्त होते रहें। *रजनी गुप्ता* की कहानी *सुबह होती है शाम होती है* की शिवली को रोज यात्रा करते समय विचारों में खो जाने का अवसर मिलता है क्योंकि उसने प्यार के नाम पर धोखा खाया है, उसके पास अकेलापन है और अतीत की दुखद यादें हैं। यात्रा के समय के खाली वक्त का उपयोग वह इन्हीं विचारों में खो जाने में करती है। *कृष्ण भावुक* की कहानी *कोलाज* यौन भावजन्य अन्तर्विरोधों के बीच झूलते पुरुष के भटकाव की कहानी है।

पारिवारिक विघटन और पारिवारिक सामंजस्य की कमी के कारण भी मानसिक अशांति और आवेग उपजते हैं। *सी. दास बांसल* की कहानी *धुएँ भरा घर* में धुआँ मानसिक अशांति का है जो विचारों और भावनाओं में भटकाव के कारण कलह और ऊब से उपजा है। *कमलचन्द वर्मा* की कहानी *बोझ* में अहंवादी मानसिकता के कारण परिवारों के टूट जाने की व्यथा उजागर की गई है। *यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'* की कहानी *जीवन का गणित* पारिवारिक सम्बन्धों में व्यावसायिक और स्वार्थी मनोवृत्ति विकसित हो जाने के फलस्वरूप उपजी स्थितियों को प्रकट करती है।

डॉ. कामिनी की कहानी *टूटी हुई चूड़ियाँ* की बहू घर और पति पर केवल अपना ही अधिकार रखना चाहती है। अपने पति गोपाल को उसकी माँ से भी अलग रखना चाहती है, इसी मानसिकता के कारण परिवार में कलह होती है। अंततः गोपाल की बहू पति को अपने साथ लेकर

मायके चली जाती है, बीमार सास को छोड़कर। *ग़ज़ाला ज़ैग़म* की कहानी *नेक परवीन* एक ऐसी औरत की कहानी है, जो अपने पति को ख़ुश रखने और दूसरी औरतों की सोहबत से बचाने के लिए हर समय मानसिक उलझन में रहती, बुजुर्गवार औरतों व संगी-साथिनों से राय लेती रहती, इसके बावजूद उसके पति की कमसिन और हसीन लड़कियों से सोहबत बढ़ती ही जाती। लिहाजा वह मानसिक रूप से असहज और उद्वेलित हो जाती है। अंततः वह अपने पति को नीचा दिखाने और अपने मानसिक आक्रोश को तुष्ट करने के ख़ातिर पॉमिला से अंतरंग सम्बन्ध बना लेती है- "अब दिन भर नॉविल पढ़ती, टीवी देखती, तरह-तरह की फिल्में देखती, लगता नयी शादी हुई है। खाती-पीती, वजन काफी बढ़ गया।"[38] मानसिक आवेग के वशीभूत होकर बिना सोचे-विचारे कार्य करने लगना प्रकारांतर से आक्रोश तुष्ट करता है। *कुसुम अंसल* की कहानी *मात्र एक मकान* की सुधा अपने परिवार की ही नहीं, बल्कि पूरे समाज की इसी मानसिकता के कारण बदनाम हो जाती है। सुधा के संघर्ष को उसकी मजबूरियों और आत्मत्याग को देखने के बजाय मेहरोत्रा की रखैल के रूप में पहिचाने जाने के पीछे सुंदर नगर के लोगों की मरी हुई मानवीय संवेदनाएँ, मानसिक कुण्ठा और ईर्ष्या छिपी हुई है।

असीमित आकांक्षाएं भी कई समस्याओं और मनोविकृतियों को जन्म दे देती हैं। *मृदुला गर्ग* की कहानी *शहर के नाम* का बप्पा अपनी बेटी पर अपनी महत्त्वाकांक्षा, अपनी इज्जत, अपना अभिमान और अपनी संवेदनाएँ इस कदर लाद देता है कि बेटी मानसिक अशांति और उलझन से छटपटाने लगती है। बप्पा के लिए बेटी के मनोभाव कोई मायने नहीं रखते और इस कारण उसमें अजीब-सा एकाकीपन घर करने लगता है और वह अपनत्व से दूर शरीर और आत्मा के बंधन की मुक्ति व निष्काम प्रेम को तलाशने के लिए भटकने लगती है और हर जगह उसे दौड़ती जिंदगी ही मिलती है। *डॉ. जगदीश महाजन* की कहानी *इस दर्द की दवा तुम नहीं हो* की विमला को अपनी शिक्षा और पदवी का इतना घमण्ड हो जाता है कि वह स्वयं ही अपने माँ-बाप और परिवार से मानसिक तौर पर अलग हो जाती है। उसे माँ-बाप द्वारा लिए गए निर्णय पसंद नहीं आते। अपने द्वारा स्वयं के लिए ही तैयार किए गए बंधन में फँसकर खुद ही छटपटाती रहती है और अकेलेपन के दंश को भोगती है।

सूर्यबाला की कहानी *इस धरती के लिए* आज के भौतिकतावादी युग में सिमटते मानवीय सम्बन्धों के दर्द को उजागर करती है और आपसी रिश्तों के बीच घुस रहे बनावटीपन

की व्यथा-कथा कहती है। इसी प्रकार *सतीश जायसवाल* की कहानी *तापमान* आपसी सम्बन्धों के बीच पनपी स्वार्थी मानसिकता के कारण उपजी स्थितियों व मनोभावों की पड़ताल करती है। स्वार्थवश विकसित किए जाने वाले ऐसे सम्बन्ध अजीब मनोविकृति पैदा कर देते हैं। *भीष्म साहनी* की कहानी *देवेन* के पात्र को जब ऐसी स्थितियों से, यथार्थ जीवन की परेशानियों से सामना पड़ता है तो इनसे संघर्ष कर पाने के बजाय वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है। परिस्थितियों के दबाव में वह मानसिक रूप से इतना असंतुलित और उद्वेलित हो जाता है कि उसे क्या करना चाहिए, तय नहीं कर पाता, केवल भटकता रहता है। इसी तरह *विनोद मिश्र* की कहानी *कालू बीमार नहीं है* का कालू भागता है, लेकिन विद्रूपताओं को करारा जवाब देकर। अमीर मानसिकता के लोग अपने धन पर मगरूर होते हैं और धन से हर एक चीज खरीदने के घमण्ड में ही जीते हैं। इसी मानसिकता के वशीभूत होकर सेठ ने जब कालू के बेटे को काम पर जबरिया लगा लिया और धन का लोभ देकर कालू को खरीदना चाहा तो कालू के भीतर उमड़ रही घृणा और क्षोभ प्रकट हो गया और वह स्वयं ही सेठ को छोड़कर चला आया।

जीवन की जटिलताओं के कारण तो कभी समाज व परिवार की समस्याओं, उपेक्षा व शोषण के कारण उपजी मानसिक अशान्ति और वर्तमान की भागदौड़ भरी जिंदगी को पचा नहीं पाने के कारण मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, विक्षिप्तता, छटपटाहट और मनोविकृति लिए जी रहे लोगों की दयनीयता को आठवें दशक के बाद की कहानियों ने उजागर करते हुए मानव-मन को पढ़ने का दायित्व बखूबी निभाया है।

(ङ) स्त्री-पुरुष के मध्य सम्बन्ध :-

स्त्री-पुरुष के मध्य सम्बन्धों को लेकर हिन्दी में कई कहानियाँ लिखी गई हैं। बदलते परिवेश के अनुरूप स्त्री पुरुष के सम्बन्धों में, आपसी प्रेम व समर्पण में, वैवाहिक बन्धन में एवं समाज में बदलाव आया है और नवीन आयामों का सृजन भी हुआ है। आठवें दशक के बाद की कहानियों ने बहुत गहराई तक उतरकर इस बदलाव को जानने-समझने का प्रयास किया है। *डॉ. कामिनी* की कहानी *रेत पर चलते हुए* स्त्री की नियति को उजागर करती है। पुरुष प्रधान समाज में नारी सदा पराजित होने के हालात को भोगते हुए सदा निःछल प्रेम, समर्पण और सुरक्षा पाने के आसरे में पुरुष के पीछे भागती रहती है। उसे हमेशा छला जाता है और

भोगने के बाद तिरस्कृत भी कर दिया जाता है। *हिमांशु जोशी* की कहानी *छोटी 'इ'* की नायिका इसी उपेक्षा को भोगती है, लेकिन उपेन के प्रति अपने प्यार और समर्पण को नहीं छोड़ती और बिना शादी किए हुए उसके इंतजार में जिंदगी गुजार देती है। *दयानंद पाण्डेय* की कहानी *प्रतिनायक मैं* की नायिका समाज के बंधनों को तोड़कर अपने प्रेम का खुलासा नहीं कर पाने के कारण स्थितियों को भोगने हेतु विवश हो जाती है और उसकी मर्जी के बिना विवाह हो जाने पर अगले जन्म में एक हो जाने की उम्मीद सजाते हुए सारी गलतियों और डर के लिए स्वयं को दोषी और प्रतिनायक मान लेती है। *दयानंद पाण्डेय* की कहानी *वक्रता* की नायिका पश्यन्ती अपने मन के जीवन साथी के रूप में परितोष को न पा सकने का प्रायश्चित इसी जन्म में ही कर लेना चाहती है और इसीलिए उसने अपने बेटे का नाम परितोष रखा है और परितोष ने अपनी बेटी का नाम पश्यन्ती रखा है। उन्हें भरोसा है कि अगर वे दोनों एक नहीं हो सके तो शायद उनके बच्चे ही एक-दूसरे के हो जाएँ। *से.रा. यात्री* की कहानी की नीला जी अपने प्रेम के लिए इतना समर्पित होती हैं कि वे राजेश की उपेक्षा को भी *स्वीकार* करती हैं। नीला जी अपने उच्च पद और आयु को प्रेम में आड़े नहीं आने देतीं और समाजशास्त्र विभाग के प्रवक्ता राजेश से प्रेम करने लगती हैं। दूसरी ओर राजेश उनके पद की गरिमा और आयु के कारण हीन भावना से ग्रस्त होकर चुपचाप उनकी मर्जी को बर्दाश्त करता रहता है और मौका पाते ही उन्हें छोड़कर चला जाता है। नीला जी इसे राजेश द्वारा की गई उपेक्षा मान बैठती हैं और इस उपेक्षा को भी हृदय से स्वीकार कर लेती हैं। *अचला नागर* की कहानी *चेहरे* की नायिका जीवन में आगे बढ़ने और ढेरों ख्याति अर्जित करने में प्रेम और विवाह को ही सबसे बड़ा रोड़ा मानती हैं इसलिए लकवाग्रस्त बूढ़े पिता और माँ को छोड़कर बम्बई में बस जाती है।

अशोक लव की कहानी *टूटते-बनते रिश्ते* में पहले प्यार, फिर विवाह के बाद रिश्तों की गर्माहट और समर्पण में आने वाले बदलावों की पड़ताल की गई है। विवाह के बाद दीपिका के अरमान नष्ट हो गए। अरविंद का पुरुषवादी अहं और स्त्री देह को भोगने की मानसिकता ही शेष बची। शराब और मारपीट से आजिज दीपिका ने अरविंद को छोड़कर महाविद्यालय में नौकरी शुरू कर दी। अब शैवाल उसे अपनाना चाहता है, लेकिन अतीत की परछाइयों से दीपिका अभी भी डरी हुई है। *वंदना* की कहानी *झगड़ा* में भी कमोबेश यही स्थितियाँ उजागर हुई हैं।

क्रांति त्रिवेदी की कहानी *फूलों का क्या होगा* स्त्री के समर्पण और उसकी

अपेक्षाओं को धन से तौलने की पुरुषवादी मानसिकता से आहत स्त्री की व्यथा-कथा है। दीदी ने अपनी जिन्दगी की सारी अपेक्षाएँ पति से जोड़ रखीं हैं, लेकिन ढलती उम्र में बच्चों के अलग हो जाने के बाद पति का साथ भी उन्हें नहीं मिलता, पति ने किसी नवयौवना से सम्बन्ध बना रखे हैं और दीदी को कुछ रुपये देकर अलग जिंदगी जीने के लिए दबाव डाल रहे हैं। *अचला नागर* की कहानी *ज़ईफ* की बानो अपने पति अनवर को खुद ही आजाद कर देती है, मजबूरी में- "हाँ-हाँ-कह दूँगी हाँ, निगोड़े से कह दूँगी कि तू तो अल्लाह मियाँ से कबर में पहुँचने तक के लिए जवानी लिखा के लाया है न, जाकर दूसरी, तीसरी, चौथी............. अरे जित्ता चाहे करता जा, मेरा क्या है बैठी रहूँगी इन पिल्ले-पिल्लियों को समेटे। अरे, तूने तो बस मजा ही मजा किया है न.......... पैदा करने का दरद तो मैंने ही सहा है........ इतना सहा तो थोड़ा भौत और सह लूँगी हाँ।"[39]

पति-पत्नी के सम्बन्धों में आता अलगाव जहाँ एक ओर स्त्री के लिए कष्टदायी हो जाता है, वहीं पुरुष 'विजेता' होने के भाव से भर जाता है। पति-पत्नी के बिखराव का बच्चों पर पड़ने वाला असर उनके लिए कोई मायने नहीं रखता। पत्नी बीते हुए कल को प्यार का नाम दे या पुरुष 'भूख' का इसी ऊहापोह में अपनी बेटी के भविष्य की सुनहरी आशाओं को सँजोकर जीती हुई औरत की कहानी है- *डॉ. कामिनी* की *भोली सी आशा*। *शरद सिंह* की कहानी *किस-किस को कटवाओगे केशू* में पुरुषवादी सत्ता के आगे दमतोड़ती स्त्रियों की आकांक्षाओं के दर्द को उजागर किया गया है।

अचला नागर की कहानी *छिपकली* की इन्दु को सीधा-सादा जीवन व्यतीत करने वाला साधारण और सामान्य पति नहीं, बल्कि धन-दौलत और ग्लैमर से भरा जीवन जीने वाला पति चाहिए था। जब इन्दु ने उसे पा लिया तब उसे एहसास हुआ कि उसका तो अस्तित्व ही मिट चुका है। धन-दौलत और ऐश-आराम के साधनों का उपयोग करने के बजाय वह स्वयं उपभोग की वस्तु बन गई है। पुरुषवादी सत्ता पर दोषारोपण करना कहाँ तक उचित होगा जब इन्दु जैसी युवतियाँ अपनी महत्त्वाकाँक्षा की पूर्ति के लिए स्वयं ही उस दलदल में उतर जाती हैं और छिपकली जैसा जीवन बिताने को मजबूर हो जाती हैं। प्रेम के चक्कर में पड़कर घरवालों से विरोध करके अपनी मर्जी से एलिस से शादी करने वाले राजीव को शादी के बाद अपनी गलती का एहसास होता है। राजीव जैसे तमाम युवाओं के दर्द को उजागर करती कहानी है- *रजनी*

गुप्ता की *बेबस और निरुपाय*।

शीतांशु भारद्वाज की कहानी *अनजानी भूलें* दाम्पत्य जीवन के सुखद आयाम को प्रस्तुत करती है। अजित और सुधा नवविवाहित युगल हैं। दोनों के साथ ही शादी के पहले ऐसी घटनाएँ घट चुकी हैं जो उनके दाम्पत्य जीवन को तोड़ने के लिए काफी हैं। सुधा के साथ विक्रम ने बलात्कार किया था और शादी से पहले ही अजित ने रेणु के साथा शारीरिक सम्बन्ध बना लिया था। अपने वैवाहिक जीवन की शुरुआत में ही अजित और सुधा ने एक दूसरे को अपने जीवन की ये घटनाएँ बात दीं और दोनों ने ही इन 'अनजान भूलों' को विस्मृत करके नई जिंदगी शुरू करने का निर्णय किया। *मो. आरिफ* की कहानी *दाम्पत्य*, पति-पत्नी के बीच आपसी सम्बन्धों में समय बीतने के साथ आते बदलाव, समाप्त होती सम्बन्धों की गर्माहट से लड़ने का साझा संकल्प को दोहराती है। जीवन की भागदौड़ और परिवार की जिम्मेदारियों को निभाते-निभाते छूट गए सुखद पलों को पकड़ लेने की जिजीविषा का चित्रण करती है। *डॉ. ऊषा माहेश्वरी* की कहानियों *कचोट* और *फाँस* में भी दाम्पत्य सम्बन्धों की ऊष्णता को बरकरार रखने की जद्दोजहद उजागर की गई है।

आपसी समझदारी के अभाव और अतिरेकी-अहंवादी व्यवहार के कारण दाम्पत्य जीवन में कटुता पैदा होती है। *जितेन्द्र भाटिया* की कहानी में पति को *दो नंबर का दर्जा* मिल जाता है जब उसकी पत्नी सुनंदा उससे अच्छी नौकरी पा जाती है। जब सुनंदा को नौकरी नहीं मिली थी तब उसके मन में सुनंदा के प्रति हीन भावना नहीं थी, लेकिन अब सुनंदा ने अपने को श्रेष्ठ साबित करने के लिए घर में अपने पति के वजूद को दोयम दर्जे का बना दिया है। *से.रा.यात्री* की कहानी *दिशाहीन* में भी पत्नी की इसी मानसिकता के कारण दाम्पत्य जीवन में आई दरार व पारिवारिक विघटन की स्थितियों को उजागर किया गया है। पत्नी बेला की फिजूलखर्ची, स्वयं में मशगूल रहने की प्रवृत्ति और पति पर चरित्रहीनता के आरोप मढ़ने के कारण स्थितियाँ लगातार बिगड़ती ही गई और अंततः बच्चों का मोह भी पति को रोक नहीं सका। *रामधारी सिंह दिवाकर* की कहानी *अनाम संज्ञा* में भी यही व्यथा-कथा है। *नीरजा माधव* की कहानी *हव्वा* आदिकाल से चली आ रही दैहिक शोषण की मानसिकता, तृष्णा और अतृप्त लालसा को भोगते हुए 'सह अस्तित्व' की कामना में मरती-खपती महिलाओं की व्यथा कथा है। दफ्तर के सहकर्मी चाहे बूढ़े हों या जवान, स्त्रियों के प्रति एक समान रूप से भोगवादी

मानसिकता में ही जीते हैं। नैना भी अपने दफ्तर के बॉस और सहकर्मियों से जूझती है, हर कोई उसे पाना चाहता है। वह अपने पथ से विचलित नहीं होते हुए कार्यरत रहती है। फिर भी उसका पति अरुण उस पर शक करता है। सभ्यता के सोपान चढ़ते हुए भी स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में आज भी आदम और हव्वा के युग की पाशविकता कायम है। समाज में औरतों के प्रति इस मानसिकता को *पुन्नी सिंह* ने अपनी कहानी *इस इलाके की सबसे कीमती औरत* में उजागर किया है। मोहनपुरा गाँव थाना शिवपुरी के पेशेवर लोग, डाकू, पुलिस और वकील कमोबेश हर जगह हैं, जो रामकली जैसी गरीब, निरीह, महिलाओं की सौदेबाजी करने में किसी भी हद तक जा सकते हैं। *यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'* की कहानी *मिनखखोरी* में स्त्री के पूर्ण समर्पण के बदले मिलने वाले तिरस्कार से आहत स्त्री के दर्द को प्रकट किया गया है।

अलका सरावगी की *कहानी में नाटक में नेलपालिश का महत्त्व* सामाजिक बन्धनों को तोड़कर स्वतंत्र और स्वाभाविक जीवन जीने की लालसा और बेचैनी से छटपटाती महिला, बिल्लौरी की कहानी है जो पुरुषवादी सत्ता के प्रतिबंधों के खिलाफ संघर्ष करने को भी उद्यत होती है। *डॉ. उषा माहेश्वरी* की कहानी *पागल* की कमलाबाई अपने पति की प्रताड़ना का बदला अपने बच्चों से लेती है। लिहाजा उसके बच्चे अपने माँ-बाप को उनकी हालत पर छोड़कर अलग रहने लगते हैं। पति की मृत्यु के बाद कमलाबाई अकेली रह जाती है और खुद अपनी दी हुई सजा को भोगती है।

क्रांति त्रिवेदी की कहानी *आदत* की नायिका तपस्या की आधुनिकतावादी सोच, पहनावे और रहन-सहन को उसका पति ही चरित्रहीनता समझ लेता है और अपनी नौकरी में तरक्की के लिए उसको अपने बॉस हमबिस्तर होने को मजबूर करता है। तपस्या को आधुनिकता के नाम पर फूहड़पन और चरित्रहीनता पसंद नहीं, लिहाजा वह अपने पति की इस हरकत का विरोध करती है। नारी मुक्ति और स्त्री अधिकारों की लड़ाई लड़ने के नाम पर अपना स्वार्थ सिद्ध करने वाली तथाकथित नेत्रियों, समाजसेविकाओं की असलियत को देखती परखती है और अपने आसपास के लोगों की भूखी निगाहों को महसूस करती महिला 'फूलन देवी' बनकर बदला लेना जानती है। अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ डटकर खड़ी होने वाली महिला की इसी मानसिकता को *अर्चना वर्मा* की कहानी *नेपथ्य* में उजागर किया गया है। आधुनिक युग की शकुंतला अपने ऊपर हुए अन्याय और अत्याचार को चुपचाप सहन करके दुष्यंत को क्षमादान कर

देने भर से संतुष्ट नहीं होती वरन् बदला लेती हैं।

भौतिकता, आधुनिकता व पारिवारिक सम्बन्धों में आए बदलाव के साथ ही स्त्री पुरुष सम्बन्धों के विविध आयामों को, सभी पहलुओं को समग्रता के साथ इस दौर की कहानियों में उजागर किया गया है।

(च) नारी के प्रति दृष्टिकोण :-

बदलते जीवन-मूल्यों, आधुनिकता, वैज्ञानिकता और पॉप कल्चर के युग में मानव-जीवन के विविध पहलुओं में आए बदलावों के साथ ही नारी के प्रति दृष्टिकोण में आए बदलाव के विविध आयामों को हिन्दी कहानी में उकेरने का कार्य बड़ी गहराई और शिद्दत के साथ हुआ है। बदलते जमाने में कुछ चीजें आज भी नहीं बदली हैं। आज भी समाज में नारी को सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं है। पुत्री के जन्म पर उपेक्षा और तिरस्कार मिलता है, जबकि पुत्र के जन्म पर ढ़ेरों बधाइयाँ। विज्ञान के बढ़ते कदम ने 'सोनोग्राफी' के जरिए पैदा होने वाले बच्चे का लिंग पता कर लेने की खोज देकर इस मानसिकता को बढ़ावा दिया है। *अचला नागर* की कहानी *बोलो माँ बोलो* लिंग भेद की इस मानसिकता पर करारा प्रहार करती है। अनपढ़ गँवार तो जन्म लेते ही लड़कियों को मार डालते हैं, लेकिन पढ़े-लिखे लोग तो लड़कियों को पैदा ही नहीं होने देते और गर्भ में ही मार डालते हैं। *महीप सिंह* की कहानी *बेटी* में भी यही हालात उभरकर सामने आते हैं। *चन्द्रकान्ता* की कहानी *गंगा से गंगोत्री तक* भी इसी मानसिकता को उजागर करती है। अस्पताल में "सुबह शाम नए जन्म को अवगाहती पुकारें, नन्ही आवाजें- इयाँ-याँ SSS! हम आ गए, हमारा बन्दोबस्त करो।' यों नई जिंदगी अपने नाद-संगीत से स्वयं अपना स्वागत करती। पर बरामदे में गूँजती ध्वनियों, मिठाई-बधाइयों के आदान-प्रदान से लिंग-भेद का रहस्य आम तौर पर खुल ही जाता।"[40] और लिंग भेद की भयावहता को उजागर कर जाता। बहू की कोख से लड़की पैदा हुई है, लिहाजा सास उस नर्सिंग होम का बिल भी नहीं अदा करना चाहती। लिंग भेद और बेटी से नफरत करने की शुरुआत औरतें ही करती हैं और फिर पुरुषवादी मानसिकता हावी हो जाती है।

स्त्री के प्रति पुरुष के नजरिए अलग-अलग होते हैं। रिश्तों से अलग हटकर जब कोई अनजान स्त्री किसी पुरुष के सम्पर्क में आती है तो वह तमाम सामाजिक दायरों की केंचुल उतारकर एक पुरुष रह जाता है। इसी द्वन्द्व से साक्षात्कार कराती कहानी है- *डॉ. रामकुमार*

तिवारी की *सहयात्री*। पुरुष की सहयात्री स्त्री के उसके बारे में विचारों की परवाह किए बगैर पुरुष उसे मात्र भोगना चाहता है, जबकि वह स्त्री उस पुरुष में अपने बेटे का अक्स देखती है। स्त्री के निःस्वार्थ और निःछल समर्पण को हमेशा देह से जोड़कर देखा जाता है। *क्रांति त्रिवेदी* की कहानी *भोगे हुए क्षणों का दान* इसी मानसिकता को उजागर करती है। कहानी की नायिका अपने प्रेमी शलभ के प्यार में आबद्ध होकर अपना सर्वस्व अर्पित कर देती है, लेकिन शलभ नारी देह को भोगने के लिए ही भागता रहा, युवावस्था से अधेड़ावस्था तक हमेशा। *क्रांति त्रिवेदी* की कहानी *सुमुखी सुनयनी* की कामना का सौन्दर्य ही उसका दुश्मन हो जाता है। उसने अपने ऊँचे ख्वाबों के फेर में वीरेन्द्र के प्यार को नहीं समझा। जब उसके ख्वाब पूरे हुए तब तक उसका पति कौशिक दाम्पत्य जीवन को नरक बना चुका था। क्योंकि उसे शक था कि कामना की खूबसूरती की वजह से वह पवित्र नहीं होगी और उसके कई लड़कों के साथ अवैध सम्बन्ध रहे होंगे। दाम्पत्य जीवन में शक और सन्देह के बावजूद समाज के भय से कौशिक सफल दाम्पत्य का नाटक करता रहा।

क्षमा शर्मा की कहानी *कमीज पहन रहा है जैक द रिपर* पुरुषवादी विकृत मानसिकता की कहानी है। घर से बाहर निकलने वाली नौकरीपेशा स्त्री, शिक्षा, पहनावे और रहन-सहन में आधुनिक बनकर पुरुषवादी वर्चस्व को तोड़ने वाली स्त्रियों के प्रति पुरुषों की मानसिकता हमेशा विकृत रहती है और वे उसे सदैव चरित्रहीन ही मानते हैं। इसलिए स्त्री को भोगने, बलात्कार करने और स्त्रीत्व पर प्रहार करके उस पर अपना आधिपत्य जमाने में ही लगे रहते हैं। जैक द रिपर के क्लोन के रूप में आज के समाज में ऐसी विचारधारा वाले हजारों लोग हैं। *राजेन्द्र यादव* की कहानी *हासिल* ऐसी मानसिकता वाले पुरुषों के विकृत नजरिए से लड़ती एक लड़की की कहानी है, जिसको अपने पिता से उपेक्षा मिली और पचास-पचपन साल के बूढ़े कथाकार से पितृवत् स्नेह मिलने की उम्मीद में उसके पास पहुँच गई। कथाकार नवल सहानुभूति के नाम पर अपनी बेटी के उम्र वाली लड़की को भोग लेने के पागलपन, अधेड़ावस्था की कुण्ठा या फिर अतृप्त वासना के वशीभूत होकर उस लड़की स्वप्ना को शराब पिलाकर भोगने के लिए जब तक अंतिम क्षणों में पहुँचने वाला होता है तब उसे अपनी गलती का एहसास होता है, उस समय नवल के पागलपन के ऊपर बाप-बेटी के पावन रिश्ते की जीत हो चुकी होती है।

आशा जोशी की कहानी *निर्णय* में शगल और मनोरंजन के तौर पर दूसरों की बीबियों

को भोगने वाले पुरुषों की विकृत मानसिकता को उजागर किया गया है। कहानी की पात्र कनिका जब अपने पति को तलाक देकर उसके साथ शादी की बात करती है तो वह पीछे हट जाता है। *महेन्द्र वशिष्ठ* की कहानी *सोचो सलमा सोचो* मुस्लिम परिवारों में स्त्रियों पर लगी ढेरों बन्दिशों के बीच जीती स्त्रियों, लड़कियों की विवशता और व्यथा पर केन्द्रित है। माँ-बाप के मर जाने के बाद शबनम ने घर की जिम्मेदारियाँ निभाने का फैसला किया, लेकिन उसके छोटे भाई सलीम को यह मंजूर नहीं था। सलीम पुरुषवादी वर्चस्व को जिंदा रखते हुए तीनों बहिनों की पहरेदारी तो करता है, लेकिन उनकी जिंदगी और शादी की चिंता नहीं करता लिहाजा पूरा परिवार ही बिखर जाता है। *नासिरा शर्मा* की कहानी *पत्थर गली* मुस्लिम परिवारों मे लड़की-लड़के के बीच अंतर को उजागर करती है। शिक्षित, सभ्य और प्रतिभासम्पन्न फरीदा लड़की होने के कारण परिवार में न केवल उपेक्षित है वरन मारपीट का शिकार भी है, दूसरी ओर शकील अवारा और पढ़ाई के प्रति लापरवाह है, उसके कारण घरवालों के सामने आने वाली समस्याओं को बावजूद घर में उसका रोब है।

पुरुषों के स्त्री के प्रति अधिकारवादी और शोषणवादी नजरिए के कारण घर-परिवार और समाज में कई विद्रूपताएँ और विसंगतियाँ पैदा हो जाती हैं। *विनोद दास* की कहानी *बीच धार में...* पितृसत्तात्मक समाज के उपेक्षित दृष्टिकोण के कारण दुःखी और असहाय स्त्री की कहानी है। स्त्री जब पैतृक सम्पत्ति पर अपना हक माँगती है, अधिकार जताती है या फैसले लेती है तो पितृसत्तात्मक समाज एकजुट होकर उसका विरोध करता है। वह स्त्रियों को अधिकार देने के बजाय स्वयं 'वस्तु' की तरह स्त्रियों का आदान-प्रदान, व्यापार करना चाहता है। *यशपाल बैद* की कहानी में भी यही *टूटती सीमाएँ* उजागर की गई हैं। पुरुष का स्त्री देह के प्रति आकर्षण जब अपनी पराकाष्ठा और तन की भूख मिटाने की हद तक पहुँच जाता है तब *जिनावर (कृष्ण सुकुमार)* पैदा होता है, जो हर रिश्ते को, ताक पर रखकर स्त्री को भोगने के लिए उद्यत हो जाता है। *शमोएल अहमद* की कहानी *ऊँट* की सकीना की जरूरतें और मजबूरियाँ इस भूख को और भी बढ़ा देती हैं, लेकिन जब सकीना अपने समर्पण के बदले मौलाना से सुरक्षा की दरक़ार करती है, निकाह करना चाहती है तब सकीना को मौलाना के हाथों मरना होता है। सकीना का अंत ही स्त्री की नियति है।

स्त्री की *रिहाई (असरार गाँधी)* पुरुषवादी बर्चस्व के बंधनों को तोड़कर, परम्परावादियों

को करारा जवाब देते हुए अपनी स्वतंत्रता के लिए खुलकर संघर्ष करने पर ही हो सकती है। तब हामिद मियाँ जैसे लोग बदलते वक्त के तकाजे को चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं और बड़े साहब जैसे परम्परावादी व स्त्री स्वतंत्रता के विरोधी लोग मन को दिलासा देने के लिए बड़बड़ा कर रह जाते हैं कि "खुदा का शुक्र है, अतीया किसी हिंदू के साथ नहीं भागी।"[41] *डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय'* की कहानी *सुनहरे सपने* की गज्जो के सुनहरे सपने तभी पूरे होते हैं जब वह पुरुषवादी वर्चस्व से इतर अपना वजूद कायम करती है। जब तक गज्जो पढ़ी-लिखी नहीं थी, मेहनत मजदूरी करती रही तब तक उसका पति धनुवा उसकी मेहनत के पैसों को शराब और जुएँ से उडाता रहा और मारपीट करता रहा अब गज्जो ने नर्स की नौकरी कर पति को भी सही रास्ते पर ला दिया। *डॉ. ऊषा माहेश्वरी* की कहानी *बहू का सपना* की बहू सुमित्रा अपनी व्यवहारकुशलता से पति व सास-ससुर की चहेती तो बन गई है, लेकिन उनकी परम्परावादी विकृत सोच को नहीं बदल पाई। सुमित्रा अपनी बेटी को पढ़ाना चाहती है लेकिन पति और सास उसकी शादी कर देना चाहते हैं। आखिरकार सुमित्रा को अड़कर खड़ा ही होना पड़ता है तब सुमित्रा अपनी बेटी का दाखिला शहर के कॉलेज में करा पाती है।

स्वयं प्रकाश की कहानी *पाँच दिन और औरत* स्त्री मुक्ति की बात करने वाले संगठनों की असलियत उजागर करती है। समाज सेविकाएँ, नेत्रियाँ और साहित्यकार स्त्री-मुक्ति की बात तो बड़ी शिद्दत से करते हैं लेकिन इनकी बातें बेवजह हो जाती हैं, क्योंकि अपराध और महिला शोषण बदस्तूर जारी रहते हैं।

लिंग भेद, पुरुषवादी अहं और स्त्रियों का शोषण करने की मानसिकता के कारण 'आधी दुनिया' को समाज बराबरी का दर्जा नहीं देता। दहेज की समस्या से जूझती युवतियाँ, अपने जीवन और अस्तित्व के लिए संघर्ष करती विधवाएँ, घर-परिवार के लिए जिन्दगी दाँव पर लगाती और परिस्थितियों व मजबूरियों से संघर्ष करती महिलाएँ जहाँ एक ओर पुरुषों और समाज के नजरिए का खुलासा करती हैं वहीं दूसरी ओर निरंतर (तथाकथित) सभ्य होते जा रहे समाज के खोखलेपन को उजागर करती हैं। आठवें दशक के बाद की हिंदी कहानियों में अभिव्यक्त किए गए इस यथार्थ के विविध आयामों को जानने-समझने का प्रयास निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत भी किया गया है -

(1) दहेज की समस्या

(2) विधवाओं का संघर्ष

(3) घर-परिवार के लिए जिंदगी दाँव पर लगाती महिलाएँ

(4) लाचार स्त्री की मजबूरियाँ

(1) दहेज की समस्या :-

सख्त कानून की पहरेदारी होने के बावजूद समाज में दहेज के लेनदेन का रिवाज बहुत गहराई तक पैठ बनाए हुए है। दहेज के खातिर लड़की कभी 'पेण्टेड गुड़िया' हो जाती है तो कभी चीज और कभी माल। रूप, रंग और पढ़ाई लिखाई तो मात्र बहाना है, इसके पीछे दहेज की खरीद-फरोख्त होती है। इन्ही स्थितियों को *कृष्ण कुमार* की कहानी *मेमने, दीदी; धर्मेन्द्र देव* की कहानी *नर-पिशाच* और *अशोक लव* की कहानी *सफेद हो चुका आसमान* में उजागर किया गया है। दहेज की लम्बी-चौड़ी माँग केवल सामान्य व्यक्तियों द्वारा ही नहीं उठाई जाती वरन् समाजसेवी, राजनीतिज्ञ और प्रतिष्ठा प्राप्त लोग भी इससे अछूते नहीं है, सौदेबाजी करने का उनका तरीका अलग है।

सी. दास बांसल की कहानी का पात्र राजन दहेज नहीं लेने के लिए दहेज भीरु समाज से और अपने पिता से संघर्ष करता है और जीतता भी है और अब उसे यह कहने में गर्व है कि वह *बिका हुआ आदमी* नहीं है। *डॉ. अशोक गुजराती* की कहानी *अग्नि/अग्नि,* साहसी युवक अनिल की कहानी है, जिसने आज के स्वार्थी और दहेज भीरू समाज की परवाह किए बगैर, घरवालों के विरोध करने के बावजूद रुचि से शादी रचाई, जो शादी से बारह घण्टे पहले दुर्घटना में जल गई थी।

डॉ. जगदीश महाजन की कहानी *दहेज की बलिवेदी पर* में दहेजलिप्सा का सर्वथा नवीन आयाम प्रस्तुत किया गया है। रमा का पति देवेश किसी तरह दहेज की बात भुलाकर रमा के साथ ही खुशी से रहना चाहता है, लेकिन देवेश की माँ कौशल्या हर बार उसे भड़काती और उकसाती है। अंततः घर-परिवार के लिए चुप रहकर हर प्रताड़ना को सह लेने वाली रमा को मार डालने की योजना कौशल्या ने बनाई और देवेश ने उसमें योगदान दिया। रमा तो मर गई, लेकिन् देवेश और कौशल्या भी न बच सके और पुलिस की गिरफ्त में आ गए।

डॉ0 ऊषा माहेश्वरी की कहानियों- *मैं तो बसन्ती हूँ* की बसन्ती और *भविष्य के द्वार* की निम्मो दहेज के दानव से लड़ने के लिए अपने पैरों पर खड़े होने को तत्पर होती है।

बसन्ती की शादी दहेज के कारण 'हिजड़े' लड़के से कर दी जाती है तो निम्मो के माँ-बाप को दहेज के कारण निम्मों के लिए उपयुक्त वर नहीं मिल रहा है। दोनों ही अपनी योग्यता के बूते नौकरी पाकर अपना भविष्य सँवारने की दृढ़ इच्छा शक्ति से लबरेज हैं।

कानून द्वारा निषिद्ध होने के बावजूद समाज के हर तबके में दहेज की स्वीकार्यता के कारण उपजी दयनीय स्थितियों, घर-परिवार में इसी कारण उपेक्षा और जलालत को भोगती युवतियों और इस कारण उपजी तमाम आपराधिक प्रवृत्तियों को इस दौर की कहानियों में प्रकट किया गया है।

(2) विधवाओं का संघर्ष :-

समाज की प्रगति के बावजूद पुरातनपंथी मान्यताओं पर चलते हुए समाज में आज भी विधवाओं के साथ उपेक्षित बर्ताव किया जाता है। परिवार में भी उन्हें समता का दर्जा नहीं मिलता। गरीबी और असहायता उनके जीवन को और भी नारकीय बना देती है। *रामधारी सिंह दिवाकर* की कहानी *खोई हुई जमीन* परिवार में उपेक्षित 'बड़ी बुआ' की दयनीय दशा को उजागर करती है। विधवा बड़ी बुआ की दोनों अनाथ पोतियाँ घर में समता का अधिकार पाना तो दूर, नौकरानी बनकर रह गई हैं। जबकि छोटी बुआ की आर्थिक सम्पन्नता के कारण उनकी सेवा में हजारों रुपये खुशी-खुशी खर्च कर दिए जाते हैं। *दयानंद पाण्डेय* की कहानी *बड़की दी का यक्ष प्रश्न* में प्रश्न बाल-विधवा बड़की दी के जीवन का नहीं, बल्कि उसकी सम्पत्ति को हथियाने का है। उसकी जमीन-जायदाद के लिए उसके देवर और उसकी बेटी दोनों खींचतान करते हैं। अंततः बड़की दी अपनी बेटी व दामाद को अपनी सारी जमीन जायदाद देकर बुढ़ापे में बेटी दामाद व उनके बच्चों से मिलने वाली उपेक्षा और अपमान को भोगने के लिए मजबूर हो जाती हैं।

द्विजेन्द्र नाथ मिश्र 'निर्गुण' की कहानी *रेखाएँ* की बाल विधवा कुन्तला पुनर्विवाह नहीं करना चाहती, क्योंकि उसके पास जीवन काट लेने के लिए सहगामी बनने वाली अतीत की सुनहरी, सुखद यादें हैं। *आदित्य नारायण शुक्ल* की कहानी *पिंजरे का पंछी* की उर्मिला के कम उम्र में विधवा हो जाने के बाद उस पर होते पारिवारिक अत्याचार को देखकर द्रवित हो गया युवक समाज और परिवार के तानों-उलाहनों की परवाह किए बगैर उसे अपना लेना चाहता। *मालती जोशी* की कहानी *मोरी रंग दी चुनरिया* की विधवा युवती जया अपनी जिंदगी दुबारा नए सिरे से शुरू करने के लिए वैधव्य का वसन उतारकर फिर से चुनरिया ओढ़ लेना चाहती

है लेकिन उसकी माँ, बड़े भाई और भाभियाँ यह नहीं चाहते और उसे अपने ससुराल वालों के ऊपर जायदाद पाने के खातिर मुकदमा दायर करने का दबाव डालते हैं। विधवा-जीवन में समाज द्वारा लगाई गई तमाम बन्दिशों को तो जया ने भोगा ही, अब परिवार वाले उसकी जिंदगी की परवाह किए बगैर ससुराल की सम्पत्ति पाने के लिए उसे मोहरा बनाना चाहते हैं। अन्ततः जया ने इसका विरोध करने की ठान ली और अपने भविष्य का फैसला खुद लेने का निश्चय किया।

वैधव्य का दंश भोगने वाली महिलाओं के साथ समाज के क्रूर बर्ताव और उपेक्षा की दयनीय स्थितियों के साथ ही विधवाओं के संघर्ष को बड़ी विदग्धता के साथ आठवें दशक के बाद की कहानियों में उजागर किया गया है।

(3) घर-परिवार के लिए जिन्दगी दाँव पर लगाती महिलाएँ :-

अपने परिवार में रहते हुए माँ-बाप, भाई बहिन के लिए और ससुराल में रहते हुए पति, सास-ससुर, ननद-देवर के लिए औरत हर जगह खपती है, अपने को दाँव में लगाती है और इसी प्रकार जीते हुए उसकी जिन्दगी पार हो जाती है। *आलमशाह खान* की कहानी *अबला जीवन का गणित* में जस्सो रानी की दादी नारी के जीवन का पूरा खाका खींचते हुए जस्सो रानी को बताती है कि ''औरत दस की दावड़ी, बीस की बावड़ी, तीस की तीखी, चालीस की फीकी, पचास की पकी, साठ की थकी, सत्तर की सुली, अस्सी की रुली-लूंज-पुंज, नब्बे की रड़ली और सौ की बली मतलब जली, चिता चढ़ी होती है। यही औरत की जिंदगी की कहानी होती है।''[42] छोटे भाई-बहनों को संभालते, चूल्हा-चौका करते, कम उम्र में ब्याहता होकर ढेरों बच्चे पैदा करते, बड़े परिवार की जिम्मेदारियों को निभाते, गरीबी और लाचारी में भूखे पेट रहते और बाद में उपेक्षित-तिरस्कृत होकर अलग रहते हुए मौत के करीब पहुँच चुकी जस्सो रानी को दादी का बताया हुआ गणित उम्र की अवसान बेला में पूरी तरह समझ में आया। *यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'* की *अच्छी दीदी* ने असीम को माँ-बाप की कमी का एहसास नहीं होने दिया, असीम और उसकी प्रेयसी सुजाता के प्रेम में अपना प्रेम तलाशते हुए अपने प्यार को त्यागकर एकाकी जीवन बिताती रही। अब असीम और सुजाता के बाद अपनी कुर्बानी के प्रतिफल के रूप में एकाकी जीवन का दर्द भी भोगेगी। *द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'* की कहानी *दिशाहीन* में भी यही स्थितियाँ प्रकट हुई हैं।

परिवार की जिम्मेदारी को निभाते हुए अधेड़ावस्था में पहुँच जाने वाली महिलाओं को जब

अपनी जिंदगी की सुधि आती है, अपने भविष्य के लिए सहारे की चिंता होती है तब उन्हें अहसास होता है कि *पत्थरों से बँधे पंख* से सुखद भविष्य के लिए उड़ान नहीं भरी जा सकती। *अशोक लव* **की यह कहानी, भाइयों के माँ से अलग हो जाने के बाद माँ को सहारा** देने वाली युवती की है, जो माँ की मृत्यु के बाद अपने बेसहारा जीवन की छटपटाहट में फँसी हुई है। *से.रा.यात्री* की कहानी *दूरी* की नायिका अपने परिवार की वजह से नहीं, बल्कि अपनी महत्त्वकांक्षा की ऊँची-ऊँची उड़ानों में यह भूल गई कि भविष्य में उसे सहारे की जरूरत होगी। उसने पिता और भाई के कहने पर भी शादी नहीं की। उम्र ढलने के साथ अब उसे अकेलापन और भविष्य की चिंता सता रही है।

दिनेश पालीवाल की कहानी *चुभन* के सुरेश जैसे लोग कामकाजी और कमाऊ लड़कियों से इसीलिए शादी करते हैं ताकि जिंदगी भर उनकी कमाई से ऐश-आराम कर सकें। ललिता भी अपने वेतन का बड़ा हिस्सा सुरेश और उसके घरवालों पर खर्च कर देती और स्वयं अभावं सह लेती। सुरेश का उससे मिलन निःस्वार्थ नहीं, बल्कि हर बार अपनी नई माँग पूरी कराने के लिए होता था आजिज आकर ललिता ने विरोध किया तो सुरेश ने सम्बन्ध तोड़ने की धमकी दे दी। ऊब चुकी ललिता ने भी उसे दुबारा नहीं मनाया। शादी के बाद सुनहरे ख्वाब सजाने वाली औरतें ससुराल के खातिर मरते-खपते हुए ऐसे चक्रव्यूह में फॅस जाती हैं जहाँ से निकलना आसान नहीं होता। कहानी की स्त्री ससुराल के खातिर नौकरी करती है, अपना गर्भपात भी कराती है। ननदों की शादी के बाद जब पति और विधवा सास को एक बच्चे की जरूरत महसूस होती है तब ससुराल की खातिर वह इस जरूरत को भी पूरा करना चाहती है, लेकिन लाचार है क्योंकि अब वह इस लायक ही नहीं रही।

घर और परिवार के लिए अपना जीवन और भविष्य दाँव पर लगाती स्त्रियाँ शोषण की पराकाष्ठा से आजिज आकर विरोध पर उतर आती हैं। *मालती जोशी* की कहानी *आखिरी सौगात* इसी विरोध को प्रकट करती है। सुमन का उपयोग घर-परिवार की जरूरतों को पूरा करने और धन कमाकर लाने में ही रह गया था। इसीलिए माँ उसकी शादी नहीं करना चाहती थी। सुनील की शादी वह इसलिए करना चाहती थी ताकि उसको दहेज में मिले सामान से निम्मी की शादी कर सके। इस शोषण और जानबूझ कर जिन्दगी बर्बाद किये जाने की माँ की नीयत के विरोध स्वरूप सुमन ने दुजहे वर से ही शादी कर ली। और माँ द्वारा सुमन का सामान

रख लिए जाने पर सबकुछ छोड़कर पति के साथ चली गई। *नीरजा माधव* की *उत्तरार्द्ध की किरण* अस्तित्व के लिए संघर्ष करती, पुरुष वर्चस्व से टकराती, चरित्र पर उठती उंगली का मुँहतोड़ जवाब देती और अकेलेपन की जिंदगी से संघर्ष करती महिला की कहानी है।

आठवें दशक के बाद की इन कहानियों में घर परिवार के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने के बावजूद शोषण, उपेक्षा और अत्याचार सहती स्त्री की नियति को उजागर करने के साथ ही संघर्ष के लिए अग्रसर होने की स्थितियाँ भी बड़ी बेबाकी के साथ प्रस्तुत की गयी हैं।

(4) लाचार स्त्री की मजबूरियाँ :-

जीवन की जटिल और विषम परिस्थितियों से लड़ती हुई लाचार और बेबस स्त्रियों की मजबूरी का लाभ उठाने की मानसिकता वर्तमान का कटु यथार्थ है। *डॉ. जगदीश महाजन* की कहानी *ये मेरे हितैषी* बेसहारा स्त्री के दैहिक और आर्थिक शोषण के लिए तैयार हो गए हितैषियों की मानसिकता उजागर करती है। नवयौवना विधवा चंचल के पति की मृत्यु के बाद उसके कई हितैषी बन गए। जहाँ राजीव और संजीव की नजर चंचल की सुंदर देह पर थी, वहीं शर्मा और वर्मा की नजर सिद्धार्थ द्वारा छोड़े गए बैंक बैलेन्स पर। चंचला के समक्ष मजबूरी है कि या तो मदद लेने से पहले इन हितैषियों से अपना दैहिक और आर्थिक शोषण कराए या नियति के भरोसे स्वयं को छोड़ दे। *डॉ.कामिनी* की कहानी *शिलाखण्ड* की औरत पति की मृत्यु के बाद मजबूरी में देवर का सहारा लेती है, देवर उसे भोगना चाहता है और सहारा पाने की उम्मीद में वह स्वयं को समर्पित करती रहती है। *डॉ.कामिनी* की कहानी *सपनों का घर* शादी के बाद ढेरों ख्वाब सँजोकर पति से प्यार की उम्मीद जोड़ने वाली औरत की कहानी है, जो अपने पति को बच्चा नहीं दे सकने पर एकाकी जीवन और दाम्पत्य सम्बन्धों में कटुता को भोगने को मजबूर है।

सामाजिक रूढ़ियाँ और दकियानूसी विचार भी स्त्रियों को लाचार-बेबस बना देते हैं। *नीलकांत* की कहानी *कर्मजली* में रमता निःसन्तान होने की मजबूरी में नहीं, वरन् चार बेटियाँ पैदा करने के कारण पति की उपेक्षा और तिरस्कार भोगती है। उसका पति खेतों की देखभाल करने के बहाने खेत में रहता है और दूसरी औरत के साथ रातें रंगीन करता है। दूसरी ओर रमता अपने खण्डहर हो चुके मकान में जीने को मजबूर है।

आलमशाह खान की कहानी *आँसुओं का अनुवाद* की संजू अपने माँ-बाप के बीच

के टकराव और अहं की लड़ाई को देखकर शादी विवाह से ही नफरत करने लगती है। वह माँ-बाप के कहने पर मजबूरी में शादी तो कर लेती है, लेकिन सुहागरात की सेज पर ही पति से लड़कर माँ-बाप के 'आँसुओं का अनुवाद' कर आती है। विष्णु प्रभाकर की कहानी लावा, पुरुषवादी सत्ता के आगे मजबूरी में समर्पण करती स्त्री की कहानी है। गौरी को उसका पति आग में जला देता है, लेकिन वह पति के खिलाफ बयान नहीं देती। कहानी की मंगला को गौरी का दब्बूपन अखरता है और वह गौरी के पति के खिलाफ अपना गुस्सा प्रकट करती है।

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' की कहानी *लुगाईजात* की गुलाबड़ी ने अपने पति की बीमारी के इलाज के खातिर मजबूरी में सेठ के बेटे को दूध पिलाने का काम किया। सेठ और सेठानी ने उसकी ईमानदारी और लाचारी का लाभ उठाते हुए उसे 'धाय माँ' का दर्जा देकर जी-भर काम लेना शुरू कर दिया। पति व बच्चे की मौत के बाद गुलाबड़ी की सेठ के यहाँ रहने की मजबूरी और भी बढ़ गई दूसरी ओर सेठ के परिवार के लोगों से ताने-उलाहने भी मिलने लगे। जब गुलाबड़ी ने अपनी जिंदगी व्यवस्थित करने के लिए अखाराम के साथ जाना चाहा तो सेठ ने एक 'ईमानदार नौकरानी' के चले जाने के भय से अखाराम के साथ पाँच सौ रूपये में सौदा कर डाला। अंततः गुलाबड़ी ने दोनों को ही छोड़कर अपनी स्वतंत्र जिंदगी बसाने का फैसला कर लिया। *राजेश शर्मा* की कहानी *अण्डर अबव सरकम स्ट्रान्सेज* प्राइवेट कम्पनियों में कामकाजी लड़कियों की मजबूरी का लाभ उठाकर दैहिक शोषण करने वाले लोगों की मानसिकता उजागर करती है।

आलमशाह खान की कहानी *एक और सीता* में आधुनिक युग की सीता अपनी मजबूरियों और लाचारियों का लाभ उठाने वालों को मुँहतोड़ जवाब देती है। रमिया अपनी गरीबी और बेगारी की मजबूरी के कारण अपनी नव विवाहिता सीती को ठाकुर के समक्ष 'परोसने' को मजबूर है। लेकिन सीती इतनी मजबूर नहीं है। उसके अंदर राम की शक्ति, लक्ष्मण का तेज और सीता का शील-साहस एक साथ है वह अकेली ही लड़ने को सक्षम है, राम और लक्ष्मण की सहायता के बिना, इसीलिए ठाकुर को ललकारती है।

कभी समाज के कारण तो कभी घर परिवार के कारण मजबूर और बेबस स्त्रियों के जीवन के समग्र यथार्थ को और विरोध के लिए उठ खड़े होने की संघर्षशीलता को समग्रता के साथ इस दौर के कहानियों में प्रस्तुत किया गया है।

(छ) विविध अन्य :-

(1) वृद्धों के प्रति दृष्टिकोण

(2) किशोरों एवं बच्चों के प्रति दृष्टिकोण

(3) फिल्मी ग्लैमर की चकाचौंध में बर्बाद होती जिंदगियाँ

(4) विवाहेतर सम्बन्ध एवं अन्तर्जातीय प्रेम विवाह

(5) भिखारी और पागलों की दुनिया एवं उनके प्रति दृष्टिकोण

(6) मानवीय संवेदनाओं का सकारात्मक पक्ष

(7) राष्ट्रीयता की भावना

(8) दंगे, आतंक और युद्ध की विभीषिका

(9) विज्ञान और तकनीकी के दष्प्रभाव, प्रकृति और पर्यावरण के विनाश को रेखांकित करती कहानियाँ

(10) आदिवासी समाज की कहानियाँ

(1) वृद्धों के प्रति दृष्टिकोण :-

परिवार के सिमटते वजूद, बदले हुए मूल्यों, यांत्रिक संवेदनाओं और आधुनिकता ने बूढ़ों को सबसे ज्यादा चोटहिल किया है। नई पीढ़ी अपने बुजुर्गो का दोहन और शोषण चरम सीमा तक कर लेना चाहती है। इस कारण परिवार में बहू-बेटियों एवं लड़के-नातियों की उपेक्षा और उलाहने बुजुर्गवारों का जीना दुश्वार कर देते हैं। अपने घर-परिवार और अपनी संततियों को सुखी और समृद्ध बनाने के लिए खँटने वाले बूढ़े अपनी आयु की अवसान बेला में अपने बच्चों के लिए अप्रासंगिक हो जाते हैं। इतना ही नहीं, कई तरीके से उन्हें अपमानित और तिरस्कृत भी किया जाता है, आर्थिक व दैहिक शोषण भी किया जाता है। *कृष्ण सुकुमार* की कहानी *सूखे तालाब की मछलियाँ, डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय* की कहानी *बावला डॉ. रामकुमार तिवारी* की कहानी *सत्यम् शिवम् सुन्दरम्* एवं *अयचित स्वप्न सिद्धेश* की कहानी *आहत समय* और *नीरजा माधव* की *सात मील लम्बी कहानी* आदि वृद्धों की इसी दशा (दुर्दशा) को उजागर करती हैं।

मृणाल पाण्डे की कहानी *दूरियाँ* में बेटी अपने बूढ़े माँ-बाप के अकेलेपन के दर्द को समझती है और उन्हें सहारा देना चाहती है, लेकिन उसे भी अपने घर जाना है। बेटियाँ, बेटों

की अपेक्षा माँ-बाप की अधिक सेवा करती हैं, यह सोचकर निःसन्तान प्रसाद ने लड़की को गोद लिया। लेकिन शादी के बाद वह भी अपने पति के साथ रहने लगी। पत्नी के निधन के बाद अकेलेपन से जूझते प्रसाद को सहारा चाहिए, किन्तु बेटी ने तत्काल आने के बजाय छुट्टियों में आने को लिखा है। अब बेटी से सँजोई गई अपेक्षाएँ प्रसाद को निरर्थक लगने लगी हैं।

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' की कहानी का बूढ़ा बाप *नए ढंग का अपंग* है। उसने अपनी पत्नी के मर जाने के बाद बेटी को माँ और बाप दोनों का प्यार दिया और पढ़ा-लिखा कर बेटी को आई. ए. एस. बनाने का ख्वाब देखता रहा और बेटी दीप्ती ने अपनी मनमर्जी से नरेन से शादी कर ली। दोनों ने मिलकर उसकी मेहनत की कमाई का बंदरबाँट किया। अब तलाक हो जाने के बाद दीप्ती अपने बाप के पास ही रहती है और बुढ़ापे में उसका सहारा बनने के बजाय स्वयं बोझ बनी हुई है। *क्षमा शर्मा* की कहानी *पिता* में वसुधा को पिता का अभाव, जिंदगी का खालीपन और पिता की स्मृतियाँ उनकी मृत्यु के बाद कचोटती हैं। जब तक पिता जीवित रहे तब तक उनकी बीमारी से होने वाली घुटन के कारण वसुधा उनकी उपेक्षा ही करती रही। और निजात पाने के लिए छटपटाती रही। उनकी मृत्यु के बाद वह बाबू जी की स्मृतियों को तलाश रही है।

नरेन्द्र नागदेव की कहानी *सैलानी* धन व आधुनिकता के पीछे भागती नई पीढ़ी द्वारा बुजुर्गवारों के त्याग और मेहनत की उपेक्षा किये जाने के दर्द को प्रकट करती है। *जया जादवानी* की कहानी *शाम की धूप* के बूढ़े माँ-बाप अपनी शारीरिक अक्षमता के कारण ही घर में तिरस्कृत हैं। हाड़तोड़ मेहनत करके अपने बच्चों को समृद्ध जीवन देने के लिए किया गया उनका संघर्ष बेटे-बहू और नातियों के लिए कोई मायने नहीं रखता।

अचला नागर की कहानी *ढोर* के बूढ़े हुकुम सिंह अपने बेटों के आपसी स्वार्थ की लड़ाई में मारे जाते हैं। हुकुम सिंह स्वतंत्रता संग्राम सेनानी हैं और उनके प्रभाव से चुनाव में टिकट मिल सकता है, इसलिए बड़े बेटे लखन सिंह ने उनकी हीरक जयन्ती समारोह का आयोजन किया और लकवाग्रस्त बूढ़े हुकुम सिंह हो लाकर मंच पर बैठा दिया। गुस्साए हुए छोटे बेटे ने वहाँ आग लगवा दी, सभी भाग गए पर लेकिन लकवाग्रस्त हुकुम सिंह नहीं भाग सके और वहीं जलकर मर गए। *हिमांशु जोशी* की कहानी *पाषाण-गाथा* का बूढ़ा मूर्तिकार अपने बेटे की जिंदगी के खातिर उसके किये हुए जुर्म को अपने ऊपर लादकर जेल में हत्या और बलात्कार

की सजा काट रहा है और बेटे की उपेक्षा के बावजूद जेल में अपनी मजदूरी से परिवार के लिए धन भी इकट्ठा कर रहा है।

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' की कहानी *तीसरा बिस्तर* का बूढ़ा बाप अपने बीमार बेटे के ठीक होने तक उसके पास ही रहना चाहता है। लेकिन उसकी बहू को ससुर का रहना अच्छा नहीं लगता क्योंकि उसकी वासना की पूर्ति नहीं हो पाती थी। बेटे को भी शायद अखरता था, इसलिए शरीर की वासना पूर्ति में आने वाली अड़चन को पति-पत्नी दोनो ही हटा देने को आतुर थे। अंततः बूढ़ा बाप अपने गाँव लौट जाने को मजबूर हो जाता है। शरीर की वासना के आगे बाप का स्नेह ओछा पड़ जाता है।

कुन्दन सिंह परिहार की कहानी *गणित* में बूढ़ी माँ अपने बेटे-बहू के लिए अप्रासंगिक हो जाती है। बुढ़ापा ही उसकी सबसे बड़ी बुराई बन जाती है। अविनाश भी प्रसाद से अपने रिश्ते नहीं खराब करना चाहता इसलिए प्रसाद की माँ को अपने घर में नहीं रखना चाहता। इसी तरह की विवशता और परिस्थिति के कारण सोना घोष वृद्धावस्था के एकाकी जीवन को ढोते हुए अपना पेट पालने के लिए 'वृन्दावन' (हरियश राय) के भजनाश्रम से मिलने वाले चावलों से गुजारा करती है। पिता की मृत्यु के बाद माँ अपने बच्चों को पालने में अपना सर्वस्व न्योछावर कर देती है। बेटों के काम-धंधे से लग जाने के बाद वृद्ध माँ अपने बच्चों से सम्मान, सुरक्षा और सहानुभूति चाहती है, बदले में उपेक्षा और तिरस्कार मिलता है। *मिथिलेश्वर* की कहानी *चल खुसरो घर आपने* की बूढ़ी माँ अपने पोते-पोतियों की उपेक्षा और ताने-उलाहनों से आजिज आकर अपने गाँव वापस लौट जाती हैं और वहीं पर अपने प्राण त्याग देती हैं।

रजनी गुप्ता की कहानी *माँ की डायरी* धनलोलुपता के पीछे बुजुर्गवारों की अंतिम इच्छा को भी तवज्जो नहीं देने की स्वार्थी मानसिकता उजागर करती है। बेटे और बेटियाँ सभी माँ की मौत के बाद गोपाल विला को बेचकर अपने हिस्से की रकम लेने के लिए एकमत हो जाते हैं, जबकि माँ की इच्छा उस मकान में विद्यालय खोलने की थी। अंततः रचना विरोध करती है वह अपने बचपन की स्मृतियों से जुडे, अपनी माँ की यादगार 'गोपाल विला' को बेचने के बजाय विद्यालय खोलना चाहती है और इसीलिए वह अपने धनलोलुप भाई-बहन को रुपया देकर मकान को बिकने से बचा लेती है।

गोविन्द मिश्र की कहानी *यत्र धर्मः* वृद्धावस्था में भी परिस्थितियों और उपेक्षा से लड़ने

की शक्ति से लबरेज बूढ़े बाप की कहानी है जो घर में तैयार हुए नए 'महाभारत' में लड़ने को उद्यत होता है। जमीन-जायदाद के लिए बड़े बेटे की हत्या छोटे बेटे ने कर दी है, अब वह अपने बाप पर भी तमंचा चला सकता है। बाप अपने गुंडे, जुआरी, शराबी छोटे बेटे को रास्ते पर लाने की नाकामयाब कोशिश करता है। बाप की घर में इज्जत नहीं रही। उसके मन में झंझावात उठ रहे हैं, पहले वह कृष्ण बना और अब अर्जुन बनकर उसे दुर्योधन से युद्ध करना होगा। *नीरजा माधव* की कहानी *साँझ से पहले* के त्रिपुरारी जी, दमयंती, कमलावती, रमाशंकर, लल्लन पांडे जैसे तमाम वृद्ध अपनी जिंदगी के अस्ताचल में बहू, बेटियों और बेटों के ताने-उलाहने और उपेक्षा से त्रस्त होकर कुछ कर दिखाना चाहते हैं, इसीलिए सबने मिलकर एक 'वानप्रस्थ आश्रम' बनवाने का निर्णय लिया है। *सत्येन कुमार* की कहानी *अधूरी चिट्ठी* के मुंशी जानकीदास सरकारी दफ्तर की हेडशिप से सेवानिवृत्त होकर, बेटे-बहू की उपेक्षा और पत्नी की मृत्यु के बाद एकाकीपन से आजिज आकर होम्योपैथी दवाखाना खोलकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। *राम गुप्त* की कहानी *उस बूढ़े आदमी के कमरे में* अपनी खुद्दारी को जिंदा रखे हुए जीवन जीने की जिजीविषा को ढोते बूढ़े रिटायर्ड शिक्षक की कहानी है, जिसकी पेंशन इस महँगाई के जमाने में नाकाफी है, लेकिन वह अपने अफसर बेटे से मदद नहीं माँगता और लिफाफे बनाकर अपना बुढ़ापा काटना चाहता है। *रामधारी सिंह दिवाकर* की कहानी *नीड़ पाखी* में भी वृद्धावस्था के संघर्ष को रूपायित किया गया है।

विमल पाण्डेय की कहानी *साथ,* वृद्धावस्था के अकेलेपन से जूझते दो दोस्तों की कहानी है, जो अपने अकेलेपन, अधूरी हसरतों, नजदीक आती मृत्यु, बचपन के सुखद स्वप्नों को एक दूसरे से बाँटते रहते और सिगरेट की लत ने उन दोनों की नजदीकियाँ बढ़ाने व एकाकीपन को तोड़ने का काम किया है। *बूढ़े वृक्ष का दर्द (दिनेश पालीवाल)* जवान नहीं समझ सकते। दोनों बेटों और बेटी के बाहर रहने, विधुरता और अकेलापन ने प्रो0 कुलभूषण को बुढ़ापे के सहारे के लिए एक विधवा से शादी करने को मजबूर कर दिया। बुढ़ापे में शादी करने के कारण वे समाज में मजाक का पात्र तो बन गए लेकिन उनको अपने जीवन का एक सहारा मिल गया, इससे वे संतुष्ट हैं। *रामधारी सिंह दिवाकर* की कहानी *नायक प्रतिनायक* का पिता भी विधवा से शादी कर लेता है क्योंकि कांता और उसके पति ने बूढ़ी माँ की सेवा का नाटक धन-दौलत के लिए किया था और उसे हासिल कर वे लकवाग्रस्त बूढ़ी माँ और पिता को उनके

हालात पर छोड़कर शहर चले गए। लकवाग्रस्त पत्नी की सेवा करने के लिए पिता को सहारा चाहिए था जो उस बेसहारा विधवा ने शादी करके दिया।

प्रियंवद की कहानी *चूहे* समय के साथ बढ़ते अकेलेपन और वृद्धावस्था में उपजी सम्बन्धों की तिक्तता को उजागर करती है। श्रीमती पलुस्कर की असली चिंता चूहे द्वारा किताब को कुतरने की नहीं, बल्कि जिंदगी के कम होते जाने की है। चूहा पकड़ने वाले लड़के से ही श्रीमती पलुस्कर अपने जीवन के सूनेपन को दूर करना चाहती हैं।

नसीम साकेती की कहानी *पीढ़ियाँ* बेटे से बाप बने व्यक्ति की व्यथा उजागर करती है। जब उसके बेटे ने उसकी उपेक्षा करना शुरू कर दिया और वह बेटे के बारे में चिंतित रहने लगा, तब उसे एहसास हुआ कि बूढ़े माँ-बाप के लिए बेटे का सानिध्य, उसका स्नेह और लगाव कितना मायने रखता है। *दिनेश पालीवाल* की कहानी *उस खबर के बाद* के नागेश्वर और सुनंदा की अपने बेटे की चिंता इसी के कारण है। उन्हें दंगे में जला दिये गए अपने पिता की चिंता नहीं थी और न ही उनके बारे में सोचने का वक्त रहता है। अगर नागेश्वर ने समय से पिता की खोज की होती तो वे दंगे की भेंट न चढ़ते। वे अपने बेटे के लिए जितना परेशान रहे उतना पिता के लिए नहीं हुए।

समय, समाज और संस्कृति के साथ ही परिवारों के सिमटते वजूद की तिक्तता को भोगते-सहते वृद्धों का दर्द, वृद्धावस्था में भी कुछकर दिखाने की जिजीविषा और संघर्ष को भी आठवें दशक के बाद की हिन्दी कहानियों में बेबाकी के साथ प्रस्तुत किया गया है।

(2) किशोरों एवं बच्चों के प्रति दृष्टिकोण :-

गरीबी, असहायता, निराश्रितता और पारिवारिक विघटन और लड़ाई झगड़े बच्चों के जीवन को एकदम बदल देते हैं। *दिनेश पालीवाल* की कहानी *खेल और खेल*, समाज के क्रूर लोगों के हाथों बर्बाद होते बचपन, शारीरिक शोषण के कारण बेमौत मरते बच्चों की त्रासदी को पेश करती है। *रामधारी सिंह दिवाकर* की कहानी *संबंध-वाचक* में बच्चा अपने चाचा अवधेश के घर से इसलिए भागता है क्योंकि अवधेश उसे पढ़ाने के लिए गाँव से शहर लाया था। और पढ़ाने के बजाय उसे घर का नौकर बना डाला ऊपर से खाना भी ढंग से नहीं दिया जाता था। कहानी में शोषण से आजिज आए बच्चों द्वारा विद्रोह कर देने की स्थितियाँ भी दिखाई देती हैं।

रजनी गुप्ता की कहानी *रेत के घरौंदे* पति-पत्नी की लड़ाई में एकाकी, दब्बू और भयभीत होकर असहाय-सा जीवन व्यतीत करने वाले लड़की की कहानी है। *गायत्री कमलेश्वर* की कहानी *घटनाओं में झूलता मन* भी पति-पत्नी के आपसी सम्बन्धों में स्नेह के बजाय तिक्तता, समर्पण के बजाय झगड़ा-मारपीट आदि के कारण विचलित हो जाने की स्थितियों को उजागर करती है। *दीपक शर्मा* की कहानी *कुन्जी* और *सुमति अय्यर* की कहानी *एक असमाप्त कथा* में माँ-बाप की आपसी लड़ाई में अन्तर्द्वन्द्व से घिरे बच्चों की व्यथा-कथा है। स्वयं प्रकाश की कहानी एक यूँ ही मौत, बाप की अपेक्षाओं के कारण दम तोड़ती बचपन की प्रतिभाओं का दर्द उजागर करती है।

पारिवारिक सम्बन्धों में उपजते विघटन और तिक्तता के कारण बालमन भी कुंठित और विक्षिप्त हो जाता है। उर्मिला शिरीष की कहानी दहलीज पर में बच्चे की वेदना को न तो उसकी माँ समझती है, जिसने दूसरी शादी कर ली है और न ही 'नए पापा' व 'नए भाई-बहन'। निहायत एकाकीपन में स्वयं से जूझता बच्चा तय नहीं कर पाता कि उसे जाना कहाँ है। उसकी नानी उसे चाहती है, ख्याल रखती है लेकिन कब तक? यह प्रश्न उसकी जिंदगी का है, जिसने उसकी बालसुलभ चंचलता को छीन लिया है। *स्नेह 'मोहनीश'* की कहानी *बौर फागुन का* माँ-बाप के बीच लड़ाई और बाद में तलाक हो जाने के कारण मानसिक रूप से असहज हो गए बालक फनी की कहानी है। फनी बालसुलभ चपलता और चंचलता के बजाय निरंतर अन्तर्मुखी होता जा रहा था और तट पर पड़े घोंघे की तरह खुद में सिमटता जा रहा था।

कृष्ण सुकुमार की कहानी *बीड़ी* परिवेश से सीखने के मनोविज्ञान को उजागर करती है। जैसा परिवेश होता है वैसी ही आदत बच्चों की पड़ जाती है। कहानी के पात्र बच्चे के मन में बीड़ी के लिए बहुत डर था जिसका हल उसने निकाल लिया कि अपने बाप जितना बड़ा होकर वह कोई भी काम कर सकता है। *अशोक आत्रेय* की कहानी *बच्चे* हर पीढ़ी द्वारा अपनी आने वाली संततियों से अपेक्षाएँ जोड़ने की मानसिकता उजागर करती है।

अचला नागर की कहानी *नसीबाँ अली* परिस्थितियों से हारकार अपराधी बन बैठे किशोर की कहानी है। किशोर मन की मानसिकता समाज में फैली गंदगी और अशिक्षा के कारण बहुत जल्दी विकृत हो जाती है, वे अपराध करने को उद्यत हो जाते हैं। *कमल कुमार* की कहानी *औरत और पोस्टर* अपराध की ओर बढ़ते किशोरों की मानसिकता उजागर करती है। रात के

अँधेरे में दफ्तर से घर जाने को निकली मैडम को देखकर झुग्गी-झोपड़ी में रहने वाले कामगार किशोरफिरके कसते हैं। मैडम पहले डरती है लेकिन जब झिड़क देती है तो वे सहम जाते हैं।

आठवें दशक के बाद की कहानियों में बालमन को पढ़ने के साथ ही पारिवारिक और सामाजिक परिवेश के अनुरूप बच्चों और किशोरों के जीवन में उभरते बदलाव और पनपती विकृतियों को बड़ी विदग्धता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

(3) फिल्मी ग्लैमर की चकाचौंध में बर्बाद होती जिंदगियाँ :-

फिल्म (अप) संस्कृति एक ओर बढ़ते संचार माध्यमों के कारण तेजी से फैली है, दूसरी ओर लोगों की मानसिकता भी 'फिल्मी दुनिया' के कारण बदली है। न केवल नगरों, महानगरों में बल्कि गाँवों में भी 'फिल्मी ग्लैमर' का प्रभाव देखने को मिलता है। *ऋता शुक्ला* की कहानी *सरबहारा* गाँवों में बढ़ती फैशन परस्ती और फिल्मी दुनिया के प्रभाव को बड़ी शिद्दत के साथ उजागर करती है- "......आजकल फिलिम का यही फैशन है उसके सभी शहरी यार-दोस्त इसी तरह केस सँवारते हैं। जो वह ऐसा नहीं करेगा, तो सब उसे इडियट नहीं समझेंगे ? इडियट माने बेकूफ होता है। बेकूफ........ क्या समझी ?

रमललवा, नहीं-नहीं रामलाल जादव अपनी गॅवार माँ को समझाया करता है।"[43]

अचला नागर की कहानी *अनाम* फिल्मी दुनिया की ओर आकृष्ट होकर घर से भागने वाले नवयुवकों की जिंदगी बयाँ करती है। केतन ने पढ़-लिख कर अच्छी नौकरी करने और घर चलाने के बजाय फिल्मों में हीरो बनने का ख्वाब देखा और अपना गाँव घर छोड़कर बम्बई पहुँच गया। वहाँ जाकर उसे धोखाधड़ी और चालबाजी ही मिली तब उसे एहसास हुआ कि उसका गाँव-घर ही अच्छा था। *राजेश शर्मा* की कहानी *वेकेण्ट फॉर मैरिज* उस युवक की कहानी है, जो अभिनेता बनने का ख्वाब लेकर बम्बई गया स्वयं अभिनेता नहीं बन सका और अपनी बीबी को अभिनेत्री बनाने के लिए बम्बई ले गया। वहाँ उसकी बीबी असिस्टेण्ट अभिनेता के साथ भाग गयी। अब वह अपने लिए फिर एक बीबी तलाश रहा है।

रघुनंदन त्रिवेदी की कहानी *कैरियर* युवतियों के अपना भविष्य सँवारने की जिजीविषा में गलत राह पर चले जाने और जिंदगी बर्बाद कर लेने की व्यथा-कथा है। भावनाओं और संवेदनाओं को अपने अंदर जीवित रखते हुए घर बसाने, परिवार चलाने और युवावस्था की प्रेम भावनाओं मे बह जाने वाली लड़की को जब शहर में तीसरा लड़का मिला तो उसने लड़की की

कल्पनाओं और भावनाओं को कोरे यथार्थ में बदलकर व्यावसायिक बना दिया और वह लड़की फिल्मी ग्लैमर में अंग प्रदर्शन में ही अपना 'कैरियर' तलाशने लगी। घर बसाने, परिवार और बच्चों के बीच जीवन गुजारने की मानसिक पीछे छूट गई।

मंजुल भगत की कहानी *सैलानियों का कश्मीर* की तरला को अपनी ढलती उम्र में फिल्म जगत के शोषण का एहसास होता है और ढलती उम्र के साथ उसके घटते वजूद का भी। फिल्म जगत् में महिलाओं के शोषण, दिखावेबाजी और झूठ से रू-ब-रू होकर अब तरला अपनी जवान होती बेटी को फिल्म जगत् से दूर रखना चाहती है।

हेतु भारद्वाज की कहानी *असंगत* बच्चों मे फिल्मों और फिल्मी गानों के प्रति बढ़ते रुझान के कारण गिरते बौद्धिक स्तर पर चिंता व्यक्त करती है। मोन्टू, शीलू, और चीटू अपने चाचा के साथ ऐतिहासिक धरोहरों का देखने नहीं जाना चाहते, बल्कि फिल्म देखना चाहते हैं। फिल्मी दुनिया के प्रभाव से बच्चे भी अछूते नहीं हैं। *पंकज बिष्ट* की कहानी *बच्चे गवाह नहीं हो सकते* उपभोक्तावादी प्रतिस्पर्धा, महँगाई और रोमांचकारी विज्ञापनों के शिकार निम्न मध्यमवर्गीय विशनदत्त के जीवन की त्रासद कथा है। *मो. आरिफ* की कहानी *पापा का चेहरा* फिल्मी ग्लैमर के पीछे भागते लोगों की अपने बच्चों से बदलती अपेक्षाओं को उजागर करती हैं। क्लर्क की नौकरी करने वाले पापा के ऊपर मीडिया का, विज्ञापनों और फिल्मी ग्लैमर का ऐसा भूत सवार है कि वह अपनी षोडशी बेटी को सानिया जैसा ही बनाना चाहता है। सानिया और सोनल के बीच के ढेरों अंतरों को दरकिनार करके पापा द्वारा सोनल पर इतना अधिक मानसिक दबाव डाला जाता है कि सोनल के अंदर हीन भावना और सानिया मिर्जा के प्रति घृणा पैदा हो जाती है। वह सानिया बनकर दिखाने के बजाय परीक्षा में फेल होकर दिखा देना चाहती है। वह अपने कमरे में लगे सानिया के पोस्टर को फाड़ देती है और सानिया की सुडौल जाँघों की तुलना में अपनी जाँघों को देखकर क्रोधवश अपनी जाँघे नोंच लेती है।

टी. श्रीनिवास की कहानी *राजू* और *राकेश मिश्र* की कहानी *राजू भाई डॉट काम* विज्ञापनों में दिखाई जाती काल्पनिक दुनिया के पीछे भागते लोगों की मानसिकता को उजागर करती है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा फिल्मी दुनिया और विज्ञापनों के 'ग्लैमर' के जरिए अपने उत्पादों की बिक्री के 'मीठे जहर' को देश के उच्च तबके से लगाकर नीचे तबके तक के लोगों तक फैला दिया गया है। गुजरे जमाने के 'हीरो' आज के आदर्श नहीं हैं, सचिन तेंदुलकर, आमिर

खान, ऋतिक रोशन जैसे व्यक्तित्व आज के लोगों के 'हीरो' हैं। राजू की मौत के जरिए कथाकार ने फिल्मी ग्लैमर और विज्ञापन की चकाचौंध में मरते उच्चादर्शों, मान्यताओं और सिद्धान्तों को प्रकट किया है। *कुणाल सिंह* की कहानी *इति गोंगेश पाल वृत्तान्त* के गोंगेश पाल का विज्ञापनों की आकर्षक दुनिया के पीछे भागना, अपना विज्ञापन कराकर खूब पैसे कमाने, देश-विदेश की सैर करने और नए जमाने की दौड़ में बढ़-चढ़कर भागीदारी करने की प्रबल इच्छा के जरिए कथाकार ने आर्थिक उदारीकरण, भूमण्डलीकरण और ग्लैमर के वशीभूत होकर बदलते देश-दुनिया में बेतहाशा भागते लोगों की मानसिकता को उजागर किया है।

फिल्मी चकाचौंध की ओर आकृष्ट होकर अपना जीवन बर्बाद करते लोगों के साथ ही समाज की मानसिकता में आए बदलाव और फिल्मी दुनिया के बढ़ते वर्चस्व के कारण उपजी विभिन्न स्थितियों, विद्रूपों के सभी पहलुओं को इस दौर की कहानियों में खुलकर उजाकर किया गया है। साथ ही फिल्मी ग्लैमर से आहत हुए लोगों के दर्द को भी प्रकट किया गया है।

(4) विवाहेतर यौन सम्बन्ध एवं अन्तर्जातीय प्रेम विवाह :-

विवाहेतर यौन सम्बन्धों के कारण उपजी स्थितियों और उसके विविध आयामों को हिन्दी कहानी में बड़ी गहराई के साथ उजागर किया गया है। *डॉ. जगदीश महाजन* की कहानी *मैं पत्नी हूँ किसी और की* विवाह से पहले के प्रेम सम्बन्धों के विवाह के बाद भी अस्तित्व में बने रहने के कारण पैदा होने वाली पारिवारिक टूटन और परस्पर प्रतिशोध की मनोदशा को उजगार करती है। *डॉ. जगदीश महाजन* की ही कहानी *बदलते मोड़* में भी विवाहेतर सम्बन्धों के कारण पति-पत्नी के बीच होती लडाई टूटते दाम्पत्य और बर्बाद होते परिवारों की व्यथा-कथा है। *यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'* की *एक हत्यारी कहानी* बीबी से ऊब चुके पति द्वारा विवाहेतर सम्बन्ध बनाने के बाद बीबी की हत्या कर देने की हद तक पहुँचने की स्थितियाँ उजागर करती है। *दिनेश पालीवाल* की कहानी *विस्फोट* के प्रकाश को शादी के तीन-चार वर्ष बाद अपनी पत्नी अच्छी नहीं लगती और वह आफिस की दूसरी लडकियों के साथ रोमांस करने लगा। जब उसकी पत्नी इससे ऊब गई तो पति को ऐसा सबक सिखाया कि वह राह पर आ गया।

केवल सूद की कहानी *विवशता और विवशता* विवाहित स्त्री की अतृप्ति के कारण पुराने प्रेम की ओर भागते मन की व्यथा-कथा है। *क्रांति त्रिवेदी* की कहानी *बाघिन* अपने ऊपर

लगे बाँझ के लांछन को धोने के लिए दूसरे पुरुष का संसर्ग पाने को व्याकुल स्त्री के दर्द को उजागर करती है। लगातार लांछन सहते-सहते और पति द्वारा मानसिक रूप से प्रताड़ित किये जाने के कारण क्रोध में वह पति को धक्का दे बैठी, जिस कारण वह मर गया। जेल में बंद रहते हुए वह परपुरुष का संसर्ग पाना चाहती है, ताकि बाँझ होने के लांछन को धो सके। *दयानंद पाण्डेय* की कहानी *घोड़े वाले बाऊ साहब* की बड़ी व छोटी दोनों पत्नियाँ पुत्र प्राप्ति की कामना में परपुरुष से संसर्ग करने से नहीं चूकतीं।

केवल सूद की कहानी *मुर्गीखाना* में वर्तमान के ज्वलंत मुद्दे को उठाया गया है। कहानी में मुर्गीखाना की मुर्गियों का बिम्ब बनाकर स्त्रियों के ऐसे बड़े समूह की ओर इशारा किया गया है जो पुरुषों के अवश्विास और अनचाही समस्या से बचकर यौन तृप्ति के लिए समलैंगिक सम्बन्ध बनाती है।

राजी सेठ की कहानी *दूसरे देशकाल में'* विवाहेतर सम्बन्धों के कारण पत्नी और प्रेयसी के बीच उठते आरोप-प्रत्यारोप की स्थितियाँ उजागर करती है। राजीव की पत्नी और प्रेयसी दोनों राजीव को सर्वस्व रूप में पाना चाहती हैं। पत्नी, प्रेयसी को चरित्रहीन कहती है तो प्रेयसी का कहना है कि अगर पत्नी से राजीव को पूरा प्यार मिलता तो वह नहीं भटकता। *डॉ. ऊषा माहेश्वरी* की कहानी *परिणति* के पात्र डॉ. सोम अपनी पत्नी के व्यवहार से आहत होकर अपनी शोध छात्रा ओमी से सम्बन्ध बना लेते हैं। *अचला नागर* की कहानी *पुलओवर* में पुलओवर के माध्यम से पति-पत्नी द्वारा एक दूसरे के विवाहेतर सम्बन्धों को मौन स्वीकृति दिये जाने की स्थितियाँ उजागर की गई हैं।

सामाजिक बंधन और रूढ़ियाँ अन्तर्जातीय प्रेम और विवाह को स्वीकार नहीं करतीं। *केवल सूद* की कहानी *बरगद बाबा* समाज में अन्तर्जातीय विवाह और प्रेम की अस्वीकार्यता के साथ ही समाज की क्रूरता को प्रकट करती है। *नारायण सिंह* की कहानी *कुलघाती* अन्तर्जातीय प्रेम विवाह से जुड़े एक ज्वलंत आयाम प्रस्तुत करती है। जाति-पाँति और रक्त की शुद्धता को लेकर खिंची विभेद की दीवारों को तोड़ने की कोशिश के दुष्परिणामों और दूषित मानसिकता के जहर को पीते हुए दिलीप और उसकी बीबी को अन्तर्जातीय विवाह करना तब और भी कष्टप्रद हो गया जब उनकी बेटी विवाह योग्य हो गई।

विवाहेतर यौन सम्बन्ध और अन्तर्जातीय प्रेम विवाह दोनों ही वर्तमान के ज्वलंत मुद्दे

हैं और आठवें दशक के बाद की कहानियों ने समय के सत्य से स्वयं को जोड़ते हुए दोनों ही मुद्दों को, इनके विविध पक्षों को अपने में उतारा है।

(5) भिखारी और पागलों की दुनिया एवं उनके प्रति दृष्टिकोण :-

सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में आए बदलावों के कारण, रोजगार के अभाव में या शारीरिक अक्षमता के कारण अर्थार्जन में अक्षम होने वाले लोगों की, पागलों और भिखारियों की अपनी दुनिया होती है। आज के समाज में पागलों और भिखारियों को हेय दृष्टि से देखा जाता है और हास्य का पात्र बनाते हुए उन्हें कई तरीके से प्रताड़ित भी किया जाता है। आठवें दशक के बाद की हिन्दी कहानियों में भिखारी और पागलों की जिंदगी के विविध आयामों को शिद्दत के साथ उजागर किया गया है। *दिनेश पालीवाल* की कहानी *कुछ बेमतलब लोग* के बेमतलब लोग यही भिखारी है जो दुनिया के ढेरों सुख-साधनों के सहारे जिंदा रहने वाले लोगों की दुनिया मे अप्रासंगिक होते है, जो अपने पेट पालने की मजबूरी में हर जगह भीख माँगने को इकट्ठा हो जाते हैं। नौकरी, राजनीति, व्यापार और धर्म आदि से इनका कोई वास्ता नहीं है। इन सबके बीच भिखारियों का जीवन के ख़ातिर संघर्ष चलता ही रहता है। भिखारियों को भी बेहतर जीवन की दरकार होती है, स्वतंत्र जीवन जीने की इच्छा होती है। *श्रीकांत वर्मा* की कहानी *घर* में यही जिजीविषा प्रकट होती है। कहानी के महिला व पुरुष भिखारी पति-पत्नी की तरह रहते हुए पुलिस की प्रताड़ना और लोगों की डाँट-फटकार सुनते हैं। इसके साथ ही साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाने में अड़चन के कारण एक 'घर' चाहते हैं। ताकि उनका भी कुछ अस्तित्व बन सके। इसी तरह *आलमशाह ख़ान* की कहानी *तिनके का तूफान* में अधिक से अधिक धन कमाकर अपना अस्तित्व बनाने के लिए आपस में ही झगड़ते भिखारियों की दशा को बताया गया है। *कंगाली (जवाहर सिंह)* का घसीटू को उसकी अजीबोगरीब शारीरिक बनावट के कारण दुलारी और उसका पति दहेज में माँग ले गया था। अधिक से अधिक भीख कमाने के लोभ में वह घसीटू की सेहत का ख्याल नहीं रखता लिहाजा उसकी हालत खराब हो जाती है। घसीटू के बेकार हो जाने पर वह उसे दुलारी के पास छोड देता है दुलारी और घसीटू समाज की उपेक्षा सहते हुए अपने अस्तित्व का संघर्ष करते रहते हैं। लोगों के मन में पनपते अविश्वास और नफरत को महसूस करने और भोगने के बावजूद भिखारी अपनी दुनिया में ही मशगूल रहते हैं और अपना वजूद बनाए रखने के लिए संघर्ष करते रहते हैं। *चित्रा मुद्गल* की कहानी *चेहरे* में इन्ही

स्थितियों को उजागर किया गया है।

भिखारियों जैसी ही उपेक्षा, घृणा और प्रताड़ना पागलों को भोगनी पड़ती है। गरीबी, उपेक्षा, उत्पीड़न या मानसिक तनाव के कारणों को जानते-समझते हुए हिन्दी कहानी में पागलपन के विविध आयामों को उजागर किया गया है। *मार्कण्डेय* की कहानी *हंसा जाइ अकेला* का हंसा अपने गाँव के लोगों की उपेक्षा, राजनीतिक उत्पीड़न और सुशीला जी की बीमारी को सहन न कर पाने के कारण पागल हो जाता है। सुशीला जी के प्रति उसके लगाव को ग्रामीण सहन नहीं कर पाते और उसको शंकालु दृष्टि से देखते हैं, उसे मजाक का पात्र भी बना देते हैं।

समय और समाज में आए बदलाव और भौतिकता व उदारीकरण के बढ़ते दबाव के कारण उपजती मानसिक असहजता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचकर पागलपन बन जाती है। *उदय प्रकाश* की कहानी *पॉल गोमरा का स्कूटर* के पात्र रामगोपाल सक्सेना द्वारा अपना नाम बदलकर पॉल गोमरा कर लिया जाना प्रकारान्तर से मानसिक असहजता और असामान्यता को ही प्रकट करता है। पॉल गोमरा स्कूटर खरीदने का दूसरा फैसला भी लेता है क्योंकि "लोग बाग मारुती, एस्टीम, सिएलो, जेन, सियेरा, सूमो, होंडा, कावासाकी, सुजुकी और पता नहीं किन-किन गाड़ियों में चलने लगे थे। कहाँ से कहाँ पहुँच गए थे। और पॉल गोमरा को साइकिल तक चलानी नहीं आती थी। वह समाज के आगे-आगे कबीर-प्रेमचंद की तरह मशाल लेकर चलने वाले अगुआ-अवाँगार्द लेखक की बजाय, समय के पीछे-पीछे किसी तरह रेंगने-घिसटने वाले कनखजूरे, गोजरा, केंचुआ या घोंघा बनते जा रहे थे।"[44] पॉल गोमरा के दोनों फैसले उसे आधुनिकता की दौड़ में मुकाम तक नहीं पहुँचा पाते। सड़क दुर्घटना के बाद उसे आधुनिकता की अंधी दौड़ का अहसास होता है। अब गाँधी के डाँडी मार्च और क्विट इंडिया जैसी ढेरों बातों को लेकर गोमरा भाषण देता है और भीड़ तमाशा बनाकर उसकी हरकतों से अपना मनोरंजन करती है। आधुनिकता की अंधी दौड़ से त्रस्त और आहत सभी लोग पॉल गोमरा की तरह पागल ही घोषित कर दिए जाते हैं।

माधव नागदा की कहानी *जहरकाँटा* का रामा शहरी लोगों के शोषण और दंगों में फँस्कर दंगाइयों व पुलिस के अत्याचार का शिकार होकर पागल हो जाता है। वह काम की तलाश में शहर आया है यह बात वह बार-बार पुलिस और दंगाइयों को बताता है लेकिन पुलिस और दंगाई बार-बार उससे नाम और जाति पूछते हैं, प्रताड़ित करते हैं। पुलिस उसे पाकिस्तानी

एजेण्ट समझकर उसे डराती, धमकाती है। इस उत्पीड़न और अत्याचार के कारण रोजगार पाने का अरमान ध्वस्त हो जाता है और उसके सामने भूखों मरने की नौबत आ जाती है और दंगे शांत हो जाने के बाद भी वह मानसिक रूप से सामान्य नहीं हो पाता। "धीरे-धीरे शहर की स्थिति सामान्य हो गई। परन्तु रामा अस्पताल से छूटकर भी असामान्य बना रहा। उसकी मानसिक हालत पहले से ज्यादा खराब हो जाती है। वह तिमिलाता-सा सड़कों पर दौड़ लगाता और कुर्ता उठाकर चिल्लाता- लोगों! देख लो मेरी जात। अच्छी तरह देख लो मैं कौन हूँ? ये रही मेरी जात।"[45]

क्षितिज शर्मा की कहानी *सीमांत* का गणेशी अपने बेटे के बिछुड़ जाने के दुख में पागल हो गया है। गाँव वाले उसके साथ सहानुभूति रखते हैं, जब उसकी हरकतें गाँव वालों के लिए असहनीय हो जाती हैं तो गाँव वाले उसे पुलिस के हवाले कर देते हैं। पुलिस का दरोगा उसके साथ मार-पीट और अमानवीय व्यवहार करता है, मानो पागल के प्रति उसकी कोई जिम्मेदारी न हो। दरोगा के बहाने कथाकार ने पुलिस और प्रशासन द्वारा पागलों के प्रति गैर जिम्मेदाराना और अमानवीय बर्ताव किये जाने की दयनीय स्थिति को प्रकट करना चाहा है। पागल हो जाने के कारणों का समाधान करके पागलों की जिंदगी को भी सुधारा जा सकता है। उन्हें भी सामान्य नागरिक की तरह जीने का अवसर मिल सकता है लेकिन समाज और व्यवस्था-तंत्र दोनों ही ऐसा नहीं करते।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भिखारी और पागलों की जिंदगी के विविध पहलुओं को, उनके जीवन की विषमताओं, यातनाओं और कष्टों को उजागर करते हुए आठवें दशक के बाद की हिन्दी कहानियों ने वर्तमान के यथार्थ को, समय के सत्य को समग्रता के साथ प्रकट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है।

(6) मानवीय संवेदनाओं का सकारात्मक पक्ष :-

आज के जीवन की भागमभाग में, व्यवस्था की खामियों व विद्रूपताओं में, सामाजिक-पारिवारिक संरचना व सम्बन्धों के बिखराव में, आधुनिकता, फैशनपरस्ती, बाजारीकरण, उपभोक्तावादी मानसिकता में और बढ़ते अपराधों के 'ग्राफ' में मानवीय मूल्य और मानवीय संवेदनाएँ निरंतर गिरती चली जाती हैं। इन हालातों में मानवता, मानवीय संवेदना और मानव-मूल्य के उच्चादर्शों को स्थापित करने वाले लोग विरले ही होते हैं। ऐसे लोगों का व्यक्तित्व

और जीवन संघर्ष भी इस दौर की हिंदी कहानियों से अछूता नहीं हैं। नवनीत मिश्र की कहानी गलीज समय में शेष रह गयी इन्सानियत के जज्बे को उजागर करती है। *मिथिलेश्वर* की कहानी *शायद हाँ शायद नहीं* का मेघबरन अपने भाई श्यामबरन के हत्यारे शिशिर से बदला लेने के लिए उसके घर पहुँचता है, लेकिन शिशिर की माँ और बहन की हालत देखकर, उन दोनों के प्यार-स्नेह के वशीभूत होकर अपना हिंसक रुख भूल जाता है और मदद करने को उद्यत हो जाता है।

अचला नागर की कहानी *काँतर* का मुरारी डरपोक जरूर है, लेकिन शराबी और अय्याश नहीं इसलिए अपने साथियों- जगदीश और पाण्डू की बदनीयती का विरोध करता है। जगदीश और पाण्डू अपनी पड़ोसन कस्तूरी की लड़कियों को पाने के खातिर झूठी सहानुभूति दिखाते हैं और कस्तूरी की मौत हो जाने के बाद उसे जलाने का भी इंतजाम करते हैं। लेकिन मुरारी को कष्ट है कि इस सहानुभूति के बदले वे कस्तूरी की लड़कियों की इज्जत खराब करेंगे, लिहाजा वह कस्तूरी की जलती चिता में कूद पड़ता है। मुरारी जैसे लोग दुनिया में बिरले ही मिलेंगे जो समय-असमय कभी भी अपने चरित्र से पतित नहीं होते, लेकिन ऐसे लोगों को आज का जमाना डरपोक, हरामी, बेवड़ा और शराबी ही समझता है। इसी तरह के लांछन और उलाहने *गोविन्द मिश्र* की कहानी *अर्थ ओझल* के पंडित दीनदयाल को मिलते हैं, केवल इसीलिए कि उन्होंने शिक्षक होने के दायित्व का निर्वहन करते हुए गरीब-मेधावी छात्रों को पढ़ाने के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया, कि उन्होंने स्वयं को घर तक ही सीमित रखने के बजाय सम्पूर्ण संसार को अपना घर समझा। उनके पुत्र ने भी उन्हें पथ-भ्रष्ट समझा और लोगों द्वारा उड़ाई गई अफवाहों को सच माना। पंडित दीनदयाल की मृत्यु के कई वर्षों बाद उनके पुत्र और शिष्य को उनके व्यक्तित्व की महानता और अपनी संकुचित मानसिकता का अहसास होता है- ''हमारा अपना कटोरा ही इतना बड़ा हो गया है कि वह नहीं भरता। और भरने के चक्कर में ही हम बीत चुके होते हैं। हम छोटे हो गये हैं और छोटे होते जा रहे हैं।''[46]

अचला नागर की कहानी *अर्द्धनारीश्वर* जीवन के नितान्त अनछुए पहलू को प्रकट करती है। आज के अमानवीय और बर्बर युग में भी मानवता मरी नहीं है। कहानी का पात्र हिजड़ा (नपुंसक) खुद माँ-बाप नहीं बन सकने के बावजूद मानवता से, मानवीय संवेदनाओं से गहराई तक जुड़ा हुआ है। इसी कारण रेलगाड़ी में आसन्नप्रसवा स्त्री की मदद हेतु वह आगे आता है। जबकि तथाकथित सभ्य और पढ़े-लिखे समाज के पहरुए अपनी जान आफत में डालने

के भय से तमाशगीर ही बने रहते हैं। अगर उस हिजड़े ने औरत की मदद नहीं की होती तो वह शायद मर ही जाती। मनुष्य के रूप में वह उस औरत के लिए, उस परिवार के लिए साक्षात् देवता हो गया- अर्द्धनारीश्वर।

पाशविकता, क्रूरता, स्वार्थलिप्सा, घृणा, आपसी वैर और अहं के द्वन्द्व में जल रहे समाज में शेष रह गयी मानवता के प्रतीकों को, मानवीय संवेदनाओं को जिलाए रखने वाले लोगों को और समाज को सही रास्ता दिखाने वाले व्यक्तित्वों को अपने में समेटते हुए आठवें दशक के बाद की हिन्दी कहानियों ने मानवीय संवेदनाओं और मानवता के प्रति अपने उत्तरदायित्व को भी बखूबी निभाया है।

(7) राष्ट्रीयता की भावना :-

देश की गुलामी के समय आजादी पाने के लिए उमड़ने वाली राष्ट्रीयता की भावना आजादी के बाद लुप्त होती चली गई। स्वार्थलोलुपता, भ्रष्टाचार और भ्रष्ट मानसिकता की गर्द ने राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना को ढक दिया *स्वयं प्रकाश* की कहानी *नेता जी का चश्मा* राष्ट्रीयता के इसी ह्रास को उजागर करते हुए देश की महान विभूतियों के प्रति कृतघ्नता के भाव पर चिंता व्यक्त करती है और आने वाली पीढ़ी से राष्ट्रीयता की भावना की दरकार करती है।

संजय खाती की कहानी *मादरे वतन* भी कमोबेश इसी कथ्य को प्रकट करती है। कहानी के पात्र स्वतंत्रता सेनानी इस्लाम शेख कहते हैं- "मैं जाग जाना चाहता हूँ। अपनी दुनिया में...... गुलाम मुल्क में........... सन् 37 में फिरंगियों से लड़ता हुआ ....मेरे बच्चे, मैंने बहुत खतरे उठाए हैं, मौत को साथ लिए घूमता हूँ, कई बार गोली खाई है। मैं कभी नहीं डरा। पर यह सपना मैं नहीं झेल सकता........... इससे बेहतर तो फिरंगी आ जाते, मैं उनसे लडकर मरना पसंद करता।"[47] इस्लाम शेख को देश की वर्तमान दयनीय हालत कचोटती है, वे अपना प्रतीकात्मक विरोध भी दर्ज कराते हैं। लेकिन पुलिस द्वारा उन्हें पागल सिद्ध कर दिया जाता है और इतना प्रताड़ित किया जाता है कि वे मर जाते हैं। *हिमांशु जोशी* की कहानी *तपस्या* भी एक स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के हृदय की वेदना को उजागर करती है।

अनिल कुमार सिन्हा की कहानी *दालान* के रामखेलावन बाबू भी ऐसी ही मानसिकता वाले स्वतंत्रता संग्राम सेनानी हैं। जबकि बाबू हरिनंदन सिंह जबरदस्ती स्वतंत्रता संग्राम सेनानी बनकर लाभ कमाते रहे, दलाली खाते रहे और एमएलसी बनने का ख्वाब देखते रहे।

अचला नागर की कहानी *देश के लिए* में राष्ट्रीयता की बुझती ज्योति को पुनः देदीप्यमान करने का प्रयास किया गया है। कहानी की वेश्या नायिका देशभक्ति के रास्ते से भटके नवयुवकों को रास्ता दिखाती है। उसका बेटा उसके लिए दलाली करता है। और वह अपना तन बेचकर कमाई से राखियाँ बनाती है। और कश्मीर युद्ध में लगे सैनिकों को हर वर्ष रक्षाबंधन पर भेजती है, अपने बेटे को भी सेना में भेजना चाहती है। *डॉ. कामिनी* की कहानी *बिखरे हुए मोर पंख* का फकीरा अपनी मातृभूमि से प्रेम करने, ईमानदारी से जीवन-यापन करने और सत्कर्मों व खुदमिजाज होने के कारण पूरे इलाके में चर्चित है। गरीब होने के बावजूद पूरी जिंदादिली के साथ जीवन जीने वाला फकीरा मरने के बाद भी लोगों को हमेशा याद आता रहेगा।

दूसरी ओर *हिमांशु जोशी* की कहानी *कोई एक मसीहा* के सुरेश भाई समाजसेवा, गाँधीवाद और विनोबावाद का लबादा ओढ़कर सबके सामने तो 'मसीहा' बन जाते हैं, लेकिन एकान्त में अपने असली रूप में आ जाते हैं। अंडे और शराब के साथ ही पन्द्रह वर्षीय लड़की को रात में भोगते हैं, इसकी व्यवस्था महिला आश्रम की संचारिका लघुबेन करती है, जिसे सुरेश भाई काफी पहले से भोगते चले आ रहे हैं। अगले दिन सुबह सुरेश भाई पुनः समाजसेवा का लबादा ओढ़ लेते हैं। वह लड़की बेचारी लुटी हुई-सी इस असलियत को देखती रह जाती है। *गोविन्द मिश्र* की कहानी *अवरुद्ध* में रामेश्वर भाई आज की राजनीति में फैले भ्रष्टाचार के जहर से आगे आने वाली पीढ़ी को बचाना चाहते हैं। खादी के वस्त्र और टोपी आदि भ्रष्टाचार को छिपाने का साधन बन गई है, जो आजादी की लड़ाई के समय क्रान्तिकारियों की 'ड्रेस' थी। रामेश्वर भाई को खादी की यह दुर्दशा दुःखी करती है। *रजनी गुप्ता* की कहानी *यूँ हुआ राज्याभिषेक हिन्दी का* भी उल्लेखनीय है, जिसमें 'हिन्दी दिवस' के नाम पर की जानी वाली रस्म अदायगी पर करारा प्रहार किया गया है। *विश्वमोहन* की कहानी *अपना वतन* में बांग्लादेश से भागे लोगों के हृदय में उमड़ती विस्थापन की पीड़ा और अपने वतन के प्रति लगाव को उजागर किया गया है। *रमाकांत* की कहानी *कार्लो हब्शी का संदूक* में दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद और गुलामी की त्रासदी को झेल रहे कबीलाई आदिवासियों के बीच से निकलकर पढ़ने के लिए भारत आए कार्लो हब्शी के मन में अपने लोगों व अपने वतन के प्रति उमड़ते भावों को उजागर करते हुए भारत की दक्षिण अफ्रीका के प्रति नीति और कार्लो के स्वदेश वापस लौटने

की विवशता को भी प्रकट किया गया है।

राष्ट्रीयता की भावना के ह्रास के साथ ही राष्ट्र और राष्ट्रीयता के प्रति सजग चेतना के क्षीण स्वरों को प्रकट करने का प्रयास भी सटीक और सार्थक रूप में इस दौर की कहानियों में हुआ है।

(8) दंगे, आतंक और युद्ध की विभीषिका :-

दंगों और आतंक के पूरे मनोविज्ञान को हिंदी कहानियों में बडी शिद्दत के साथ प्रकट किया गया है। *विभांशु दिव्याल* की कहानी *बिरादरी* में दंगे के फलस्वरूप मारे जाने वाले दिहाड़ी मजदूरों, कामगारों और दो जून की रोटी के लिए संघर्ष करने वाले लाचार लोगों की व्यथा को उजागर करते हुए यह बतलाने का प्रयास किया गया है कि दंगों और कर्फ्यू में किसी की जाति-बिरादरी नहीं रह जाती और वही लोग अधिकांशतः मारे जाते हैं, जिनका दंगों से कोई वास्ता नहीं होता। *पंकज बिष्ट* की कहानी *मोहनजोदड़ो,* सिख दंगों में मारे गये निर्दोष लोगों के जरिए साम्प्रदायिकता और नफरत की फसल बो कर लाभ कमाने की मानसिकता के पोषक उग्रवादियों की करतूतों पर प्रकाश डालती है। *विभांशु दिव्याल* की ही कहानी *आतंक मुक्ति* आतंक फैलाने वालों की मानसिकता पर उंगली उठाते हुए आतंक के साये में जी रहे लोगों की व्यथा-कथा कहती है।

अरुण प्रकाश की कहानी *भैया एक्सप्रेस* पंजाब के दंगों और आतंकवाद की बलि चढ़ गए गरीब, मेहनतकश बिहारी मजदूरों की व्यथा-कथा कहती है। यात्रा-विवरण के रूप में लिखी गयी इस कहानी में जातीयता और क्षेत्रीयता के द्वन्द्वों के बीच वीभत्स तरीके से बेमौत मरने वाले लाचार-बेबस मजदूरों की यातना बेबाकी के साथ उजागर की गई है। *भीष्म साहनी* की कहानी *नौसिखुआ* पंजाबी आतंकवादियों द्वारा सीधे-सादे नवयुवकों को आतंकवादी बनाने के लिए प्रेरित करने और अपराध के लिए उकसाने की मानसिकता उजागरी करती है। कहानी का सिख नवयुवक दूकानदार को मारने जाता है, लेकिन मौके पर उसका जमीर डोल जाता है, यह देखकर पीछे से दूसरा आतंकवादी उस नवयुवक को ही मार डालता है। *स्वयं प्रकाश* की क़हानी *क्या तुमने कभी कोई सरदार भिखारी देखा,* सिख आतंकवादियों की करतूतों के कारण सभी सिखों के प्रति घृणा की मानसिकता को प्रकट करती है।

सी. दास बांसल की कहानी *गृहयुद्ध, नीलकांत* की कहानी *एक रात का मेहमान*

और *हृदयेश* की कहानी *किस पर* इंदिरा गाँधी की हत्या के बाद पंजाब में भड़के सिख विरोधी दंगों के पूरे चरित्र को; मारे जाते निर्दोष लोगों की व्यथा को; बेबस-असहाय महिलाओं, लाचार बूढ़ों, बेकल तड़पते बच्चों के दर्द को; दंगों की आड़ में अपराधियों द्वारा की जाती लूटपाट, आगजनी, बलवा, अपहरण और बलात्कार एवं फैलती झूठी अफवाहों के कारण अस्त-व्यस्त होते जनजीवन को बडी शिद्दत के साथ उजागर करती हैं।

विजय की कहानी *एक चिट्ठी अहमदाबाद से*, गुजरात के दंगों की त्रासदी को प्रकट करती है। अयोध्या के दंगों के पीछे की मानसिकता और दंगे भड़काने में राजनीति के योगदान को खोजने का प्रयास करती कहानी है- *संजय खाती* की *अयोध्या*। कहानी में भारत के बदलते वैचारिक परिवेश को देखने की, लोगों के भीतर पनपते विद्रोह, अविश्वास, डर, नफरत और उन्माद की मानसिकता को जानने-समझने का प्रयास किया गया है।

सरयू शर्मा की कहानी *कितनी बार* में पूर्वोत्तर राज्य- मिजोरम में फैले अलगाववाद और सशस्त्र अलगाववादी संगठन- मिजो नेशनल फ्रण्ट के खात्मे के लिए फौज और पुलिस द्वारा सीधे-सादे लोगों पर की जा रही ज्यादती और मारकाट के कारण दुगुने वेग से पनप रहे असंतोष को उजागर किया गया है। *चन्द्रकान्ता* की कहानी *किस्सा गाशकौल* विस्थापित कश्मीरी पंडितों की व्यथा-कथा है। कश्मीरी आतंकवादियों के कारण अपना घर-बार छोड़कर बारामूला से भागे गाशकौल को अपना वतन छूट जाने का दर्द है, इस दर्द को बाँटने के लिए वे किस्सागो बन गए हैं। कश्मीर में आतंकवादियों द्वारा उनकी पूर्व प्रेमिका को बेइज्जत किये जाने की खबर उनके धैर्य को तोड़ देती है और वे शरणार्थी कैम्प में तड़पकर मर जाते हैं।

चन्द्रकान्ता की कहानी *फाँस* कश्मीर के गाँवों के जनजीवन की पड़ताल करती है। आतंकवाद और अलगाववाद के कारण बढ़ते वैमनस्य से बेखबर गाँव के लोगों के बीच आपसी सम्बन्ध बरकरार रहते हैं, फिर भी आतंकवाद के कारण कश्मीर की खूबसूरत वादियों के सौन्दर्य में आ गई विद्रूपता सभी के मन में फाँस की तरह लगी हुई हैं।

भीष्म साहनी की कहानी *झुटपुटा* का मास्टर कन्हैयालाल जब भी किसी घटना को सुनता तो किंकर्तव्यविमूढ़ होकर रह जाता है- "जब आतंक वादियों द्वारा हत्याएँ हो रहीं थी, तब भी वह यही कहता था, जब स्वर्ण मंदिर में फौजी कार्यवाही हुई तो भी उसने यही कहा, जब इंदिरा जी की नृशंस हत्या हुई तो भी वह यही कहता रहा, और जब उसे राष्ट्र, कगार पर खड़ा

लग रहा है, तो भी उसके मुँह से यही शब्द निकल रहे हैं।"[48] दंगों के नाम पर लूटपाट की घटनाओं से क्षुब्ध मास्टर कन्हैयालाल सोचने को विवश हो जाता है कि यह युग इतिहास का झुटपुटा है, हम इतिहास में क्या लिखकर जाएँगे। *मिथिलेश्वर* की कहानी *लापता* में एक सैनिक की पत्नी दुश्मन देश के पकड़े गए सैनिक को भगा देती है, क्योंकि वह जानती है कि युद्ध में सैनिक की भूमिका अपने देश के शासकों के आदेश पर निर्भर करती है, पकड़े गए सैनिक को मिलने वाला दण्ड उस देश के शासकों को नहीं वरन् सैनिक को और उसके परिवार को भोगना होगा, जो इस स्थिति के लिए कतई उत्तरदायी नहीं। सैनिक की पत्नी द्वारा उठाया गया यह कदम युद्ध में सैनिकों को झोंक देने वाले शासकों की शून्य मानवीय संवेदनाओं पर तीखा प्रहार है।

विश्वमोहन की कहानी *न्यूयार्क से नई दिल्ली* दुनिया के देशों द्वारा अपनी जनता के अमन-चैन की परवाह किए बगैर अपनी हनक के लिए जनता की मूलभूत सुविधाओं की कटौती करके युद्ध की आग में समूचे देश को झोंक देने के खिलाफ एक विदेशी युवती के संघर्ष की कहानी है। शांति की तलाश में अपना वतन छोड़ आई युवती द्वारा अमेरिकी दूतावास के सामने किया गया आमरण अनशन भले ही प्रतीकात्मक या निष्प्रभावी हो, लेकिन विश्वशांति की बात करने वालों के लिए मील के पत्थर से कमतर नहीं है।

कुल मिलाकर देश के साथ ही समूचे विश्व में व्याप्त आतंक, अशांति और क्रूरता की विभीषिका के साथ ही आम जनता की व्यथा और राजनीतिक कारणों से भड़के दंगों के फलस्वरूप तबाह होती आम जनता के दर्द को हिन्दी कहानियों में खुलकर प्रकट किया गया है।

(9) विज्ञान और तकनीक के दुष्प्रभाव, प्रकृति और पर्यावरण के विनाश को रेखांकित करती कहानियाँ :-

विज्ञान और तकनीक के दुष्प्रभावों और प्रकृति व पर्यावरण के नष्ट होते जाने से मानव जीवन के आसन्न संकट की आहटों को भी इस दौर के कथाकारों ने खूब पहचाना है एवं 'फैण्टेसी' के तौर पर विज्ञान कथाएँ भी लिखी हैं। *राकेश सिंह* की कहानी *रक्तबीज* इसी तरह की विज्ञान कथा है। जिसमें विज्ञान के अतिचार और विज्ञान के प्रसार की पराकष्ठा के फलस्वरूप समाज और परिवार में विस्फोटक होती स्थितियाँ दर्शाई गयीं हैं। कहानी के पात्र प्रो. दिवाकर कुलकर्णी ने ख्याति अर्जित करने के चक्कर में अपना 'क्लोन' अपनी बेटी के ही गर्भ से पैदा

किया और उस 'क्लोन' ने अपनी जननी के साथ ही बलात्कार कर डाला।

अचला नागर की कहानी *नींबू का पेड़* प्रकृति और मनुष्य के आपसी लगाव से लबरेज सुनहरे अतीत की याद करते हुए भविष्य के दुरूह संकट पर चिंता व्यक्त करती है। अपनी कहानी *अगले अँधेरे तक* में कथाकार *जितेन्द्र भटिया* ने अपनी विस्तृत दूरदृष्टि द्वारा वर्तमान भौतिकतावादी, बाजारवादी, धर्मान्ध, उपभोक्तवादी अपसंस्कृति, कम्प्युटर युग की पराकाष्ठा और प्राकृतिक संसाधनों की भयाहता के पूर्वानुमान को क्रमबद्धता से प्रस्तुत किया है। सुरेश उनियाल की कहानी मानव स्पर्श भी इसी चिंता पर केन्द्रित है। कहानी में खाद्य उत्पन्न करने हेतु जमीन नही बचने के कारण कैप्सूल खाकर जिंदा रहते मानव हैं, म्यूजियम में सुरक्षित रखे हुए खाद्य पदार्थ हैं, घटते ऑक्सीजन स्तर को पूरा करने के लिए लगे हुए बड़े-बड़े संयंत्र हैं और इसी तरह की ढेरों वैज्ञानिक व तकनीकी वस्तुओं के इर्द-गिर्द मँडराते बेबस और निरीह मानव हैं।

पर्यावरण विनाश के साथ ही जनसंख्या वृद्धि की समस्या भी जुड़ी हुई है। जनसंख्या वृद्धि के कारण बिगड़ते पर्यावरण संतुलन और अनैतिक यौनाचारों की भयावहता *सुरेश उनियाल* की कहानी *परखनली शिशुओं के युग में* में प्रगट होती है। कहानी में बढ़ती जनसंख्या और एड्स जैसी महामारी के साथ-ही-साथ बढ़ते यौन रोग, विवाहेतर सम्बन्ध और यौन-अनाचार की पराकाष्ठा के कारण सख्त सरकारी नियंत्रण में स्त्री-पुरुष के यौन सम्पर्कों के केवल कल्पनालोक में सिमट जाने और सरकारी 'आनन्द लोक' में वैज्ञानिक तरीके से यौनेच्छाओं की पूर्ति कराए जाने व केवल परखनली द्वारा ही शिशुओं को उत्पन्न करा सकने की बाध्यता के आने वाले युग की, भविष्य के संसार की कल्पना को विशद रूप में व्याख्यायित करती है।

मिथिलेश्वर की कहानी *डॉ. सेन का सपना* विज्ञान के विनाशकारी और जनकल्याणकारी स्वरूपों के बीच द्वन्द्व को उजागर करती है। डॉ. सेन का सपना वर्तमान की उस हकीकत के निकट है, जब दुनिया के कुछ आतंकी और दबंग किस्म के देश शांति की खातिर किए जाने वाले नए आविष्कार को पसंद नहीं करते।

पर्यावरण विनाश के संकट और विज्ञान के दुष्प्रभाव की स्थितियों पर आधारित कहानियाँ भले ही संख्या में कम हों, किन्तु इनकी प्रभावोत्पादकता और मानव, मानवता तथा मानवेतर जगत् के प्रति, समूची सृष्टि के प्रति जागरूक संवेदना के प्रस्तुतीकरण को नकारा नहीं जा सकता।

(10) आदिवासी समाज की कहानियाँ-

आठवें दशक के बाद की हिंदी कहानियों में आदिवासी समाज के शोषण, गरीबी, लाचारी, जीवन-संघर्ष और अस्तित्व की लड़ाई को प्रकट किया गया है। *आलमशाह खान* की कहानी *खून खेती* के बागरिया जनजाति की औरतों को जब पता चलता है कि उनके जुएँ विज्ञान के विद्यार्थियों पढ़ाई मे उपयोगी हैं और जुएँ बेचकर भी पैसे कमाए जा सकते हैं तो वे अपने बच्चों को कालेज के सामने जुएँ बेचने के लिए भेज देती हैं। वनों के विनाश और जीवनीय जरूरतों की आवश्यकता के कारण गाँवों से शहर आ गए अदिवासियों के सामने रोटी का संकट इस स्थिति तक पहुँच जाने को मजबूर कर देता है।

वनों के विनाश के साथ ही प्राकृतिक संसाधनों पर पूंजीपति और दबंग लोगों के बढ़ते वर्चस्व ने आदिवासियों को पलायन के लिए मजबूर किया है। इसी तथ्य पर आधारित *संजीव* की कहानी *प्रेतमुक्ति* सामंतशाही मानसिकता वाले गाँव के मुखिया द्वारा आदिवासियों के हक पर जबरदस्ती कब्जा कर लेने और विरोध करने वालों को मार डालने और आदिवासियों के पलायन करने की व्यथा-कथा है। मुखिया जबरदस्ती नदी पर बाँध बनाकर अपने खेतों में पानी ले जाता है आदिवासियों के जानवर प्यासे रहकर मरने लगते हैं खेत बंजर हो जाते हैं और धीरे-धीरे खेतिहर आदिवासी मुखिया के बँधुवा मजदूर हो जाते हैं, बाद में उन्हें शहर की ओर पलायन करना पड़ता है।

आदिवासी महिलाओं को भी नारकीय यंत्रणाओं और यौन शोषण से जूझना पड़ता है। *संजीव* की कहानी *दुनिया की सबसे हसीन औरत* की आदिवासी महिला सब्जी बेचकर अपना गुजारा करती है। अपने पेशे में उसे टीटी, पुलिस और यात्रियों की डाँट-फटकार, शोषण और उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। फिर भी उसे हड़काया जाता है। ओरांव जनजाति की यह महिला अपने पास खूब पैसे होन का अरमान सँजोए रहकर सबकुछ सहन करती रहती है। *मनीष राय* की कहानी *शिलान्यास* में एक जज द्वारा मुरिया जनजाति की औरत को भविष्य के सुनहरे सब्जबाग दिखाकर यौन शोषण किया जाता है। और उसे अपने हालत पर मरने के लिए छोड़ दिया जाता है। *राकेश वत्स* की कहानी *अवशेष* में शहर से पिकनिक मनाने आए हुए लोगों द्वारा आदिवासी युवती के साथ अश्लील मजाक करते हुए दिखाया गया है। जबकि वह युवती उन 'शहरी लोगों' को यह बताने गई थी कि उनकी गाड़ी के ड्राइवर का एक्सीडेण्ट हो

गया है।

अरुण प्रकाश की कहानी *बेला एक्का लौट रही है* की बेला अपने माँ-बाप और समाज के लोगों पर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ संघर्ष करना चाहती है, किन्तु शिक्षिका बनने के बाद अपने कार्य क्षेत्र में ही अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा के संघर्ष में उलझकर रह जाती है। राजनीतिक स्तर पर भी आदिवासियों के कल्याणार्थ कार्य किये जाने का ढोंग रचा जाता है। *भालचन्द्र जोशी* की कहानी *पहाड़ों पर रात* आदिवासियों के कल्याणार्थ किए जाने वाले राजनीतिक और प्रशासनिक प्रयासों की पोल खोलती है- "कितनी अजीब बात है। हर महीने हम लोग 'प्रोग्रेस रिपोर्ट' भेजते हैं। सालो हो गये। शायद इसके पहले दूसरे भेजते होंगे। लेकिन प्रोग्रेस कहाँ हुई? इन आदिवासियों के टपरों के केवलुओं का रंग तक नहीं बदला।"[49]

संजीव की कहानी *पाँव तले की दूब* में उपेक्षित, तिरस्कृत और शोषित आदिवासियों के अपने जीवन और अस्तित्व के लिए संघर्ष को उजागर किया गया है। सरकार द्वारा औद्योगिक विकास के लिए आदिवासियों की जमीनें अधिग्रहीत कर ली जाती हैं। और उन्हें थोड़ा सा मुआवजा दे दिया जाता है। सरकार की इस नीति के खिलाफ शुरू हुआ आन्दोलन आदिवासियों के अस्तित्व की जंग में तब्दील हो जाता है। दूसरी ओर *ललित शाह* की *गुरमा* अकेले ही अपने शारीरिक शोषण के खिलाफ भिड़ जाती है। अंततः गुरमा भी ठेकेदार के सामने तनकर खड़ी हो जाती है, उसने "झटके से छप्पर में खुँसा कुल्हाड़ा खींच लिया और ठेकेदार को दिखलाते हुए दृढ़ स्वर में बोली- तुझे इसी कुल्हाड़े से चैले की तरह चीरकर जंगल में सूखने नहीं छोड़ दिया तो मेरा नाम गुरमा नहीं! जा चला जा मेरे दरवज्जे से......."[50]

पुन्नी सिंह की कहानी *मोर्चा* में सहारिया जाति के आदिवासी युवकों बल्ला और धीरू ने युगों से सताए जा रहे अपने समाज के खातिर पटेल के खिलाफ सशक्त मोर्चा खोल रखा है। एक समय में भैंसें चराने वाले फिरंगीसिंह पटेल ने तीस-चालीस साल के भीतर ही सहारिया लोगों को अपना गुलाम बना लिया। बल्ला और धीरू जैसे सहराने के नवयुवक बाप-दादों के जमाने से चले आ रहे शोषण को बर्दाश्त नहीं करते। उनके मुखर विरोध के कारण अब पटेल को महसूस होने लगा है कि "सहराने और हवेली के बीच मोर्चा है। बड़ा विकट मोर्चा, जिसको फतह कर पाना अब उनके काबू की बात नहीं रही है।"[51] *राकेश कुमार सिंह* की कहानी *हाँका* का बुचनी मउआर भी शोषण से इतना त्रस्त हो जाता है कि हत्या करने पर

आमादा हो जाता है। जमींदार प्रभुदयाल शाहदेव और उसके बेटे द्वारा आदिवासियों पर किये जाते अत्याचारों और आदिवासी स्त्रियों के यौन शोषण के खिलाफ बुचनी मउआर का प्रतिशोध रक्तरंजित हो जाता है और वह शाहदेव के बेटे नान्ह बाबू को मार डालता है।

इसी तरह की तमाम कहानियों में आदिवासियों के जीवन की ढेरों बातें, उनका जीवन संघर्ष और अस्तित्व की लड़ाई से जुड़ी तमाम बातें दर्ज हैं।

आठवें दशक के बाद की कहानियों के कथ्यात्मक चिंतन के विविध संदर्भों को जानने-समझने का प्रयास उपरोक्त बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया। बदलते वैश्विक परिदृश्य और संचार माध्यमों के विस्तार के कारण आए ढेरों बदलाव, आधुनिकता और विज्ञान के प्रचार के कारण इस दौर की कहानियों के कथ्य को जो विस्तार मिला है, जो ऊँचाइयाँ मिली हैं, वह निःसन्देह अभूतपूर्व हैं। इसके बावजूद जीवन की गतिशीलता, समय के बदलाव, व्यवस्था के यथार्थ और व्यवस्था के विद्रूपों ने मिलकर हिंदी कहानियों के समक्ष अपार संभावनाओं के द्वार अब भी खोल रखे हैं, जिन्हें कहानियों में उतारने के लिए इस दौर के (नई व पुरानी पीढ़ी दोनों) कहानीकार निरन्तर रचनाशील हैं।

जाने-माने कवि डॉ. अजय प्रसून (लखनऊ) की 'अनागत कविता' की परिकल्पना भी इस दौर की कहानियों में समाहित हो गई प्रतीत होती है। दिनेश पालीवाल, नीलकांत, आलमशाह खान, रजनी गुप्ता, आशा जोशी, विश्वमोहन, से.रा.यात्री और ऋता शुक्ला प्रभृति कथाकार अपनी कहानियों में सुख और मनोवांछित की प्राप्ति की कल्पना के उस बिंदु पर पाठक को ले जाकर छोड़ देते हैं। जिसको वह पाना तो चाहता है लेकिन पा नहीं सकता। दूसरी ओर भीष्म साहनी, यशपाल बैद, उदय प्रकाश, ज्ञानरंजन, भगवानदास मोरवाल, नीलाक्षी सिंह, कुणाल सिंह, अलका सरावगी, नवनीत मिश्र जैसे कहानीकार भी हैं, जो जटिल जीवन की अतल गहराइयों में उतरकर यथार्थ को बड़ी बेबाकी से उजागर कर रहे हैं। लगभग पच्चीस वर्षों के इस कालखण्ड में लिखी गई कहानियों के विशाल भण्डार को खंगाल डालने के भागीरथ प्रयास में भी कुछ न कुछ छूट जाना लाजिमी है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अगले अध्याय में उपन्यासों के कथ्यात्मक चिन्तन का गहनता से अध्ययन करते हुए इस रिक्तता की भरपाई करने का प्रयास भी किया जायेगा।

संदर्भ

1. महेश कटारे : हंस, अप्रैल 1988, 'मुर्दा स्थगित', पृ.-45
2. संतोष दीक्षित : ललस, 'कचरे में लिपिस्टिक', पृ.-98
3. हसन जमाल : ज्ञानोदय, मार्च 2005, 'शर्मगाह', पृ. 98
4. सूरज प्रकाश : हंस, जनवरी 1989, 'आँख मिचौली', पृ. 59
5. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' : इक्यावन कहानियाँ, 'छेदवाली जेब', पृ. 392
6. विश्वमोहन : पोरबन्दर में सिकन्दर, 'घनी आबादी वाला शहर', पृ. 103
7. डॉ. रामदरश मिश्र : साप्ताहिक हिंदुस्तान, 5 मार्च 1989, 'रोटी', पृ. 40
8. वही, पृ. 40
9. मधु काँकरिया : हंस, फरवरी 1999, 'लोड शेडिंग', पृ. 56
10. उदय प्रकाश : पॉल गोमरा का स्कूटर, 'वारेन हेस्टिंग्स का साँड़', पृ. 116
11. चंद्रकांता : हंस, सितम्बर 1989, 'खुदा बाकी रहे', पृ. 48
12. द्विजेन्द्रनाथ मिश्र : कालचक्र, 'कालचक्र', पृ. 142
13. स्वयं प्रकाश : आदमी जात का आदमी, 'दस साल बाद', पृ. 48
14. रामधारी सिंह दिवाकर : धरातल, 'आतंक', पृ. 33
15. चन्द्रकिशोर जायसवाल : हंस, मई 1987, 'हिंगवाघाट में पानी रे', पृ.59
16. ऋता शुक्ला : क्रौंचवध तथा अन्य कहानियाँ, 'सरबहारा', पृ. 22
17. उदय प्रकाश : पॉल गोमरा का स्कूटर, 'भाई का सत्याग्रह' पृ. 90
18. कैलासचन्द्र शर्मा : बूढ़ा बरगद, 'कैक्टस के जंगल', पृ. 15
19. नीलकांत : अजगर और बूढ़ा बढ़ई, 'अनसुनी चीख', पृ. 49
20. अरुण प्रकाश : लाखों के बोल सहे, 'जल प्रान्तर', पृ. 67
21. अनिल कुमार सिन्हा : नया साल, 'एक क्लर्क की मौत', पृ. 35
22. जितेन्द्र भाटिया : सिद्धार्थ का लौटना, 'शहादतनामा', पृ. 85
23. ओम प्रकाश वाल्मीकि : हंस, अर्द्धशती विशेषांक, खण्ड-1, अगस्त-सितम्बर'1997, 'प्रमोशन', पृ.. 43
24. विजेन्द्र अनिल : विस्फोट, 'हल', पृ. 37

25. मिथिलेश्वर : प्रतिनिधि कहानियाँ, 'मेघना का निर्णय', पृ. 61

26. गोविन्द मिश्र : पगला बाबा, 'प्रतिमोह', पृ. 61

27. गिरिराज किशोर : प्रतिनिधि हिंदी कहानियाँ-1986, सं.-डॉ. हेतु भारद्वाज, 'वल्दरोजी', पृ. 20

28. उदय प्रकाश : हंस, जुलाई 1987, 'तिरिछ', पृ. 43

29. विश्वजीत : हंस, दिसम्बर 1988, 'पाठालोचन (अकला बुआ)', पृ 31

30. डॉ. कामिनी : बिखरे हुए मोर पंख, 'दिल जोड़ने वाली सुगन्ध', पृ. 12

31. चंद्रकांता : कोठे पर कागा, 'अलग से हटकर', पृ. 89

32. नीरजा माधव : आदिम गंध तथा अन्य कहानियाँ, 'पृष्ठ संख्या उन्नीस सौ निन्यानबे', पृ. 79

33. स्वयं प्रकाश : आदमी जात का आदमी, 'सम्मान', पृ. 73

34. विभांशु दिव्याल : तंत्र और अन्य कहानियाँ, 'तंत्र', पृ. 82

35. सतीश जमाली : बच्चे, 'अर्थतंत्र', पृ. 85

36. रजनी गुप्ता : एक नई सुबह, 'यथावत्', पृ. 53

37. परितोष चक्रवर्ती : हंस, मार्च 1987, 'एक अधूरी कहानी के लिए', पृ. 59

38. ग़ज़ाला ज़ैग़म : वागर्थ, मई 2004, 'नेक परवीन', पृ. 23

39. अचला नागर : बोल मेरी मछली, 'जईफ', पृ. 77

40. चन्द्रकान्ता : कोठे पर कागा, 'गंगा से गंगोत्री', पृ. 73

41. असरार गाँधी : वागर्थ, मई 2004, 'रिहाई', पृ. 27

42. आलमशाह खान : साँसों का रेवड़, 'अबला जीवन का गणित', पृ. 103

43. ऋता शुक्ला : क्रौंच वध तथा अन्य कहानियाँ, 'सरबहारा', पृ. 25

44. उदय प्रकाश : पॉल गोमरा का स्कूटर, 'पॉल गोमरा का स्कूटर', पृ. 48

45. माधव नागदा : सम्बोधन 92 , सं. कमर मेवाड़ी, 'जहरकाँटा', पृ. 37

46. गोविन्द मिश्र : हंस, सितम्बर 1986, 'अर्थ ओझल', पृ. 23

47. संजय खाती : हंस, फरवरी 1999, 'मादरे वतन', पृ. 27

48. भीष्म साहनी : पाली, 'झुटपुटा', पृ. 54

49. भालचन्द्र जोशी : पहल 40, जुलाई–दिसम्बर 1990, 'पहाड़ों पर रात', पृ. 61

50. ललित शाह : साक्षात्कार, नवम्बर 1992, 'गुरमा', पृ. 68

51. पुन्नी सिंह : हंस, जनवरी 1988, 'मोर्चा', पृ. 63

अध्याय : पंचम

आठवें दशक के बाद उपन्यासों के कथ्यात्मक चिंतन के सन्दर्भ

[5]

आठवें दशक के बाद के उपन्यासों के कथ्यात्मक चिंतन के सन्दर्भ

पूर्ववर्ती अध्याय में आठवें दशक के बाद की कहानियों के कथ्यात्मक चिन्तन के सन्दर्भो को, उनके विविध पक्षों को जानने-समझने का प्रयास किया गया। युगानुरूप आते हुए बदलावों की जितनी तेज प्रतिक्रिया कहानी विधा में हुई, लगभग उतनी ही उपन्यासों में हुई। समाज, मानव-मूल्य और नैतिकता के साथ ही तमाम बदलावों के फलस्वरूप हिन्दी उपन्यासों की सृजन-यात्रा में दो पीढ़ियों का अंतर स्पष्ट परिलक्षित होता है। आठवें दशक के बाद के उपन्यासों में भी ग्राम्य जीवन है, शहरी वातावरण है, लेकिन प्रेमचंद के उपन्यासों से भिन्न। ऐतिहासिक आख्यानों पर आधारित उपन्यास भी सामाजिक जटिल मुद्दों से जूझते नजर आते हैं। बाबू देवकीनंदन खत्री और किशोरी लाल गोस्वामी द्वारा रचे गए तिलिस्मी और जासूसी उपन्यासों की परम्परा इस अवधि में नहीं दिखाई देती। तमाम उपन्यासों को खंगालने के बाद *एम. रहमान अंसारी* का उपन्यास *अंधरी* और *रमाकान्त* का उपन्यास *बम्बई की बिल्ली* के अतिरिक्त ऐसे उपन्यास नजर में नहीं आते जो क्रमशः तिलिस्म और जासूसी पर आधारित हों। अंसारी जी के उपन्यास 'अंधरी' में छिपे हुए खजाने को पाने के लिए राजा-महाराजाओं, कुमार, दीवान, सिपहसालार और राजपुरुषों के बीच रचे जाते कुचक्र, छल-छद्म और षड़यन्त्र हैं, रहस्य और रोमांच से भरे 'अन्धरी खण्डहर' तक पहुँचने के लिए जी-जान लगा देने वाले राजपुरुष और ऐयार हैं, साथ ही धन के लालच में गद्दारी और बेईमानी पर उतारू हो जाने वाले दीवान गोपाल हरवंश सिंह जैसे लोग हैं। पूरे उपन्यास में 'अन्धरी खण्डहर' के तिलिस्मी, रोमांचकारी और चमत्कारपूर्ण वर्णन भरे पड़े है। *रमाकांत* के उपन्यास *बम्बई की बिल्ली* में फिल्मी दुनिया में बढ़ते अपराधों और अपराधियों की घुसपैठ की भयावहता उजागर करने के बहाने दिलचस्प और आकृष्ट करने वाली 'जासूस-कथा' है। उपन्यास का नायक जासूस वीरेश्वर दयाल बम्बई में फिल्म जगत् से जुड़े लोगों की आपसी राजनीति का शिकार हो जाता है। प्रोड्यूसर आफताब की हत्या में दयाल को फँसाने की साजिश रची जाती है तब दयाल अपने जासूसी दिमाग का कमाल दिखाता है और पूरा उपन्यास आफताब के हत्यारे को खोजने में जुटे जासूस दयाल पर केन्द्रित हो जाता है। वैज्ञानिक चमत्कार और परी लोक की मोहक कथाओं वाले उपन्यास भी इस दौर में न के बराबर हैं। इसका अहम कारण दुष्कर और विषम होती जिन्दगी है।

जीवन की जटिलताओं, कठिनाइयों और विसंगतियों के कारण मनुष्य की भूमिका उसकी

जिंदगी में जितनी सिमटकर रह गई है, उतनी ही इस दौर के उपन्यासों में नायक की भूमिका कम हो गई है और जिस प्रकार वर्तमान जीवन के यथार्थ ने मनुष्य को दूसरे पायदान पर लाकर खड़ा कर दिया है, उसी प्रकार उपन्यासों में भी जीवन की जटिलताएँ, विद्रूपताएँ और यथार्थ अग्रिम पंक्ति पर हैं। इसी कारण आठवें दशक के बाद के उपन्यासों में जीवन के वे तमाम सूक्ष्मातिसूक्ष्म पहलू खुलकर सामने आ गए हैं, जिनकी सहज ही कल्पना भी नहीं की जा सकती। जिन्दगी के व्यापक-विस्तृत फलक पर हो या दैनन्दिन जीवन की मामूली घटना, सब कुछ विवेच्य कालखण्ड के उपन्यासों के कथ्य में उजागर हुआ है। देश के राजनीतिक चरित्र, नेताओं का नैतिक उत्थान (या पतन); समाज में पनपता विद्वेष, वर्ग संघर्ष की स्थितियाँ; साम्प्रदायिक तनाव, धार्मिक कट्टरता, अंधविश्वास; आर्थिक विवशताएँ, बेकारी, गरीबी; स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के उतार-चढ़ाव, पारिवारिक विघटन की स्थितियों; इतिहास से पलायन; भूमण्डलीकरण और आधुनिकता की चुनौतियाँ; भ्रष्टाचार और शोषण के बढ़ते दायरे; शैक्षणिक और साहित्यिक परिवेश में आते बदलाव एवं क्रूरता और अमानवीयता की पराकाष्ठा, सभी कुछ विवेच्य कालखण्ड के उपन्यासों में बड़ी शिद्दत के साथ उजागर हुआ है।

आठवें दशक के बाद के उपन्यासों में कथ्यात्मक चिंतन के उपरोक्त सन्दर्भों को जानने-समझने का प्रयास निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जाएगा-

(क) राजनीति

(ख) समाज

(ग) अर्थ एवं वाणिज्य

(घ) धर्म और आस्था

(ड.) काम-प्रेम

(च) स्त्री-जागरण

(छ) इतिहास एवं काल

(ज) विविध अन्य

(क) राजनीति :-

देश की आजादी से पूर्व और आजाद भारत के शुरूआती दशकों में राजनीतिक शुचिता और राष्ट्रवाद का जो जज्बा देखने को मिलता था वह आने वाले समय में कम से कमतर होता

चला गया और समूचा राजनीतिक परिदृश्य भ्रष्ट, अवसरवादी और आपराधिक गतिविधियों के केन्द्र के रूप में उभरकर सामने आने लगा। नवें दशक के शुरूआती वर्ष में प्रकाशित *राजकृष्ण मिश्र* का उपन्यास *दारुलशफा* भारतीय राजनीति में पिछले डेढ़ दो दशक (1965-70 से) के बीच आए बदलाव को उजागर करते हुए देश के राजनीतिक चरित्र को बेबाकी से उघाड़कर रख देता है। उपन्यास के प्रकाशकीय कथन में लखनऊ स्थित दारुलशफा का परिचय दिया गया है- "वातानुकूलित कक्ष। लम्बे-लम्बे गलियारे। लॉन। और इन सबमें लगातार कानाफूसी करती हुई साजिशें। अपनी-अपनी रियासतों की हिफाजत के लिए चिन्तित कुर्सियाँ और उनके इर्द-गिर्द लट्टुओं की तरह चक्कर काटते चमचे।"[1] कुछ घण्टों की कहानी को लेकर उपन्यासकार ने आज की राजनीति के भीतरी दाँव-पेंच, काट-छाँट और नेताओं के वास्तविक चरित्र को प्रस्तुत किया है। "आजादी के बाद राजनीति का जो स्वरूप बन रहा था, उसमें जनसम्पर्क का अर्थ लोगों के गलत-सही कामों को ठीक कराना था। कानून के शिकंजे दिन-प्रतिदिन सख्त होते जा रहे थे। लगातार नए विधेयकों की गिरफ्त में आने वाले, भागकर नेताओं के इर्द-गिर्द घूमने लगते। अन्य कई प्रकार के धंधे चल निकले जिनमें कोटा, परमिट से लेकर ठेकेदारी तक में सरकार का हस्तक्षेप होने लगा। लोगों में होड़ लगी थी, कौन कितना लूट सकता है। कारूँ का खजाना सामने था, उत्सुकदास कैसे चूक जाते....."[2] इसीलिए तीन महीने के राष्ट्रपति शासन के बाद पार्टी के मंत्रिमण्डल के गठन में मुख्यमंत्री बनने का अवसर उत्सुकदास गँवाना नहीं चाहते। हाईकमान में अपनी मजबूत पकड़ रखने वाले गुरुपदस्वामी का उन पर वरद-हस्त तो था ही, इसलिए पार्टी के विरोधी गुट को मात देना भी बहुत कठिन काम नहीं था। उत्सुकदास के साथ ही साथ कृष्णवल्लभ, यशोदावल्लभ, लोबीराम ओर रंगीन राय आदि नेताओं द्वारा रची जाती साजिशें और धन-बल के सहारे पद पाने की होड़, आम आदमी की परवाह किये बगैर व्यक्तिगत लाभ के लिए लड़ते-जूझते नेताओं का चरित्र उजागर किया गया है।

दारुलशफा में हर व्यक्ति अपने विरोधी के घिनौने अतीत को उजागर करके मात देना चाहता है, जबकि *श्रवणकुमार गोस्वामी* के उपन्यास *राहु केतु* में अधिकारी और नेता आपस में साठ़गाँठ करके ऐसी साजिशें रचते हैं कि विरोधी पक्ष को परास्त होना ही पड़ जाता है। सरकारी संस्थानों में नेताओं के हस्तक्षेप के कारण पनपते भ्रष्टाचार और राजनीतिक उठा-पटक का जीवन्त चित्रण करते हुए उपन्यासकार ने राहु और केतू की भाँति नेताओं और अधिकारियों की मिलीभगत

खण्डित होती लोकतांत्रिक मर्यादाओं और खोखले होते राष्ट्र की दयनीय दशाओं को प्रस्तुत किया गया है। धनलोलुप और भ्रष्ट अधिकारियों व नेताओं के सामने ईमानदार और कर्मठ लोग नहीं टिक सकते, वे मजबूरी में स्वयं ही हट जाते हैं या उन्हें जबरिया हटा दिया जाता है। तिलकराज का संस्थान से निष्कासन कमोबेश इसी तथ्य को प्रकट करता है। पंचतंत्र की कहानियों की तर्ज पर *मुद्राराक्षस* ने अपने उपन्यास *प्रपंचतंत्र* में देश के वर्तमान राजनीतिक चरित्र और उसकी विद्रूपताओं का मार्मिक आख्यान लिखा है। राजनीतिक उठा-पटक, दाँवपेंच, घूसखोरी, भाई-भतीजावाद और राजनीतिक अवसरवादिता में संलग्न देश के नेतृत्व से छिटककर दूर होती शोषित, अभावग्रस्त और उपेक्षित आम जनता एक ओर है तो दूसरी ओर नेताओं, अधिकारियों, पुलिस और पत्रकारों की मिलीभगत से चलने वाला समूचा 'लूट्तंत्र' है। प्रपंचतंत्र में इस 'लूट्तंत्र' के हर अंग को, प्रत्येक पहलू को खुलकर उजागर किया गया है।

संजीव के उपन्यास *जंगल जहाँ शुरू होता है* में बिहार के ग्राम्यांचलों में डाकुओं की समस्या उतनी बड़ी नहीं है, जितनी कि डाकुओं, नेताओं, पुलिस और प्रशासन के संगठित 'रैकेट' की है। डाकुओं और नेताओं के परस्पर आश्रित होने के कारण उपजी स्थितियाँ अपेक्षाकृत अधिक घातक होती हैं क्योंकि शोषित और प्रताड़ित जनता को अपने जनप्रतिनिधि से बहुत उम्मीदें रहती हैं, लेकिन जब रक्षक ही भक्षक हो जाए तब स्थितियाँ और भी भयावह हो जाती हैं। उपन्यास इन्हीं भयावह स्थितियों से साक्षात्कार कराते हुए पहले से और अधिक अमानवीय, हिंसक और क्रूर हो गई राजनीति के विद्रूप और वीभत्स चेहरे को बेनकाब करता है।

विभूतिनारायण राय का उपन्यास *किस्सा लोकतंत्र* भ्रष्टाचार, चुनावी छल-प्रपंच और हिंसा के कारण लोकतंत्र पर गहराते जा रहे संकट पर बुद्धिजीवियों और आम आदमी की चिंता को उजागर करता है। वर्तमान दौर में राजनीति का अपराधीकरण बहुत तेजी से हो रहा है। नेतागण अपने लाभ के लिए जिन अपराधियों का उपयोग करते हैं, वे धीरे-धीरे खुद भी राजनीति में उतर आते हैं। "अपराधियों पर निर्भरता कुछ इस कदर बढ़ी कि यह चुनाव के दिनों तक ही सीमित नहीं रही। चुनावों के अतिरिक्त भी अपने विरोधियों को आतंकित करने के लिए उनका इस्तेमाल् होने लगा। अपनी ही पार्टी के संगठनात्मक चुनावों में अपराधियों का इस्तेमाल शुरू हुआ। एक पार्टी में जितने गुट होते, वे सभी पार्टी दफ्तर में मुखालिफ गुट के लोगों से इन अपराधियों की मदद से निपटने लगे। चुनाव भी ग्राम पंचायत से लेकर संसद तक इतने होने लगे

कि शायद ही किसी वर्ष चुनाव नहीं होते। हर समय तैयारी की हालत में रहना पड़ता।''[3] इस तैयारी में सबसे महत्त्वपूर्ण होती- बूथ कैप्चरिंग। ''बूथ कब्जा करने की पूरी प्रक्रिया बिना गुंडों, बदमाशों या डकैतों के पूरी नहीं हो सकती थी। चुनाव की घोषणा होते ही दादा लोगों की बाछें खिल जातीं। हथियारों की देशी फैक्टरियों में रात-दिन काम होने लगता। जिस तरह निर्वाचन आयोग और प्रशासनिक मशीनरी युद्धस्तर पर काम करके चुनाव की सभी तैयारियाँ पूरी करते, उसी तरह बूथ कब्जा करने वाले भी अपने उम्मीदवार को जिताने के लिए पूरे विस्तार के साथ योजनाएँ बनाते और साधन जुटाते। देश के बहुत सारे चुनाव क्षेत्रों में बिना इन दादाओं के चुनाव लड़ने की कल्पना भी असंभव लगने लगी।''[4] इन्हीं हालातों ने छोटी-मोटी चोरी और राहजनी करने वाले गँवई-गाँव के प्रेमपाल यादव उर्फ पी. पी. को पहले तो शातिर अपराधी बनाया और बाद में नेता बना दिया। पैसा और आतंक कमाने के बाद उसका ध्यान राजनीति की तरफ गया और शराब की तस्करी के धंधे को आसानी से चलाते रहने के लिए उसने चुनाव जीतकर धवल वस्त्रों के आवरण में अपने काले कारनामों को छिपाने की योजना बनाई और उसे कारगर भी कर दिखाया। लेकिन उपन्यास के एक पात्र- बागी पत्रकार ने अपने अपमान से क्षुब्ध होकर पी. पी. के काले कारनामों को उजागर करने और आम जनता के सामने उसकी असलियत उजागर करने की मुहिम छेड़ दी। अकेले दम बागी पत्रकार भले ही पी. पी. जैसे आपराधिक पृष्ठभूमि वाले नेताओं से टक्कर ने ले सके, लेकिन उसने एक रास्ता तो दिखा ही दिया।

प्रियंवद ने अपने उपन्यास *परछाई नाच* में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और राजनेताओं की मिलीभगत के कारण तेजी से पनपते बाजारवाद की स्थितियों को उजागर किया है। अपने लाभ के लिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने देश के नेताओं को अपने साथ मिलाने के साथ ही साथ समूची राजनीतिक व्यवस्था को अपने अनुकूल बना लिया है लिहाजा बाजार में पानी भी महँगे दामों में मिल रहा है। एक ओर देश की आजादी की खातिर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने वाले जननायक हैं तो दूसरी ओर पुनः गुलामी की ओर ढकेलने को अग्रसर आज के नेता हैं। आज के नेताओं के चरित्र की वीभत्सता को नुकीले दाँत वाले व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अनहद और किंशुक देश की आम जनता के प्रतीक हैं, जो बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आगे लाचार ओर बेबस पड़े हैं- ''चारों तरफ अँधेरा था। नदी की रेत पर तारे चमक रहे थे। धीरे-धीरे देह का पसीना सूखने लगा। शिथिल देह को ढीला छोड़ दिया अनहद ने। गिर पड़ा वह। देह ठण्ड में काँपने

लगी। थोड़ा सिर उठाकर देखा उसने। नदी के एक किनारे पर, अँधेरे के बीच सुनहरी पर्त काँप रही थी। पास ही किंशुक दिखा उसे। उसी तरह पीठ पर उसके भी हाथ बँधे थे। चारों तरफ नदी का ठण्डापन था। रेत की ऊँची, सूखी घास थी। सामने बौना घुटने मोड़े बैठा था। नुकीले दाँत वाला उसकी गोद में सिर रखकर लेटा था। बौना उसके बालों में हाथ फेर रहा था। दो सिपाही बन्दूक लिये खड़े थे।''[5] किंशुक और अनहद मर जाते हैं, जैसे आम जनता मर रही है-भूमण्डलीकरण, व्यवस्था और राजनीतिक तंत्र के आघातों से।

जहाँ प्रियंवद ने बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और नेताओं की साझेदारी से विकसित हुए कमाई के धंधे को उजागर किया है, वहीं *विभूतिनारायण राय* ने अपने उपन्यास *तबादला* में नेताओं द्वारा विकसित किये गए 'तबादला और लाइसेंस उद्योग' से साक्षात्कार कराया है- ''तबादले और लाइसेंस राजधानी के साहित्य और संस्कृति थे। राजनेताओं के घरों, दलालों के ठिकानों, पार्टी दफ्तरों और सचिवालय के कक्षों में चौबीस घंटे इन्हीं पर गोष्ठियाँ होती रहती थीं। राजनीतिक दलों के घोषणा पत्रों में बड़ी-बड़ी बातें लिखी जाती थीं, पर उनके कार्यकर्ता जानते थे कि लिखी बातें प्रमाण नहीं होतीं। चुनाव खत्म होते ही चौराहों पर गाएँ घोषणा-पत्रों को खाती दिखाई पड़ने लगती थीं। नेता लोग वापस तबादला और लाइसेंस उद्योग में लग जाते और जो नेता तबादला करा सकता या लाइसेंस दिला सकता उसी के यहाँ सबसे अधिक भीड़ लगती। भाभी जी उर्फ मिनी मुख्यमंत्री के यहाँ आजकल सबसे अधिक भीड़ लग रही थी क्योंकि आजकल तबादला वही करा रहीं थीं।''[6] माघ मेला की व्यवस्था के लिए मुहैया कराए गए सरकारी धन का बंदरबाँट करने की होड़ में सार्वजनिक निर्माण विभाग के अभियन्ताओं- कमलाकान्त वर्मा और बटुकचंद के बीच खींचतान मची हुई है। इसका लाभ मंत्री जी और उनके चमचे/दलाल उठा रहे हैं। बटुकचंद ने पहले तबादला करवाने के लिए रुपया खर्च किया है और अब अपनी कुर्सी बचाने के लिए जी खोल कर खर्च कर रहे हैं। दूसरी ओर कमलाकांत वर्मा अपना तबादला रूकवाने के लिए सौदेबाजी कर रहे हैं। आम जनता के हितों, लोक कल्याणकारी कार्यक्रमों, ईमानदारी, राजनीतिक शुचिता और जनसेवा पर तबादला और लाइसेंस उद्योग भारी पड़ रहा है।

शरत् कुमार का उपन्यास *लाल कोठी अलविदा* की लाल कोठी राजनीतिक शुचिता, राष्ट्रवादी भावना और आजादी की लड़ाई की प्रतीक है। दो कालखण्डों में विभाजित उपन्यास के पहले कालखण्ड (सन् 1934-1941) में लाल कोठी के गौरवपूर्ण अतीत का वर्णन है और इसके

जरिए देश की आजादी के लिए संघर्ष करने वाले नेताओं व कांग्रेस पार्टी के आदर्श, देशप्रेम व निःस्वाथ संघर्ष को उजागर करते हुए दूसरे कालखण्ड (अक्टूबर-1989 से दिसम्बर 1989 तक) में षड़यंत्र और स्वार्थी मानसिकता की शिकार हुई लाल कोठी की यह पतन गाथा देश के राजनीतिक चरित्र की, देशप्रेम व राष्ट्रीयता की भावना की ओर कांग्रेस पार्टी के गौरवशाली अतीत के अध्याय की पतन गाथा है। देश की आजादी में बढ़-चढ़ कर सहभागिता करने वाली रूक्मिणी जी और उनके पति समरेन्द्र सिन्हा की मृत्यु के बाद उनकी विरासत को, लाल कोठी को उनका बेटा समर बेच देना चाहता है, लेकिन इससे पहले ही शहर के रईसों, नेताओं और वकीलों के षडयंत्र का शिकार हो चुकी लाल कोठी वस्तुतः देश की आजादी के संघर्ष में प्रमुख भूमिका अदा करने वाली पार्टी की सामयिक दयनीय दशा को उजागर करती है। उपन्यास के दो कालखण्ड परस्पर नए और पुराने राजनीतिक मूल्यों, आदर्शों, सिद्धान्तों और राजनीतिक शुचिता में आए बदलावों और टकराहटों को प्रकट करते हैं। उपन्यास का पात्र रमाकांत तिवारी आज के नेताओं का प्रतीक है, जिसके लिए राजनीति कमाई का धंधा है और जिसका उद्देश्य सत्ता प्राप्त करके लाभ कमाना और अपना स्वार्थ सिद्ध करना मात्र है। देश के राजनीतिक चरित्र में आए इस बदलाव के कारण आम जन के मन में उपजा डर ही *प्रमोद कुमार तिवारी* के उपन्यास *डर हमारी जेबों में* के नायक विशाल जैसे लोगों का है। उपन्यास का कस्बा 'खेला सराय' हिन्दुस्तान के तमाम कस्बों की तरह आजादी के बाद उपजी स्थितियों, विद्रूपताओं को भोगता हुआ तमाम सच्चाइयों को उजागर करता है। इसके कई पहलुओं में वर्तमान राजनीतिक स्थिति ओर जनतंत्र की वीभत्सता भी एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। उपन्यास के आमुख में ही लेखक बताता है कि "खेला सराय जनतंत्र है इस देश का। 'करो या मरो' के नारे से उपजा यह जनतंत्र कहता है- 'डरो और डरो'। जो डरेगा, करेगा कुछ जीवन में, नहीं तो मरेगा। बुलेट-प्रूफ मंचों से सालगिरह मनाता आजादी की। शोहदों को ऊँचे ओहदे देता, ओहदों को अर्थहीन बनाता। अंग्रेजों के उपनिवेश से भ्रष्ट हिन्दुस्तानियों के उपनिवेश में तब्दील हो जाने का सच है, खेला सराय। अपने प्रतिभाशाली पुत्रों-पुत्रियों को घूस और घोटालों की घुट्टी पिलाते जनतंत्र का प्रतिनिधि है खेला सराय और इस त्रासद् सच्चाई का साक्षी भी कि इस जनतंत्र से राजी हैं खेला सराय वाले।"[7] उपन्यास के नायक विशाल ने किशोरावस्था में ही तमाम अनुभव एकत्र कर लिए हैं, जनतंत्र की दुर्दशा को भोग लिया है, लेकिन विषम परिस्थितियों के बावजूद इन स्थितियों के समक्ष स्वयं को समर्पित नहीं

करता, निरंतर संघर्षरत रहता है।

असगर वजाहत के उपन्यास *कैसी आग लगाई* का लाल सिंह संघर्ष तो करता है लेकिन उसके व्यक्तित्व की सरलता और सिद्धान्तों की असलियत की नासमझी के कारण हर जगह मात खाता है। भारतीय राजनीति में नेहरू युग की अवसान वेला में जोर पकड़ते कम्युनिस्ट आन्दोलन के कालखण्ड में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय को केन्द्र बनाकर लिखे गए इस उपन्यास में कम्युनिस्ट पार्टी के अंदर पैदा होते वैचारिक मतभेद और पार्टी के विभाजन के कारण रास्ते से भटक गए कामरेडों के चरित्र को उजागर किया गया है। कामरेड लाल सिंह अपनी पढ़ाई पूरी करने के लिए अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लेता है, साथ ही पार्टी के 'होल टाइमर' के रूप में वामपंथी छात्र-राजनीति और किसानों के बीच कार्य करने में पूरी निष्ठा, लगन और नैतिकता के साथ लगा रहता है। लेकिन उसे सुविधाभोगी हो गए और पथ से विचलित हो गए 'कामरेडों' की बदली मानसिकता रास नहीं आती और वह विद्रोही रूख अपना लेता है। उसकी मेहनत, लगन और गरीबी पर तरस खाकर कोई भी कम्युनिस्ट उसकी मदद नहीं करना चाहता, जबकि सभी महँगी सुख सुविधाएँ भोग रहे होते हैं। वह इस बदलाव पर तीखा प्रहार करता है- ''नए भविष्य का स्वप्न देखने वाला दुराचारी हो तो कैसा लगेगा? जो स्वयं शोषण करता है वह शोषण के विरुद्ध क्या करेगा?''[8] अंततः साथियों और कामरेडों द्वारा लाल सिंह को हाशिये पर पहुँचा दिया जाता है।

सर्वहारा समाज के लिए संघर्ष करने वाले वामपंथियों के बीच पैदा होते सुविधाभोगी वर्ग ने राजनीतिक अवसरवादिता का भरपूर लाभ उठाकर अपनी अलग पहचान को न केवल मिटा दिया वरन् जनता के खातिर संघर्ष जैसे आदर्शों को भी तिलांजलि दे दी। *कृष्णा अग्निहोत्री* के उपन्यास *टपरेवाले* में बसोड़, माहर और बलई जाति के लोग हैं, जिन्हें देश की आजादी के कई बरस बीत जाने के बाद भी तिरस्कारपूर्ण, पशुवत् और संघर्षमय जीवन जीना पड़ रहा है। उपन्यास का नायक पन्ना महसूस करता है कि इन लोगों की दुर्दशा के लिए नेता भी कम जिम्मेदार नहीं हैं। ''उसका देश स्वतंत्र हो गया परन्तु अभी भी जलसों, नारों, भाषणों के बीच से इन् इन्सान के रूप में जानवरों जैसे जीते व्यक्तियों को कुछ भी नहीं मिला। इनमें किसी जागृति के कोई लक्षण नहीं थे।''[9] हालाँकि ''पिछले चुनाव में हरीराम मेहतर निम्न जाति वहाँ से खड़ा हुआ था। उसे हरा दिया गया। सीधा-सादा था। कुछ तेज-तर्रार होता तो जीतकर शायद

अपने आस-पास की कुछ सोचता भी। कितनी बार मिनिस्टर आए। जीप से चले गए। उन सबने श्रद्धा के सुमन चढ़ाने के लिए हाथ जोड़ दिए थे। उन्होने हाथ मिलाकर कुछ इशारा किया था तो लगा इस बार उन सबको कुछ तो लाभ होगा परन्तु हाथ जुड़े रह गए...... जीप गुजर गई। बात खतम हो गई।''[10] उपन्यास के मजूमदार जैसे नेताओं ने इन लोगों का उपयोग सिर्फ वोट पाने के लिए किया। वोट लेने की खातिर धन, शराब और कपड़े बाँटने वाले ये नेतागण अपना उल्लू सीधा होते ही इन लोगों को भूल जाते हैं।

कमल के उपन्यास *आखर चौरासी* में अपने राजनीतिक लाभ के लिए इन्दिरा गाँधी की हत्या के बाद सिख विरोधी दंगे भड़काने वाले, 'खून का बदला खून से लेंगे' जैसे जहरीले नारे उछालकर राजनीति की रोटियाँ सेंकने वाले और जनता की भावनाओं से खेलने वाले नेताओं का चरित्र उजागर किया गया है। उपन्यास का पात्र विक्की देश के नेताओं के इस घिनौने खेल पर प्रश्न चिन्ह लगाता है- ''मगर क्या पूरा देश चाहता था कि इन्दिरा गाँधी की हत्या का बदला लेने के लिए सिक्खों का कत्लेआम किया जाए? पूरा देश ऐसे किसी भी कत्लेआम का कभी समर्थन नहीं कर सकता। यह तो बस उस एक पार्टी ने मौके का फायदा उठाया है। अपना स्वार्थ साधा है। ताकि आगामी चुनाव में मतदाताओं की सहानुभूति, वोटों के रूप में वह पार्टी बटोर सके और सत्ता पर काबिज हो सके!......''[11]

राजनीतिक विषमता के कारण उपजे 'नक्सलवादी आंदोलन' को केन्द्र में रखकर लिखा गया *सोहन शर्मा* का उपन्यास *समरवंशी* राजनीतिक आदर्शों और समाजवादी विचारधारा के झूठे छलावे में छले गए गरीबों का दर्द और उनका संघर्ष पूरी शिद्दत के साथ उजागर करता है। गरीबों की भूमि का अधिग्रहण और बदले में बंजर जमीन पर काली मिट्टी बिछाकर अनुपजाऊ जमीन किसानों को देकर उन्हें भूमिहीन कर देने की साजिश के खिलाफ एकजुट हुए ग़रीबों और किसानों का सत्ता और पूँजीपतियों के खिलाफ संघर्ष का आख्यान है।

काशीनाथ सिंह के उपन्यास *अपना मोर्चा* में मोर्चा युवाओं का है, जिसे वर्तमान व्यवस्था और राजनीतिक विद्रूपों के खिलाफ खोल रखा गया है। सन् 1967 के आसपास समूचे उत्तर भारत में भड़के 'अंग्रेजी भाषा विरोधी आन्दोलन' की पृष्ठभूमि में रचित इस उपन्यास में भाषा के विरोध के पीछे व्यवस्था की खामियों, आर्थिक असमानता और बेकारी जैसी तमाम समस्याओं की राजनीतिक पैदावार के खिलाफ आक्रोश उजागर किया गया है- ''हमारी इस भाषा

के खिलाफ लगी है हुकूमत की भाषा! जो मौजूदा व्यवस्था को विदेशी शासन से विरासत में मिली है। सख्ती से दमन हुकूमत की भाषा का स्वभाव है। यह भाषा अपने को व्यक्त करने के लिए जिस शब्दकोश की मदद लेती है वह है लाठी, बन्दूक, रायफल, गोली, आँसू गैस, धोखा प्रलोभन। हम जब भी कहते हैं कि सरकार! हम बेकार हैं, हमें काम चाहिए। वह हमारे मुँह पर बन्दूक की नली रख देती है। हम कहते हैं कि सरकार! हम अपने घर पर बोझ हैं, हमें उतार लीजिए। और वह जवाब में हमारी छाती पर दस सेर का वजनी फौजी बूट रख देती है। इस मुकाबले के लिए हमें अपनी भाषा को अधिक-से-अधिक हमलावर बनाना होगा। फरियाद एक गुलाम की आदत है, हमें इस आदत से बाज आना चाहिए।''[12] देश के नेतृत्व की गलत नीतियों के कारण युवाओं का संगठित आन्दोलन क्रमशः हिंसक होता चला गया। भले ही आन्दोलन का कालखण्ड पुराना है, लेकिन स्थितियाँ कमोबेश आज भी वैसी ही हैं, चूँकि उपन्यासकार स्वयं 'भाषा विरोधी आन्दोलन' का प्रत्यक्षदर्शी रहा है, इस कारण उपन्यास अधिक मुखर हो उठा है।

रमाकांत का उपन्यास *जुलूस वाला आदमी* और *स्वयं प्रकाश* का उपन्यास *बीच में विनय* अपने आदर्शों और सिद्धान्तों से भटके राजनीतिक दलों; सिद्धान्तहीन, सुविधाभोगी और कर्मठ-जुझारू व्यक्तित्व खो चुके नेताओं के बीच अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते लगनशील जमीनी कार्यकर्ताओं के हृदय की मार्मिक वेदना को अभिव्यक्त करते हैं। जुलूस वाला आदमी के जुझारू कामरेड के सपने हैं कि क्रान्ति होगी, सर्वहारा समाज को प्रतिष्ठा प्राप्त होगी, समाज में समरसता आएगी और वर्ग संघर्ष के सार्थक परिणाम निकलेंगे। लेकिन होता इसके विपरीत है यहाँ तक कि पार्टी की अन्दरूनी कलह खुलकर सामने आने लगती है, सिद्धान्तवादी और पार्टी के समर्पित कार्यकर्ता हाशिए पर चले जाते हैं और उनकी जगह स्वार्थी, धनलोलुप और अवसरवादी नेता आ जाते हैं, जनक्रान्ति की बात ठंडे बस्ते में डाल दी जाती है। इस प्रकार के अंतःसंघर्ष से जूझते कामरेड का मोहभंग हो जाता है। वस्तुतः यह आख्यान रमाकांत के संघर्ष और मोहभंग का है। *स्वयं प्रकाश* का उपन्यास *बीच में विनय* भी जमीन से जुड़े कम्युनिस्ट कार्यकर्ता के जरिए भारत में कम्युनस्टि आंदोलन की पडताल करता है। उपन्यास में कम्युनिस्टों के दो वर्ग हैं, पहला वर्ग जमीनी कार्यकर्ताओं का है, जो अग्रिम पंक्ति में डटे रहकर संघर्ष करते हैं और दूसरा वर्ग उन अभिजात्य वामपंथियों का है जो कोरा किताबी ज्ञान बखानते रहते हैं और जमीनी हकीकतों से दूर रहकर अपने मुताबिक सिद्धान्तों का सृजन करके जमीनी कार्यकर्ताओं को हिकारत

की नजर से देखते हैं। उपन्यास का नायक इन दोनों वर्गों के बीच बढ़ती दूरी और घृणा को कम करने का असाफल प्रयास करते हुए अंततः मौन धारण कर लेता है।

विद्यासागर नौटियाल का उपन्यास *झुण्ड से बिछड़ा* में गाँव की सामन्ती राजनीति की विद्रूपता को उजागर किया गया है। गाँव के सम्पन्न जमींदारों द्वारा अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए रचे जाते कुचक्र हैं तो दूसरी ओर आम जन-जीवन का संघर्ष है। पर्वतीय ग्राम्यांचल भी राजनीति की साजिशों से अछूते नहीं हैं। सत्ता के क्रूर और षड्यंत्रकारी खेल में पूँजीपति भी शामिल हैं और कम्युनिस्ट भी। इस जन-संघर्ष में अपने गाँव वालों की रक्षा के लिए तोपची जग्गू जैसे लोग कुर्बान हो जाते हैं और उनकी आने वाली पीढ़ी इस कुर्बानी का दंश भोगती है। तोपची जग्गू का बेटा शतरू अपने पिता की वीरता से अभिभूत होकर खुद भी तोपची बनना चाहता है। गाँव के सामान्य लोग तो उसे स्वीकार करते हैं, लेकिन गाँव के शक्तिशाली, सामन्ती विचारधारा वाले लोग उसे पसंद नहीं करते क्योंकि उन्हें शतरू एक वामपंथी नजर आता है, जो उनकी सत्ता को उखाड़ सकता है लिहाजा वे शतरू को अपमानित करते हैं, प्रताड़ित करते हैं और उसे तोपची नहीं बनने देना चाहते। अंततः अपनी लगन और कर्मठता से वह अपनी मंजिल पा लेता है। उसकी बंदूक वापस मिल जाती है और शतरू पुनः अपने साथियों के झुण्ड में आकर मिल जाता है।

कर्मेन्दु शिशिर के उपन्यास *बहुत लम्बी राह* में यही सामन्तवाद जातीय विभाजन के रूप में उभरकर सामने आता है। गाँव के तालाब और उसकी मछलियों पर कब्जे को लेकर सुमेरन मिसिर और नगेसर दुबे के बीच तगड़ी लड़ाई है। दोनों की लड़ाई और आपसी राजनीति का शिकार सीधे-सादे ग्रामीण होते हैं। लाखनडीह गाँव में छिड़ी सत्ता और वर्चस्व की जंग से इतर एक और जंग भी चल रही है- शोषक सत्ता के खिलाफ। इस लड़ाई का नेतृत्व कर रहे हैं- महतो का बेटा विभूति, उजागिर सिंघ और उनके युवा साथी। उपन्यास का एक पात्र रजेसर लाल अपनी तिकड़मी राजनीतिक चालों से व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध करता रहता है, उसे एहसास हो जाता है कि स्थितियाँ बदल रही हैं इसीलिए विभूति द्वारा मिसिर के कब्जे वाले तालाब से मछलियाँ पकड़े जाने के प्रकरण पर परेशानी में फँसे महतो की मदद के लिए आगे आता है। महतो को इन राजनीतिक दाँव-पेंचों की असलियत का पता है इसीलिए उसको विश्वास है कि "एक दिन उलटन होगी-बहुत भारी उलटन। सब कुछ एक दम से बदल जायेगा- उलट-पुलट हो जायेगा। बस मन-माथा थिर कर धीरज रखा। अभी हम सबको, बहुत लंबी राह चलनी है।"[13]

विद्यावती दुबे के उपन्यास *शेफाली के फूल* में यह बदलाव दिखाई देता है, लेकिन बड़े विकृत रूप में। आजादी मिलने के कई वर्षों बाद भी अशिक्षा, अधिकारों के प्रति जागरूकता की कमी, गरीबी और असहायता के कारण गाँवों में शोषण, मनमर्जी और अत्याचार बदस्तूर जारी रहते हैं। इसका विरोध करने वालों के खिलाफ षड्यन्त्र रचे जाते हैं, हत्या की साजिशें रची जाती हैं और कानून मूकदर्शक बना रहता है। तब पिछड़ों में जन-संघर्ष की चेतना तीव्र होती है और 'बाज पार्टी' बन जाती है। अगड़े लोगों की 'बाघ पार्टी' में भी तेजी आ जाती है। बाज पार्टी की गाँव क्षेत्र की ईकाई के भुक्खन पटेल जन-संघर्ष की अगुवाई करते-करते ग्राम प्रधान बन जाते हैं और यहीं से चालू होता है- पिछड़े तबके के लोगों को अन्याय से, अत्याचार से मुक्ति दिलाने के नाम पर भुक्खन पटेल द्वारा निजी स्वार्थ सिद्ध करने और अपने ही लोगों को छलने का क्रम। इस दौड़ में सावित्री जैसी कर्मठ, समाजसेवी और ईमानदार महिलाएँ बहुत पीछे रह जाती हैं क्योंकि वे अपने पथ से विचलित नहीं होतीं। भुक्खन पटेल जैसे नेता आने वाले अवसरों का लाभ उठाने से नहीं चूकते। भुक्खन का पहला निशाना उसका सगा भाई लाखन ही बन जाता है। भुक्खन उसे पागल करार देकर पागलखाना भेज देता है क्योंकि लाखन जैसे तथाकथित नाकारा लोगों के लिए शायद पागलखाना से अधिक उपयुक्त जगह कोई नहीं है।

श्रीलाल शुक्ल का *विश्रामपुर का संत* एकदम अलग तासीर का उपन्यास है। भूदान आंदोलन की पृष्ठभूमि में लिखे गए इस उपन्यास में स्वतंत्र भारत की राजनीतिक 'संतगिरी' के पीछे छिपे कलुष-कल्मष को बेबाकी के साथ उघाड़कर रख दिया गया है। राजनीति के प्रति उपजे जनता के अविश्वास और सामाजिक-राजनीतिक बदहाली के कारण उपजते जनाक्रोश व क्रांतिकारी भावना को दबाने तथा समानता कायम करने का ढोंग रचने की चिंता में भूदान आन्दोलन, सत्ताधारी नेताओं द्वारा प्रायोजित सरकारी आयोजन की परिधि में सिमटकर रह जाता है। पूँजीवादी और सामन्ती मानसिकता नए कलेवर में प्रकट होती है। उपन्यास के पात्र कुँवर जयन्ती प्रसाद अपनी जमींदारी को तजकर राज्यपाल हो जाते हैं, अधिकार-लिप्सा, हनक और सत्ता का रोब यहाँ भी कायम रहता है। स्वातंत्र्योत्तर राष्ट्रीय राजनीति के 'संतगिरी' वाले आवरण के पीछे छिपे घृणित-कुत्सित चेहरों को बेनकाब करते हुए यह उपन्यास वर्तमान से भी जुड़ जाता है। वर्तमान राजनीति की 'गाँधीगिरी' और धवल वस्त्रों की सफेदी के आवरण में तमाम अपराध, अनैतिकता, क्रूरता और चारित्रिक हीनता से लिथड़े हुए चेहरे छिपे हैं।

राजनीति के क्षेत्र में अपना भविष्य तलाशने वाली या राजनीति की चकाचौंध से आकृष्ट हो जाने वाली महिलाएँ इस क्षेत्र में अपना सर्वस्व लुटाकर धोखा ही पाती हैं। चाहे *राजकृष्ण मिश्र* के उपन्यास *दारुलशफा* की महिलाएँ- प्रतिमा, शान्तिप्रणाली, विमला या लछिमिनिया हो या *क्रान्ति त्रिवेदी* के उपन्यास *यह हार नहीं* की नायिका आलोका हो, सबकी परिणति कमोबेश एक सी ही होती है। क्रान्ति त्रिवेदी ने नैना साहनी और सरला मिश्र जैसी नेत्रियों के जीवन-संघर्ष और उनके दुःखद अंत को सामने लाते हुए अपने उपन्यास ही की नायिका आलोका के माध्यम से राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति का बेबाक चित्रण किया है। खेल-जगत् में अपनी क्षमता के बूते शिखर पर पहुँचने वाली विजेता राजनीति के मैदान में उतरकर गजराज जी जैसे घाघ नेताओं का मोहरा बनकर रह गई। चुनाव प्रबंधन और संचालन में अपनी सक्रियता और कर्मठ्ता का लोहा मनवा चुकी आलोका को और उसके पिता स्वतंत्रता संग्राम सेनानी हरिहर बाबू दोनों ही आजादी की लड़ाई के जमाने के नेताओं जैसा व्यक्तित्व आज के नेताओं में तलाशते रह गए और बदले में छले जाते रहे। लोगों ने आलोका के शरीर को भी भोगना चाहा, इल्जाम भी लगाए और अफवाहें भी उड़ाईं लेकिन आलोका ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, साहस और लगन के साथ लगी रही। अंततः जब उसे एहसास हुआ कि राजनीति इतनी गंदी हो चुकी है कि लोग उससे लाभ तो कमाना चाहते हैं लेकिन उसे आगे नहीं आने देना चाहते तब वह झूठे और मक्कार नेताओं को सबक सिखाने के लिए सख्त निर्णय लेती है- "बाबू कहते थे, मैं उनकी विजेता बेटी हूँ, मैं विजेता ही रहूँगी। मेरे पास अभी भी एक उपाय है। राजनीति के इस पैशाचिक यज्ञ में मेरी आहुति पड़कर शायद गन्दगी को कुछ जला सके।"[14] खुद को आग के हवाले करके गंदी राजनीति से हारकर भी आलोका नहीं हारी, लेकिन समूचे राजनीतिक परिवेश के सम्मुख एक और प्रश्न चिन्ह लगा गई।

निचोड़ यह है कि राजनीति के जितने भी रंग हैं, वे सब अपनी छटाएँ नौवें दशक के उपन्यासों में बिखेर रहे हैं। आशय यह है कि साहित्यकार की संवेदनशीलता में जरा भी कमी नहीं हुई है। वह अपने परिवेश की विसंगतियों के प्रति सजग है। उल्लेखनीय परिवर्तन यह हुआ है कि समाज और देश के लोग संवेदनहीन और स्वार्थ में अंधे हो गए हैं जिससे वे साहित्यकार की दृष्टि से जानबूझकर अनजान बने रहना चाहते हैं। समय के अनेक सत्य हैं जो इन उपन्यासों में दृष्टिगोचर हो रहे हैं और इनका सम्यक् अध्ययन हम आगे करेंगे। सच तो यह है कि उपन्यासों

में जिनके बारे में लिखा जाता है और जिनको सबक सिखाने का लक्ष्य रखा जाता है वे इन्हें पढ़ते ही नहीं हैं। थोड़े-बहुत जो पढ़ लेते हैं, वे इस मुगालते में रहते हैं कि जो कुछ भी वर्णित है वह उनके लिए नहीं है। वास्तवितकता तो यह है कि आस्था में कमी के साथ-साथ श्रद्धा और विश्वास में भी कमी आई है। आदर तो जैसे समाप्त ही हो चुका है। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि राजनीति के संदर्भ में इन उपन्यासों के कथ्यात्मक चिंतन में पर्याप्त विविधता है।

(ख) समाज :-

आधुनिक विकास और सबल जनतांत्रिक प्रक्रिया के निरंतर गतिशील रहने के बावजूद राजनीतिक, आर्थिक या फिर सामाजिक अन्तर्विरोधों के कारण देश की सामाजिक व्यवस्था में तमाम विद्रूपताएँ उत्पन्न हुई हैं। जन-जागरण, संचार माध्यमों के विकास और वर्ग-संघर्ष की स्थितियों ने समाज की विकृत और पतनशील स्थितियों को सतह पर ला दिया है। विवेच्य कालखण्ड के उपन्यासों में यह विकृतियाँ और विद्रूपताएँ बड़ी शिद्दत के साथ उजागर हुई हैं। *वल्लभ सिद्धार्थ* ने अपने उपन्यास *कठघरे* में समाज की वर्तमान स्थितियों का, पतन और विद्रूपताओं का बेबाक चित्रण किया है। उपन्यास की नायिका नंदिनी के स्वभाव, रूप और गुण उसकी मजबूरी और दरिद्रता के सामने ओछे पड़ गए हैं। उपेक्षा और अभाव कारण बच्चे बिगड़ रहे हैं। उपन्यास का नायक निरपराध होते हुए भी यातनाएँ और दण्ड भोगता है। उपन्यास के नायक, नायिका और बच्चे समाज के उस बड़े वर्ग के प्रतीक हैं, जो गरीबी, असहायता, उपेक्षा, अपमान और अत्याचार का दंश भोग रहे हैं। बेबस होकर सबकुछ देखने को मजबूर मौनदृष्टा सामाजिक नैतिक शक्तियों का प्रतीक है- उपन्यास का अधेड़ पात्र। वह स्वयं को 'इतिहास का बैताल' कहता है। उसके और नायक के वार्तालाप के माध्यम से गाँधी-नेहरू युग की समाप्ति, आपात्काल की हिंसा, समाजवाद के पतन और जन-विरोधी सरकारों की उपेक्षा के कारण समाज में उपजे अन्तर्विरोधों, विषम स्थितियों, गरीबी और बेकारी के कारण उपजी सामाजिक असमानताओं और वर्ग-संघर्ष के हालातों का अतीत और वर्तमान एवं पतनोन्मुख समाज का क्रमबद्ध विवरण बहुत तीखे और सटीक रूप में खुलकर सामने आता है। वर्ग-विभेद और जातीय असमानता की स्थितियाँ स्वतंत्र भारत में और अधिक तेजी के साथ विकसित हुई हैं। निरन्तर प्रगति करते रहने और आधुनिकता की ओर बढ़ते जाने के बावजूद ये स्थितियाँ बद से बदतर होती

गई हैं।

गिरिराज किशोर के उपन्यास *यथा प्रस्तावित* में असमानता और वर्ग-विभेद के विद्रूप चेहरे विभागों और कार्यालयों में दिखाई देते हैं, वहीं दूसरी ओर *गिरिराज किशोर* के ही उपन्यास *परिशिष्ट* में शिक्षण संस्थानों में भी गहरी पैठ बनाए हुए यह विद्रूप नजर आते हैं। वर्ग-विभेद और जातीय असमानता को चलाते हुए समाज का प्रभावशाली और सम्पन्न तबका व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति में संलग्न रहता है और समाज की यही विकृत मानसिकता कार्यालयी सहकर्मियों के बीच जिन्दा रखते हुए निज स्वार्थों की पूर्ति और वर्चस्व बनाए रखने के हथियार के रूप में प्रयोग की जाती है। *परिशिष्ट* में स्थितियाँ और अधिक जटिल हो जाती हैं क्योंकि आने वाली पीढ़ी शिक्षा के साथ इस ज्ञान को भी अर्जित कर लेती है। प्रभुत्वशाली वर्ग के छात्र अपने सहपाठी के रूप में निम्न वर्ग के छात्रों की उपस्थिति को नहीं पचा सकने की स्थिति में असहज हो जाते हैं और शिक्षा के मंदिर में भी वर्ग-विभेद की स्थितियाँ पैदा हो जाती हैं।

आठवें दशक के बाद कई ऐसे उपन्यास आए हैं, जिनमें समूचे क्षेत्र या अंचल की सामाजिक स्थिति को बड़ी गहराई से प्रकट किया गया है। और ऐसे सभी उपन्यास समवेत रूप में देश की सामाजिक स्थिति का पूरा खाका प्रसतुत कर देते हैं। *भगवानदास मोरवाल* के उपन्यास *काला पहाड़* और *बाबल तेरा देस में* हरियाणा के मेव बहुल क्षेत्र की सामाजिक स्थिति की पड़ताल करते हैं। आधुनिक विकास की प्रक्रियाओं से अछूता यह इलाका इस जीवन की तमाम आधारभूत सुविधाओं, रोजगार और उद्योग धंधों के अभाव से जूझ रहा है। 'काला पहाड़' के सलेमी को यह अभाव मृत्युपर्यन्त सालता रहता है। इस इलाके की इस दुर्दशा के लिए यहाँ के जन प्रतिनिधि भी कम उत्तरदायी नहीं है। चौधरी करीम हुसैन, एम. एल. ए. ''इतना बड़ा नेता होने के बावजूद वह अपनी उस छाछ महेरी को नहीं छोड़ पाया है, जिसके बारे में उन्हें इलाके के बाहर लोगों को बताने में हीनता महसूस होती है।''[15] मेवात क्षेत्र के नेताओं का यह दोहरा चरित्र अपने समाज के लोगों को छलने, झूठी महानता दिखाने और प्रशंसा अर्जित करने का जरिया है। गंगा-जमुनी तहजीब में रचा-बसा यह इलाका अपनी अभावग्रस्तता के बावजूद साम्प्रदायिक उन्माद से दूर है, लेकिन नई पीढ़ी में धार्मिक संकीर्णता पनप रही है और मेवात के नेता ही इस मानसिकता को बढ़ावा दे रहे हैं ताकि उनके व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध हो सकें। बाबल तेरा देस में के पात्र नसीब खाँ और धनसिंह की जोड़ी व दादी जैतूनी और बत्तो की आपसी

प्रगाढ़ता धार्मिक संकीर्णता को नकारती हुई नजर आती है। 'बाबल तेरा देस में' धर्म और शरीयत का उपयोग पुरुषवादी अहं को जिन्दा रखने में किया जाता है। स्त्रियाँ इन षड़यत्रों को जानती हैं, फिर भी अपनी मजबूरियों के कारण उन्हें पुरुषवादी अहं को तुष्ट करना होता है, घरेलू हिंसा और बलात्कार की पीड़ा को मौन होकर सहना पड़ता है। गाँव में सरपंच का चुनाव जीतने के बाद भी असली सत्ता दीनमुहम्मद के पास ही रहती है। जहाँ एक ओर 'काला पहाड़' में मेवात-क्षेत्र के पिछड़ेपन, गरीबी और अभावग्रस्तता सहित कई बुनियादी सामाजिक-आर्थिक चरित्र प्रकट हुए हैं, वहीं दूसरी ओर बाबल तेरा देस में, मेवात क्षेत्र की स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का, अशिक्षा, गरीबी और घरेलू हिंसा-बलात्कार सहित सामाजिक बुराइयों- बाल विवाह, तलाक, स्त्रियों की खरीद-फरोख्त के कारोबार आदि को भी जोर-शोर से उठाया गया है।

राकेश कुमार सिंह के उपन्यास *पठार पर कोहरा* में झारखण्ड के पलामू जिले के ग्रामीण क्षेत्रों की सामाजिक स्थिति उजागर की गई है। मेवात क्षेत्र की भाँति यह इलाका भी देश की आजादी का मतलब नहीं समझ पाया है। स्थानीय आदिवासियों के जीवन-यापन का अपना तरीका है उनकी निजी सामाजिक संरचना है। प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के लिए अंग्रेजों ने इस क्षेत्र में अपना वर्चस्व बढ़ाया और आदिवासियों का शोषण किया। देश की आजादी के बाद भी शोषण का यह क्रम बदस्तूर जारी रहता है। झारखण्ड के जंगलों में अब साहूकार, सरकारी मुलाजिम और दबंग-अपराधी उत्पीड़न और अत्याचार के नये-नये दुष्चक्र रचकर निरीह आदिवासियों का शोषण करते हैं। अशिक्षा, गरीबी, परम्परागत रूढ़िवादी संस्कारों और अभावग्रस्तता से लड़ते रहने के बावजूद निरन्तर शोषण और उत्पीड़न के कारण इन आदिवासियों में जागरूकता भी आ रही है। गैर आदिवासी, जो इन्हें तंग नहीं करते, आदिवासियों के दुःख-दर्द के साथी भी बनते हैं। इस प्रकार पैदा होती जा रही जनचेतना क्रमशः नक्सलवादी आंदोलन का रूप ले लेती है।

मधुकर सिंह का उपन्यास *बाजत अनहद ढोल* और *राकेश कुमार सिंह* का उपन्यास *जो इतिहास में नहीं है* झारखण्ड के संथाल आदिवासियों की सामाजिक व्यवस्था, साहूकारों, जमींदारों और सरकारी मुलाजिमों के शोषण की व्यथा और संघर्ष का आख्यान है। बाजत अनहद ढोल में शोषण के विरुद्ध पनपती संघर्षशीलता और जीवन्तता के स्वर हैं तो दूसरी ओर 'जो इतिहास में नहीं है' में पहचान और अस्तित्व के लिए संघर्ष करते आदिवासियों का आख्यान है,

जो स्वाधीनत आंदोलन के इतिहास में दर्ज नहीं हैं। आदिवासियों का वनों पर आश्रित जीवन है, उनकी अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना है, व्यवस्था, आस्था और मान्यता है। प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की (बद) नीयत के कारण गैर-आदिवासियों ने आदिवासियों के जीवन में दखल दिया और शोषण, अत्याचार सहित तमाम हथकण्डे अपनाकर उनके जीवन को, सामाजिक ढाँचे को छिन्न-भिन्न कर दिया। झारखण्ड के संथाल आदिवासियों की सामाजिक संरचना में अंग्रेजों, जमींदारों और साहूकारों द्वारा पैदा की गई विकृतियों को उपन्यासकार ने कई जगह उजागर किया है और इस प्रकार शोषण और अत्याचार के ऐतिहासिक सत्य को वर्तमान में चलते हुए दिखाया गया है। ललमुँहों यानि अंग्रेजों, साहूकारों और जमींदारों के अत्याचार के खिलाफ हारिल मुरमू विद्रोह का बिगुल फूँक देता है। वह उराँव जाति की युवती लाली से प्रेम कर बैठता है, लेकिन दोनों के जातीय बंधन उनको मिलने नहीं देते। दूसरी ओर जमींदारों और साहूकारों द्वारा आदिवासियों के शिकार खेलने, वनोपज लेने और निर्बाध विचरण करने पर लगाई गई रोक के कारण उत्पन्न हुआ पहचान का संकट है। इस प्रकार हारिल और लाली के प्रेम प्रसंगों के बीच आदिवासियों की सामाजिक व्यवस्था, लोक जीवन, संस्कृति और धार्मिक मान्यताओं के तमाम अनछुए पहलू उजागर होते हैं तो साथ ही गैर आदिवासियों द्वारा आदिवासियों के जीवन और उनकी सामाजिक संरचना में की जा रही घुसपैठ के खिलाफ विद्रोह पर उतारू हो गए संथाल युवक मुरमू के विद्रोही तेवरों के जरिए झारखण्ड के 'हूल' आन्दोलन की पृष्ठभूमि को, आदिवासियों के जीवन की दुःखद स्थितियों और शोषण को प्रकट किया गया है।

निर्मला भुराड़िया के उपन्यास *आब्जेक्शन मी लार्ड* और *प्रभा खेतान* के उपन्यास ***पीली आँधी*** में मारवाड़ी समाज की, उसमें आ रहे बदलावों की गहराई से पड़ताल की गई है। पीली आँधी में राजस्थान, बिहार और पश्चिम बंगाल तक फैले मारवाड़ी व्यापारियों के व्यवसाय और उनकी सामाजिक स्थिति का ब्योरा देने के लिए इतिहास को भी खंगाल डाला गया है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद से लेकर देश को आजादी मिलने के बाद के वर्षो तक विस्तृत देशकाल में मारवाड़ी समाज की चार पीढ़ियों की व्यथा को इस उपन्यास में उजागर किया गया है। राजस्थानी मारवाड़ी हमेशा उत्पीड़न और त्रासद यंत्रणाओं के शिकार हैं क्योंकि उनके पास अर्थार्जन का ही पेशा था। अपने बीबी-बच्चों को छोड़कर, अपना घर छोड़कर धन कमाना और लौटने पर रजवाड़ों द्वारा उनका धन छीन लिया जाना या फिर हत्या कर दिया जाना ही उनकी नियति थी। एक ओर

रजवाड़ों को धन देना और दूसरी ओर अंग्रेजों को नजराना पेश करना उनकी दोहरी गुलामी का परिचायक है। यही स्थिति कमोबेश आज भी है, नामचीन गुण्डों को धन देते हुए और राजनीतिक पार्टियों को चुनाव का चन्दा देते हुए आज भी दोहरी गुलामी जैसी स्थितियाँ हैं। दूसरी ओर मारवाड़ी समाज की स्त्रियाँ हैं, आधुनिक होते हुए भी बंद दायरे में सीमित, सिकुड़ी हुई-सी। बेमेल विवाह, बाल विवाह और विधवा जीवन की त्रासदी भी इस समाज में मौजूद है। अपने अधेड़ व्यवसायी पति से संतान प्राप्त नहीं कर सकने वाली और युवावस्था में ही विधवा हो जाने वाली ताई जी उर्फ पद्मावती के जीवन में सुराणा जी आते हैं और अपनी बीबी को तलाक देकर पद्मावती से शादी करना चाहते हैं, लेकिन पद्मावती अपनी तमाम आकांक्षाओं और कामनाओं पर जबरन नियंत्रण रखकर पति की प्रतिष्ठा और 'रूँगटा हाउस' की गरिमा को जिलाए रखती है। अन्ततः चौथी पीढ़ी में मारवाड़ी समाज की दकियानूसी परम्पराएँ और रीति-रिवाजों की बन्दिशें ढह जाती हैं। इस कार्य को अंजाम देती हैं- सोमा। तमाम सुख-साधनों के बावजूद मारवाड़ी समाज की पुरुष प्रधान व्यवस्था के खिलाफ लड़ते हुए सोमा अपने पति को छोड़कर सुजित सेन के पास चली जाती है, जहाँ केवल धन-वैभव नहीं है, प्यार और जीवन का सुखद पक्ष भी है। आब्जेक्शन मी लार्ड की नायिका माधवी पूँजीवादी परिवेश से निकलने वाले समाचार पत्र के चरित्र को उजागर करने के साथ ही साथ मारवाड़ी समाज में आते बदलाव और बढ़ती आधुनिकता के विद्रूपों को परत-दर-परत खोलकर रख देती है। धनाढ्य मारवाड़ियों द्वारा आधुनिकता के प्रवाह में बहकर विवाह के बन्धनों को तोड़कर कायम किये गए विवाहेतर सम्बन्धों की भरमार, पति की उपेक्षा और शोषण के कारण घर की चहारदीवारी के भीतर तिल-तिल घुटती मारवाड़ी महिलाएँ, समाज में पहचान के संकट से जूझती अवैध संतानें आधुनिकता की ओर बढ़ते मारवाड़ी समाज की असलियत उजागर कर देती है। उपन्यास की नायिका माधवी पूँजीवाद की गिरफ्त में फँसे 'मीडिया जगत्' के उद्धार के लिए प्रस्तुत होती है तो दूसरी ओर मारवाड़ी समाज की विद्रूपताओं और परिवेशगत विकृतियों से मुक्ति के लिए छटपटाती रहती है।

विद्यासागर नौटियाल के उपन्यास *उत्तर बायाँ है* और *भीम अकेला* में पहाड़ी जनजातीय लोगों के सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकारों सहित पहाड़ के मौजूदा जीवन के त्रास और विडम्बनाओं को बड़ी विदग्धता से प्रकट किया गया है। उनके ताजा उपन्यास 'उत्तर बायाँ है' में गढ़वाल अंचल की 'पालसी' और 'गूजर' नामक घुमक्कड़ी जनजाति के लोगों के रहन-सहन और

जीवन-यापन की कठिनाइयों को प्रकट किया गया है। जानवरों की खातिर चारे की तलाश में भटकते पालसियों का जीवन संघर्षमय होता है, एक ओर दुर्गम पर्वतों में चलती तेज हवाएँ हैं तो दूसरी ओर परिवार और गाँव-घर छोड़कर रहने की मजबूरियाँ। गूजर लोग अपने परिवार के साथ चलते हैं और जहाँ डेरा डालते हैं वहीं के हो जाते हैं। बरसात के बाद पालसियों और गूजरों दोनों को ही ऊँचाइयों में स्थित बुग्याल (चारागाह) छोड़कर मैदानों में आना पड़ता है। गाँवों की समस्या भी कम नहीं है। यहाँ पर भी वर्ग-विभेद की स्थितियाँ हैं। आजादी के पहले निरंकुश राजाओं और उनके कारिन्दों की मनमानी चलती थी, अब सरकारी मुलाजिमों की जोर-जबरदस्ती है। चाँदी गाँव के करणू पालसी को मिलावटी दूध बेचने के झूठे आरोप में फँसा दिया जाता है क्योंकि उसने बीएलडब्लू. द्वारा गाँव वालों से जबरन वसूले गए आलू के बोरों को ब्लाक मुख्यालय रैमासी पहुँचाने से इंकार कर दिया था। धारगाँव के लोगों में जब पुलिसिया प्रताड़ना का विरोध किया तो सबके ऊपर भाँग उगाने का झूठा आरोप लगा दिया गया। एक ओर ये लोग मुकदमों और अदालतों के चक्कर में न्याय के लिए भटकते रहते हैं, जेल में बंद रहते हैं और दूसरी ओर धन सिंह जैसे बाहुबली लोग इनकी जमीन-जायदाद ही नहीं औरतों पर भी कब्जा कर लेते हैं। जटिल कानूनी प्रक्रिया, ग्रामीणों का अल्पज्ञान और कमजोरी के कारण हमेशा शोषित और उपेक्षित जीवन जीने वाले इन गरीब पहाड़ी लोगों की दयनीय सामाजिक दशा के लिए उत्तरदायी समूची व्यवस्था के विद्रूपों को इस उपन्यास में परत-दर-परत उघाड़कर रख दिया गया है। इसी प्रकार *मृणाल पाण्डे* के उपन्यास *पटरंगपुर पुराण* में एक परिवार की कई पीढ़ियों के किस्से के जरिए पहाड़ों के जीवन की जटिलताओं, सामाजिक व राजनीतिक त्रासदियों के साथ ही पहाड़ों के लोक-जीवन व लोक-संस्कृति के तमाम रंगो और विविधताओं से साक्षात्कार कराया गया है।

क्षमा कौल के उपन्यास *दर्दपुर* में सामाजिक विघटन की स्थितियाँ उत्पन्न करने और सामाजिक ताने-बाने को खंडित करने के लिए दूसरी शक्तियाँ उत्तरदायी हैं। अपने अतीत से ही कश्मीर की सामाजिक संरचना हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति, रहन-सहन, रीति-रिवाज और सभ्यता के साझे रंग में रंगी रही है। कश्मीर में आतंकवाद के फैलने से पूर्व यहाँ की गंगा-जमुनी तहजीब और प्राकृतिक सौन्दर्य आकर्षक का केन्द्र रहे हैं। लेकिन धार्मिक उन्माद के कारण समाज विखण्डित हुआ, साथ ही प्राकृतिक सौन्दर्य भी मानों अपनी गरिमा खोता चला गया। मॉरीशस में बसे हिन्दी के जाने-माने साहित्यकार *अभिमन्यु अनत* ने मॉरीशस के गिरमिटिया मजदूरों

की दयनीय सामाजिक स्थिति को केन्द्र में रखकर *लहरों की बेटी* उपन्यास लिखा है। मॉरीशस के उजाड़ टापू को अपनी मेहनत के बूते न केवल स्वर्ग बना देने वरन् वहाँ की उपजाऊ जमीन पर मेहनत करके आर्थिक समृद्धि के द्वार खोल देने वाले गिरमिटिया मजदूरों की जिन्दगी हमेशा द्वितीयक ही रही। इन मेहनतकशों की मजदूरी पर पूँजीपतियों ने, बाहुबलियों और बाहरी लोगों ने सेंध लगा दी, उनकी मेहनत की कमाई पर खुद राज करने लगे। जब धनदेव साहब जैसे लोगों को यह अहसास होने लगता है कि अब ज्यादा दिनों तक इन मजदूरों का शोषण नहीं किया जा सकेगा तो उन्होंने इन मजदूरों को आपस में लड़ाने, विभाजन पैदा करने और कई तरह के दुर्व्यहार फैलाना चालू करके गिरमिटिया मजदूरों की सामाजिक संरचना को कमजोर करना चालू कर दिया। इन मजदूरों में से कुछ जुझारू लोगों ने जब पूँजीतियों के कुचक्र को समझा तब अपने 'बैठका' के माध्यम से संगठित होकर पूँजीपतियों और बाहुबलियों से संघर्ष का आह्वान किया, अपनी भाषा, धर्म और संस्कृति को बचाए रखने के लिए एकजुट होने लगे। विदुला, दुलारी और जीवनदत्त जैसे संघर्षशील युवाओं ने आगे आकर अपने समाज की रक्षा और हित के लिए जीने की एक नई राह दिखाई।

ठाकुर प्रसाद सिंह का उपन्यास *सात घरों का गाँव*, उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले के दक्षिण अंचल में बसे सात घरों के गाँव बाघमारा के लोगों की, वहाँ के मूल निवासियों के जीवन की विषमताओं और विभीषिकाओं की पड़ताल करता है। इस जंगली इलाके के मूल निवासी खखार, कौल और घसियार जनजाति के लोग रहे हैं, लेकिन यहाँ की प्रचुर वन सम्पदा के कारण आकृष्ट होकर बस गए लोगों के कारण मूल निवासियों की समूची व्यवस्था और सामाजिक संरचना अस्त-व्यस्त हो गई है। देवी सिंह ने बड़े क्रमबद्ध तरीके से यहाँ पर जमीनों में कब्जा करना शुरू किया था और धीरे-धीरे वे पूरे क्षेत्र में अपना आतंक कायम कर चुके हैं, अपना गैंग बनाकर डकैती डालने में भी महारत हासिल कर ली है। यहाँ के आदिवासी शोषण और अत्याचार से त्रस्त हैं। जंगलों की लकड़ी, तेंदू पत्ता और मेवे आदि बड़े शहरों की मण्डियों में जा रहे हैं जबकि आदिवासी भूखे और नंगे रहकर अपना जीवन बिता रहे हैं। इन सबके बावजूद आदिवासियों ने अपनी संस्कृति को, रीति-रिवाज और सामाजिक बन्धनों को नहीं छोड़ा है। आदिवासी कन्या मादल की उम्र की परवाह किये बगैर देवी सिंह उस पर आकृष्ट हो जाते हैं, दूसरे गाँव के विद्यालय का मास्टर आदिवासी कन्या मंगरी से शादी करना चाहता है लेकिन मंगरी

अपनी पारिवारिक और सामाजिक प्रतिष्ठा बचाए रखने की खातिर उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है। उपन्यास के अंत में मंगरी और मास्टर का मिलन हो जाता है और इस मिलन में सहायक बनते हैं- अकाल से त्रस्त आदिवासियों की सहायता के लिए खोले गए सहायता कैम्प। कुल मिलाकर प्रेम कथा के साथ ही साथ आदिवासियों के जीवन के कई अनछुए पहलू इस उपन्यास में उजागर होते हैं। *कृष्णा अग्निहोत्री* के उपन्यास *टपरेवाले* में समाज में उपेक्षित बसोड़, माहर और बलई जाति के लोगों के कष्टसाध्य, पशुवत् और संघर्षमय जीवन को समग्रता के साथ प्रकट किया गया है। देश की आजादी के कई वर्ष बीत जाने के बाद भी इन लोगों की सामाजिक स्थिति में कोई सुधार नहीं आया है। अशिक्षा, गरीबी, पुलिस और नेताओं द्वारा किये जा रहे शोषण एवं साहूकारों द्वारा इनकी मेहनत की कमाई में लगाई जा रही सेंध के कारण इन लोगों की सामाजिक स्थिति दयनीय है। इसके अतिरिक्त नशेबाजी, अंधविश्वास, जनसंख्या वृद्धि और बेकारी के जाल में फँसे रहने के कारण ये लोग अपनी बदहाली के लिए प्रायः स्वयं ही जिम्मेदार हैं। लड़कियों की खरीद फरोख्त, विवाहेतर यौन सम्बन्धों की स्थापना और जुएँ आदि की बुराइयों के कारण इन लोगों को नारकीय जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

समाज में 'बेड़नी' स्त्रियों की स्थिति तलाशने और 'बेड़नियों' के अन्तरंग जीवन की पड़ताल करने का गहन ओर सारगर्भित प्रयास *शरद सिंह* के उपन्यास *पिछले पन्ने की औरतें* में हुआ है। देह व्यापार और रखैल रखने जैसी सामाजिक बुराइयों को छिपाने और लगातार चलाए रखने के लिए खास तौर पर बुन्देलखण्ड क्षेत्र में प्रचलित 'राई नृत्य' के जमकर दुरुपयोग को इस उपन्यास में उघाड़कर रख देने के साथ ही साथ पुरुषवादी वर्चस्व पर तीखा प्रहार किया गया है। श्यामा, नचनारी, फुलवा और रसूबाई की जिंदगी विवशता से भरी हुई है- गरीबी के कारण देह व्यापार करने को मजबूर होना, समाज की उपेक्षा और 'बेड़नी' के रूप में अपनी पहचान का दंश भोगते हुए अपने बच्चों के अंधकारमय भविष्य से जूझना ही इनकी नियति है। समाज द्वारा दी गई गन्दगी को ढोते हुए इन बेड़िन नर्तकियों को 'जाबाली योजना' और 'सत्यशोधन आश्रम' जैसे कल्याणकारी कार्यक्रमों से उम्मीद है, लेकिन ये कार्यक्रम और योजनाएँ लक्ष्य से दूर गतिविधियों तक ही सिमट कर रह जाते हैं।

चन्द्रकिशोर जायसवाल का उपन्यास *चिरंजीव* समाज में गहरी पैठ बना चुकी वर्गीय असमानता की तिक्तता को और ग्रामीण व शहरी जीवन के अंतर को प्रकट करता है। आधुनिकता

के बावजूद कई चीजें अभी भी अपनी जगह पर कायम है। तमाम बदलावों के बावजूद समाज का प्रभुतासम्पन्न वर्ग इन बदलावों को स्वीकार नहीं कर पाया है। उपन्यास का शशांक अपने बेटे टीपू की पढ़ाई के लिए बजरंगी झा को लाता है। बजरंगी झा वर्ग-विभेद की मानसिकता से मुक्त नहीं हैं और यह मानसिकता उनके अध्यापन में भी उजागर होती है। वह शशांक गुप्त के बेटे टीपू की बुद्धिमत्ता, वाकपटुता और बाल सुलभ चंचलता को पचा नहीं पाते- ''बनिया मक्काल की यह मजाल कि अब ब्राह्मणों को पढ़ना और पढ़ाना सिखाए।''[16] दूसरा विभेद ग्रामीण और शहरी जीवन का है। गाँवों में बेकारी और गरीबी है; कमुआ, हरिया, छुट्टरा, रघुआ, चुल्हवा जैसे यतीम हैं; अंधकारमय, भविष्यहीन जीवन जीते बच्चे हैं और चिकित्सा व शिक्षा जैसी मूलभूत सुविधाओं का अभाव है। इस अभाव के कारण ही शशांक का टीपू मर जाता है। उपन्यास में तो वह मरकर भी 'चिरंजीव' रहता है, अमर हो जाता है, लेकिन समूची व्यवस्था के समक्ष यह ज्वलन्त प्रश्न खड़ा कर जाता है कि हाशिए पर जीने वाले लोगों का भविष्य क्या इसी प्रकार चिंरजीवी होता है?

शिवमूर्ति का उपन्यास *तर्पण* समाज में आते बदलाव को बड़ी शिद्दत के साथ उजागर करते हुए दलितों में जागृत होती चेतना और वर्ग-संघर्ष की स्थितियों को पेश करता है। उत्तर भारत के एक दलित बहुल गाँव के इस आख्यान में बँधुआ मजदूरी करते हुए मर-खप जाने वाले दलितों की युवा पीढ़ी के अंदर विकसित होती चेतना को इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। एक ओर पियारे, उसकी बेटी रजपत्ती और गाँव के दलित हैं तो दूसरी ओर धरमदत्त, मालकिन, उनका बेटा चन्दर और सवर्ण हैं। भाई जी जैसे तथाकथित नेता भी उपन्यास में हैं, जो अवसर देखकर अपना मोर्चा संभालते रहते हैं। चन्दर ने रजपत्ती के साथ छेड़छाड़ की, लेकिन दलित एक्ट और बलात्कार के झूठे मुकदमें उस पर लगाए गए, लिहाजा दोनों पक्ष अपने अंदरूनी वैर-भाव भुलाकर एक हो गए और संगठित होकर एक दूसरे को नीचा दिखाने के रास्ते खोजने लगे। जमानत पर जेल से छूटकर आए चन्दर पर पियारे का लड़का मुन्ना जानलेवा हमला करता है। चन्दर भाई जी की हत्या करने में नाकाम रहता है और मुन्ना के प्रहार से घायल हो जाता है। वकीलों और बिरादरी के लोगों के समझाने के बावजूद पियारे अपने बेटे का जुर्म खुद स्वीकार कर लेता है और अदालत द्वारा दिये गए दण्ड को भोगने के लिए तैयार होते हुए उसे महसूस होता है कि वह अपने पूर्वजों को असली श्रद्धांजलि दे रहा है, पुरखों का तर्पण कर रहा है।

वर्ण–संघर्ष को वर्ग–संघर्ष में बदलकर सामाजिक असमानता को दूर करने की राह दिखाकर और सुखद भविष्य की कामना में विकसित होती जनचेतना की विरासत अपनी नई पीढ़ी को सौंपकर हुए पियारे को न केवल आत्म संतुष्टि होती है, वरन् जीवन का मोह भी नहीं रह जाता है।

असमानता को दूर करने की जिजीविषा *मोहनदास नैमिशराय* के उपन्यास *मुक्तिपर्व* के नायक सुमित में भी दिखाई देती है, वह अपनी लगन, मेहनत और संघर्ष के बल पर अपने समाज के लोगों को मुक्ति की राह दिखाता है। बंसी के बेटे सुमित को अपने समाज के लोगों का दर्द हमेशा उद्विग्न करता रहता था। "दलित समाज के लोग जहाँ भी थे हाशिये पर थे। गाँव हो या शहर उनकी बस्तियाँ शेष समाज से अलग–थलग ही होती थीं। उनके घर अलग से पहचाने जाते थे। उनका व्यवसाय दूसरे लोगों से अलग था। वे जितना अपने आपको ढोते उतना ही गुलामी को भी। इसलिए उनके भीतर जैसे घाव होते वैसे ही बाहर भी दिखाई देते। वे अपने घावों का जितना भी इलाज करते, नए घाव उतने ही हो जाते। उन्हें इतिहास से काटकर रख दिया गया था। अब वर्तमान से भी काटने के प्रयास हो रहे थे, पर इतिहास से काट कर अलग रख देने में जितनी सफलता मिली, उतना वर्तमान से काटने में सफलता नहीं मिल पा रही थी। अब वे न दीन थे न हीन बल्कि जुझारू बन रहे थे। उनके भीतर का दर्द बाहर आता तो वे अपने आप से ही सवाल जवाब करते।"[17] शिक्षा के प्रसार के कारण ही यह बदलाव संभव हो रहा था, अशिक्षित व गरीब बनाए रखकर बेगार कराने और प्रगति के रास्तों को अवरुद्ध करने की प्रभुत्वशाली वर्ग की साजिश को शिक्षित होकर ही तोड़ा जा सकता था। इसीलिए दलित बंसी का बेटा सुमित उच्च शिक्षा प्राप्त करके अध्यापक बन जाता है। वर्षो से आजाद देश में भी गुलामी का दंश झेलने वाले समाज के लिए प्रतीकात्मक रूप से सुमित की सफलता का दिन ही उसके समाज के लिए असली मुक्तिपर्व सिद्ध हो जाता है। सुमित अपने समाज के लोगों की हालत सुध ारने के लिए उन्हें शिक्षित होने को प्ररित करता है।

मार्कण्डेय के उपन्यास *अग्निबीज* में ग्रामीण क्षेत्रों के निचले तबके के लोगों की नई पीढ़ी में विकसित होती जन–चेतना की प्रक्रिया का अंकन किया गया है। देश की आजादी से पहले भी शोषण था और आज भी है। अब के शोषक स्थानीय पूँजीपति, साहूकार, जमींदार और सरकारी मुलाजिम हैं, इनके द्वारा किये जा रहे शोषणा के विरोध में आने वाली पीढ़ियाँ सक्रिय हैं। उपन्यास के पात्र चार युवा- श्यामा, सागर, मुराद और सुनीत पूरे समाज का, हर वर्ग का

प्रतिनिधित्व करते हैं और अशिक्षा, शोषण व अत्याचार के विरुद्ध खड़े होते हैं। चारों युवा अपने देश की व्यवस्था के ही सताए हुए हैं और यातनाएँ सहकर भी संघर्ष से पीछे नहीं हटते। अंधविश्वास व रूढ़िवादिता का विरोध करते हुए ज्वाला सिंह द्वारा तय की गई शादी को मंजूर करने के लिए बाध्य होने के बावजूद श्यामा की संघर्षशीलता बरकरार रहती है। मुसई महतो का पुत्र सागर हरिजन होने के कारण अपनी बिरादरी के दूसरे लोगों की तरह अन्याय का दंश भोगता है, फिर भी विचलित नहीं होता। इसी प्रकार मुराद और सुनीत क्रमशः जुलाहे और ज्वाला बाबू के बेटे हैं, जो परम्परागत रूढ़िवादी विचारों से लगातार संघर्ष करते हैं और उनके खिलाफ डटकर खड़े होते हैं। सुनीत तो अपने पिता के खिलाफ ही विद्रोह कर देता है, वह अपने पिता की विरासत को आगे बढ़ाने के बजाय श्यामा की तरह क्रांतिकारी और विद्रोही बन जाता है।

संजीव के उपन्यास *धार* की नायिका मैना भी संघर्ष करती है। महिला होने और दलित समाज की होने के कारण उसे दोहरा संघर्ष करना पड़ता है। कोयला माफिया, ठेकेदार और पुलिस की मिलीभगत से आदिवासियों और दलित जनों के ऊपर वर्षों से हो रहे अत्याचार से लड़ने के लिए मैना अपने समाज के बीच संघर्षशील चेतना के रूप में न केवल उभरती है वरन् शोषण के खिलाफ जनजागरण भी करती है। *मनमोहन पाठक* का उपन्यास *गगन घटा घहरानी* पलामू क्षेत्र के आदिवासियों के जरिए आदिवासी जीवन के यथार्थ की भयावह तस्वीर तो पेश करता ही है साथ देश की आजादी और समूची व्यवस्था के समक्ष प्रश्न खड़ा कर देता है-असभ्यता और बर्बरता का। रायबहादुर जगधारी राय का सामन्ती शोषण बदस्तूर जारी है। जागो जैसे तमाम आदिवासी कर्ज के बोझ तले दबकर बँधुआ मजदूरों की जिंदगी गुजार रहे हैं। पुलिस और सरकार सामन्तों के साथ है। जागो के हाथ पैर बाँध कर उसे रायबहादुर के भूखे चीते के पिंजरे में डाल दिया जाता है। जागो बच निकलता है लेकिन दहशत के कारण विक्षिप्त हो जाता है। लुपुंगा और खजुरी गाँव विकास से दूर हैं। जमींदारों, माफियाओं और पूँजीपतियों के साथ मिलकर सरकार, नेता और पुलिस भी शोषण को बढ़ावा दे रहे हैं। बचाव की कोई राह नहीं दिखने पर आदिवासी समाज खुद संघर्ष के लिए प्रेरित होता है। सोनाराम जैसे पात्र दृढ़ता के साथ मुकाबला करते हैं, गाँवों के लोग सिपाहियों की हत्या करके अपना विरोध व्यक्त करते हैं। बदलाव की आहटें सुनाई देती हैं, गगन में घटाएँ घहरा रहीं हैं।

सुरेन्द्र स्निग्ध का उपन्यास *छाड़न* भी परिवर्तनकामी उपन्यास है। इसमें आजादी प्राप्ति

से पूर्व जमींदारों और अंग्रेजों के शोषण के शिकार गरीब निरीह ग्रामीणों की जिंदगी में आते बदलाव, देश की आजादी के बाद और वर्तमान में आते सामाजिक, राजनीतिक बदलाव को चित्रित किया गया है। सुकिया का बाप नेपाली अपनी जमीन पर जग्गन सिंह के कब्जे की पीड़ा के कारण मर जाता है, लेकिन सुकिया संघर्ष करती है और बोदो की किसान सभा के जरिए अपनी जमीन हासिल करती है। अब वह कारू शर्मा को एक इंच जमीन देने को तैयार नहीं है। मौनदृष्टा समाज जमींदार शिवसिंह द्वारा कमली और उसकी बेटी के साथ किये गए दैहिक शोषण को देखता रहता है, इसका परिणाम बाद में खुलकर सामने आता है, शिवसिंह अंत में मारे जाते हैं। अन्याय और शोषण के विरुद्ध निचले तबके के लोगों में पैदा हुई घृणा का विस्फोट घातक होता है और तब मौतें भी होती हैं, रक्तपात भी होता है।

बनाफर चन्द्र का उपन्यास *जमीन,* एकदम नई जमीन पर लिखा गया उपन्यास है। इसमें संघर्ष त्रिकोणात्मक है, जो अंत में दो वर्गों के बीच रह जाता है। निम्न वर्ग और मध्यम वर्ग के बीच आपसी टकराव है, इसका लाभ उठाकर उच्च वर्ग अपना स्वार्थ सिद्ध करता है। बिहार के चमनपुर गाँव के बड़े बबुआन निम्न वर्ग के लोगों को बहला-फुसला कर या जोर-जबरदस्ती से पेश आकर उनकी जमीन पर कब्जा कर लेते हैं। जमुना बाबू, केदार बाबू और रमन बाबू अपने-अपने तरीके से गाँव की सारी जमीन हड़प चुके हैं। पुरानी पीढ़ी के लोग आपसी अन्तविरोध और भय के कारण मौन रहते हैं, लेकिन युवा वर्ग शान्त नहीं बैठता। नीची और मध्यम जाति के लोगों को संगठित कर लड़ाई की योजना बनती है। जगदीश और नारायण इस संघर्ष का नेतृत्व करते हैं। दारोगा चुनमुन सिंह जमुना बाबू का साथ देता है, छोटी जाति के लोगों के घर जलाए जाते हैं, महिलाओं को बेइज्जत किया जाता है, लेकिन संघर्ष नहीं रुकता मध्यम और छोटी जाति के लोग संगठित होकर बबुआनों के खिलाफ लड़ते हैं। जमुना बाबू का बेटा, केदार बाबू और उनका बेटा व दारोगा चुनमुन सिंह मार डाले जाते हैं। कजरी अपने गर्भ में पल रहे बबुआनों के वंशज का हक माँगने जाती है। मार डाले जाने के बावजूद वह बबुआनों के मुँह पर कालिख पोत आती है। बबुआनों को अपने किये अत्याचारों का और बदलते वक्त का अहसास होता है। जगदीश जैसे नवयुवक अपनी शिक्षा पूरी करके अपने समाज के लिए कुछ कर दिखाना चाहते हैं। अत्याचार और शोषण की पराकाष्ठा, पुरुषवादी वर्चस्व का अतिचार शिक्षा के प्रसार और सम्मानजनक जीवन जीने की लालसा के कारण वर्ग-संघर्ष की प्रखरता वर्तमान का यथार्थ है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि समाज की बहुरूपता और विविधता के साथ-साथ समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार की रीतियों, कुरीतियों और अन्य गतिविधियों को आधार पर बनाकर आलोच्य कालखंड के उपन्यासों का कथ्यात्मक चिंतन स्वरूपगत हुआ है। इन उपन्यासों में वर्णित समाज अपने देश तक सीमित न होकर विश्वव्यापी है। विभिन्न समाजों की संरचना का परिचय तो उपन्यास देते ही हैं, उनकी विभिन्न समस्याओं की ओर इंगित करते हुए उनके समाधान के प्रति भी सजग हैं।

(ग) अर्थ एवं वाणिज्य :-

राजनीतिक एवं सामाजिक कारक आर्थिक स्थिति को बहुत प्रभावित करते हैं। देश की आजादी के कई वर्ष बीत जाने के बाद भी समाज का बड़ा वर्ग आर्थिक अभावों से जूझ रहा है, मध्यमवर्गीय परिवार अपनी आमदनी और खर्च में सामंजस्य नहीं बिठा पाने के कारण विसंगतियों और विद्रूपताओं के शिकार हो रहे हैं। इन सबके अतिरिक्त आर्थिक पक्ष शोषण और अत्याचार का सशक्त माध्यम बन कर उभरा है, साथ ही धनवान होने की महत्त्वकांक्षा को, विविध प्रकार के अपराधों को, पारिवारिक विघटन-विखण्डन को, सिद्धान्तविहीनता, मूल्यहीनता और अनैतिकता को जन्म देने में भी आर्थिक पक्ष अपनी अहम भूमिका अदा करता है। *रवीन्द्र वर्मा* का उपन्यास *निन्यानबे* देश की आजादी के बाद राष्ट्रीय चरित्र और नैतिकता में आए बदलावों को परखने का प्रयास करता हैं उपन्यास के केन्द्र में झाँसी में रहने वाला एक मध्यमवर्गीय परिवार है, जिसका मुखिया रामदयाल कट्टर सिद्धांतवादी है और स्वतंत्रता सेनानी भी है। अपनी मेहनत की कमाई से जीवन चलाने के सिद्धान्त पर अडिग रहने वाले रामदयाल के सिद्धान्तों, आदर्शों, देश की आजादी के लिए की गई जेल यात्राओं सहित कई मर्यादाओं को उनका छोटा बेटा हरिदयाल ही तोड़ देता है। राजनीति को कमाई का जरिया बनाकर, गुण्डागर्दी, लूटपाट और उत्पीड़न के माध्यम से करोड़पति बनने का ख्वाब देखने वाला हरिदयाल अपना लक्ष्य तो पा लेता है लेकिन बहुत कुछ छूट भी जाता है। धन पाने की हवस उसे अपने पिता के प्रति क्रूर तो बना ही देती है, पुश्तैनी मकान बेचने में भी उसे कोई शर्म-संकोच नहीं रह जाता। धन लोलुपता के आगे तमाम मूल्य, मर्यादाएँ, सम्बन्ध, नीति और मान्यताएँ ओछी पड़ जाती हैं।

आर्थिक अभाव और निरन्तर बढ़ती महँगाई की मार से टूटकर घर होने के तमाम अनिवार्य तत्त्वों को नष्ट कर चुके *घर* की दास्तान *विभूतिनारायण राय* ने अपने उपन्यास में

कही है। सिर छिपाने की मजबूरी और पेट भरने की जरूरत ने आपसी प्रेम जैसी-चीजों की जगह रिक्तता और तीखेपन के बावजूद उस ईंट-गारे से निर्मित दड़बेनुमा आकार से परिवार के सदस्यों को जोड़ रखा है। "घर की यह हालत पिछले तीन-चार सालों से ही हुई थी। पता नहीं इसके पीछे माँ की मृत्यु थी, विनोद की बेकारी थी, राजकुमारी की शादी न हो पाना था या रिटायरमेण्ट के बाद बढ़ी हुई मुंशी जी की आर्थिक कठिनाइयाँ थी। कुछ था जिसने घर की सारी इन्सानी गर्माहट छीन ली थी और शेष रह गया था केवल ठंडी और अनिवार्य औपचारिकता का लम्बा सिलसिला।"[18] मुंशी रामानुजलाल श्रीवास्तव की इकलौती बेटी राजकुमारी अपनी शादी के इन्तजार में असमय ही बूढ़ी हो चली और उसके रंगीन सपनों की जगह दैहिक जरूरतें हावी हो गई हैं। मुंशी जी अपनी दयनीय आर्थिक स्थिति के कारण दुहाजू वर से भी शादी कर देने को तैयार हैं, लेकिन उनके भाव भी आसमान छू रहे हैं। मुंशी जी का छोटा बेटा पप्पू भी पढ़ाई का अच्छा माहौल नहीं पाने के कारण बुरे लड़कों की सोहबत में पड़कर बर्बाद हो गया। मुंशी जी विनोद की नौकरी के बाद हालात सुधरने की उम्मीद में विनोद के लिए नौकरी ढूँढ़ते हैं। अंततः विनोद को पी.डब्ल्यू.डी. के मेट की नौकरी मिलती है, न चाहते हुए भी वह इस नौकरी को स्वीकार करता है आखिर उसे अपनी बहिन की शादी करनी है, पिता की इच्छाएँ पूरी करनी हैं और घर के खोए हुए वजूद को पुनः स्थापित करना है। *ज्ञान चतुर्वेदी* के उपन्यास *बारामासी* में भी आर्थिक अभावों से जूझते एक मध्यमवर्गीय परिवार की व्यथा उजागर की गई है। अलीपुरा कस्बे के इस परिवार में तमाम खर्चे अम्मा ही चलाती हैं, कभी गहने बेचकर तो कभी मायके से माँगकर। अम्मा के पति मर चुके हैं और चारों बेटे बेरोजगार व नाकारा हैं। लल्लन मामा अपनी भांजी की शादी के लिए भटकते हुए तमाम समस्याओं और उलझनों से जूझते हैं। अपनी मर्जी से अपनी-अपनी राह पर चलते हुए भी सभी सुखद भविष्य के आगमन हेतु आशान्वित हैं।

शैलेश मटियानी के उपन्यास *रामकली* की नायिका रामकली के परिवार की दयनीय आर्थिक स्थिति के कारण मजबूरी में उसे रिक्शाचालक बसंतलाल से विवाह करना पड़ता है। उसके दो बच्चे पैदा होते हैं, बसंललाल की कम आय के कारण वह स्वयं को आर्थिक रूप से असुरक्षित महसूस करती है और इस कमी को पूरा करने के लिए कभी कमला पहलवान के दर पर, कभी हरगुन पंडित के पास तो कभी अमोलक चंद के पास भटकती रहती है। सभी उसके शरीर को भोगना चाहते हैं। रामकली अपनी स्थिति को तलाशते हुए अपनी जिन्दगी बिताने के लिए सहारे

की आस में दर-दर भटकते हुए अंततः बसंतलाल के पास पहुँच जाती है, शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो पाने का अभाव खटकते हुए भी परिस्थितियाँ सुधार लेने की उम्मीद उसके मन में जिन्दा रहती हैं। *डॉ. मनीषा शर्मा* का उपन्यास *ढहते स्वप्न दीप* बार बालाओं के जीवन-संघर्ष पर आधारित है। निम्न आय वर्ग के परिवारों की बेसहारा लडकियाँ धन कमाने के लिए बार घरों में नौकरी करने के लिए बाध्य होती हैं। इसके बावजूद इन बार बालाओं को आर्थिक सुरक्षा और सहारे की दरकरार होती है। विभिन्न प्रकार की मानसिकता वाले लोगों के अनाचार को सहते हुए बार बाला क्षमा को भी एक साथी की तलाश रहती है। विधुर वर्मा जी उसकी ओर आकृष्ट होते हैं, लेकिन वह राजू को चाहती है। राजू उसे धोखा देता है अंततः वह वर्मा जी का हाथ थाम लेती है।

डॉ. रामदरश मिश्र ने अपने उपन्यास *दूसरा घर* में रोजी-रोटी की तलाश में अपना घर-बार छोड़कर विस्थापन की जिंदगी जीने वाले लोगों की व्यथा उजागर की है। अपनी रोजी-रोटी की खातिर अहमदाबाद पहुँचने वालों में डॉ. गौतम हैं और शंकर भी है। डॉ. गौतम चूँकि प्राध्यापक हैं इस कारण उनकी स्थितियाँ दूसरी हैं, जबकि शंकर कामगार है इस कारण उसका जीवन अहमदाबाद की अति पिछड़ी बस्ती में ऐसे लोगों के बीच व्यतीत होता है, जो उसे बाहरी जानकर तंग करते हैं, अपमानित करते हैं और ताने मारते हैं। अपने घर के सुख-चैन को छोड़कर अहमदाबाद में विस्थापित जीवन जीने को मजबूर शंकर के हृदय में असीमित वेदना है, फिर भी वह तकलीफें और अपमान सहकर संघर्ष करता है। गरीबी और बेकारी के कारण अपना घर छोड़कर बाहर जाने वाले तमाम लोगों का दर्द शंकर जैसा ही है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह का उपन्यास *झीनी झीनी बीनी चदरिया,* काशी के बुनकरों की दयनीय हालत को प्रकट करते हुए श्रम का वाजिब दाम चुकाए बगैर सीमा से अधिक मुनाफा कमाने वालों की मानसिकता उजागर करता है। उपन्यास में एक पक्ष मतीन, बशीर, रऊफ चचा, लतीफ, अल्ताफ और जमील आदि बुनकरों का है और दूसरा वर्ग अमीरुल्ला, हाजी मिनिस्टर सहित गोलबाजार के साहूकारों व दलालों का है। बनारस की प्रसिद्ध साड़ियाँ बनाने में भरपूर श्रम करने और उत्कृष्ट कारीगरी दिखाने के बावजूद आमदनी उसी अनुपात में बुनकरों को नहीं मिलती वरन् पूँजीपतियों और दलालों के हाथ में चली जाती है। व्यवस्था से जुड़ा तीसरा पक्ष बुनकरों के बैंक का है, जो बुनकरों को कर्ज देता है, कर्ज लेने की लम्बी प्रक्रिया और घूस की लम्बी रकम

के कारण बुनकर तो कर्ज नहीं ले पाते बशर्ते साहूकार और दलाल फर्जी सोसायटी बनाकर कर्ज ले लेते हैं। नतीजतन पूँजीपति और अधिक अमीर हो जाते हैं एवं बुनकर और भी गरीब। एक ओर हाजी साहब की बहुमंजिला कोठी बन जाती है और दूसरी ओर इलाज के अभाव में मतीन बुनकर की बीबी नजीबुन जिंदगी और मौत के बीच झूलती रहती है। यह वर्तमान का सबसे दुःखद यथार्थ है कि जहाँ मेहनत है, श्रम है वहाँ गरीबी है और जहाँ पर ठगी है, दलाली है वहाँ धन है, चकाचौंध है, अमीरी है।

सोहन शर्मा ने अपने उपन्यास *समरवंशी* में देश की बदहाल आर्थिक स्थिति के लिए जिम्मेदार सरकारी नीतियों और नेताओं की कोरी बयानबाजी पर तीखा प्रहार किया है। देश की आर्थिक समस्याओं की ओर से, बेकारी और गरीबी की ओर से जनता का ध्यान हटाने के लिए आर्थिक असमानता को धार्मिक और जातिवादी रंग देने की मानसिकता पर कुठाराघात करते हुए आर्थिक निरंकुशता, समाजवाद की असफलता और पूँजीपतियों की गिरफ्त में फँसी समूची व्यवस्था को उजागर किया गया है। पौंग बाँध बनाने की परियोजना के नाम पर किसानों को भूमिहीन कर दिया जाता है। उनकी उपजाऊ भूमि के बदले बंजर भूमि दे दी जाती है। पूँजीपतियों के खजाने दुगुने वेग से भरे जाने लगते हैं और गरीब किसान भुखमरी की कगार पर आ जाते हैं। तब सत्ता की अमानवीयता के खिलाफ जन आंदोलन खड़ा होता है जो धीरे-धीरे नक्सलबाड़ी आन्दोलन में बदल जाता है।

वीरेन्द्र जैन का उपन्यास *डूब* भी इसी प्रकार के आर्थिक प्रश्नों को उठाता है। बेतवा नदी पर बाँध बनाने की योजना के कारण बेघर होने वाले किसानों के समक्ष उत्पन्न जीवन-यापन के संकट पर केन्द्रित इस उपन्यास में प्रमुख समस्या विकास के कारण उत्पन्न हुए विनाश की है। बेघर होती जनता के सामने खड़े जीवन-यापन का, आर्थिक समस्या के यक्ष प्रश्न का जवाब न तो सत्ता के पास है और न ही विकासवाद की अवधारणा के पोषकों के पास। उपन्यास का पात्र माते जनता के दुख-दर्द और संवेदना को महसूस करता है। संवेदनशील और जागरूक होने के साथ ही साथ उसका सफल नेतृत्व समूची जनता की ओर से इस ज्वलंत आर्थिक समस्या और विकासवाद की त्रासदी का विरोध करता है। *काशीनाथ सिंह* के उपन्यास *अपना मोर्चा* में भाषा आंदोलन का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष देश की आर्थिक समस्या से सम्बन्धित है। आजादी के कई वर्ष बीत जाने के बावजूद व्यवस्था में बरकरार तमाम खामियों, आर्थिक असमानताओं, बेकारी और

गरीबी के फलस्वरूप भड़के छात्र असन्तोष के हिंसक आंदोलन में बदल जाने के पीछे उन तमाम युवाओं के हृदय की वेदना है, जिन्हें गरीबी और आर्थिक असमानता के कारण सुखद भविष्य की प्राप्ति के अवसरों से वंचित होना पड़ता है।

गरीबी और बेकारी को झेलते हुए इससे मुक्ति पाने के लिए धन कमाने के तमाम रास्तों को खोजने और अपने परिवेश में धन की बढ़ती महत्ता के कारण अधिक से अधिक धन कमाने की महत्त्वाकांक्षा ने न केवल समाज और परिवार को तोड़ा है, वरन् विघटन और अपराधों को भी जन्म दिया है। धन कमाने के लिए विभिन्न प्रकार से छल-छद्म करते लोग, अपराध और भ्रष्टाचार में डूबे लोग, अपना गाँव-घर छोड़कर दूसरी जगह में बस कर अर्थार्जन करते लोग, धन के कारण अपनी संस्कृति से विमुख होते लोग आजकल कम नहीं हैं, इतना ही नहीं धन और भौतिकता के पीछे भागते लोगों ने सादा जीवन और उच्च विचार जैसे आदर्शों को भी तिलांजलि दे दी है। यही आज के दौर का सत्य है।

(घ) धर्म और आस्था :-

वर्तमान वैज्ञानिक और तकनीकी युग में भी धार्मिक मान्यताओं और आस्थाओं से जुड़े तमाम पहलू एवं मुद्दे अपना प्रभावी स्थान बनाए हुए हैं। धर्म के नाम पर समाज के पूरे होते स्वार्थ, धर्म के नाम पर सेंकी जाती राजनीति की रोटियाँ, धर्म के नाम पर मानव और मानवता को बाँटकर धर्म के तथाकथित ठेकेदारों द्वारा रची जाती साजिशें, धार्मिक घृणा और धार्मिक अतिवाद समकालीन जीवन की निर्मम सच्चाई है। आठवें दशक के बाद के कई उपन्यासों में धर्म और आस्था से जुड़े विविध पक्षों, क्रूरताओं, विद्रूपताओं और विकृतियों को केन्द्र में रखकर वर्तमान के यथार्थ को बड़ी विदग्धता के साथ प्रस्तुत किया गया है। *भगवान सिंह* का उपन्यास *उन्माद*, साम्प्रदायिक घृणा तथा धर्म और जाति के नाम पर फैलने वाले उन्माद को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। उपन्यास में रंजना और रतन के रूप में नई पीढ़ी के वे युवा लोग उपस्थित हैं जो अपने माँ-बाप, परिवार और समाज के दबाव के कारण और मुखर विरोध कर सकने की अक्षमता के कारण धार्मिक कट्टरता संकीर्णता और उन्माद को पालते-पोसते रहते हैं। घोर आर्यसमाजी पिता सदानंद जी की वैचारिक संकीर्णता तथा राष्ट्रवाद के नाम पर फैलाई जा रही नफरत के कारण एक ओर रतन मानसिक रूप से विक्षिप्त हो जाता है तो दूसरी ओर रंजना पर लगी बन्दिशें और अविवाहित जीवन का क्लेश उसे भीतर तक तोड़ देता है। उपन्यास की ही

एक पात्र आबिदा को रतन की कट्टर धार्मिक मानसिकता उद्वेलित करती रहती है, अपनी वैचारिक प्रखरता और खुलेपन के कारण आबिदा को रतन के साथ रहते हुए अहसास होता है कि रतन की विक्षिप्तता की असली वहज धार्मिक कट्टरता और संकीर्ण वैचारिकता ही है। उपन्यास के बेहिस जी धार्मिक सहिष्णुता की मिसाल हैं लेकिन ऐसे उदारमना व्यक्तित्व का जीवन बहुत छोटा होता है, बेहिस जी की मृत्यु का प्रसंग लगभग यही तथ्य उजागर करता है। कुल मिलाकर धार्मिक उन्माद के कई चेहरे इस उपन्यास में खुलकर सामने आते हैं। *भगवानदास मोरवाल* के उपन्यास *काला पहाड़* और *बाबल तेरा देस में* मेवात क्षेत्र में आ रहे बदलाव के जरिए नई पीढ़ी में आधुनिकता के बावजूद कट्टर होती जा रही धार्मिक संकीर्णता ओर साम्प्रदायिक अलगाव की स्थितियों को विदग्धता के साथ प्रस्तुत करते हैं। धर्म को लेकर मानसिकता में आने वाले बदलाव की शुरुआत समाज के प्रभुत्वशाली वर्ग से होती है और सबसे पहले प्रभाव भी इसी वर्ग पर पड़ता है, जबकि गरीब-निरीह लोग सामान्य तौर पर सहजता के साथ साम्प्रदायिक सहिष्णुता और सद्भाव को जिलाए रखते हैं। दोनों उपन्यासों में इन स्थितियों का प्रमुख तौर पर चित्रण किया गया है। 'काला पहाड़' का मनीराम अपने लड़के के जन्म पर मंदिर में तो पूजा करता ही है, दादाखानू और पचपीर की मजारों पर गलेप भी चढ़ाता है दूसरी ओर सलेमी है, धर्मनिरपेक्षता की जीवन्त मिसाल। हिन्दू हो या मेव, दोनों के आपसी सम्बन्धों में धर्म आड़े नहीं आता, दादाखानू और पचपीर सभी के लिए पूज्य हैं। 'बाबल तेरा देस में' का समाज भी ऐसी ही धर्मनिरपेक्षता का पोषक है। उपन्यास का पात्र हीरा इसी कारण कहता है कि "या बात सू हमें कहा मतलब के ई हिन्दू हो या मेव। जाकी आसीस लग जाए वही असली देवी-देवता है।"[19] लेकिन स्थितियाँ तेजी से बदल रहीं हैं। अपने लाभ के लिए, वर्चस्व की स्थापना के लिए या फिर राजनीति की रोटियाँ सेंकने के लिए हर वर्ग के लोग साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण करना चाहते हैं। और समाज की समूची संरचना को छिन्न-भिन्न कर डालना चाहते हैं। इस मुहिम को कारगर करने के लिए युवा पीढ़ी का उपयोग किया जाता है। मेवों को मुसलमान बनाने के लिए, धार्मिक कट्टरता की मानसिकता का शिकार बनाने के लिए 'जमाती आयोजन' होते हैं। 'काला पहाड़' के पात्र हाजी अशरफ, बाबू खाँ, सुभान खाँ और हाकिम खाँ तथा 'बाबल तेरा देस में' के पात्र हाजी चाँदमल, यूनुस मुबीन आदि इस कार्य की योजना बनाने और क्रियान्वित करने हेतु सक्रिय दिखाई देते हैं। दूसरी ओर चौधरी मुर्शीद अहमद (उपन्यास-काला पहाड़) जैसे नेता भी हैं जो एक

ओर मेव मुस्लिमों के मन में हिन्दुओं के प्रति घृणा का बीज बोते हैं और दूसरी तरफ अल्प-संख्यक हिन्दुओं के हितैषी होने का प्रदर्शन करके दोनों के वोट पाकर चुनाव जीतना चाहते हैं। धार्मिक कट्टरता और वैमनस्य की प्रतिरोधक शक्तियाँ भी निरंतर संघर्ष में लगी हुई दिखाई देती हैं। 'काला पहाड़' के मनीराम, हरसाय और बुद्धन आदि साम्प्रदायिकता के भय के कारण गाँव छोड़कर भाग जाते हैं लेकिन छोटेलाल कुम्हार नहीं जाता। सलेमी (उपन्यास काला पहाड़) अपने बेटे बाबू खाँ से नाराज रहता है क्योंकि बाबू खाँ ने कट्टरपंथियों की राह पकड़ ली है। सलेमी धार्मिक कट्टरता का भी खुलकर विरोध करता है- "जो आदमी धड़ल्ले से ब्याज पर पैसा उठाता हो और बावजूद इसके मजहब की दिन-रात दुहाई देता हो वह कैसे विश्वसनीय हो सकता है? तीर्थ या हज करने से आदमी की प्रवृत्ति थोड़े ही बदल जाती है बल्कि इसके बाद तो उसे और छूट मिल जाती है क्योंकि जिस सामाजिक धार्मिक मान्यता की जरूरत उसे होती है वह उसे मिल ही चुकी होती है। इसलिए इस अवधारणा का वह उन डरपोक और धर्म भीरूओं की आड़ में दुरुपयोग करता है, जो उसे मजबूती प्रदान करते हैं।"[20] दादी जैतूनी (बाबल तेरा देस में) और सलेमी (काला पहाड़) दोनों ही धार्मिक कट्टरता और साम्प्रदायिक वैमनस्यता का खुलकर विरोध करते हैं, लेकिन कट्टरपंथियों का पलड़ा भारी ही रहता है। सलेमी (उपन्यास-काला पहाड़) की मौत के जरिए सामाजिक सद्भाव और धार्मिक सहिष्णुता के पतन को प्रकट किया जाता है।

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' के उपन्यास *खण्डित अभिमान* में स्थितियाँ दूसरी तरह की हैं। यहाँ युवा पीढ़ी के गोकुल, जहीन और चित्रा अपने माँ-बाप के धार्मिक अंधविश्वास, मानसिक संकीर्णता और कट्टर रूढ़िवादिता का दंश भोगते हैं। साधारण नौकरी करते हुए अभावग्रस्तता और फटेहाली की जिंदगी जी रहे प्रयाग ने अपने परिवार को सीमित रखने के बजाय भाग्य और भगवान के नाम पर आठ बच्चों की फौज खड़ी कर दी। प्रयाग की पत्नी शोभा लगातार बीमार रहते हुए अंततः मर गई। बेटी चित्रा पर ही घर की सारी जिम्मेदारी आ गई। उसे विवाह से ही घृणा हो गई इसलिए माणक को घर की जिम्मेदारी का बहाना बनाकर शादी से इंकार करती रही। अंततः माणक ने उसका साथ छोड दिया, भाई-बहनों को पालने पोसने में लगे रहकर चित्रा अपना घर भी नहीं बसा पाई और असमय ही बूढ़ी हो गई। उपन्यास के नायक गोकुल की माँ मन्दोदरी कट्टर वैष्णवी है। अपनी धार्मिक कट्टरता, अंधविश्वास और रूढ़िवादिता के कारण उसने अपने इकलौते पुत्र गोकुल की जिन्दगी को नारकीय और दुखदायी बना दिया है। अध्यापक बन जाने

के बाद भी गोकुल के जीवन में स्वतंत्रता नहीं है। वह जहीन से प्यार करता है लेकिन अपनी माँ के कारण उससे शादी नहीं कर पाता। जहीन के ऊपर भी माँ और चाचा का दबाव है वह घर से भागकर एक अस्पताल में नर्स की नौकरी करने लगती है। संयोगवश मन्दोदरी उसी अस्पताल में भर्ती होती है, जहीन मन्दोदरी की बहुत सेवा करती है। अंततः मन्दोदरी का अभिमान, घृणा और अंधविश्वास टूट जाता है और वह गोकुल से जहीन का विवाद मथुरा में करा देती है। इसके बावजूद मन्दोदरी की मानसिकता नहीं बदलती और वह गोकुल-जहीन के साथ रहने के बजाय अपनी माँ के पास चली जाती है। युवा पीढ़ी द्वारा साम्प्रदायिक वैमनस्यता और अंधविश्वासों के बन्धन तोड़े जाना बुजुर्गवारों को रास नहीं आता। *भीष्म साहनी* के उपन्यास *नीलू नीलिमा नीलोफर* में भी कमोबेश यही स्थिति उभरकर सामने आती है। नीलोफर उर्फ नीलू ने सुधीर से प्यार किया और शादी कर ली। दोनों के परिवारों ने इस विवाह को मजबूरी में स्वीकार तो कर लिया लेकिन पूर्वाग्रहों ने पीछा नहीं छोड़ा। नीलोफर के भाई हामिद की धर्मान्धता ने उसे वहशी बना दिया। वह बरगलाकर नीलोफर को अपने साथ ले आया और उसका गर्भपात करवा दिया। हामिद की धर्मान्धता वहशीपन की सीमाएँ पार कर गई, उसे अपने किए पर अफसोस नहीं, बल्कि आत्म संतुष्टि है-"मैंने गुनाह नहीं किया, मैंने शबाब का काम किया है। इसकी कोख में काफिर का तुख्म था। ..... काफिर की औलाद इस घर में नहीं आयेगी। माँ तुम भी कान खोलकर सुन लो। अगर इसके खावंद ने कलमा पढ़कर दीन कबूल कर लिया होता तो बात दूसरी थी, तब बच्चा हमारा होता, दीन का होता, मगर उस काफिर ने दीन कबूल नहीं किया। इसलिए उस काफिर का बच्चा इस घर में पैदा नहीं हो सकता।"[21] हामिद अपनी बहन को खुश देखने के बजाय थोथे पूर्वाग्रहों और कोरी धर्मभीरुता के खातिर, अपनी झूठी शान के लिए उसकी जिंदगी तक दाँव में लगा देने को उद्यत हो जाता है और चार बच्चों के बाप से उसकी शादी करने का कुचक्र रचता है। नीलू उर्फ नीलोफर भाग कर सुधीर के पास तो चली जाती है, लेकिन दोनों ही समाज से, समाज के पूर्वाग्रहों से, धर्मान्धता से और हामिद से बचकर भागते ही रहते हैं। उपन्यास की दूसरी पात्र नीलिमा है जो अल्ताफ से प्यार करती है और शादी करना चाहती है। नीलिमा के डैडी तो बोझिल मन से इस विवाह को स्वीकार करते हैं लेकिन नीलिमा की दादी को यह विवाह मंजूर नहीं होता। नीलिमा परिस्थितियों से संघर्ष नहीं कर पाती और समर्पण कर देती है। वह सुबोध से शादी तो कर लेती है लेकिन दोनों की मानसिकता में

ताल-मेल नहीं बैठ पाने के कारण उसका वैवाहिक जीवन दुःखमय हो जाता है। आधुनिकता के बावजूद समाज में गहरे तक पैठ चुकी विकृत मानसिकता, धार्मिक मतभेद व पूर्वाग्रह लोगों के जीवन की खुशियों को बर्दाश्त नहीं कर पाते।

धर्म के नाम पर समाज में फैली विकृतियों और इन्हें पोषण देने वालों से इतर धर्म के ठेकेदारों और धर्मगुरुओं की जिंदगी है जिसमें आपसी वैर मतभेद, राजनीति और षड़यंत्र हैं, निहित स्वार्थ हैं। *महीप सिंह* ने अपने उपन्यास *अभी शेष है* में संत निरंजन सिंह के डेरे और सरदार सोहन सिंह की कथा के जरिए संतों और धर्मगुरुओं की निजी जिंदगी में झाँकने और उनके कारनामों की पड़ताल करने का प्रयास किया है। अपने जीवन में, अपनी मेहनत के बूते कुछ कर सकने में अक्षम रहने के कारण संत निरंजन सिंह ने धर्म की शरण ली है। देश के विभाजन के बाद उनका डेरा लायलपुर से दिल्ली आ गया है। चढ़ावे की तगड़ी कमाई से इनके लिए सुख और ऐशोआराम के ढेरों साधन सुलभ हो गये हैं। धर्म और आध्यात्म की तमाम बातों से दूर इनका जीवन विलासिता पूर्ण है। ढेरे की अकूत संपदा पर लाला मुल्कराज की भी नजर है। संत वीर सिंह का सतवंत कौर के साथ अवैध सम्बन्ध है, लेकिन डेरे की शुचिता को ताक पर रखकर संत निरंजन सिंह का उत्तराधिकारी बनना चाहता है। संत निधान सिंह अपना अलग डेरा बनाने का निर्णय लेता है। सरदार सोहन सिंह धर्म और राजनीति का घालमेल करके स्वार्थ सिद्ध करने में पीछे नहीं रहता। वह कहता है कि "डेरे का मुखिया उसी को बनाया जाय जो हमारे अनुकूल चल सकें। डेरे के साथ करोड़ों की जायदाद तो जुड़ी ही है, लाखों की संगत भी उसके प्रभाव में है। राजनीति की शतरंज में डेरे का मोहरा बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकता है।"[22] गुरुद्वारों में चलती राजनीति, नित नये अकाली दलों और संगठनों का जन्म धर्म और जाति के नाम पर राजनीति की रोटियाँ सेकने की मानसिकता को उजागर करती हैं।

दुर्गाप्रसाद शुक्ल के उपन्यास *जोगती* में धर्म के आवरण के पीछे निरीह, गरीब और कमजोर लोगों को ठगने, दमित और शोषित करने की मानसिकता उजागर होती है। महाराष्ट्र और कर्नाटक की सीमा में बसे गाँवों के निचले तबके के लोगों के बीच फैलाया गया यह अंधविश्वास कि जिस बालिका की लटों में 'जट' पड़ जाये उसे जोगती या देवदासी बनाना पड़ता है। ऐसी ही एक जोगती ताराबाई की आत्मकथा के जरिए उपन्यास में इस वीभत्स परम्परा के कई दुखद चित्र प्रस्तुत किये गए हैं। मंदिर के पुजारियों और धर्म के तथाकथित ठेकेदारों द्वारा इस परम्परा को

जिंदा रखकर अपनी वासना की पूर्ति की जाती है। उपन्यास की गोमा, कर्नाटकी, श्यामा, यशवंता और तुक्या आदि महिलाएँ इस अंधविश्वास को भोगते हुए दयनीय जीवन जीने को मजबूर हैं। सामाजिक आंदोलनों के जरिए समाज के शोषित तबके में भी नवचेतना का संचार होता है और तमाम कुरीतियों के साथ ही साथ जोगती प्रथा के खिलाफ भी आवाज उठने लगती है। धर्म के ठेकेदार इस प्रथा को चलाए रखना चाहते हैं। ताराबाई अपनी बेटी संगीता की जट काटकर फेंक देती है, वह अपनी बेटी को अंधविश्वास के इस नर्क में नहीं झोंकना चाहती, यह आ रहे बदलाव का प्रतीक है।

भगवान सिंह के उपन्यास *अपने-अपने राम* और *महाभिषग* एकदम अलग तासीर के उपन्यास हैं। पहले उपन्यास में राम के मिथकीय चरित्र को वर्तमान के अनुरूप ढालते हुए धर्म के कारण समाज में पैदा हुई विकृतियों को खोजने और सामने लाने का प्रयास किया गया है। धर्मगुरुओं द्वारा धर्म के नाम पर की जा रही राजनीति और निजी स्वार्थ के लिए धार्मिक मान्यताओं को तोड़-मरोड़ देने की मानसिकता पर तीखा प्रहार किया गया है। अपने इस प्रयास में उपन्यासकार ने राम के मिथकीय आख्यान में तमाम चरित्रों को तोड़-मरोड़ कर रख दिया है। विचारों के अतिवाद के बावजूद समकालीन जीवन में धर्म की विद्रूपताओं को उजागर करने हेतु यह सफल कृति है। भगवान सिंह का दूसरा उपन्यास 'महाभिषग' महात्मा बुद्ध के जीवन पर आधारित है और बुद्ध के अनुयायियों की अन्धभक्ति की खबर लेता प्रतीत होता है। उपन्यास में बुद्ध के उन अनुयायियों के विचार, मानसिकता और भटकाव को उजागर करने का प्रयास किया गया है, जिन्होंने बुद्ध को भगवान की पदवी तो दे दी लेकिन बुद्ध के जीवन-दर्शन को और बुद्ध के उद्देश्य को छोड़ दिया। बुद्ध ने मानव-धर्म और मानवता की रक्षा का, अहिंसा, सत्य, दया और करुणा का संदेश दिया लेकिन उनके अनुयायी आपस में ही लड़ने लगे, आपस में ही बँट गए। भेदभाव और ईर्ष्या-द्वेष पनपता गया। उपन्यासकार ने बुद्ध के जीवन के मानवीय पक्ष को उजागर करने का प्रयास किया है और इसके जरिए धार्मिक रूढ़ियों, बंधनों और विद्रूपों को उजागर किया है। *डॉ. विशम्भरनाथ उपाध्याय* के उपन्यास *जाग मछंदर गोरख आया* में नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक गुरु मछंदरनाथ और गोरखनाथ की कथा है, इसके साथ ही धर्म की आड़ में किये जाते कुकृत्यों पर तीखा प्रहार भी किया गया है। उपन्यास में एक ओर मत्स्येन्द्रनाथ के साथ नर्मदा के विवाह के बाद कामरूप की रानी ललिता देवी और राजकुमारी प्रियंवदा के

मायाजाल में उलझने और उससे मुक्त होने की कथा है तो दूसरी ओर विदेशियों के संभावित आक्रमण की आशंका के कारण उत्तर भारत के राजाओं को संगठित करने में जुटे गोरखनाथ की कथा है। इस्लाम के नाम पर दूसरे देशों में लूटपाट करने, कब्जा जमाने वाले लोगों की खबर उपन्यास में कई जगह ली जाती है।

गोविन्द मिश्र के उपन्यास *धीर समीरे* में ब्रज की चौरासी कोस की पैंतालिस दिनों तक चलने वाली परिक्रमा के जरिए ब्रज क्षेत्र के कण-कण में बसी सांस्कृतिक चेतना और धार्मिक मान्यता को उजागर किया गया है, साथ ही बदलाव की तमाम स्थितियाँ भी उभरकर सामने आती हैं। उपन्यास मथुरा के यमुना तट से, विश्राम घाट से शुरू होता है और पैंतालिस दिन की परिक्रमा करके पुनः विश्राम घाट पर समाप्त होता है। इस अवधि में धार्मिक अनुष्ठान के पीछे जीवन-संघर्ष का एक और अनुष्ठान चलता दिखाई देता है। यात्रा में चलने वालों में से किसी को परम्पराओं का मोह है तो कोई आधुनिकता से सरोबार, किसी को अपने पेशे की चिंता है तो कोई परिवार के लिए चिंतित है। यात्रा में मनमौजी युवा भी हैं और चोर, व्याभिचारी भी। यात्रा के निरन्तर बढ़ते जाने के साथ ही परत-दर-परत ाी विकृतियाँ खुलती चली जाती हैं। उपन्यास की नायिका सुनंदा भी यात्रा में चलती है, लेकिन उसे धर्म से ज्यादा अपने बिछुड़े हुए वात्सत्य की तलाश है, अपने छूटे हुए प्रेम की तलाश है।

कामतानाथ का उपन्यास *समुद्र तट पर खुलने वाली खिड़की*, तीर्थस्थानों में आते बदलाव को उजागर करता है। उड़ीसा के समुद्र तट पर स्थित तीर्थस्थल पुरी में दो तरह के बदलाव दिखाई देते हैं। पहला बदलाव आधुनिकता और बढ़ती भौतिकता के कारण है और दूसरा आधुनिकता के बावजूद कट्टर होती जा रही धार्मिक संकीर्णता का है। धर्म के तथाकथित ठेकेदार व पण्डे धर्म के आवरण में अपनी रोजी-रोटी चलाने के साथ ही साथ सीधे-सादे लोगों को लूटने और प्रताड़ित करने का कुकृत्य करते हैं। उपन्यास लेखक और उसका मित्र दीक्षित जर्मन दम्पत्ति के साथ पण्डों द्वारा किये गए दुर्व्यवहार और मंदिर के अंदर जाने से रोकने हेतु प्रयोग किये गए अपशब्दों से आहत होते हैं और खुद भी मंदिर के अंदर नहीं जाते। पुरी में ही रहने वाले शर्मा जी पण्ड़ों की ठगी और जगन्नाथ जी की मूर्ति का किस्सा बताते हैं-"हाँ, हर साल मूर्ति बदली जाती है। साल-भर ससुरे उसी की बदौलत रोटी खाते हैं। उसका आरती-भोग करते हैं और उसके बाद उसे घूरे पर फेंक देते हैं।"[23] मंदिर के भीतर का दृश्य भी उल्लेखनीय है- "एक पुजारी

एक बड़े थाल में मूर्तियों की आरती कर रहा था। सब लोग उसी प्रकार फर्श पर माथा नवाए थे। दो-एक पंडे, मैंने देखा, जहाँ दिये जल रह थे वहाँ आपस में चुहल कर रहे थे और एक-दूसरे की जाँघों पर हाथ मार रहे थे।"[24] लोगों की धार्मिक आस्थाओं का बड़े विद्रूप तरीके से दोहन-शोषण करने की नीयत बड़ी शिद्दत के साथ उजागर की गई है।

साम्प्रदायिकता की दहकन के पार सुखद भविष्य की कल्पनाओं के सहारे जिंदा रहने वाले, स्थितियाँ बदलने के लिए आशान्वित रहने वाले लोगों को केन्द्र में रखकर *निरुपमा सेवती* ने *दहकन के पार* उपन्यास लिखा है। साम्प्रदायिक वैमनस्य के बीच जीते हुए भी तुषार व इकबाल को भरोसा है कि स्थितियाँ सुधरेंगी। साम्प्रदायिक सद्भाव के आगमन की कल्पना ही उनके वर्तमान के लिए सम्बल बन जाती है।

धर्म की आड़ में प्रचलित तमाम अंधविश्वास, कुरीतियाँ और छल-प्रपंच धर्म के ठेकेदारों के लिए भले ही लाभ कमाने का साधन हो, मगर आम आदमी के लिए कष्टदायी है। विवेच्य कालखण्ड में रचे गए उपन्यासों में आम आदमी के इस कष्ट को बड़ी विदग्धता के साथ प्रस्तुत किया गया है। धार्मिक कट्टरता, साम्प्रदायिक विद्वेष और धर्म के नाम पर शोषण व विघटन फैलाने की मानसिकता भी इन उपन्यासों में प्रकट होती है। वर्तमान परिदृश्य में धर्म का जैसा विकृत स्वरूप देखने को मिलता है लगभग वैसी ही इन उपन्यासों में प्रकट होता है।

(ड.) **काम-प्रेम** :- बदलते परिवेश के अनुसार स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में बदलाव आया है और इस कारण आपसी प्रेम सम्बन्धों में बदलाव के साथ ही साथ कई आयाम व विद्रूपताएँ उभरकर सामने आने लगीं। विवेच्य कालखण्ड में स्त्री-पुरुषों के इन्हीं आपसी काम-प्रेम सम्बन्धों को आधार बनाकर अनेक उपन्यास लिखे गए हैं। *ठाकुर प्रसाद सिंह* के उपन्यास *सात घरों का गाँव* में मास्टर और आदिवासी युवती मंगरी की सुखद प्रेमं कथा है। तेइस वर्ष की आयु का मास्टर शहर की नौकरी छोड़कर आदिवासियों के गाँव के जंगल में खुले स्कूल में हेडमास्टर बनकर आता है। वह अष्टभुजा देवी के मंदिर की खोज करने के अलावा आदिवासी जीवन की ढेरों बातों में रम जाता है और यहीं उसे मिलती है आदिवासी युवती मंगरी। दोनों के बीच प्रेम पनपता है। आदिवासियों का गाँव बाघमारा इन दोनों के प्रेम से पुलक उठता है। मंगरी और मास्टर दुनिया की बातों से दूर अपने में ही खोए रहते हैं। तभी गाँव में अकाल पड़ता है। मास्टर गाँव छोड़कर शहर जाना चाहता है, लेकिन इससे पहले मंगरी से शादी करना चाहता है और उसे भी साथ

ले जाना चाहता है। किन्तु मंगरी अपने परिवार, समाज और माँ-बाप की प्रतिष्ठा नहीं खोना चाहती। लाचार होकर मास्टर चला जाता है। दोनों के बीच का प्रेम जिन्दा रहता है और अकाल पीड़ित आदिवासियों के सहायतार्थ लगाए गए कैम्प में मंगरी और मास्टर का पुनर्मिलन हो जाता है। अब वे दोनों बिछुड़ना नहीं चाहते। क्षेत्र में भले ही अकाल पड़ा हो लेकिन उन दोनों की जिंदगी में फिर से बहार लौट आई है। *विनोद कुमार शुक्ल* के उपन्यास *दीवार में एक खिड़की रहती थी* में मास्टर रघुवर प्रसाद और उनकी पत्नी सोनसी के बीच गहन प्रेम को उजागर किया गया है। लीक से हटकर लिखे गए इस उपन्यास में रघुवर प्रसाद और सोनसी के आपसी प्रेमभाव में मानवेतर जीवन भी सहभागी हो जाता है। पेड़-पौधे, हवा-पानी, समूची प्रकृति उनके प्रेम को महसूस करती है, स्नेह पाती है और प्रेम देती है। रघुवर प्रसाद निम्न मध्यम वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। मात्र आठ सौ रुपये माहवार की नौकरी, आर्थिक संकट, अभाव ग्रस्तता और परिवार की जिम्मेदारियों के बीच, निहायत वैयक्तिक, वर्जित और जटिल होते जीवन के बावजूद रघुवर प्रसाद और सोनसी के जीवन के सुखद क्षण व प्रेमानुभूतियाँ कम नहीं हुई हैं। अभाव में हों या इच्छाओं की पूर्ति में जीवन एक समान गति से चलता रहता है। प्रेममय और आत्म संतुष्टि से भरा हुआ।

राजेश जैन का उपन्यास *बर्ड हिट* गृहस्थ जीवन में सेंध लगाते दैहिक आकर्षण और शारीरिक लोलुपता के कारण उत्पन्न होती विद्रूपताओं तथा नष्ट होती प्रेम व समर्पण की भावना को प्रस्तुत करता है। उपन्यास का नायक मनोज अपनी पुरुषवादी मानसिकता का पोषण करते हुए स्त्री को केवल भोगना चाहता है, उसके लिए प्रेम और स्त्री की मनःस्थिति कोई मायने नहीं रखती। स्त्री के प्रतीक रूप में चिड़िया को फाँसने, शिकार करने और संवेदनहीनता की पराकाष्ठा से परे जाकर भी स्वयं को सही ठहराने की विचारधारा का पोषण करते हुए मनोज को स्त्री महज एक उपभोग की वस्तु समझ में आती है। दूसरी ओर मनोज की पत्नी दिव्या है, बनावटी प्रेम को महसूस करते हुए पारिवारिक संरक्षण और सुरक्षा के छलावे में जीने को मजबूर। दिव्या, मनोज की मानसिकता को बखूबी समझती है और सारी सीमाएँ टूट जाने पर तनकर खड़ी हो जाती है। आसमान में उड़ते विमान 'बर्ड' को 'हिट' तो कर देते हैं, लेकिन कभी-कभी यह 'बर्ड हिट' बड़े-बड़े विमानों को भी नष्ट कर देने का सबब बन जाता है। दिव्या जैसी स्त्रियाँ तो उपेक्षा और उदासीनता का दर्द भोगती ही हैं, मनोज जैसे पुरुषों को भी प्रतिशोध का शिकार होना पड़ता है।

धीरेन्द्र अस्थाना ने अपने उपन्यास *हलाहल* में मध्यमवर्गीय लोगों की विफलताओं और उनके जीवन की त्रासदियों के बीच आपसी प्रेम सम्बन्धों के उतार-चढ़ाव को प्रकट किया है। पेशे से पत्रकार सिद्धार्थ का जीवन संघर्षो और कष्टों से भरा है, इसके साथ ही वह भावुक आदर्शवादी और विद्रोही स्वभाव का भी है। वह हर जगह, हर स्थिति में ख़ुद को सही साबित करना चाहता है और इस कारण हर किसी से भिड़ जाना, लड़ बैठना उसका स्वभाव बन गया है। आज के इस आपाधापी भरे जीवन में इस प्रकार उद्विग्न हो उठना, गुस्सैल हो जाना स्वाभाविक ही है। इसका प्रभाव अमृता और सिद्धार्थ के आपसी प्रेम पर भी पड़ता है। अमृता, सिद्धार्थ को भटकाव से बचाना चाहती है लेकिन सिद्धार्थ अम्रता पर ही बरस पड़ता है। कहीं-कहीं यह स्थितियाँ पुरुषवादी, सामन्तवादी मानसिकता को उजागर करने लगती हैं तो कहीं स्त्री की पुरुष पर आर्थिक निर्भरता की विवशताएँ खुलकर सामने आने लगती हैं और विघटन की स्थितियाँ पैदा हो जाती हैं, फिर भी आपसी प्रेम का बहुत नाजुक सूत्र टूटने नहीं पाता। *सत्येन कुमार* के उपन्यास *छुट्टी का दिन* में उपन्यास का नायक आदित्य अपने जीवन के संघर्षो, आघातों और महत्त्वाकांक्षाओं के कारण भीतर दहक रही हिंसा और आक्रोश में अपने प्रेम को जला नहीं डालता वरन् उसी की स्मृतियों के सहारे अपनी मंजिल खोजता है। अदिति, विल्मा, मेघना के साथ आदित्य के सम्बन्ध ऊपरी तौर से देखने पर भले ही कोरे दैहिक सम्बन्ध समझ में आएँ, लेकिन इनके भीतर भी गहराई है- आपसी प्रेम और समर्पण की, सम्बन्धों की स्वतंत्रता की, बहुमुखी व्यक्तित्व की। मुँहबोली बहन कम्मो और बचपन के मित्र रवि के साथ भी आदित्य के आत्मीय सम्बन्ध हैं। रवि की मृत्यु, कम्मो की आत्महत्या और अदिति का विछोह आदित्य को भीतर तक मथ देता है। वह इन स्मृतियों को खत्म नहीं करता वरन् अपनी शेष जिंदगी के खातिर इन्हें सँजोकर रखता है। जीवन की आपाधापी, संघर्ष और तमाम क्लेशों के बावजूद प्रेम अपना अस्तित्व बनाए ही रहता है और अपने पूरे उफान में जीवन का पर्याय बन जाता है, जीवन की जरूरत बन जाता है।

गोविन्द मिश्र के उपन्यास *तुम्हारी रोशनी में* की नायिका सुवर्णा हो या *धीर समीरे* की सुनंदा हो, दोनों ही अपने अंतस् में प्रेम की गहनता और तीव्र उफान में डूबते-तिरते हुए सहारा तलाशती रहती हैं। सुवर्णा अपने पति रमेश का स्नेह, समर्पण और उदात्त प्रेम चाहती है, लेकिन रमेश का पुरुषवादी अहं उसकी भावनाओं को, प्रेम को तिरस्कृत करता रहता है। रमेश की नीरसता के कारण वह अनन्त की ओर आकृष्ट तो होती है लेकिन परम्परागत भारतीय नारी

के गुण उसको हर बार रोक देते हैं। वह सोचती रह जाती है कि काश! रमेश ख़ुद को बदल पाता, उसके प्रेम को उसकी भावनाओं को समझ पाता, इसी अकुलाहट और खीझ में वह छटपटाती रहती है, तड़पती रहती है। कमोबेश ऐसी ही तड़पन *धीर समीरे* की नायिका सुनंदा के हृदय में भी है। सुनंदा ने नंदन से प्रेम किया लेकिन नंदन का अहं सुनंदा के प्रेम को छिन्न-भिन्न कर देता है। सुनंदा का हृदय अब भी उसी उदात्त प्रेम की तलाश में भटक रहा है। एक बार फिर वह ब्रज की चौरासी कोसी परिक्रमा में चलती है, नंदन के प्रेम की स्मृतियों को तलाशने के लिए। सुनंदा को इस बार वकील सत्येन्द्र मिलता है, मगर सत्येन्द्र की व्यावसायिक मानसिकता एक बार फिर से सुनंदा को ठगे जाने के लिए बाध्य कर देती है। ठगे जाने के बाद भी गहन और उदात्त प्रेम की तलाश में भटकती सुनंदा की यात्रा चलती ही रहती है, विश्राम घाट में चौरासी कोस की परिक्रमा पूरी हो जाने के बावजूद।

भीष्म साहनी के उपन्यास *नीलू नीलिमा नीलोफर* में समाज के पूर्वाग्रह और धर्मान्धता प्रेम की राह में दीवार बनकर खड़े हो जाते हैं। नीलोफर उर्फ नीलू और सुधीर इससे संघर्ष करते हैं और धर्म व समाज से निरन्तर भागते रहने के बावजूद अपने प्रेम को कायम रख सकने में सफल हो जाते हैं, जबकि अल्ताफ और नीलिमा सामाजिक बन्धनों को, धर्म की दीवार को नहीं तोड़ पाते और अपनी-अपनी दुनिया में रहते हुए भी सुखी नहीं रह पाते। असफल दाम्पत्य जीवन की टकराहटों के साथ ही एक अभाव निरन्तर उन्हें कचोटता रहता है। *दिनेशनंदिनी डालमिया* के उपन्यास *मुझे माफ करना* की नायिका के प्रेम में समाज आड़े नहीं आता, बल्कि उसकी कुरूपता आड़े आ जाती है। उसका प्रखर व्यक्तित्व, उसकी साहित्यिक प्रतिभा और विद्वता भी उसकी सौन्दर्यहीनता को छिपा नहीं पाते और अन्ततः अपने प्रेम को बाजार के हवाले करके वस्तु की तरह बिक जाना ही उसकी नियति हो जाती है।

सुभाष नरूला के उपन्यास *आधा मसीहा* की पहाड़ी युवती निर्मल झूठे प्रेम के दिखावे से न केवल छली जाती है वरन् जिंदगी भर उसका दंश भोगती है। कांगड़ा के पास पहाड़ियों में चाय के बागानों के निकट छोटी सी बस्ती में अपनी छोटी सी दुकान के सहारे जीविका चलाने वाली निर्मल की भेंट गुरदासपुर के किसी चर्च के भगोड़े पादरी से होती है। पादरी जोसेफ देवदत्त अपनी मीठी बातों से भविष्य के सुनहरे सब्जबाग दिखाकर निर्मल को अपने प्रेमपाश में बाँध लेता है। कमली और नीशे, दो बच्चों को जन्म देने के बाद भी देवदत्त निर्मल से शादी नहीं करता,

जबकि निर्मल का देवदत्त के प्रति प्रेम और विश्वास पूर्ववत् ही बना रहता है। अचानक एक दिन देवदत्त भाग निकलता है। निर्मल के पास रह जाते हैं दो बच्चे और देवदत्त की भूल से छूट गई फोटो। निर्मल अपना जीवन इन्हीं के सहारे काट देना चाहती है लेकिन समाज के ताने-उलाहने, बच्चों की परवरिश की समस्या और बच्चों की अपने पिता के प्रति जिज्ञासा के कारण विक्षिप्त हो गए स्वभाव आदि जीवन भर उसे कचोटते रहते हैं, प्रताड़ित करते रहते हैं।

स्त्री की भावुकता, उसकी संवेदनशीलता, निःस्वार्थ प्रेम और समर्पण हर बार उसे छले जाने के लिए बाध्य कर देते हैं, इसके बावजूद स्वयं को छले जाने के लिए प्रस्तुत कर देने के पीछे नारी की मजबूरियों का प्रश्न *जया जादवानी* के उपन्यास *कुछ न कुछ छूट जाता है* की नायिका ऋतु उठाती है-"औरतों के साथ सबसे बड़ी दिक्कत पता है क्या होती है, उनका कुछ भी नहीं होता, अपना आप तक नही! वैसे मैं निठल्ली, अनपढ़, गँवार नहीं हूँ। मेरी सर्विस है, अपना एकांउट है। फिर भी मुझे क्यूँ एक कंधा चाहिए, जिस पर सिर रखकर मैं सो सकूँ या रो सकूँ।"[25] बीस साल के दाम्पत्य जीवन में यह सहारा, वांछित प्रेम ऋतु को अपने पति पंकज से हासिल नहीं हो पाता। वह तड़पती ही रहती है, अतृप्ति और उबाऊपन से जूझती रहती है। पंकज ऋतु को मुक्त कर देता है, लेकिन रवीन्द्र से विवाह करके भी वह संतुष्ट नहीं होती, पुरुषवादी वर्चस्व का दंभ उसे आत्मीयता नहीं दे पाता, निष्काम, निःस्वार्थ प्रेम नहीं दे पाता और अन्ततः उसे अपने अंदर ही भटकना होता है, आत्मलीन होकर।

क्षमा शर्मा के उपन्यास *मोबाइल* की नायिका मधुलिका शुक्ला उर्फ मधु दिल्ली के एक प्रकाशन संस्थान में नौकरी करती है, मध्यमवर्गीय परिवार से ताल्लुक रखने के बावजूद पढ़ी-लिखी और आर्थिक रूप से सक्षम है। प्रेम की चाहत और भटकाव उसे बैंक के एक कर्मचारी नवीन खन्ना की ओर आकृष्ट करता है। वह बिना कुछ जाने-समझे नवीन से एकतरफा प्यार कर बैठती है। मधु की रूम पार्टनर फरहत जानती है कि नवीन झूठ बोलकर मधु को ठगना चाहता है, लेकिन मधु की खुशी के लिए वह चुप रहती है। मधु भी फरहत से कुछ नहीं बताती और झूठे प्रेम के जाल में फँसकर नवीन को अपना सर्वस्व दे बैठती है। नवीन के साथ भावनात्मक आवेग में बहकर मधु दो जुड़वाँ बच्चियों को जन्म देती है। नवीन, मधु के साथ शादी के प्रस्ताव को टालता जाता है क्योंकि वह पहले से ही शादीशुदा है और एक बच्चे का बाप है। मधु की माँ तो पहले ही समझ जाती है अंततः मधु की भी समझ में आता है कि वह प्रेम के बहाने छली

गई है। कुँआरी मधु नवीन की दो जुड़वाँ बच्चियों का हक नवीन से नहीं माँगती और नवीन के गुनाह को भी स्वीकार करके बच्चियों के सहारे ही अपना जीवन बिता देना चाहती है। दूसरी ओर फरहत है, जिसे शादी करना मंजूर नहीं, हिंदू लड़के से शादी करने में धर्म आड़े आता है तो मुस्लिमों द्वारा कई ब्याह रचाने की प्रथा उसे पंसद नहीं है। उपन्यासकार ने बताना चाहा है कि पुरूष तो 'मोबाइल' की तरह हर जगह, हर किसी स्त्री को अपने प्रेमजाल में फँसा लेना चाहते है, दैहिक शोषण करना चाहते हैं, लेकिन स्त्रियाँ 'लैण्डलाइन फोन' की तरह एक ही सीमा में कैद रहती हैं, भले ही उन्हें दगाबाजी या उपेक्षा का शिकार होना पड़े।

उदयभानु पाण्डेय का उपन्यास *बनानी* बेमेल विवाह और प्रेम सम्बन्धों की कहानियों को गूँथकर लिखा गया है। उपन्यास का नायक संजय सिंह पेशे से अध्यापक है, संवेदनशील है और साथ ही ऐसे आकर्षक व्यक्तित्व का धनी है कि स्त्रियों के बीच चर्चा और आपसी टकराव का कारण बन जाता है। सौम्या, स्निग्धा, शची और बनानी बनर्जी के प्रेम के बावजूद वह अतृप्त और प्रेम से वंचित ही रहता है। स्निग्धा से प्रेम के बावजूद संजय उससे विवाह नहीं कर पाता। सौम्या ने संजय से प्रेम भी किया है और विवाह भी, लेकिन इसे निभा पाने में वह कतई असफल रही है। सौम्या की मानसिकता सम्पत्ति और सुरक्षा को पाने की ही रही है, साथ ही वह 'ठंडी' किस्म की औरत है। स्निग्धा की शादी कुमुद से होती है लेकिन यह सम्बन्ध असफल होकर तलाक तक पहुँच जाता है। प्रेम की अतृप्ति के कारण भटकता हुआ संजय अपनी बेटी के बराबर उम्र की बनानी बनर्जी की ओर आकृष्ट होता है। बनानी का प्रेम उसकी अतृप्ति को कुछ हद तक कम करता है। संजय की पूर्व प्रेमिका स्निग्धा भी उसके पास लौटकर आती है, लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी होती है और संजय को अपनी अतृप्त रागात्मकता को, अतृप्त प्रेम पिपासा को लिये हुए ही असमय मर जाना होता है।

से.रा.यात्री ने अपने उपन्यास *अनदेखे पुल* में परस्पर विपरीत विचारधारा और जीवन-शैली वाले पति-पत्नी के बीच उत्पन्न होती टकराव की स्थितियों को, दाम्पत्य जीवन की विषमताओं को और अव्यक्त प्रेम के कारण उपजी स्थितियों को उजागर करने का प्रयास किया है। एक ओर पंडित मुकुन्द माधव की बौद्धिक प्रखरता, वैचारिक अक्खड़ता और कठिन जीवन-चर्या है तो दूसरी ओर उनकी पत्नी उर्मिला का स्वच्छंद स्वाभाव, वैचारिक वैशिष्ट्य और आयु के अंतर का प्रभाव है। ऐसा नहीं है कि दोनों के बीच प्रेम नहीं हो, लेकिन दोनों ही एक दूसरे के प्रति

अपने विचार प्रकट करने के बजाय संवादहीनता की स्थिति बनाए रखकर खुद ही अपने दाम्पत्य जीवन को दुरूह और दुष्कर बना लेते हैं। उपन्यास के 'मैं' अर्थात साहित्यकार प्रभाकर जी को इस विचित्र परिस्थिति को जानने का अवसर मिल जाता है। पति-पत्नी एक-दूसरे को चाहते हुए भी एक दूसरे का साथ पंसद नहीं करते। पंडित मुकंद माधव ने उर्मिला की मानसिकता को समझने का प्रयास नहीं किया और न ही कभी खुलकर अपने स्नेह को प्रकट किया दूसरी ओर उर्मिला अपने पति में अपार प्रेम, समर्पण और सम्बन्धों में गर्माहट तलाशती रह जाती है। अंततः प्रभाकर जी दोनों के बीच संवादहीनता की स्थिति को समाप्त कर पाने में कामयाब होते हैं और पंडित मुकुंद माधव व उर्मिला के दाम्पत्य जीवन में फिर से खुशियाँ लौट आने की संभावनाएँ बलवती हो जाती हैं।

कृष्णा सोबती के उपन्यास *दिलोदानिश* में स्थितियाँ इसके विपरीत हैं। उपन्यास के पात्र वकील कृपानारायण अपनी पत्नी से मिली उपेक्षा के कारण रिक्त जगह को भरने के लिए महक का सहारा लेते हैं। अपने घर के बाहर एक और 'घर' बना लेते हैं। वकील साहब और महक के रिश्ते को समाज स्वीकर नहीं करता लेकिन महक का उदात्त प्रेम, समर्पण और आत्मीय लगाव वकील साहब को प्रभावित किये बिना नहीं छोड़ते। महक दो बच्चों को जन्म देती है। इन बच्चों- बदरू व मासूमा का दुखद वर्तमान और अंधकारमय भविष्य और दूसरी ओर पत्नी। सभी मिलकर वकील कृपानारायण को तमाम चिंताओं और तनावों से घेर लेते हैं।

स्त्री-पुरुष के मध्य काम-प्रेम सम्बन्ध के विविध आयाम इन उपन्यासों में देखने को मिलते हैं। बढ़ती आधुनिकता, भौतिकता और महत्त्वाकांक्षा के कारण आपसी सम्बन्धों में आते बिखराव, निःछल-निःस्वार्थ प्रेम की कामना में भटकते स्त्री व पुरुष, अहं और वर्चस्व की स्थापना के कारण उपजते अंतर्विरोध और इस कारण विचित्र-विद्रूप हो गई स्थितियाँ इन उपन्यासों में बड़ी शिद्दत के साथ प्रकट होती हैं, और यही आज के दौर की सच्चाई है।

(च) स्त्री-जागरण :-

यथार्थ के साथ निरंतर बढ़ती निकटता और तमाम नए अनुभवों के उपन्यासों में प्रवेश के साथ ही साथ महिलाओं के जीवन में आते बदलाव, संघर्ष और कष्ट भी पूरी बेबाकी और तीक्ष्णता के साथ उपन्यासों में उभरकर सामने आने लगे। स्त्री की लाचारी, बेबसी और दुख ही नहीं वरन् स्त्री का संघर्ष और विद्रोह भी उपन्यासों में खुलने लगा। यह 'स्त्री-जागरण' आठवें

दशक के बाद के उपन्यासों में बड़ी विदग्धता के साथ प्रकट होने लगता है। *राजी सेठ* के उपन्यास *तत् सम* की नायिका वसुधा अपने पति की मृत्यु के बाद अकेली रह जाती है, लेकिन संघर्ष से पीछे नहीं हटती। अपनी पढ़ाई को जारी रखते हुए और विश्वविद्यालय में नौकरी करते हुए अपने अकेलेपन की तीक्ष्णता को कम करने का प्रयास तो करती ही है, साथ ही अपने माफिक साथी की खोज भी करती रहती है। कईबार उसके सामने विषम परिस्थितियाँ भी आ जाती हैं, अपने अनुकूल साथी चुनने का प्रश्न भी आ खड़ा होता है और वह विचलित हुए बिना सोच-समझकर निर्णय लेती है। उसके सामने एक ओर विवेक है और दूसरी ओर आनंद। विवेक के प्रति उसके मन में लगाव भी है लेकिन दोनों ही भविष्य के प्रति सशंकित रहते हैं, जबकि आनंद उसके प्रति समर्पित है, बिना किसी द्वन्द्व के, पूर्ण भावावेग के साथ। वसुधा के समक्ष सटीक चयन का प्रश्न उठ खड़ा होता है और अन्ततः वह आनन्द को चुनती है तथा विवेक को एक शालीनता भरा पत्र लिखकर इंकार कर देती है। वसुधा का यह चयन उसका निजी निर्णय है, बिना किसी दबाव के स्वेच्छा से लिया गया। अपने जैसा ही जीवन-साथी पाकर दोनों पूर्ण हो जाते हैं।

डॉ.कृष्णावतार पाण्डेय के उपन्यास *रंग गई मोर चुनरिया* की नायिका विधवा, नवयौवना ब्राह्मणी रसवन्ती आर्थिक रूप से अक्षम होने और परिवार के ही आश्रित रहने के कारण परिवार और समाज द्वारा सांत्वना नहीं वरन् ताने-उलाहने पाती है। घर में नौकरानी की तरह काम करना भी उसे मंजूर होता है, लेकिन जेठ और देवर की बदनीयती उसे असहनीय हो जाती है। जेठ तो उसे हवस का शिकार बनाता है और वह गर्भवती हो जाती है। अपनी दुर्दशा और परिस्थितियों से हारकर वह मर जाना चाहती है, तभी उसे जब्बार मियाँ मिलते हैं। जब्बार मियाँ उसे न केवल बचाते हैं वरन् उसके गर्भ में पल रहे बच्चे को अपना लेते हैं। जब्बार मियाँ को अपने जीवन साथी के रूप में पाकर, रसवन्ती ने रसूलन बनकर वह समाज और परिवार के शोषण, उपेक्षा और तिरस्कार का करारा जबाब देती है। पुरुषों की करतूतों और व्याभिचार का शिकार सदैव स्त्री ही होती है, लेकिन उसे इस स्थिति तक पहुँचाने वाले पुरुषों को समाज में उपेक्षा, तिरस्कार और दण्ड नहीं भोगना पड़ता, सारी प्रताड़ना और दर्द स्त्री को ही भोगने होते हैं। *रामदरश मिश्र* के उपन्यास *थकी हुई सुबह* में इसी प्रश्न को उठाया गया है। उपन्यास की नायिका लक्ष्मी के माँ-बाप की गरीबी और बेबसी उसके लिए अभिशाप बन जाती है। हालाँकि

परिवार से लड़-भिड़ कर उसने कुछ पढ़ाई तो कर ली, लेकिन कोई नतीजा नहीं निकल सका और वकील साहब के बेटे सागर से उसकी शादी हो गई। सागर की सौतेली माँ सागर की हमउम्र ही है और दोनों के बीच गलत सम्बन्ध भी बने हुए हैं। इस कारण सबसे ज्यादा आहत लक्ष्मी ही हुई, जिसके पति पर दूसरी औरत का कब्जा था। वकील साहब ने घर की दयनीय हालत से आहत होकर आत्महत्या कर ली, सागर घर छोड़कर चला गया और 'बहू जी' ने अपने भाई के साथ मिलकर वकील साहब की सम्पत्ति को बर्बाद कर डाला। लक्ष्मी भी बेघर और बेसहारा हो गई, उसने संघर्ष किया, पढ़ाई की। पंडित रामधन ने उसे सहारा दिया और धीरे-धीरे लक्ष्मी रामधनरुकी पत्नी उमा की सौतन बन गई। पुरुषवादी विकृत मानसिकता और व्याभिचार ने एक शोषित स्त्री का उपयोग दूसरी स्त्री के शोषण के लिए किया। रामधन जी से लक्ष्मी को सुख, सम्पत्ति और ऐश्वर्य सबकुछ मिला लेकिन उमा जी के प्रति उसको अपराध-बोध भी कम नहीं था। लेकिन इस अपराध बोध से अधिक थी- नफरत, पुरुषवादी विकृत मानसिकता के खिलाफ। वह इसे उजागर भी करती है- "पंडित जी की ओर से सहारे का हाथ बढ़ा, मैंने वरदान समझकर मात्र उंगली पकड़ी। मुझे खड़ा होने के लिए उसकी जरूरत थी। मैंने इतना ही चाहा था कवि! यह कब चाहा था कि पंडित जी मुझे स्वयं उठाकर सुविधाओं के शिखर पर बैठा दें, जहाँ बैठकर मैं अपने पाँव से चलने के बदले उसे अनुशासन में हिलाती रहूँ।"[26] वह आगे कहती है- अपने मन के कवि से "पंडित जी ने कितना कुछ दिया लेकिन तमाम लोग तो ऐसे हैं जो बिना कुछ दिये सब कुछ लूट लेते हैं और फिर कत्ल कर देते हैं। और ये ही कमीने लोग नारी की अस्मत पर टीका टिप्पणी भी करते हैं।..... हाँ समझ रही हूँ तुम सागर की बात कर रहे हो। मैं तुमसे पूछती हूँ कि उसने कौन-सा पति धर्म निभाया और इतने दिनों बाद मिला भी तो किस उद्देश्य से, किस इरादे से? वह मेरा पति है क्या? छोड़ा कवि! अब अतीत की बातों में क्या रखा है। अब तो चाहे जैसे भी आयी बहुत दूर चली आयी हूँ और चाहती हूँ कि इसी को पूरे मन से जिऊँ और उसे जितना सार्थक बना सकती हूँ बनाऊँ।"[27]

प्रभा खेतान के उपन्यास *पीली आँधी* में सोमा उस मारवाड़ी समाज की चौथी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है, जिसकी पितृसत्तात्मक समाज-व्यवस्था स्त्रियों को कड़े बंधनों में रखती है, उनकी इच्छाओं को दमित-शोषित करती रहती है और झूठी मर्यादाओं को, दकियानूसी परम्पराओं व रीति-रिवाजों को कड़ाई से पालन करने के लिए स्त्रियों को ही निशाना बनाती है।

तीसरी पीढ़ी की ताई जी उर्फ पद्मावती इस समाज-व्यवस्था का विरोध नहीं कर पाती और पति के निधन के बाद उपजे अकेलेपन को दूर करने के लिए हृदय से चाहते हुए भी सुराणा जी के प्रेम को स्वीकार नहीं कर पाती। समाज के बंधन, पति की प्रतिष्ठा और रूंगटा हाउस की गरिमा के खातिर अपनी इच्छाओं का गला घोंट देती है। सोमा, ताई जी उर्फ पद्मावती की अगली पीढ़ी है, जो स्त्री-विरोधी पितृसत्तात्मक समाज के बंधनों को, दकियानूसी परम्पराओं, रूढ़ियों और झूठी मान-मर्यादाओं के दम्भ को तोड़ देती है। कटु हो गए वैवाहिक सम्बन्ध, ठंडे और जड़ हो गए रिश्तों को, तमाम ऐश्वर्य और भौतिक सुखों के लोभ को सोमा छोड़ देती है। सोमा के लिए उसका जीवन, इच्छाएँ, संवेदनाएँ, प्रेम और समर्पण अधिक महत्त्वपूर्ण है और इसीलिए वह ताई जी के अनुशासन, रूंगटा हाउस की मर्यादा और दम्भ को छोड़ देती है। वह अपने पति गौतम को छोड़कर अपने प्रियतम सुजित सेन के साथ रहने लगती है। सोमा को जीवन का सुख, सम्बन्धों की जीवन्तता और गर्माहट का एहसास सुजित के साथ रहने पर ही होता है। सम्बन्धों की शीतलता विवाह की सार्थकता को नष्ट कर देती है। दूसरी ओर सुजित की पत्नी चित्रा है, जिसने सुजित से प्रेम विवाह किया था और सुजित की बेटी को जन्म दिया था। उपन्यास में वह परित्यक्त जीवन को स्वीकार करते हुए दिखाई देती है। मारवाड़ी समाज में स्त्री की दयनीय दशा, पति और सगे भाई के साथ ही साथ माँ द्वारा उत्पीड़ित किये जाने के कारण अपने ही घर में लाचार और बेबसी की जिंदगी गुजारने को मजबूर और परिस्थितियों से जूझती, संघर्ष करती स्त्री को लेकर *प्रभा खेतान* द्वारा लिखे गए उपन्यास *छिन्नमस्ता* के आगे की कथा ही उनके उपन्यास *पीली आँधी* में चलती है, जिसमें स्त्री जागरण का अधिक मुखर रूप सामने आता है।

रामदरश मिश्र के उपन्यास *रात का सफर* की नायिका ऋतु अपने पति के विवाहेतर सम्बन्ध को जानते हुए भी पति के लौट आने का इंतजार करती है, लेकिन सभी उम्मीदें समाप्त हो जाने पर अपना अलग रास्ता तो चुनती है, किन्तु इससे पूर्व पति के मुंह पर करारा तमाचा मारकर तथाकथित आधुनिक पुरुष-वर्ग के घृणित चरित्र का मुखर विरोध भी प्रकट करती है। दिल्ली में कार्यरत मजिस्ट्रेट रमेश कुमार अपनी बेटी ऋतु की शादी एम.बी.बी.एस. की पढ़ाई कर रहे दिनेश से कर देते हैं। दिनेश का सम्बन्ध श्यामा नाम की एक नर्स से बना हुआ है, इस बात को जानते हुए भी दिनेश के परिवार के लोग ऋतु और उसके माँ-बाप को नहीं बताते। ऋतु अपने पति के साथ के लिए तड़पती रहती है और दिनेश श्यामा के साथ रहता है। बेमेल विवाह

और विवाहेतर यौन सम्बन्धों के दंश को ऋतु छः वर्षो तक इस उम्मीद में सहती रहती है कि शायद उसका पति उसके पास लौट आए, लेकिन हालात बेकाबू हो जाने और उम्मीदें टूट जाने पर ऋतु भी अपना अलग रास्ता चुन लेती है और जाने से पहले पति के मुँह पर तगड़ा चाँटा मार देती है। *डॉ.मनीषा शर्मा* के उपन्यास *अँधियारे उजियारे* की नायिका मीता को विवाहेतर सम्बन्धों की कटुता का एहसास है, इसलिए वह ऐसे सम्बन्ध से दूर रहकर ही अपना भविष्य बनाना चाहती है। मीना के पिता की मौत के बाद माँ का स्वभाव बिल्कुल बदल जाता है और माँ दूसरा विवाह कर लेती है। अत्यंत भावुक और संवेदनशील युवती मीना अपने दुख और एकाकीपन से आजिज आकर भुवन में अपना सहारा तलाशती है, लेकिन भुवन उससे किनारा कर लेता है। अंततः मजबूरी में अविनाश से शादी करके उसके साथ विदेश चली जाती है। अविनाश का रहन-सहन और बर्ताव विदेशी ढंग का होने के कारण दोनों की आपस में नहीं पटती और आजिज आकर मीना वापस भारत लौट आती है। यहाँ माडलिंग का काम करते हुए उसे सुमेश मिलता है, जो उसके शरीर को भोगना चाहता है और अपनी बारह साल की बेटी व बीबी को छोड़कर मीता से शादी करना चाहता है। मीता को उसकी बीबी और बेटी के सामने आने वाले दुखों का एहसास भीतर तक उद्वेलित कर देता है। लिहाजा वह सुमेश के साथ शादी करने से तो इंकार करती है, साथ ही विषम परिस्थितियों से डटकर मुकाबला करने को उद्यत हो जाती है।

अभिमन्यु अनत के उपन्यास *घर लौट चलो वैशाली* की नायिका वैशाली प्रेम के वशीभूत होकर अंतधर्मीय विवाह की विद्रूपताओं और पति की धर्मान्धता के कारण कष्ट भोगती है, संघर्ष करती है। वैशाली अपने परिवार के विरोध के बावजूद अख्तर हसन अली से प्रेम विवाह कर लेती है। वैशाली के मित्र भी इसे उचित नहीं मानते। दूसरी ओर अख्तर के ऊपर धर्मान्धता और मजहबी लोगों का प्रभाव बढ़ता जाता है और वह अपनी बेटी 'सोनी' को 'सलमा' बनाने के साथ ही वैशाली पर प्रतिबंध लगाने पर उतारू हो जाता है। वैशाली अपने पति की गुलाम बनने को तैयार नहीं है, क्योंकि उसने अपने प्रिय से शादी की है, मजहबी धर्मान्ध से नहीं। अख्तर को वैशाली का प्रतिरोध नागवार गुजरता है वह बेटी को लेकर चला जाता है और तलाक की कार्यवाही चालू कर देता है। वैशाली भी अपने मित्रों की सहायता से संघर्ष करती है और नौकरी भी पा जाती है। 'सीपियों के मोती' नामक संस्थान में निदेशक के तौर पर काम करते हुए वैशाली अपनी बेटी के वियोग के दुःख को वहाँ के बच्चों के साथ रहकर हल्का करती है। पति-पत्नी के

सम्बन्धों के बीच धार्मिक कट्टरता और वैमनस्य के खिलाफ वैशाली डटकर संघर्ष करती है।

क्षमा शर्मा के उपन्यास *मोबाइल* की मधु और फरहत मध्यमवर्गीय नारी का प्रतिनिधित्व करती हैं, पुरुष की विकृत मानसिकता व धर्म के विद्रूप को नियति मानकर सहती हैं साथ ही मौन रहकर भी तगड़ा विरोध प्रकट कर देती हैं। फरहत को अपने धर्म में कई विवाह करने का रिवाज पसंद नहीं और अन्तर्धर्मीय विवाह को समाज व परिवार स्वीकार नहीं करते लिहाजा वह कुँआरी रहकर ही जीवन बिताना चाहती है। मधु अपने प्रेमी नवीन के छल का शिकार हुई है और उसकी जुड़वाँ बेटियों को पालती है। आदित्य ने मधु को स्वीकार किया है और आदित्य के सामने ही मधु नवीन को उसकी बेटियों के बारे में बताती है। डी.एन.ए. टेस्ट करा लेने को कहती है। यहीं पर नवीन हार जाता है और चुपचाप वापस लौट जाता है। मधु को दोबारा छलने और प्रेम के डोरे डालने की नीयत काफूर हो जाती है। मधु और फरहत द्वारा नियति मानकर हर जुल्म और छल-कपट सह लिए जाने के पीछे उनका अकेलापन भी एक कारण हो सकता है, जो पुरुषवादी समाज से टकराने पर सहज ही उभर आता है।

ज्ञानप्रकाश विवेक का उपन्यास *अस्तित्व* पुरुषवादी समाज में शोषण और अत्याचार के खिलाफ विद्रोही और संघर्षरत हो जाने वाली स्त्री के इसी एकाकीपन में उसके अस्तित्व की पड़ताल करता है। स्त्रियों की भी अपनी महत्त्वाकाँक्षाएँ होती हैं, सपने, अनुभूतियाँ और जिज्ञासाएँ होती हैं इसके साथ ही होता है- यथार्थ से, शोषण और अत्याचार से टकराने का माद्दा। लेकिन जब स्त्री संघर्ष पर उतारू हो जाती है तो वह अकेली ही रह जाती है। चाहे समाज हो या परिवार, हर जगह उसके होने को, उसके अस्तित्व को ही नकार दिया जाता है।

आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता, परवशता व विपन्नता के कारण घरेलू हिंसा का पहला शिकार औरत ही बनती है। *मृदुला गर्ग* का उपन्यास *कठगुलाब* घरेलू हिंसा की शिकार स्त्रियों के जीवन-संघर्ष पर केन्द्रित है। उपन्यास की चारों स्त्रियों- स्मिता, मारियान, असीमा और नर्मदा की परिस्थितियाँ अलग-अलग हैं, लेकिन चारों की वेदना और कष्ट एक ही है। स्मिता अपनी विपन्न स्थिति के कारण अपने जीजा की 'औरतखोर' नजरों और हवस का शिकार होती है। असीमा को हर मर्द में हरामी नजर आता है, उसे अपने बाप से भी नफरत है, जिसने महज अपनी शारीरिक भूख की तृप्ति के खातिर बीबी-बच्चों की परवाह नहीं करते हुए दूसरा ब्याह रचा लिया है और उन्हें अपने हालात पर जीने के लिए छोड़ दिया है। समाजसेवा से

जुड़ी हुई मारियान की माँ वरजिनिया ने अपने पति की मौत के बाद जार्ज रिचर्डसन से शादी कर ली। जार्ज को वरजीनिया का शरीर और सौन्दर्य मात्र चाहिए था और वरजीनिया को अपने अकेलेपन को दूर करने वाला साथी, इन दोनों की साझी जरुरतें पूरी होने के बीच मारियान का अस्तित्व शून्य था और आर्थिक सम्पन्नता के बावजूद अकेलेपन व अव्यक्त उपेक्षा के दर्द को मारियान अपने भीतर ही दबाकर रखती है, अलबत्ता किसी न किसी अवसर पर यह दर्द सामने आ ही जाता। चौथी स्त्री नर्मदा है, जिसने अपने परिवार में गरीबी, भाई-बहन के पालन-पोषण, बाप के तिरस्कार और माँ की मौत सहित जिन्दगी में बहुत कुछ देखा व भोगा है। उपन्यास में इकलौता पुरुष विपिन मजूमदार है, पुरुषवादी वर्चस्व और दम्भ के कई आयामों का प्रस्तोता। उपन्यास में हर वर्ग की स्त्रियाँ हैं उनके निजी दुख पूरी सत्यता के साथ उपन्यास में प्रकट होते हैं। परिस्थितियों के खिलाफ सशक्त और मुखर विरोध उपन्यास में भले ही न दिखाई दे, किन्तु प्रत्येक स्त्री का अपने स्तर पर निरंतर संघर्ष चल रहा है। *मृणाल पाण्डे* के उपन्यास *रास्तों पर भटकते हुए* की नायिका मंजरी भी घरेलू हिंसा का शिकार होती है। मंजरी की माँ की कर्तव्यनिष्ठा और त्याग के बदले उसके पत्नीभक्त और धनलोलुप भाई से माँ को मिलने वाली उपेक्षा में मंजरी भी साझेदार होती है। मायके से ससुराल आकर भी उसकी परेशानियाँ कम नहीं होतीं, उसे पति और श्वसुर से भी तिरस्कार ही मिलता है। पति ने विदेशी युवती का दामन थाम रखा है और श्वसुर के नामी-गिरामी अस्पताल में ढेरों गैर कानूनी कार्य राजनीतिक संरक्षण पाकर पुष्पित-पल्लवित होते हैं। घरेलू हिंसा से आहत और समूचे समाज व व्यवस्था में लगे हुए घुन को, भ्रष्टाचार, अपराध, आतंक, शोषण व अनाचार को देखकर मंजरी अवसाद व खिन्नता से ग्रस्त होकर अपने दायरे को खुद तक समेट लेती है। पत्रकारिता के पेशे से जुड़े रहने के बावजूद वह आत्मकेन्द्रित ही रहती है, लेकिन उसके पड़ोस में रहने वाला गरीब बालक बंटी उसके जीवन को बदल देता है, उसके जीवन की नीरसता सोख लेता है। बंटी और उसकी माँ की अचानक हत्या मंजरी को इतना उद्वेलित कर देती है कि वह अपने बंद आवरण से निकलकर समाज की गंदगी को, व्यवस्था के विद्रूपों को, देश की राजधानी में रचे जाते कुचक्रों को, रहस्यों और उसके कारणों को जानने के लिए निकल पड़ता है। मासूम बच्चों के गुर्दे आदि निकालकर उनकी हत्या कर देने वाले गिरोह सहित कई रहस्यमयी बातें जानकर वह पार्वती और बंटी की हत्या के कारणों की खोज करते हुए जिन्दगी के दुष्कर रास्तों पर भटकती रहती है।

अमरकान्त के उपन्यास *सुन्नर पांड़े की पतोह* की नायिका भी मंजरी की तरह घरेलू हिंसा का शिकार होती है, लेकिन चुप होकर नहीं बैठ जाती वरन् अपनी क्षमता और ऊर्जा का उपयोग हर दुखियारे और जरूरतमंद की मदद करने में करती है। सुन्नर पांडे के बेटे झुल्लन पांडे की सौतेली माँ अतिरा जी झुल्लन की शादी तो कर देती है, लेकिन बहू-बेटे को स्वतंत्र जिंदगी नहीं जीने देती और न ही उन्हें एक-दूसरे के नजदीक आने का अवसर देती है। सौतेली माँ के व्यवहार से ऊबकर झुल्लन पांडे तो घर छोड़कर चले जाते हैं और उनकी बीवी यानि सुन्नर पांडे की पतोह बची रह जाती है- त्रासद यंत्रणाएँ भोगने के लिए। सुन्नर पांडे और नन्दोई तिवारी जी दोनों ही उसकी इज्जत से खेलना चाहते हैं, लेकिन वह अपने पथ से विचलित हुए बिना पति के लौटने का इंतजार करती है। दूसरों के घर का चूल्हा-चौका करके अपना पेट पालते हुए वह पति की तलाश में लगी रहती है। यहीं उसका साक्षात्कार होता है हर घर में सताई जाती औरतों से- "अनेक तरह के लोगों के यहाँ उसने काम किया। कोई नेता था, कोई अफसर, कोई व्यवसायी, कोई अध्यापक और कोई क्लर्क। और हर जगह लगभग एक ही दृश्य था। जो कुछ ऊपर से दिखाई देता उसका दूसरा रूप भीतर देखने में आता। बाहर से जो सभ्य, प्रतिष्ठित और साफ-सुथरे नजर आते वे भीतर बेहद चीखते-चिल्लाते थे। लगभग सभी अपनी सीधी-सादी आज्ञाकारी और दिन-रात खटने वाली बीबियों को चौबीस घण्टे कोसते रहते, उन्हें अन्य तरीकों से प्रताड़ित करते और दूसरे की बहू-बेटियों को अपने जाल में फँसाने की चालें चलते। घरों के अन्दर औरतों की हालत दरबे में बन्द मुर्गियों की तरह थी, जहाँ वे आपस में लड़ती, भुनभुनातीं, खीजतीं, रोती-कलपतीं और कराहतीं।"[28] सुन्नर पांडे की पतोह ने भी यही स्थितियाँ भोगी थीं, सुखदेव मास्टर और मन्नीलाल पत्रकार जैसे लोगों ने भी उसकी इज्जत लूटनी चाही थी। वह पति का वियोग सहते हुए ऐसे लोगों से, समाज से संघर्ष करती रही और हर दुखी व्यक्ति की, जरूरतमंद की मदद करती रही। जब उसे पता चला कि उसका पति मर चुका है तो उसने भी प्राण त्याग दिये। उसकी अंतिम यात्रा में कई लोग शरीक हुए, सभी को एक नेक औरत के चले जाने का दुख था। सबसे ज्यादा दुख दोमितलाल को था क्योंकि सुन्नर पांडे की पतोह ने उसे माँ जैसा स्नेह दिया था, जिंदगी बसाई थी और उसे जीने का रास्ता दिखाया था।

प्रमोद कुमार तिवारी के उपन्यास *डर हमारी जेबों में* के खेला सराय में हर घर में सताई जाती, प्रताड़ित की जाती स्त्री है, लेकिन इसके प्रतिरोध के स्वर नहीं सुनाई देते। विशाल

की सौतेली बहन अणिमा भी अपने पिता और परिवार के दबाव में आकर कुरूप और बेमेल पति से विवाह करने को बाध्य हो जाती है। पति के घर पहुँचकर स्थितियाँ बदल जाती हैं। अणिमा अपने स्वाभिमान से समझौता नहीं कर पाती, अपनी स्वतंत्रता और इच्छा के अनुरूप जीवन जीना चाहती है। बदले में उसे यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं, लेकिन वह झुकती नहीं है। उसका प्रतिरोध, कुण्ठा और मनचाही स्वतंत्रता पाने के लिए किया गया संघर्ष सार्थक परिणाम तक नहीं पहुँचा पाता। जिसे वह स्त्री-मुक्ति समझ बैठती है, वह वास्तव में बंधन होता है और पुरुषों द्वारा नारी को पाने के लिए रचा गया षड्यंत्र होता है। उसके पति का मित्र हो या नृत्य गुरु दोनों ही इस षड्यंत्र के अंग बनकर उपन्यास में प्रकट होते हैं। विशाल को भी अपनी बहन के व्यवहार से कष्ट होता है। कुल मिलाकर अणिमा का संघर्ष मुक्तिकामी नहीं, बल्कि स्वच्छंद जीवन जीने की लालसा के खातिर, उन्मुक्त विचरण के लिए होता है।

अजय मिश्र के उपन्यास *पक्का महाल* की नायिका मंगला बाल विधवा है। अपने तन की आग बुझाने के लिए वह कट्टू गुरु को निशाना बनाती है और अपने कृत्य को सही ठहराने के लिए पौराणिक पात्रों का उदाहरण प्रस्तुत करती है। बनारसी रंग-ढ़ंग में लिखा गया यह उपन्यास धार्मिक अंधविश्वास, धार्मिक कट्टरता और सामाजिक प्रतिष्ठा के झूठे दंभ के कारण कष्ट भोगती, मुक्ति के लिए छटपटाती स्त्री के भटक जाने का मार्मिक आख्यान है। उपन्यास का नायक मुसद्दीमल तो अपना दूसरा विवाह कर लेता है लेकिन दूसरी ओर उसकी बहन है- बाल विधवा। मंगला की भी अपनी दैहिक जरूरतें हैं। धर्म और समाज के नाम पर इन्हें नियंत्रित करने की भी एक सीमा है। परिवार और समाज के माध्यम से कोई रास्ता नहीं निकलता देख मंगला खुद ही निर्णय ले लेती है और कट्टू गुरू को इतना उकसाती है, प्रेरित करती है कि वह मंगला के शरीर को भोगने के लिए बाध्य हो जाता है। मंगला द्वारा लिया गया यह निर्णय भले ही गलत हो, लेकिन समाज और धर्म के दायरे में कई तरीके से स्त्री का शोषण करने वाली, उसे बन्दिनी बनाकर रखने वाली समूची व्यवस्था पर तीखा प्रहार है। *मैत्रेयी पुष्पा* के उपन्यास *इदन्नमम* की बऊ और प्रेम के ऊपर भी धर्म और समाज की यही बन्दिशें जकड़ी रहती हैं। बऊ अपने पति की मृत्यु के बाद भी अपने संस्कारों में जकड़ी रहती है। बेटे की भी मौत हो जाती है और पूरे घर को संभालने की जिम्मेदारी बऊ पर होती है। वह अपने व्यक्तित्व को, खुद को गलाते हुए, नष्ट करते हुए सिर्फ पति की अंतिम इच्छाओं की पूर्ति में ही लगी रहती है। कड़े आत्म नियंत्रण

में रहते हुए पथ से विचलन और भटकाव उसके चरित्र में नहीं दिखाई देता। लेकिन बऊ की पुत्रवधू प्रेम इन आदर्शों को नहीं ढो पाती। प्रेम का वैधव्य तमाम नीतियों, मान्यताओं और बन्दिशों को चुनौती दे देता है। प्रेम की देह विद्रोह कर बैठती है। वह अपनी कामनाओं का दमन नहीं कर पाती उसे शारीरिक और आत्मिक लगाव की दरकार रहती है। पुरुष उसकी देह की प्यास तो बुझा देता है लेकिन आत्मा प्यासी ही रह जाती है। दो ध्रुवों- बऊ और प्रेम के बीच उदय होता है मन्दाकिनी उर्फ मन्दा का। कई वर्षों के निर्वासन के बाद अपने गाँव लौटी प्रेम की बिटिया मन्दाकिनी स्वयं से तो संघर्ष करती ही है साथ ही गाँव की दयनीय दशा के खिलाफ, व्यवस्था के विद्रूपों और बदलाव के खिलाफ भी मुखर संघर्ष करती है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास *चाक* की नायिका सारंग अपनी बहन रेशमा के कातिल को सजा दिलाने के बहाने दोहरी लड़ाई लड़ती है। पहली क्रूर सामाजिक मान्यताओं और पुरुषवादी दंभ के खिलाफ और दूसरी अन्याय को पोषण व संरक्षण देने वाली व्यवस्था के खिलाफ। रेशमा के कातिल को सजा दिलाने के लिए सारंग का पति उसका साथ देने को तैयार हो जाता है लेकिन जब डोरिया झूठे गवाहों के बल पर जेल से छूटकर आ जाता है और डोरिया के डर से रंजीत को अपने बेटे चंदन को शहर भेज देना पड़ता है। तब रंजीत अपनी पराजय और अपने बेटे के वियोग का गुस्सा सारंग पर निकालता है। सारंग को भी चंदन के वियोग का दुख है लेकिन अपने साथ हुए अन्याय को वह चुपचाप सहन नहीं करती। रंजीत की प्रताड़ना और उपेक्षा के बावजूद वह संघर्षरत रहती है। गाँव की पाठशाला का शिक्षक श्रीधर उसका साथ देता है और वह डोरिया को नीचा दिखाने में कामयाब होती है। रंजीत की बीबी होने के कारण गाँव में सारंग के साथ रंजीत को भी इज्जत मिलती है, लेकिन रंजीत का पुरुषवादी अहंकार इस इज्जत को पचा नहीं पाता और चालाकी से, मारपीट से या फिर बदचलनी के आरोप लगाकर सारंग की काट करने लगता है। पुरुषवादी दंभ, दमन और शोषण के खिलाफ यहाँ दूसरी लड़ाई चालू हो जाती है जो रंजीत और सारंग के घर से चलते हुए पूरे गाँव में फैल जाती है। तमाम दमित, प्रताड़ित और शोषित स्त्रियाँ सारंग के साथ होती हैं; उसके और अपने संघर्ष में भागीदार होते हुए। इसके साथ ही गाँव की विकासशील व्यवस्था उसकी खामियों और विद्रूपों के खिलाफ भी संघर्ष की शुरुआत हो जाती है। *कर्मेन्दु शिशिर* के उपन्यास *बहुत लम्बी राह* में महतो की पत्नी (चनवा की माई) गाँव में आ रहे बदलाव और वर्ग संघर्ष में अपना महत्त्वपूर्ण और तेजतर्रार रूप प्रस्तुत करती है।

एक ओर अपने पति महादेव महतो के सीधेपन और सरलता की सहगामी बनती है तो दूसरी ओर बेटे विभूति के संघर्ष में योगदान देती है, सम्बल और साहस देती है। अपने तेवर और आक्रामकता से वह दरोगा को भी पछाड़ देती है। गाँव के लोग उसके इस रूप को देखकर दंग रह जाते हैं– ''चनवा की माई को मानना होगा भाई। बड़ी मजबूत कलेजे वाली औरत है। दरोगा से बोलते हुए तनिक दब नहीं रही है। ..... भीड़ सकते में थी। पीछे खड़ी औरतें एक दूसरे का मुँह देखने लगीं। मुखिया को तो भक् मार गया था। सरजू की गर्दन झुक गई थी। नरेश तिवारी, मुँह में ही न जाने क्या बुदबुदाता, बुरी तरह कसमसा रहा था।''[29] महादेव महतो के लिजलिजे, कमजोर चरित्र की पूर्ति उसकी पत्नी की आक्रामकता और तेज तर्रार व्यक्तित्व से होती है।

भगवानदास मोरवाल का उपन्यास *बाबल तेरा देस में* दादी जैतूनी, शकीला, सोनदेई और बत्तो के माध्यम से पुरुष प्रधान समाज द्वारा धर्म की आड़ लेकर स्त्रियों पर लगाए हुए प्रतिबंधों और शोषण का मुखर विरोध करता दिखाई देता है। उपन्यास में स्त्रियों की अपनी बैठक (पंचायत) है, जिसमें वे 'शरीयत' के उपदेशों और 'बहिश्ती जेवर' नामक धार्मिक पुस्तक की शिक्षाओं व आदेशों का विश्लेषण करती हैं और निष्कर्ष निकालती हैं –''याको मतलब ई हुयो कि हम मरद की जूती बणे रहें बस... वाका हुक्म पे रात भर हाथ बाँध के खड़ी रहो....। हम तो जैसे माणस ही ना हैं, हमारे तो जैसे जान ही ना है।''[30] दूसरी तरफ सोनदेई वेद-पुराण का विश्लेषण करते हुए कहती है – ''तिहारी या किताब में तो हू-ब-हू वे बात लिखी पड़ी हैं, जो हमारा वेद-पुराणन् में लिखी पडी हैं के औरत ए ई न करनो चाहिए, औरत ए ऊ न करनो चाहिए।''[31] औरतें अपने ऊपर होते अन्याय को देखती हैं, भोगती हैं, महसूस करती हैं, लेकिन विरोध करने की क्षमता से हीन हैं। मुखर विरोध के लिए आगे आती हैं – शकीला। हवेली में अपनी बेटियों के हक की माँग उठाकर 'शरीयत' की निष्पक्ष व्याख्या करके और हवेली की लड़कियों को पढ़-लिखकर समर्थ होने के लिए प्रेरित करके वह पुरुषवादी समाज और सत्ता को तो चुनौती देती ही है, साथ ही स्त्रियों को शोषण और अत्याचार के खिलाफ संघर्ष का रास्ता भी दिखा देती है। बहुचर्चित शाहबानो प्रकरण की प्रतिच्छवि भी इस उपन्यास में दिखाई देती है।

रजनी गुप्ता के उपन्यास *किशोरी का आसमाँ* में ऐसी स्त्री के संघर्ष की दास्तान है, जो अपने परिवार और समाज से संघर्ष करते हुए तो जीत जाती है लेकिन अपने बच्चों से हार जाती है। किशोरी को अपने मायके और ससुराल दोनों जगह शोषण और उपेक्षा का शिकार होना

पड़ता है। पति और श्वसुर तो पुरुषवादी अहं और दम्भ के जीवित प्रतीक हैं; मगर सास भी पीछे नहीं रहती। स्त्री ही स्त्री की शत्रु बन जाती है। किशोरी के साथ इकलौता सहारा उसके पति जयपाल से मिलने वाला असीमित प्रेम है। जयपाल की बीमारी, गरीबी, रंजिश और फिर जयपाल की मृत्यु के बाद इसी एकमात्र सहारे को पाकर ही वह संघर्ष करती है, अपने बच्चों- अनीता, विमल और रीता को पढ़ाती है, समर्थ बनाती है। लेकिन बच्चे बड़े होकर किशोरी का तिरस्कार करते हैं, ताने-उलाहने देते हैं। अनीता चारित्रिक पतन की ओर अग्रसर हो जाती है, माँ की सलाह उसे अच्छी नहीं लगती। डॉ. विमल ने एलिस के साथ सम्बन्ध स्थापित कर रखे हैं। रीता उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहती है, लेकिन उसे विवाह से घृणा है। समाज से संघर्ष करके बच्चों को समर्थ बनाती है और अपने बच्चों से ही हार जाती है।

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास *मुझे चाँद चाहिए* की नायिका वर्षा भी अनीता और रीता की तरह ग्रामीण/कस्बाई परिवेश में पली-बढी मध्यमवर्गीय युवती हैं, लेकिन उसकी महत्वाकांक्षाएँ बहुत बड़ी हैं। उसकी स्वतंतत्रता और उच्छृंखलता 'किशोरी का आसमाँ' की अनीता से भी आगे निकल जाती है। अपने कस्बे से निकलकर वह दिल्ली आ जाती है और दिल्ली में नाट्यकर्मी के रूप में कार्य करते-करते वह बम्बई पहुँच जाती है- फिल्मी दुनिया में। अपने सहकर्मी नाट्य कलाकार हर्ष के साथ वह प्रेम भी करती है लेकिन उसकी स्वतंत्रता यहाँ पर भी आड़े आती है। वैसे हर्ष की मौत उसे भीतर तक तोड़ देती है, लेकिन उसके कदम नहीं रुकते। 'चाँद छूने' जैसी ऊँची महत्त्वाकांक्षा उसे फिल्मी दुनिया की चकाचौंध के बीच लाकर खड़ा कर देती है। यहाँ पहुँचकर उसकी सफलता उसे सुख देने के बजाय विषाद और दुख से भर देती है और उसका वापसी का सफर शुरू हो जाता है।

उषा यादव का उपन्यास *कथांतर* अलग किस्म का उपन्यास है, जो स्त्रियों की दयनीयता का, शोषण और कष्टों का खुलासा तो करता ही है, साथ ही स्त्री मुक्ति के तथाकथित अभियानों, प्रयासों और प्रसंगों की असलियत भी उजागर करता है। उपन्यास की पात्र सविता जी समाज में ख्याति अर्जित करने के लिए समाज सेविका बनी हुई हैं। वास्तविकता के धरातल पर सविता जी को स्त्री मुक्ति से कोई सरोकार नहीं है वह अपनी नौकरानी मणि की भी हालत सुधारने के पक्ष में नहीं, उसके लड़के को पढ़ाने के पक्ष में नहीं है। दूसरी ओर एक पुरुष पात्र है- गंगा सिंह का पुत्र देवेन्द्रनाथ। देवेन्द्र अपने पिता के कारनामों का प्रायश्चित करने के लिए

स्त्री मुक्ति और स्त्री कल्याण की बात करते हैं। लेकिन वास्तविकता यह है कि स्त्री कल्याण के पीछे उनका पुरुषोचित दंभ काम करता है। अंत में मणि ने देवेन्द्रनाथ की आँखे खोल दीं और देवेन्द्रनाथ ने मणि को अपने घर में रखकर औरत के स्वाभिमान की रक्षा करने और बराबरी का दर्जा दिलाने का प्रयास किया।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि निरन्तर शोषण और अत्याचार सहते रहने के बावजूद स्त्रियों के अंदर उपजती जागरूकता अपने पूरे प्रवाह के साथ उभरकर सामने आती है। शिक्षा के निरन्तर विकास, संचार माध्यमों की बढ़ोत्तरी के साथ ही साथ महत्त्वाकांक्षा ने स्त्रियों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया ही है, साथ ही समाज व परिवार के प्रति कर्तव्यों के लिए भी सचेत किया है। आठवें दशक के बाद के उपन्यासों में स्त्री जागरण के इन पहलुओं का चित्रण तो किया ही गया है, साथ ही अति महत्त्वाकांक्षा और विद्रोह की विद्रूप स्थितियों के कारण अपने पथ से भटककर गलत राह पर चल निकली औरतों के जीवन में भी झाँकने का प्रयास किया गया है ।

(छ) इतिहास एवं काल :-

कालखण्ड विशेष के समाज, ऐतिहासिक पात्र व ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर भी इस अवधि में कई उपन्यास लिखे गए हैं। साहित्यशास्त्रियों द्वारा बतलाए गये उपन्यासों के तीन वर्गों में से काल विशिष्ट उपन्यास, जिनमें काल विशेष के समाज और पात्रों को ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत कर दिया जाता है; कल्पनारंजित ऐतिहासिक उपन्यास, जिनमें ऐतिहासिक समाज व पात्रों को काल्पनिकता में रंगकर प्रस्तुत किया जाता है और यथार्थ ऐतिहासिक उपन्यास, जिनमें ऐतिहासिक घटनाओं व पात्रों को वर्तमान के साथ जोड़कर नवीन निष्कर्ष प्रस्तुत किया जाता है। विवेच्य कालखण्ड में इन तीनों वर्गों के प्रतिनिधि उपन्यासों के साथ ही साथ वर्गीय विभाजन के बंधनों से मुक्त उपन्यास भी रचे गये हैं। उदाहरण के तौर पर *शरत् कुमार* के उपन्यास *लाल कोठी अलविदा* और *डॉ.महीप सिंह* के उपन्यास *अभी शेष है* का नाम लिया जा सकता है जो ऐतिहासिक उपन्यासों के इस विभाजन के किसी भी वर्ग में सटीक नहीं बैठते। *लाल कोठी अलविदा* उस लाल कोठी के अवसान का, पतन का आख्यान है जिसने देश की आजादी में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उपन्यास में दो कालखण्ड हैं- पहला सन् 1934 से 1941 तक का है और दूसरा अक्टूबर 1989 से दिसम्बर 1989 तक का है। प्रोफेसर समरेन्द्र सिन्हा

की पत्नी रुक्मिणी देवी कांग्रेस की जुझारू नेता हैं और देश की आजादी के लिए सक्रिय संघर्ष करती है। आजादी की लड़ाई के दौरान ही वह समर को जन्म देती हैं, जेल जाती हैं और लाल कोठी का निर्माण करवाती हैं। देश की आजादी की लड़ाई में लाल कोठी की भूमिका शनैः शनैः महत्त्वपूर्ण होती जाती है और लाल कोठी अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचकर देशभक्ति का, भावनात्मक जुड़ाव का, संघर्ष का और कांग्रेस का प्रतीक बन जाती है। रुक्मिणी देवी और प्रोफेसर समरेन्द्र सिन्हा की मृत्यु के बाद उपन्यास के दूसरे कालखण्ड में लाल कोठी का पराभव दिखाई देने लगता है। देश के राजनीतिक नेतृत्व का नैतिक पतन, भ्रष्टाचार, संवेदनहीनता, स्वार्थलिप्सा और षड़यंत्र लाल कोठी की प्रतिष्ठा को तहस-नहस करने लगते हैं। लाल कोठी को कब्जाने के लिए फर्जी वसीयतें, कुचक्र और साजिशें चली जाने लगती हैं। यही समय है जब देश के राजनीतिक क्षितिज से कांग्रेस का अवसान होता है। लाल कोठी इस पतन का प्रतीक बन जाती है। उपन्यास में वर्णित पात्रों की ऐतिहासिकता भले ही संदिग्ध हो, लेकिन घटनाएँ अपने समय की सटीक और निष्पक्ष व्याख्या करती हैं। इसी प्रकार महीप सिंह के उपन्यास 'अभी शेष है' में सन् 1970 से सन् 1975 के बीच की तमाम ऐतिहासिक घटनाएँ वर्णित की गई हैं, जिनकी सत्यता अप्रामाणिक है। इसके साथ ही उपन्यास में वर्णित काल्पनिक कथाएँ तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक स्थितियों को सत्यता के साथ प्रकट करने में सफल हो जाती हैं। कांग्रेस का विभाजन, भारत-पाक युद्ध, बिहार का छात्र आन्दोलन, बीस सूत्रीय कार्यक्रम की शुरुआत, चौदह बैंको का राष्ट्रीयकरण, बांग्लादेश का निर्माण, आपात्काल, अखबारों पर सेंसरशिप का शिकंजा और राजनेताओं की गिरफ्तारी आदि घटनाओं के साथ ही प्रोफेसर निरवैर सिंह के समाचार पत्र 'क्लैमर' की कथा, संत निरंजन सिंह और उनके डेरे की कथा, सोहन सिंह और लाला मुल्कराज की गुरुद्वारा राजनीति और भइया जी का दर्द सहित कई घटनाएँ और कथाएँ उपन्यास में हैं। भइया जी विभाजन के भारत जरूर आ गए हैं, लेकिन उनके दिल से अपने बचपन का गाँव-घर, उनका पंजड़ अब भी नहीं निकला है। उनकी कामना है कि मरने के बाद उनकी फूल झेलम नदी में ही सिराये जायें। विभाजन के बाद संत निरंजन सिंह का डेरा भी भारत आता है और दिल्ली में महरौली में स्थापित हो जाता है। डेरे की अकूत सम्पदा को संत निधान सिंह और बीर सिंह भोगते हैं, व्याभिचार करते हैं। लाला मुल्कराज की नजर डेरे के धन पर रहती है तो सोहन सिंह की नजर डेरे से जुड़ी संगत के अपने पक्ष में वोट पाकर राजनीति

चमकाने में रहती है। नसरीन चाहती है कि उसका विवाह डाक्टर अशरफ से हो जाए लेकिन डाक्टर अशरफ सुन्नी है और वह शिया। अन्ततः दोनों प्रोफेसर निरवैर सिंह की मदद से 'कोर्ट मैरिज' कर लेते हैं। इसी तरह की कई अन्तर्कथाओं के माध्यम से स्वतंत्र भारत में समकालीन समाज, धर्म, राजनीति, पत्रकारिता, शिक्षा, नैतिकता और मानव मूल्यों के विविध आयाम, अनछुए पहलू परत-दर-परत उपन्यास में खुलते चले जाते हैं।

मंजूर एहतेशाम का उपन्यास *बशारत मंजिल* दिल्ली के जरिए देश के स्वतंत्रता आन्दोलन का, समकालीन धर्म, शिक्षा, राजनीति और समाज-चेतना सभी की पड़ताल करता है। अलीगढ़ में सर सैय्यद के प्रयासों से विश्वविद्यालय की स्थापना होती है। धर्म के ठेकेदार सर सैय्यद को नास्तिक और इस्लाम विरोधी बतलाते हैं। साथ ही आधुनिक, वैज्ञानिक शिक्षा का विरोध करते हैं, क्योंकि शिक्षित समाज उनकी 'धर्म की दुकानें' बन्द करने में सक्षम हो जाएगा। बंगाल विभाजन के नाम पर अंग्रेजों द्वारा डाली गई फूट उपन्यास में साम्प्रदायिक वैमनस्य के रूप में खुलकर सामने आती है। कांग्रेस नहीं बल्कि अंग्रेज मुस्लिमों के हितैषी हैं, यह सिद्ध करने के लिए बंगाल का विभाजन किया जाता है। जगह-जगह विभाजन के विरोध में आन्दोलन होते हैं, लेकिन साम्प्रदायिकता अपने पैर जमा चुकी होती है। मुस्लिम लीग और जिन्ना का वर्चस्व बढ़ता जाता है। बाबरी मस्जिद जैसे मुद्दे आपस की खाई को चौड़ा करते रहते हैं। मुस्लिमों को अपने साथ जोड़ रख पाने में गाँधी अक्षम होने लगते हैं। दूसरी ओर दलित चेतना अम्बेडकर के साथ जुड़ती है। बिरजू जैसे पात्र गाँधी जी की खिलाफत करते हैं और गाँधी को सवर्णों का एजेण्ट बताते हैं। स्वाधीनता आन्दोलन अपनी राह से भटकने लगता है। नेतृत्वकर्ताओं को देश की आजादी से ज्यादा चिंता अपने लाभ की होने लगती है। उपन्यास के समापन पर पहुँचते-पहुँचते सन् 1933 के आस-पास ही देश के भावी विभाजन का अक्स उभरने लगता है। पुरानी दिल्ली की बताशों वाली गली में पुराने हिसाब से बनी, मगर नई सी दिखने वाली कोठी- बशारत मंजिल, इंसानियत के अवसान के साथ ही वीरान हो जाती है। *असगर वजाहत* का उपन्यास *सात आसमान* एक ताल्लुकेदार शिया परिवार के चार सौ साल लम्बे इतिहास और कई पीढ़ियों की कथा के जरिए परिवर्तन और विकास की उपलब्धियों, यातनाओं का प्रस्तुतीकरण करता है। देश में अंग्रेजों के आगमन और मुगलिया-नवाबी शासन के अंत, स्वाधीनता संग्राम और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जमींदारों के अंत के साथ ही बदलती युग की वेदना को भोगते इस सामंती परिवार

में पीढ़ी दर पीढ़ी आते बदलाव और उतार बड़ी विदग्धता के साथ प्रस्तुत किया गया है। सामंती मानसिकता, विलासिता और अकड़ के साथ चलते नवाबी दौर का अंत भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के उत्थान के साथ होता है। इस पतन में दरबारियों और हरम की साजिशें भी योगदान करती हैं। नवाबी जाने के बाद जमींदारी युग आता है, दूसरी ओर स्वतंत्रता आन्दोलन जोर पकड़ता है। अंततः देश स्वाधीन होता है और जमींदारी का भी अंत हो जाता है। अब्बू साब की पीढ़ी अब्बा मियाँ से चलते हुए अब्बा के जमाने तक पहुँचकर बिल्कुल लाचार, कमजोर और शिथिल हो जाती है। नई पीढ़ी की अपनी समस्याएँ हैं, चिंताएँ और मजबूरियाँ हैं। यहीं पर आकर अतीत और वर्तमान का द्वन्द्व उजागर होने लगता है। सामंतशाही के प्रतीक कुएँ का पानी अब भी जादुई और मीठा होता है, लेकिन इसे पीने वाले कुएँ से दूर चले जाते है। अपने मरने से पहले अब्बा नई पीढ़ी को यह दिलासा चाहते हैं कि उनके पुरखों की ड्योढ़ी वीरान नहीं होगी, इसमें गधे नहीं लोटेंगे। नई पीढ़ी भी अब्बा को झूठी दिलासा देती है। नई पीढ़ी की अपनी मजबूरियाँ है, महत्त्वाकांक्षाएँ है, अपना जीवन-दर्शन है। अतीत के खण्डहरों के लिए वह वर्तमान के सुख को कुर्बान नहीं करना चाहती, लिहाजा झूठी दिलासा और उम्मीदें बरकरार रखकर नई पीढ़ी अपने जीवन और रंग में खुश रहती है, अतीत को तजकर भविष्य की नई संभावनाएँ तलाशती रहती है।

गोविन्द मिश्र का उपन्यास *कोहरे में कैद रंग* भी आत्मकथात्मक है, जिसका 'मैं' यानि अरविन्द अपने वर्तमान में जीते हुए अतीत की स्मृतियों में झाँकने और उन यादों के सहारे अपने जीवन की गाँठों को सुलझाने का प्रयास करता नजर आता है। उपन्यास की शुरुआत उस समय से होती है जब भारत का स्वतंत्रता संग्राम अपने चरम पर होता है। अरविन्द के स्कूल में भी 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' और 'वन्दे मातरम्' के नारे गूँज रहे होते हैं। दूसरी ओर होतां है- अरविन्द का घर-परिवार। पिता की मुंगौड़ों की दुकान, नाना का बयाई का व्यवसाय, अध्यापन करती माँ और लोगों के घर में रोटी बनाकर अपना गुजारा करती नानी। अरविन्द के घर के सामने से गुजरती चीपों वाली गली, पुराना मंदिर, चबूतरा और कुआँ आदि अरविन्द के अतीत की मधुर स्मृतियों में छाए रहते हैं। देश को आजादी मिलती है। जॉन की जगह गोविन्द ले लेता है। भारतीय शासक-प्रशासक अंग्रेजों की जगह लेकर खुद भी अंग्रेज जैसा बनने और दिखने की कोशिश करते हैं। अतीत पर आधुनिकता हावी होती है। रेवा और राकेश के प्रसंग अतीत में

अरविन्द की असफलता को मुँह चिढ़ाते हैं। टूटू मौसी जैसे पात्र नए मूल्यों की स्थापना करते हैं। *सूर्यकान्त नागर* के उपन्यास *यह जग काली कूकरी* में भी आजादी की लड़ाई का वर्णन किया गया है और देश की आजादी के सरोकारों को वर्तमान से जोड़ते हुए आज के साहित्यकारों, अफसरों और नेताओं के सुविधाभोगी, अवसरवादी और पतनशील चरित्र की जमकर खबर ली गई है।

कमलेश्वर के दो उपन्यासों *सुबह......दोपहर.....शाम* और *रेगिस्तान* में भी देश के स्वाधीनता आन्दोलन के इतिहास के अन्दरूनी और अनछुए पहलुओं को उजागर किया गया है। *सुबह......दोपहर......शाम* में देश की आजादी के लिए संघर्ष करते क्रांतिकारी हैं, जो स्वाधीनता के आन्दोलन में अपने प्राणों की आहुति देने से पीछे नहीं हटे, लेकिन उनका संघर्ष इतिहास के पन्नों में जगह नहीं पा सका। इसी प्रकार देश के ग्राम्यांचलों में दूर-दराज के वे तमाम सामान्य परिवार भी बिना किसी लालसा के, पूर्ण समर्पण और देशभक्ति के साथ स्वाधीनता आंदोलन में यथासंभव योगदान देते रहे। देश की आजादी मिलने के बाद यही लोग हाशिये पर भी पहुँच गए। पूर्ण निष्ठा, लगन और कर्तव्यपरायणता के साथ स्वाधीनता आंदोलन में सहभागी होने वाले परिवारों के संघर्ष को पूरी समग्रता के साथ देखने का प्रयास इस उपन्यास में किया गया है। *रेगिस्तान* में स्वाधीनता पूर्व और उसके बाद के कालखण्ड का अवलोकन करते हुए उन लोगों के जीवन में झाँकने का प्रयास किया गया है, जिन्होंने निःस्वार्थ भाव से, पूर्ण समर्पण के साथ स्वाधीनता आंदोलन में हिस्सा लिया, लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उपेक्षित और अप्रासंगिक हो गये। उपन्यास का पात्र विश्वनाथ इन्ही दारुण स्थितियों को भोगता है। यह हालत केवल विश्वनाथ की नहीं है, विश्वनाथ के जरिए उपन्यासकार हिन्दी, उर्दू एवं दूसरी भारतीय भाषाओं की अप्रासंगिकता का प्रश्न भी उठाता है। देश की आजादी की लड़ाई में हिन्दी और उर्दू सहित देशी भाषाओं का बहुत बड़ा योगदान रहा है, लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अंग्रेजी बुरी तरह हावी होती गयी और राष्ट्रभाषा का दर्जा मिलने के बावजूद हिन्दी व दूसरी देशी भाषाएँ पिछड़ती गयीं, अप्रासंगिक होती गयीं। अपने गाँव में 'हिन्दी-मन्दिर' बनवाने वाला विश्वनाथ इस स्थिति को देखकर मानसिक आघात के फलस्वरूप सबसे अंग्रेजी में ही बात करने लगता है। विश्वनाथ की बीमारी प्रतीकात्मक रूप से हिन्दी व उर्दू की बीमारी है अब ये भाषाएँ या तो जीवित रहेंगी या फिर मर जायेंगी।

इसी प्रकार *कामतानाथ* का उपन्यास *कालकथा* भी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को लेकर लिखा गया है। स्वतंत्रता संग्राम में एक ओर क्रांतिकारी हैं तो दूसरी ओर गाँधी। एक ओर बन्दूक, पिस्तौलें और बम हैं तो दूसरी ओर चरखा। इन सबके बीच देश की चेतनाहीन, अनपढ़ और अलग-थलग पड़ी जनता है। स्वाधीनता आन्दोलन में गाँधी जी के आगमन के साथ ही निष्क्रिय जनता में चेतना जागृत होती है, जनता में गाँधी जी के जादुई नेतृत्व का असर पड़ता है। स्वाधीनता के लिए उठ खड़ी हुई जनता के आन्दोलन से और गाँधी जी के सबल, सशक्त नेतृत्व से अंग्रेज हताश होने लगते हैं, यही सब मिलकर इस उपन्यास को स्वाधीनता आंदोलन का सशक्त दस्तावेज बना देते हैं। उपन्यास अपनी प्रभावोत्पादकता और ऐतिहासिकता में खरा उतरता है।

सुरेन्द्र स्निग्ध का उपन्यास *छाड़न* बिहार की वर्तमान राजनीतिक स्थिति के विद्रूपों, वर्ग संघर्ष की स्थितियों और नक्सलवादी आंदोलन के पनपने की परिस्थितियों की पड़ताल करने हेतु इतिहास में उतर जाता है। समाज का कमजोर तबका अंग्रेजों और जमींदारों के समय से ही शोषण और अत्याचार को भोगता चला आ रहा है। नेपाली की दस बीघा जमीन जग्गन सिंह जबरदस्ती हड़प लेता है, नेपाली इसी पीड़ा में मर जाता है। जमींदार शिवसिंह ने कमली माय की आँखों के सामने उसकी बेटी से बलात्कार किया है। अर्जुनमा डान्सर और चनिया के प्रेम को न केवल बेरहमी से कुचल दिया जाता है वरन् दोनों को मार भी डाला जाता है। स्वाधीनता आंदोलन में अपना महान योगदान करने वाले बिहार के नछत्तर मालाकार उपन्यास में नहीं होते, फिर भी उनकी छवि उपन्यास में दिखाई देती है। निरीह, शोषित और गरीब समाज को आजादी मिलने के बाद हालात सुधरने की उम्मीद रहती है। आजादी आती है, हुकूमत बदलती है, लेकिन हालात ज्यों-के-त्यों ही रहते हैं। शोषित समाज की नई पीढ़ी की सहनशक्ति चुक जाती है। नक्सलवादी आंदोलन जोर पकड़ता है, सामाजिक जनांदोलन भी चल पड़ते हैं और सामन्ती व्यवस्था को, शोषक समाज को व अत्याचार की जड़ों को यह आंदोलन हिला कर रख देते हैं। *देवेन्द्र उपाध्याय* के उपन्यास *आँखर* में कुमाऊँ अंचल के पिछड़े इलाके का अतीत और वर्तमान प्रस्तुत किया गया है। अंग्रेजों के शासनकाल में इस क्षेत्र के गरीब-निरीह लोगों का शोषण पटवारी करते हैं और उनका साथ देते हैं, क्षेत्र के प्रभावशाली लोग। मनमानी लगान वसूलना, दावतें उड़ाना, नजराना वसूलना और शारीरिक शोषण करना पटवारियों का शगल बन जाता है। क्षेत्र में

स्वाधीनता आन्दोलन की लहर दौड़ती है, क्रांतिकारी पैदा होते हैं, शहीद होते हैं। देश आजाद होता है, लोगों के अंदर बदलाव की उम्मीदें बलवती होती हैं। लेकिन बदलाव नहीं आता, स्थितियाँ कमोबेश वैसी ही रहती हैं। अलबत्ता शहीदों के नाम पर राजनीति चालू हो जाती है। ''हर साल पाँच सितम्बर को शहीदों की याद में स्मृति दिवस मनाया जाता। शुरू के वर्षों में मंत्रियों, एम.पी. और एम.एल.ए. की भीड़ उमड़ी चली आती। शहीदों की कुर्बानियों से सीखने की सलाह दी जाती। कुर्बानी देने वालों को बाहर से एक दिन के लिए आने वाले सीख दे जाते।''[32] रमाड़ का शहीद स्थल राजनीति का अखाड़ा बन जाता है। गाँव का पंचम सिंह अपने लाभ के लिए असली शहीद स्मारक से दो किलोमीटर दूर शहीद स्तम्भ लगवा देता है। ''बात ऊपर तक पहुँची। असली शहीद स्थल पर बने पुराने भवन के स्थान पर नया शहीद स्मारक बनवाने की मुख्यमंत्री ने स्वयं आकर घोषणा की। लालफीताशाही और नौकरशाही के चलते नया शहीद स्मारक बनने में कई बरस लग गए। आखिर नया शहीद स्मारक बन गया।''[33] हालांकि गरीब-शोषित वर्ग की हालत ज्यों-की-त्यों बनी रही, चुने गए जनप्रतिनिधि अपने स्वार्थ और सत्ता बचाने के लिए संघर्ष करते रहे, जातिवाद और भ्रष्टाचार का जहर बोते रहे। अंग्रेजों के चाटुकारों के वंशज आज भी मौज कर रहे हैं और आजादी की लड़ाई में अपना सब कुछ दाँव में लगा देने वालों की संततियाँ आज भी उपेक्षित और तिरस्कृत हैं, इसलिए इस क्षेत्र के लोग आर्थिक और शारीरिक शोषण के खिलाफ, अत्याचार और तिरस्कार के खिलाफ एक बार फिर से विद्रोह कर देते हैं। आजादी की लड़ाई का अतीत अपने वर्तमान पर उतर आता है।

कमलाकांत त्रिपाठी का उपन्यास *बेदखल* बीसवीं सदी की शुरुआत के साथ शुरू होता है और देश के पूर्वी क्षेत्र में जमींदारों द्वारा किसानों के शोषण की दास्तान को शिद्दत के साथ उजागर करते हुए वर्तमान से जोड़ देता है। गरीब, निरीह और शोषित किसानों की नियति उनके शोषण में ही रहती है। देश में चल रहे स्वाधीनता आंदोलन के नेतृत्व की दृष्टि इस ओर जाती ही नहीं है या फिर वे जानते हुए भी जमींदारों के शोषण से अनजान बने रहना चाहते हैं। असंगठित किसानों को बाबा रामचन्द्र का नेतृत्व मिलता है और देखते-देखते किसान आंदोलन खड़ा हो जाता है। शोषक और अत्याचारी जमींदार न केवल भयाक्रान्त हो जाते हैं वरन् शोषण और अत्याचार बंद करके किसानों के लिए अपने भंडार खोलकर प्राणों की भीख माँगने तक को विवश हो जाते हैं। स्वाधीनता आंदोलन का नेतृत्व जमींदारों से सम्बन्ध नहीं बिगाड़ना चाहता

क्योंकि जमींदारों से ही उन्हें सहायता और धन मिलता है, लिहाजा किसान आंदोलन पूर्वाग्रह और राजनीति का शिकार हो जाता है। बाबा रामचन्द्र को धोखे से गिरफ्तार करवाकर आंदोलन को हड़प जाने की साजिश की जाती है। आंदोलन नेतृत्वविहीन होकर संगठन विहीन हो जाता है और अपनी राह से भटक जाता है। किसान भौंचक रह जाते हैं और शोषण व अत्याचार की स्थितियाँ पुनः कायम हो जाती हैं। आज भी वही स्थितियाँ कायम हैं, किसान नेतृत्वहीन हैं और नेताओं की छद्म राजनीति का शिकार होकर शोषण और अत्याचार को भोगने को मजबूर हैं। *अलका सरावगी* के उपन्यास *शेष कादम्बरी* में बीसवीं सदी के स्वातंत्र्योत्तर भारत की कथा है और तमाम विद्रूपताओं एवं विसंगतियों को उजागर करती है। सत्तर वर्षीय रूबी दी और देवीदत्त मामा के माध्यम से यह कथा खुलती है। स्वतंत्रता के बाद अतीत की आशाएँ, उम्मीदें धूल-धूसरित होने लगती हैं। राष्ट्र निर्माण की आकांक्षाएँ वैयक्तिक स्वार्थ-साधना के नीचे दबकर रह जाती हैं। समाजवाद की परिकल्पना, उपभोक्तावाद और वर्गीय अन्तर्विरोधों के सामने बौनी पड़ जाती हैं। बाड़मेर के सूखाग्रस्त इलाके, सविता जैसी तमाम औरतों के दुख-क्लेश और उपभोक्तावाद के शिकंजे में पिस रहे देश के बड़े वर्ग की नियति जैसे तमाम सवाल अतीत के साथ जुड़कर उपन्यास की नायिका कादम्बरी को एक नया इतिहास लिखने के लिए बाध्य कर देते हैं।

वर्तमान की क्रूर सच्चाइयों को इतिहास के संदर्भ में गहनता से विश्लेषित करने के कारण *रवीन्द्र वर्मा* के उपन्यास *मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगा* का कथ्य अपनी प्रभावोत्पादकता में महत्त्वपूर्ण हो गया है। उपन्यास में एक ओर झाँसी की रानी का, रामगुलाम का झाँसी है, जिसे अंग्रेजों ने तहस-नहस कर दिया है, कब्जा कर लिया है और दूसरी ओर रामगुलाम के पौत्र मुरली की झाँसी है, जिसे अंग्रेजियत, भौतिकता और बाजारीकरण लूट रहे हैं, तहस-नहस कर रहे हैं। उपन्यास की कथा झाँसी की रानी के सिपाही रामगुलाम की मौत से चालू होती है। रामगुलाम का छोटा बेटा किसी तरह बच जाता है। झाँसी पर अंग्रेजों का कब्जा हो चुका है। लक्ष्मी अपने मंगल मामा के पास बम्बई में रहता है और सट्टे से तगड़ी कमाई करता है। पार्वती से विवाह करके गृहस्थी बसाता है, दो लड़के कन्हैया और मुरली के साथ ऐश-आराम की जिंदगी गुजारता है। तभी बम्बई में महामारी फैलती है और पार्वती की मृत्यु हो जाती है। वह बम्बई से झाँसी लौटता है, हवेली बनती है, पार्वती वस्त्र भण्डार खुलता है। झाँसी में बढ़ती अंग्रेजियत, भौतिकता और बाजारीकरण के कारण झाँसी की सांस्कृतिक विरासत और गौरवशाली अतीत में पुनः संकट

के बादल मंडराने लगते हैं। कन्हैया चाहता है कि मुरली भी धनी लड़की से ब्याह करे और व्यापार करे। लेकिन मुरली को अपनी झाँसी से प्यार है, स्वदेशी से लगाव है। वह पुष्पा से प्रेम करता है और ब्याह करना चाहता है। पूँजीवाद, बाजारीकरण और भौतिकता बनाम राष्ट्रीय स्वाभिमान, सभ्यता और संस्कृति का संघर्ष चलता है। देशी बनाम विदेशी का संघर्ष अतीत से निकल कर वर्तमान में प्रकट हो जाता है। अंततः मुरली तीन दिन की बेहोशी की हालत में ओरछा दरवाजे के पास पागलपन की हालत में 'मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगा' की घोषणा करते हुए, चीखते हुए पाया जाता है।

रवीन्द्र वर्मा का ही उपन्यास *जवाहर नगर,* आगरा की एक छोटी बस्ती- जवाहर नगर की कथा के जरिए आपात्काल की दहशतजदा स्थिति को प्रकट करता है। यद्यपि आपात्कालीन स्थितियाँ इतनी तीक्ष्णता के साथ उपन्यास में उपस्थित नहीं हैं कि उन्हें ऐतिहासिक वृत्तांत कहा जाय, तथापि आपात्काल की शुरुआत के साथ शुरू और आपात्काल की समाप्ति के साथ ही समाप्त होने वाले इस उपन्यास में मानवता के संघर्ष और क्रूर समय के अन्धकार में तेजी से बदलते समाज को कई कोणों से देखने का सफल प्रयास किया गया है। भोगवादी मानसिकता और विकृत आजादी का शिकार- स्वतंत्र, परम्परा और आधुनिकता तथा देशी और विदेशी के द्वन्द्व में फँसा और संस्कारों से मुक्त नहीं हो पाया- अमर एवं महत्त्वाकांक्षा और प्रेमालाप के वशीभूत होकर स्वतंत्र के भोगवादी उच्छृंखल प्रेम में छली गयी- माधुरी के जरिए समकालीन समाज में आकर बदलाव और बढ़ते उपभोक्तावादी दबाव के साथ ही साथ एक ऐतिहासिक शहर के परम्परागत, सांस्कृतिक, सामाजिक बदलाव की तस्वीर इस उपन्यास में पेश की गई है।

राजेन्द्र मोहन भटनागर का उपन्यास *अंतिम सत्याग्रही* महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व, आदर्श और संघर्षशीलता जैसे गुणों को उजागर करते हुए गाँधी जी के नमक आंदोलन से लेकर स्वाधीन भारत के वर्तमान तक की, आए बदलावों और उपजती विकृतियों, विद्रूपताओं की पड़ताल करता है। उपन्यास का नायक भील नगारा गाँधी जी के आदर्शों से प्रेरित होकर 'नमक आंदोलन' में शामिल हो जाता है और देश की आजादी मिलने तक महात्मा गाँधी जी का अनुसरण करते हुए निरन्तर संघर्षरत रहता है। भील नगारा के साथ यह उपन्यास भी स्वाधीनता आंदोलन को, उसकी हर गतिविधि को देखता है। देश को आजादी मिलती है, गाँधी जी की हत्या हो जाती है और उनके आदर्श, सिद्धान्त व सपने भी तिरोहित हो जाते हैं मगर भील नगारा उन्हीं आदर्शों

पर चलता रहता है। वह अपने संघर्ष के बदले सरकारी पेंशन नहीं लेता, अन्याय का विरोध करता है, गरीबों-शोषितों का साथ देता है लेकिन उसके मन में हमेशा यह सवाल गूँजता रहता है कि यह कैसा सुराज है जहाँ गरीब आज भी पूँजीपतियों, गुण्डों और अफसरशाहों के गुलाम हैं, पहले विदेशियों के अत्याचार थे अब अपनों के ही अत्याचार हैं। वह बिफर पड़ता है-

"ऐसी सरकार पहले सात समंदर से यहाँ आई थी, बाद में वह अपना डंडा-डोली उठाकर सिर के पाँव भाग खड़ी हुई थी। अब अपना राज है- नगारा ने कड़कदार स्वर में कहा- हमें मालूम है कि........।

"तुझे कुछ नहीं मालूम।" हम उसी सरकार के भूत हैं।...... आज भी वही हो रहा है जो तब हो रहा था और आज हम पहले से अधिक शक्तिशाली और मनचाहा करने के लिए स्वतंत्र हैं। पैसे का युग है। थाना उससे बाहर नहीं है।......जा तू अपना काम देख। तेरे मतलब की यहाँ कोई बात नहीं है।" उस पुलिस वाले ने नगारा को घूरते हुए कहा।[34]

अंग्रेजों को खदेड़ने वाला सत्याग्रही अपनों से हार जाता है और इस अंतिम सत्याग्रही-भील नगारा को चोरी छिपे मार डाला जाता है। उसके नाम पर वाहवाही लूटने और वोट लेने की राजनीति चली जाने लगती है। नई पीढ़ी भी इस व्यवस्था में उपेक्षित, तिरस्कृत और शोषित होती है। आजादी के पहले और बाद के सत्याग्रह के प्रत्यक्षदर्शी व सहभागी भील नगारा के जीवन-संघर्ष के माध्यम से इस उपन्यास में अतीत से वर्तमान की यात्रा में आए तमाम बदलावों को बेबाकी के साथ प्रस्तुत किया गया है।

कु.इन्दिरा के उपन्यास *अनि अनावृत* में देश के स्वतंत्रता संग्राम में अपना सर्वस्थ न्यौछावर करने वाले और अपने प्राणों की आहुति दे देने वाले गुमनाम शहीदों की, क्रान्तिकारियों की संघर्ष-गाथा है। उपन्यास में अंग्रेज कमिश्नर वेलेजली का बेटा ब्राउन, अनि, अनावृत, शिवा और राज उर्फ जद्दनबाई जैसे कई क्रान्तिकारियों की शौर्यगाथा है, जिन्हें देश आज भी नहीं जानता मगर गाँवों की चौपालों में उनकी वीरता और बलिदान की कहानियाँ जिन्दा रहती हैं। ब्राउन अंग्रेज होने के बावजूद भारतीय संस्कृति का, उसकी विशिष्टताओं का ज्ञाता है। उसने भारतीय संस्कृति को अपने कार्य-व्यवहार में उतारा है और अंग्रेजों द्वारा भारतीयों पर किए जा रहे अत्याचारों की पीड़ा को महसूस किया है। चंद भारतीयों द्वारा निजी स्वार्थ के लिए अंग्रेजों के साथ मिलकर की जा रही गद्दारी उसे विचलित कर देती है और वह 'वी' संगठन बनाकर

क्रांतिकारी युवाओं को संगठित करता है। पंडित पुरुषोत्तम राव गजानन की पुत्री अनि और शिक्षक अनावृत की कर्मठता और सक्रियता से 'वी' संगठन सशक्त होता है। जद्दन बाई उर्फ राज और शिवा भी संगठन से जुड़ जाती हैं। वेलेजली को ब्राउन की करतूत का पता चलता है और ब्राउन को इंग्लैण्ड भेज दिया जाता है। क्रांतिकारियों के संघर्ष और कुर्बानी से देश आजाद हो जाता है। इंग्लैण्ड की उपनिवेशवादी नीति, अंग्रेजों के अत्याचार व क्रूरता के खिलाफ संघर्ष करने के लिए खड़े होने वाले मिस्टर ब्राउन का भी योगदान कम नहीं है, लिहाजा देश की आजादी के बाद शिवा अपने बेटे विशाल को स्कालरशिप मिल जाने पर इंग्लैण्ड जाने की सहर्ष स्वीकृति देती है ताकि वह अपने बाप मिस्टर ब्राउन से मिलकर कृतज्ञता ज्ञापित कर सके।

क्रांति त्रिवेदी ने अपने उपन्यास *अनोखा आरोही* के माध्यम से हेमचन्द्र भार्गव (हेमू) नामक ऐतिहासिक पात्र के जीवन-वृत्त को पेश किया है। भारतीय इतिहास में हिन्दू-मुस्लिम एकता व साम्प्रदायिक सौहार्द की मिसाल कायम करने वाले हेमू ने अहमद शाह से अपनी मित्रता का फर्ज मरते दम तक निभाया। दोनों की मैत्री इतिहास में एक आदर्श स्थापित करती है। हेमू कर्मठ, जुझारू, समर्पित और ईमानदार व्यक्तित्व का धनी था तो दूसरी ओर अहमद शाह गुणग्राही अफगान, लिहाजा दोनों की मैत्री ने इतिहास में न केवल स्थान पाया वरन् आने वाली पीढ़ियों के लिए आदर्श भी बन गये।

शिवप्रसाद सिंह का उपन्यास *नीला चाँद* मध्यकालीन काशी की राजनीति, संस्कृति, धर्म और जनजीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है। उपन्यास में ग्यारहवीं शताब्दी के उथल-पुथल भरे कालखण्ड को आधार बनाया गया है। उपन्यास का नायक कीर्ति वर्मा कलचुरि नरेश के षड़यंत्रों और आक्रमणों के कारण निर्वासित जीवन व्यतीत करने को बाध्य होता है। उसका भाई पहले ही मारा जा चुका है और भाभी सती हो चुकी है। कीर्ति वर्मा अपने सेनापति और मंत्री के साथ अपने दिन गुजारता है। सूरज गोंड, बब्बर नट, भरत डोम आदि से उसके आत्मीय सम्बन्ध जुड़ते हैं। वह पुनः आदर्श गणराज्य स्थापित करता है। समाज का हर वर्ग स्वतंत्रता और स्वाभिमान के साथ उसके राज में जीवन निर्वहन करता है। राजनीतिक उथल-पुथल के बीच काशी की सांस्कृतिक चेतना अपना वर्चस्व स्थापित किए रहती है वहीं दूसरी ओर मानवीय प्रेम, संवेदनाएँ और इन्सानियत अक्षुण्ण रहती है।

विद्यासागर नौटियाल के उपन्यास *सूरज सबका है* में गढ़वाल के जातीय गौरव का अतीत बड़ी विदग्धता के साथ प्रस्तुत किया गया है। गढ़वाल की अनूठी संस्कृति, परम्पराएँ,

मान्याताएँ और पहाड़ी जीवन की मुश्किलें-बाध्ताएँ समग्रता के साथ इस उपन्यास में उपस्थित रहती हैं। गढ़वाल की रानी कर्णावती की हिम्मत और बुद्धिमत्ता मुगलों को, मुगल सेना को वापस लौटने के लिए मजबूर कर देती है। गढ़वाल पर गोरखों का आक्रमण होता है, गढ़वाल के मूल निवासी लड़ते हैं, मरते हैं और त्रासदी भोगते हैं, जबकि अंग्रेजों को प्रसन्नता होती है क्योंकि गोरखों और गढ़वालों को आपस में लड़ाकर आसानी से कब्जा जमाया जा सकता है। बड़ी दादी के माध्यम से गढ़वाल के निवासियों की संघर्षशीलता और ताकत उजागर होती है। उपन्यास में गढ़वाल की अद्वितीय सांस्कृतिक चेतना, गौरवशाली अतीत, जातीय गौरव के साथ ही पहाड़ी जीवन के कष्ट और समस्याएँ भी उजागर होती हैं।

नासिरा शर्मा का उपन्यास *सात नदियाँ : एक समन्दर* ईरान के आधुनिक इतिहास में सबसे क्रूर और धर्मान्धिता के खूनी दौर की पृष्ठभूमि में लिखा गया है। आय्यात उल्लाह खुमैनी के इस्लामी इंकलाब आन्दोलन में, धार्मिक शुद्धिकरण में तैय्यबा, सूसन, परी और अख्तर जैसी युवतियों पर बन्दिशें लग जाती हैं, कज़्विन दरवाजे की सारे वेश्याएँ भी धार्मिक शुद्धीकरण के नाम पर कत्ल कर दी जाती हैं, असलम अतापोर जैसे कवियों की कविताएँ अपना वजूद खो देती हैं। बुद्धिजीवी भी अत्याचार का शिकार होते हैं और सारा ईरान आतंक, त्रासदी और असुरक्षा से दहल जाता है। बहुत से लोग अपना वतन छोड़कर चले जाते हैं। अमरीकापरस्ती से मुक्ति और धर्म-संस्कृति की रक्षा का आन्दोलन मानवता के रक्त से रंजित हो जाता है। शासक बदलने के बाद भी भ्रष्टाचार, अनाचार और अत्याचार जारी रहते हैं। युवा, बुद्धिजीवी और कलाकार सभी अत्याचार का शिकार होते हैं। अन्त तक आते-आते उपन्यास गहरे अवसाद के समन्दर में डूब जाता है। मानव और मानवता के विनाश का अवसाद, धार्मिक कट्टरता और आतंक का अवसाद ईरान की क्रांति को आधुनिक इतिहास का कलंक सिद्ध करने में कोई कसर नहीं छोड़ता।

विवेच्य कालखण्ड में ऐतिहासिक व पौराणिक चरित्रों के जीवन पर आधारित कई उपन्यास भी लिखे गये हैं। सिकन्दर के जीवन-संघर्ष व यूनान की संस्कृति पर आधारित *सुदर्शन नारंग* का उपन्यास *रंग महोत्सव,* पौराणिक चरित्र- राधा के जीवन पर आधारित *क्रांति त्रिवेदी* का उपन्यास *राधिका* जैसे कई उपन्यासों का उदाहरण यहाँ पर दिया जा सकता है। शोध-प्रबन्ध की विषय-सीमा को नहीं लाँघते हुए ऐसे उपन्यासों का विवेचन युक्तिपूर्ण और समीचीन नहीं होगा।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अतीत को वर्तमान से अलग नहीं किया जा सकता।

इतिहास की समाप्ति के युग के रूप में प्रचलित इस कालखण्ड में ऐतिहासिक तथ्यों को समेटते हुए रचे गये उपन्यासों में इतिहास के प्रति पूर्वाग्रह नहीं वरन् वर्तमान की विकृतियों, विद्रूपताओं को निशाने पर रखा गया है। पौराणिक आख्यानों और पात्रों को नए सन्दर्भ में, नये युग के अनुरूप प्रस्तुत करते हुए उपन्यासों की रचना करने की प्रवृत्ति भी इस अवधि में तेजी के साथ उभरी है। ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं को, जीवन-चरित्र को ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत कर देने वाले उपन्यास भी इस अवधि में लिखे गए हैं, किन्तु शोध-प्रबन्ध की विषय सीमा में रहते हुए ऐसे उपन्यासों का विश्लेषण नहीं किया गया है।

(ज) विविध अन्य :-

आठवें दशक के बाद के उपन्यासों के कथ्यात्मक चिंतन के संदर्भ में पूर्ववर्ती बिन्दुओं के अन्तर्गत विविध पक्षों, आयामों को जानने-समझने का प्रयास किया गया है। इसी क्रम में कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण पक्षों, पहलुओं को जानना आवश्यक होगा, जिन्हें निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता रहा है-

(अ) व्यवस्था की विद्रूपता

(आ) भूमण्डलीकरण व बाजारीकरण

(इ) अमानुषिकता, क्रूरता और हिंसा

(ई) मानसिक अन्तर्द्वन्द, टकराव और पागलपन

(उ) शिक्षा, साहित्य, कला और मीडिया

(ऊ) युद्ध और शांति

(ऋ) भ्रष्टाचार एवं सामाजिक विघटन

(ए) स्वप्न कथा और यथार्थ

(अ) व्यवस्था की विद्रूपता :-

देश की आजादी के चन्द वर्षों के बाद ही राष्ट्रीयता की भावना, आदर्श और नैतिकता की जितनी तेजी से गिरावट होती गयी उतनी ही गति से अच्छे लोग व्यवस्था से बाहर होते गये और धीरे-धीरे ऐसी स्थितियाँ बन गईं, जिनमें समूची व्यवस्था तार-तार हो गयी। अपने समय की समूची व्यवस्था के विद्रूप उपन्यासों में उजागर होते हैं। *मुद्राराक्षस* का उपन्यास *प्रपंचतंत्र* शिक्षा जगत् में पनपते और विकराल होते अनैतिक आचरण, सिद्धान्तहीनता; कार्यालयों में बढ़ती

कमीशनबाजी, भाई-भतीजावाद, आम आदमी की परेशानियों; राजनीतिक उठापटक, दॉव पेंच, अपराधीकरण, पुलिस और पत्रकारों की विकृत मानसिकता; धर्म के ठेकेदारों के ढोंग; नई पीढ़ी की फैशनपरस्ती, कुसंगति और ठगों, धोखेबाजों व चापलूसों की कथाओं के माध्यम से देश की वर्तमान स्थिति का, व्यवस्था के विद्रूपों का खुलासा करता है। *सूर्यकान्त नागर* का उपन्यास *यह जग काली कूकरी* में नेताओं, बुद्धिजीवियों और अधिकारियों द्वारा अपनी अवसरवादी प्रवृत्ति स्वार्थी मानसिकता और सिद्धान्तहीनता के चलते व्यवस्था को पंगु बना दिया गया है, जिसमें निरीह, संत्रस्त आदमी को यातनाएँ ही मिलती हैं। उपन्यास में एक ओर स्वार्थी व अवसरवादी प्रवृत्ति का बुद्धिजीवी, साहित्यकार मनोज 'प्रखर' है तो दूसरी ओर दया भैया है, जो राजनीतिक चालबाजी में अपनी गोट 'फिट' करने में कामयाब हो जाता है और अचानक ही स्थानीय स्तर की राजनीति से ऊपर उठकर विधायक और फिर मंत्री बन जाता है। उपन्यास का दीनू उर्फ दिनकर राय आम आदमी का प्रतीक है जो व्यवस्था की इन विसंगतियों को देखता रहता है, भोगता रहता है। *तेजिन्दर* का उपन्यास *हेलो सुजीत*, राजनीति के बदलते मूल्यों सत्ता परिवर्तन की वास्तविकताओं और राजनीतिक चरित्र पर केन्द्रित होने के बावजूद समूची व्यवस्था की विकृतियों का प्रश्न उठाता है। उपन्यास की पात्र श्रीमती खोब्रागड़े ने झोपड़-पट्टियों का जीवन जिया है, वहाँ के कष्ट और वहाँ की कटु स्मृतियाँ उनका पीछा नहीं छोड़तीं। मगर श्रीमती खोब्रागड़े जैसी संवेदना व्यवस्था से जुड़े दूसरे लोगों, अंगों में नहीं पायी जाती। गरीबी, अभावग्रस्तता और उपेक्षा को भोगता हुआ समाज का निचला और पिछड़ा तबका ही सरकारी दाँवपेंच व राजनीति के कुचक्रों में तबाह होता है। सत्ता से बाहर रहने वाले, विपक्ष में बैठने वाले नेता बदलाव की, क्रांति और संघर्ष की बात करते हैं, मगर सत्ता पाते ही चेहरे बदल जाते हैं, क्रांति, संघर्ष व बदलाव की बात वहीं रह जाती है। व्यवस्था के विद्रूप बरकरार रहते हैं।

कृष्णा अग्निहोत्री ने अपने उपन्यास *टपरेवाले* में भी झोपड़ों (टपरों) में रहने वाले बसोड़, माहर और बलई जाति के लोगों के कष्टसाध्य, पशुवत् जीवन में झाँकते हुए व्यवस्था पर भी प्रश्नचिन्ह लगाया है। यद्यपि इन लोगों में पनपी नशेबाजी, अंधविश्वास, उच्छृंखलता, दुर्व्यसन, गरीबी, अशिक्षा और बेकारी के लिए इन लोगों का दोष भी कम नहीं है तथापि व्यवस्था को निर्दोष नहीं कहा जा सकता। वोट खरीदने के लिए धन, शराब और कपड़े बाँटने वाले मजूमदार जैसे नेता, बालक टिल्लू का यौन-शोषण करने वाला दरोगा, केशव और माधव को जमानत देने

के बदले मीरा के शरीर को भोगने वाला थानेदार और स्वास्थ्य केन्द्रों व परिवार नियोजन केन्द्रों में कार्यरत डाक्टर, कर्मचारी आदि इस उपन्यास के पात्र ही नहीं हैं वरन् वर्तमान व्यवस्था के भी अंग हैं और यथार्थ जीवन में गाहे-ब-गाहे ऐसे चरित्र प्रकट भी हो जाते हैं।

मृणाल पाण्डे के उपन्यास *रास्तों पर भटकते हुए* की नायिका मंजरी समाज की गन्दगी, व्यवस्था की विद्रूपता और पतित मानवीय मूल्यों के कारणों की खोज के लिए रास्तों पर भटकती रहती है और इस भटकाव में उसके सामने विकृतियों, विद्रूपताओं के तमाम पहलू परत-दर-परत खुलते चले जाते हैं। पार्वती और बंटी की हत्या के कारणों की खोज करते हुए उसे मासूम बच्चों के गुर्दे आदि निकालकर बचने वाले गिरोह की जानकारी होती है। राजनीतिक संरक्षण पाकर किए जा रहे समाज विरोधी, मानवता विरोधी कृत्यों में लिप्त रहने वाले लोगों से; राजनीतिक चाटुकारिता करने वाले आदर्शविहीन, सिद्धान्तहीन, स्वार्थी हमपेशा पत्रकारों से; भ्रष्टाचार और घूसखोरी में आकण्ठ डूबे कर्मचारी, अधिकारियों से; पुलिस की पहुँच और पकड़ से दूर खुलेआम अपराध करने वाले राजनीतिक संरक्षण प्राप्त अपराधियों से और गरीबों की जमीनों पर कब्जा करके आलीशान हवेली बनवाने वाले पूँजीपति शोषकों से मंजरी का साक्षात्कार होता है। *संजीव* के उपन्यास *जंगल जहाँ शुरू होता है* में भी स्थितियाँ ऐसी ही हैं। पुलिस, डकैत, नेता और प्रशासनिक अमला, सभी ने मिलकर गठबंधन बना रख है। उपन्यास सवाल नहीं खड़ा करता, जवाब देता है, विसंगतियाँ और विद्रूपताओं के जन्म के कारणों को खोलकर रख देता है। स्वार्थ, अनैतिकता, मूल्यहीनता, बर्बरता, आतंक, अपराध और अत्याचार के जंगल के मुहाने पर लाकर खड़ा कर देता है।

जगदीश चन्द्र के उपन्यास *नरक कुण्ड में वास* के नायक काली जैसे गरीब, निरीह, शोषित और आम आदमी को हर समय, हर जगह नरककुण्ड में ही रहना होता है। गाँव में चौधरी की सामंती व्यवस्था है तो शहर में फैक्ट्रियों की पूँजीपति व्यवस्था। हर जगह आम आदमी की पीड़ा है, शोषण है, जीवन की त्रासदी है। *संजीव* के उपन्यास *सावधान नीचे आग है* में एक ओर जीवन के लिए संघर्ष कर रहे कोयला मजदूर हैं तो दूसरी ओर कोयला माफियाओं, ठेकेदारों और दलालों को मिलाकर बनी हुई व्यवस्था। जीवन की जिजीविषा कोयला मजदूरों को इस व्यवस्था के समक्ष प्रस्तुत करती है और पाशविकता, शोषण, स्वार्थ व अत्याचार के कारण तबाह, बर्बाद हो जाना ही इन मजदूरों की नियति बन जाती है। *वल्लभ सिद्धार्थ* के उपन्यास

कठघरे में वर्तमान की त्रासदियों, यातनाओं, बदतर हालात के कारणों, अतीत की विफलताओं के साथ ही लोकतंत्र की अस्मिता के खण्डित होने और आम जनता की निराशा का सटीक चित्रण हुआ है। उपन्यास यह बताने में कारगर सिद्ध होता है कि व्यवस्था के विद्रूपों के कटघरे हमारी पतनशील, नैतिकता, आदर्शविहीन राजनीति और अतीत की गलतियों के फलस्वरूप निर्मित हुए हैं।

विभूतिनारायण राय का उपन्यास *किस्सा लोकतंत्र* भी लोकतंत्र के भटकाव के कारण उपजी विसंगतियों, विद्रूपताओं को उजागर करता है। चुनावी राजनीति, षड़यंत्र, राजनीति में अपराधियों का प्रवेश और राजनीतिक हिंसा के साथ ही भ्रष्टाचार और अनैतिकता के कारण उपजी विषम स्थितियों के खिलाफ संघर्ष के लिए उठ खड़ी होने वाली जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले पत्रकार बागी के साथ जनसमर्थन तो होता है लेकिन कंधा मिलाकर चलने वाला कोई नहीं होता, यह भी वर्तमान व्यवस्था की विसंगति का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। कमोबेश इसी प्रकार की स्थितियों का चित्रण *राजेन्द्र मोहन भटनागर* के उपन्यास *अंतिम सत्याग्रही* में होता है। उपन्यास के केन्द्रीय पात्र भील नगारा ने देश की गुलामी वाला कालखण्ड देखा है, उसने गाँधी का अनुगामी बनकर स्वाधीनता आन्दोलन में, सत्याग्रह में सहभाग भी किया है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में गाँधी जी तो नहीं हैं, लेकिन उनके आदर्श और सिद्धान्त भील नगारा में जीवन्त हैं। देश की स्थितियाँ बदल गईं है। भ्रष्टाचार, अराजकता और अनैतिकता हावी हो गयी है। सुराज होने के बावजूद गुलामी है, दूसरी गुलामी। भील नगारा संघर्ष करता है। अंग्रेजों को देश छोड़ने के लिए मजबूर कर देने वाला भील नगारा हार जाता है, अपने ही लोगों से, व्यवस्था के विद्रूपों से। उसकी हत्या कर दी जाती है, चोरी से और फिर उसके नाम पर वाहवाही लूटने, वोट पाने की राजनीति की जाती है।

विकास का अन्तर्विरोध और अनियोजित विकास भी वर्तमान व्यवस्था के विद्रूप और त्रासदी का ज्वलंत पहलू है। *वीरेन्द्र जैन* का उपन्यास *डूब* इसी मुद्दे को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। उपन्यास में विरोध उपजता है- बाँध बनाकर विकास करने के खिलाफ। बुन्देलखण्ड के अविकसित, पिछड़े इलाके को दरकार है जागरूकता की, आर्थिक प्रगति की, रोजगार की और शैक्षणिक विकास की, मगर व्यवस्था से जुड़े लोग यह मुहैया नहीं कराते। विकास के नाम पर इस क्षेत्र के लोगों की दयनीयता का, लाचारी का लाभ उठाया जाता है। जिंदगी से संघर्ष करते

हुए आम जन को उसकी जमीन से उखाड़कर विस्थापित कर देने की साजिश कामयाब करने के लिए बाँध बनाने की योजना बनाई गई है। *विवेकी राय* के उपन्यास *समर शेष है* में भी जनता और सत्ता के बीच संघर्ष प्रकट होता है। विकास के अन्तर्विरोधों के कारण, साथ ही मूलभूत सुविधाओं के अभाव के कारण भी। उपन्यास के पात्र सुराज और रामराज हैं। गाँव में अन्य सुविधाएँ तो दूर, सड़क भी नदारद है। उपन्यास के पात्रों की दयनीयता के जरिए स्वराज्य और रामराज्य के सपनों की असलियत उजागर होती है और व्यवस्था की विद्रूपता के खिलाफ, सत्ता के खिलाफ, जनता का संघर्ष मुखर होता है।

मंजूर एहतेशाम का उपन्यास *सूखा बरगद* देश के सामाजिक अन्तर्विरोधों, धार्मिक विद्वेषों, जातीयता, क्षेत्रीयता और सांस्कृतिक संक्रमण के कारण विद्रूप हो गयी स्थितियों की पड़ताल करता है। वैमनस्यता और आपसी टकराव महज जाति और धर्म के कारण नहीं फैले हैं वरन् राजनीति के द्वारा इसका 'उपयोग' किए जाने के कारण स्थितियाँ बदतर हुई। आपसी मैत्री और सद्भाव फैलाने के नाम पर उछाले गये नारे वस्तुतः स्वार्थी राजनीति और अवसरवादी लोगों द्वारा जाति व धर्म की खाई को और अधिक चौड़ा करके अपने लाभ के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं। सुहेल जैसे उच्च शिक्षित लोगों के अन्दर धर्म निरपेक्षता है, समाज के प्रति उदात्त भावनाएँ हैं, समर्पण है। सुहेल और रशीदा के बीच प्रेम की अपेक्षा टकराव महत्त्वपूर्ण हो जाता है। व्यवस्था मौनदृष्टा बनी सब कुछ देखती रहती है और स्वार्थ सिद्ध करती है, लाभ कमाती है।

कुलदीप बग्गा के उपन्यास *हर आदमी का डर* में डर व्यवस्था की इन्हीं विद्रूपताओं, विसंगतियों और अन्तर्विरोधों के कारण उपजता है। उपन्यास का केन्द्रीय पात्र शंकर अपनी उच्च शिक्षा के बावजूद घर-परिवार छोड़ने को बाध्य है। दिल्ली में प्राइवेट कम्पनी में काम करते हुए भी नौकरी से निकाले जाने का भय है। समाज के गन्दगी भरे माहौल में पत्नी को टेलीफोन आपरेटर की नौकरी कराने की मजबूरी है और इसी के साथ शामिल है- भविष्य की चिंताओं का भय, अनहोनी की आशंका। इसी शंका, हताशा व डर के बीच हर आदमी को जीना है। व्यवस्था का यही तकाजा है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि व्यवस्था में जितनी विद्रूपताएँ, विसंगतियाँ और विकृतियाँ पैदा हुई हैं, उतनी ही आम आदमी की मुसीबतें बढ़ी हैं। इस दौर के उपन्यासों में व्यवस्था की विद्रूपताओं से जूझते, संघर्ष करते आम आदमी की नियति को तो उजागर किया ही

गया है, साथ ही समूचे तंत्र में लग चुके भ्रष्टाचार, घूसखोरी, अराजकता, भाई-भतीजावाद, अनाचार और शोषण के घुन को सटीक और समग्र रूप में प्रस्तुत किया गया है।

(आ) भूमण्डलीकरण व बाजारीकरण :-

विज्ञान और तकनीकी के प्रसार, विश्व व्यापार नीति और सिमटती वैश्विक सीमाओं के फलस्वरूप उपजे बाजारीकरण और भूमण्डलीकरण ने देश और समाज की सीमाओं से परे, हर शहर और गाँव को, प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित किया है। समाज, सभ्यता, संस्कृति, परिवार और यहाँ तक कि हर व्यक्ति इसके दुष्प्रभाव से टूटा है। विवेच्य कालखण्ड में इस टूटन और बिखराव को प्रकट करते और विविध आयामों को जाँचते-परखते उपन्यास भी लिखे गए हैं। *स्वयं प्रकाश* का उपन्यास *ईधन* बाजारीकरण और वैश्वीकरण के लिए ईधन बन गए आदमी की व्यथा-कथा कहता है। रोहित मध्यमवर्गीय परिवार से आया है लेकिन उसकी पत्नी आधुनिक विचारों वाली है। इस कारण दोनों में तनाव उपजता है। अंततः रोहित भी आधुनिक बनता है और अपनी पत्नी से भी आगे निकल जाता है। बेटू की मौत उसे झकझोर कर रख देती है। घर में इकट्ठी की गई तमाम विलासिता की चीजें उसे घृणित लगने लगती हैं। अधिक से अधिक धन कमाने और धन के जरिए समाज में अपनी जगह बनाने की मानसिकता इसी बाजारवार की देन है। जिसमें पिसकर रोहित और स्निग्धा का जीवन नारकीय हो जाता है। आर्थिक बदलाव अर्थव्यवस्था के साथ ही सामाजिक परिवेश और पारिवारिक परिदृश्य को भी परिवर्तित कर देता है। स्वयं प्रकाश के उपन्यास की तरह ही *प्रियंवद* का उपन्यास *परछाई नाच* भी इस प्रश्न को उठाता है। देश की बदलती आर्थिक तस्वीर में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का बोलबाला है। पूँजीपतियों और उद्योगपतियों ने समूची व्यवस्था अपने अनुरूप बना रखी है। देश की राजनीति भी पूँजीपतियों की भाषा बोलती है। अनहद और किंशुक आम जनता के प्रतीक हैं, जो बाजारवाद और पूँजीवादी व्यवस्था में मरने के लिए मजबूर हैं।

रवीन्द्र वर्मा के उपन्यास *जवाहर नगर* में उपभोक्तावाद और बाजारीकरण के फलस्वरूप एक बस्ती जवाहर नगर में आ रहे बदलाव की ही कथा नहीं है, वरन् इसके जरिए हर शहर-क़स्बा-बस्ती के बदलते चेहरों को बेनकाब किया गया है। उपभोक्तावाद ने माधुरी जैसी युवतियों के अन्दर अंधी महत्त्वाकांक्षा भर दी है, जिसे पाने के लिए किसी भी सीमा को पार किया जा सकता है। वहीं दूसरी ओर स्वतंत्र जैसे युवकों को दम्भी, स्वार्थी, लम्पट और नैतिकताविहीन

बना दिया है, जो किसी की भी भावनाओं से खेल सकते हैं, संस्कारों के बंधनों को तोड़ सकते हैं। अमर जैसे नवयुवक भी हैं, जिनके अन्दर नीतिमत्ता और संस्कारों का मोह है लेकिन समय के बदलाव के अनुरूप बदल जाने की दबी हुई इच्छा जागृत है। उपभोक्तावाद और बाजारीकरण बनाम परम्परा, स्वाभिमान और संस्कृति के संघर्ष में जवाहर नगर के दो मित्र- स्वतंत्र और अमर आमने-सामने होते हैं। *रवीन्द्र वर्मा* के उपन्यास *मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगा* में यह संघर्ष दो भाइयों- मुरली और कन्हैया के बीच चलता है। परम्परा, संस्कृति, आत्म स्वाभिमान, मर्यादा और निःस्वार्थ प्रेम के खिलाफ खड़ी बाजारवादी, पूँजवादी ताकतें अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहती हैं। मुरली इनका विरोध करता है, पुष्पा से प्रेम करता है, स्वदेशी विचारों का समर्थन करता है, विदेशी वस्त्रों में आग लगाता है। पूरी ताकत के साथ संघर्ष करते हुए वह एक दिन ओरछा दरवाजे के पास पागलपन की हालत में पाया जाता है।

कामतानाथ का उपन्यास *समुद्र तट पर खुलने वाली खिड़की* तीर्थ स्थानों में बढ़ते भौतिकता, बाजारीकरण और पूँजीवाद के दबाव को भी उजागर करता है। तीर्थस्थानों का धार्मिक स्वरूप विकृत होकर धार्मिक कट्टरता और वैचारिक संकीर्णता की हदों को पार कर गया है तो दूसरी ओर पर्यटन स्थलों के रूप में भी तीर्थस्थल विकसित हो रहे है। दोनों अलग-अलग रूप हैं। एक ओर धर्म के ठेकेदारों, पण्डों, पुजारियों और मन्दिरों की जिंदगी है तो दूसरी ओर छोटे दूकानदार, रिक्शा चालक, और आलीशान होटल हैं। विदेशों से आने वाले पर्यटकों के साथ ही आधुनिक विचारधारा वाले देशी सैलानियों के लिए ये स्थल मौज-मस्ती और सैर-सपाटे के लिए हैं। इन्हीं पर्यटकों के सहारे अपनी जिंदगी चलाने वाले रिक्शा चालक, दूकानदार, माला और सीपी आदि बेचने वाले बच्चे हैं। इनका अपना अलग जीवन-संघर्ष है।

पंकज मित्र का उपन्यास *हुडुकलुल्लु* गाँवों में हावी होते बाजारीकरण, भौतिकता और संचार क्रांति के दुष्परिणामों से मोहभंग की स्थितियों को उजागर करता है। शहरों से होते हुए गाँवों तक पहुँच गई भौतिकता, फैशनपरस्ती, विज्ञापन संस्कृति, सूचना क्रांति और बाजारवादी मानसिकता के कारण गाँवों का स्वरूप बदल गया और परम्परागत संस्कृति के साथ ही मानव-मूल्यों पर भी संकट गहराने लगा। तेजी के साथ बदलती स्थितियों के परिणाम स्वरूप उपजा मोह-भंग वर्तमान की त्रासदी है।

चित्रा मुद्गल के उपन्यासों *एक जमीन अपनी* और *आवाँ* में विज्ञापन संस्कृतिक के

कुचक्र में पिसती, बर्बाद होती महिलाओं के दयनीय, यातना भरे जीवन को उजागर किया गया है। बाजारू और मर्दवादी मानसिकता के कारण तमाम वस्तुओं की तरह स्त्री भी बिकाऊ हो जाती है। *एक जमीन अपनी* में माडलिंग की दुनिया के तमाम विद्रूपों को उजागर किया गया है तो *आवाँ* की नायिका नमिता पाण्डेय गहनों का विज्ञापन देते-देते खुद भी बिकने को मजबूर हो जाती है। दोनों उपन्यासों में स्त्री की मजबूरी उजागर हुई है। साथ ही स्त्रियों की महत्त्वकांक्षा और लालसा भी प्रकट हुई है, जो स्त्रियों को विज्ञापनों के बाजार में अपने तन की नुमाइश करने के लिए बाध्य कर देती है।

सुषमा जगमोहन का उपन्यास *जिंदगी ई-मेल* मध्यमवर्गीय परिवारों की असीमित महत्त्वाकाँक्षा और बढ़ती भौतिकता के पीछे भागने के कारण उपजी स्थितियों को प्रकट करता है। उपन्यास का केन्द्रीय पात्र दीप है, जो फिल्मी पत्रकार है। उसकी बीबी तनु , दो बच्चे, वृद्ध पिता और भाई मध्यमवर्गीय परिवार का प्रतिनिधित्व करते हैं। अधिक से अधिक धन कमाकर बच्चों को उच्च शिक्षा दिलाने और समाज में हैसियत बनाने की महत्त्वाकांक्षा उन्हें विदेश जाने के लिए उकसाती है। दीप, तनु और दोनों बच्चे कर्ज के धन से कनाडा चले जाते हैं। दीप तो वापस लौट आता है, मगर तनु रहते हुए अस्थायी नौकरी करती है। दीप और तनु अपने बिखरे परिवार के कारण दुःखी रहते हैं। तनु को कनाडा में स्थायी नौकरी नहीं मिलती है और दीप दुबारा कनाडा नहीं जा पाता। दोनों के दुःख दर्द, बातचीत, पर्व-त्योहार और जिंदगी, ई-मेल में सिमटकर रह जाती है। सुखी और सफल दाम्पत्य का स्वप्न भी ई-मेल तक ही सीमित रह जाता है। *कुसुम कुमार* का उपन्यास *पूर्वी द्वार* भी अति महत्त्वाकांक्षा और भौतिकता की ओर भागते लोगों के पीछे छूटते सुखी परिवारों की दारुण दशा को प्रकट करता है। सेवानिवृत्त लेफ्टीनेण्ट कर्नल सत्यार्थ वर्मा के पुत्र अपनी माँ शारदा को बहुत चाहते हैं लेकिन उनकी महत्त्वाकांक्षा इसमें आड़े आ जाती है और दोनों पुत्र नीलाम्बर व तन्मय विदेश में बस जाते है। माँ के प्रति उनका स्नेह फोन पर बातचीत करने में ही सिमट जाता है। इसी प्रकार सांघी जी हैं, जिनकी अपने बेटे के घर में नौकर जैसी हालत है। अंततः सांघी जी की मौत 'फादर्स डे' पर ही हो जाती है। उपन्यास में वर्णित इसी प्रकार की कई स्थितियों पारिवारिक स्नेह और सौहार्द के भीतर सेंध लगाती बाजारवादी मानसिकता, भौतिकता और स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण उपजी है।

प्रकाश शुक्ल ने अपने उपन्यास *आकाश अपने-अपने* में सुखद भविष्य की उम्मीद

में अधिक से अधिक धन कमाने के लोभ में बस गये लोगों के दुःख को उजागर किया है। इलेक्ट्रानिक इन्जीनियर सुरंजन अमेरिका में जो बसा और विदेशी युवती नोरा से विवाह कर लिया। नोरा ने बारबरा को जन्म दिया। अमेरिका में रहते हुए भी उसके भारतीय संस्कार पारिवारिक वातावरण को उसी अनुरूप ढालना चाहते हैं, यहीं पर नोरा और सुरंजन के बीच टकराव होता है और अंततः सुरंजन अपने वतन लौट आता है। सुरंजन की वापसी प्रतीकात्मक रूप से आधुनिकता, भौतिकता, बाजारीकरण और पूँजीवाद के दुष्प्रभावों से आजिज आ चुके लोगों की अपनी परम्परा और संस्कृति की ओर वापसी का संकेत करती है।

कामतानाथ का उपन्यास *पिघलेगी बर्फ* एकदम अलग और अनूठे कथ्य को प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास में नियति के हाथों विवश होकर हिमालयी क्षेत्र में भटकते कथानायक के जरिए तिब्बत की अनूठी संस्कृति के क्रमिक विनाश की दयनीय स्थिति को प्रकट किया गया है। उपन्यास का नायक बर्मा और मलाया के जंगलों से होता हुआ तिब्बत पहुँच जाता है और एक तिब्बती युवती से प्रेम करते हुए तिब्बत की अनूठी संस्कृति से साक्षात्कार करता है, साथ ही उपनिवेशवादी ताकतों के चंगुल में फँसकर नष्ट होती, अपना वजूद खोती तिब्बती संस्कृति के विनाश की दुखद स्थितियों को भी प्रकट करता है।

विश्वव्यापारीकरण और भूमण्डलीकरण के कारण देश में आए बदलाव से महानगर और नगर ही नहीं, वरन् गाँव और तीर्थस्थल भी प्रभावित हुए हैं। भौतिकता, भूमण्डलीकरण, बाजारीकरण और बढ़ती आधुनिकता के फलस्वरूप आए बदलाव के साथ इस कारण से उपजी विकृतियों को इस अवधि के उपन्यासों में पूरी शिद्दत के साथ प्रकट किया गया है। परिवारों में उपजती विघटन की स्थिति, लोगों के अन्दर पनपती महत्त्वाकांक्षा जैसे तमाम पहलू इन उपन्यासों में उजागर हुए हैं जो वर्तमान यथार्थ से साक्षात्कार कराते प्रतीत होते हैं।

(इ) अमानुषिकता, क्रूरता और हिंसा :-

वर्तमान व्यवस्था के विविध अंगो में, धर्म व समाज में पनपी क्रूरता, हिंसा और अमानवीयता आज का निहायत कड़वा सच है। राजनीति के क्षेत्र में हो या प्रशासनिक अमले में, आम ज़नता से इतर आपस में ही हर बड़ी मछली छोटी मछली को निगल रही है। राजनीति में आगे बढ़ने के लिए आपस में ही चल रही गलाकाट प्रतिस्पर्धा और पतन की पराकाष्ठा सहित कई विषयों को केन्द्र में रखकर लिखे गए उपन्यासों पर चर्चा इसी अध्याय में पहले ही की जा चुकी

है। *विभूतिनारायण राय* का उपन्यास *तबादला* प्रशासनिक अमले में अपने ही सहकर्मियों को नीचा दिखाने के लिए मानवता और नैतिकता की तमाम हदें पार कर जाने वाले अधिकारियों और कर्मचारियों के चरित्र को प्रकट करता है। पुलिस विभाग के आला अधिकारियों द्वारा अपने मातहत कर्मचारियों के साथ किए जाने वाले अमानुषिक बर्ताव को केन्द्र में रखकर *शैलेन्द्र सागर* ने *चलो दोस्त सब ठीक है* उपन्यास लिखा है। छोटे पदों पर कार्यरत पुलिस कर्मचारियों के साथ उच्च अधिकारियों का दुर्व्यवहार, कठिन दिनचर्या और सुविधाओं का अभाव उन्हें निष्क्रिय, भ्रष्ट और अमानवीय बना देता है। आला अफसरों द्वारा गलत कार्यों का दोष अपने अधीनस्थों पर मढ़ दिया जाना और अपने सम्मान के लिए सोचते हुए अधीनस्थों की उपेक्षा करना पुलिस विभाग के भीतर उभरी खामियों का प्रमुख कारण है। उपन्यास का प्रमुख पात्र दीवान संग्राम सिंह पूरी निष्ठा और लगन के साथ पच्चीस वर्षों की नौकरी कर चुका है। इसके बावजूद उच्च अधिकारियों के कारण उसे जेल जाना पड़ता है, सजा भोगनी पड़ती है। पुलिस हिरासत में हुई मौत का दोष संग्राम सिंह पर मढ़ दिया जाता है और 'थर्ड डिग्री' के लिए उकसाने वाले दरोगा व कप्तान साफ बच निकलते हैं। प्रदर्शनकारी दोषी को सजा देने की माँग करते हैं और संग्राम सिंह सजा भोगता है, निर्दोष होने के बावजूद संग्राम सिंह जैसे तमाम निर्दोष कैदी निरपराध होने के बावजूद जेल की यातनाएँ भोग रहे हैं।

कैदियों की बदतर जिंदगी की पड़ताल करता है- *हृदयेश* का उपन्यास *पगली घंटी*। उपन्यास बतलाता है कि वास्तव में अपराधी होते ही नहीं हैं, बनाए जाते हैं। व्यवस्था के विद्रूप, समाज की जटिलाएँ और अन्तर्विरोध अपराधियों को गढ़ते हैं। कानून के पेंच और छिद्रों से असली अपराधी बच निकलते हैं और निर्दोष लोग कैद की यातनाएँ भोगते हैं। जेल का भी अपना जीवन होता है, पुलिस की यातनाओं, कष्टप्रद जीवनचर्या, कैदियों के आपसी झगड़ों व अपनत्व के बीच। इस जीवन में कैदी जेल से बाहर की दुनिया को या तो भूल जाते हैं या फिर जेल से छूटने की उनकी इच्छा ही मर जाती है। कुल मिलाकर यह उपन्यास उन अमानवीय स्थितियों व विद्रूपताओं की ओर ध्यान खींचता है जिनके कारण अपराधी तैयार होते हैं और ऐसी स्थितियाँ पैदा करने वाले साफ बच निकलते हैं, क्योंकि अमानवीय स्थितियाँ पैदा करना, विसंगतियों व विद्रूपताओं को जन्म देना कानूनन अपराध नहीं होता।

नासिरा शर्मा के उपन्यास *कुइयाँजान* में पानी को लेकर व्यवस्था तंत्र द्वारा की जा

रही राजनीति के माध्यम से अमानुषिकता का तल्ख नमूना पेश किया गया है। एक ओर पानी की किल्लत है और दूसरी ओर नदियों को जोड़ने की योजनाएँ बनायी जा रही हैं। उपन्यास में पानी की समस्या को लेकर लड़ते लोगों, आए दिन आयोजित किए जाते सेमिनारों के माध्यम से पानी की भयावह समस्या को प्रस्तुत किया गया है।

समाज की जड़ों में गहरे तक पैठ बना चुकी साम्प्रदायिकता का हिंसक रूप वर्तमान का कटु यथार्थ है जो अलगाववाद, आतंकवाद और धार्मिक हिंसा के रूप में चल रहा है। लम्बे अर्से से कश्मीर में चली आ रही आतंकवादी गतिविधियाँ मानवता के नाम पर कलंक हैं साथ ही कश्मीर की अनूठी संस्कृति को, समाज को नष्ट-भ्रष्ट करने की क्रूर कोशिश भी है। *पद्मा सचदेव* का उपन्यास *नौशीन* आतंकवाद से जूझते कश्मीरियों की जटिल जिंदगी का, उन पर होते अत्याचारों का मार्मिक आख्यान है। उपन्यास बताता है कि कश्मीर में केवल आतंकवादियों और 'मिलिटेन्टों' का ही आतंक नहीं है वरन् आतंकवाद के सफाए के नाम पर पुलिस व फौज द्वारा भी कहर ढाया जाता है। उपन्यास में एक ओर बेकारी और अज्ञानता के कारण आतंकवादियों द्वारा बहला फुसलाकर सीमा पार ले जाए गये बच्चों को आतंकवादी बनाने के दुष्चक्र हैं तो दूसरी ओर सरकार की गलत नीतियों से पनपते आतंकवाद के कारणों की खोज की गई है। उपन्यास के पात्र इम्तियाज ने मजहब के नाम पर कत्लेआम करने वाले मिलिटेन्टों के कहर को, सेना और पुलिस के अत्याचार को देखा भी है और सहा भी है। तमाम निर्दोष कश्मीरियों की तरह उसे भी मिलिटेन्ट होने के झूठे आरोप में फँसाकर जेल में बन्द कर दिया गया, प्रताड़ित किया गया। लिहाजा वह कश्मीर से भागकर अपनी बहन हामिदा के पास बम्बई आ गया। विस्थापन की जिंदगी जी रहे कश्मीरी पंडितो, सिखों और राजपूतों के भी अपने दर्द हैं। सभी को उम्मीद है कि एक न एक दिन कश्मीर के हालात जरूर बदलेंगे और वे अपनी मातृभूमि में वापस लौट सकेंगे।

इन्दिरा गाँधी की हत्या के बाद सारे देश में फैले सिख विरोधी दंगों और साम्प्रदायिक उन्माद की विभीषिका पर केन्द्रित है- *कमल* का उपन्यास *आखर चौरासी*। उपन्यास के पात्र हरनाम सिंह, सतनाम सिंह, गुरनाम और जागीर सिंह के साथ उन्मादियों द्वारा की गई लूटपाट के कारण उपजे भय, लाचारी और चुप रहकर सहते जाने की विवशता को, 'खून का बदला खून से लेंगे' जैसे जहरीले नारे देकर अपने राजनीतिक स्वार्थ सिद्ध करने वाले नेताओं की मानसिकता

को उपन्यास में बड़ी शिद्दत के साथ उजागर किया गया है। दंगाइयों ने बड़ी बेरहमी के साथ अवतार सिंह, करमू, चरण कौर और लाड़ो की हत्या कर दी-"जल्दी ही कुछ लोगों ने पकड़ कर जलते टायरों का एक हार उनके गले में भी डाल दिया। पत्नी और बेटे की तरह अब अवतार सिंह भी जिंदा जलने लगे थे। चीखते, जलते, भागते उन लोगों को बचने का कहीं भी कोई स्थान न था। उन्हें चारो तरफ से घेरे खड़ी भीड़ तालियाँ पीटकर तमाशा देख रही थी। जब तक वे भाग सके, घेरे में ही इधर-उधर भागते रहे। फिर वे दोनों वहीं गिर पड़े। जिंदा इंसान देखते ही देखते सड़क पर पड़ी राख में तब्दील हो गये थे........ उनका संघर्ष समाप्त हो चुका था। संघर्ष तो लाड़ो का भी समाप्त हो चुका था। उसे दबोचे, नोचते लड़कों ने लाड़ो का फूल-सा-शरीर रौंद डाला था। उसका निर्वस्त्र, बेजान शरीर जलती कार पर उछाल, वे लड़के भी भीड़ के साथ-साथ अगले शिकार की तलाश में आगे बढ़ गये थे। आपस में वे लड़के इस बात की चटखारों के साथ चर्चा कर रहे थे कि उस फूल से शरीर के साथ किसने-किसने और कैसे-कैसे वह सब किया.....। दूर जाती भीड़ बीच-बीच में नारे लगाती जा रही थी- खून का बदला.... खून से लेंगे.....।"[35]

अमानुषिकता, हिंसा और क्रूरता की पराकाष्ठा को, बर्बर और आततायी होते समाज की असलियत को देखकर गुरनाम इतना आहत हो जाता है कि अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़कर समाज को बदलने के लिए धर्म के नाम पर मरने-मारने वालों की मानसिकता को जानने-समझने और इसका हल ढूँढ़ने की कोशिश में निकल पड़ता है। उपन्यास के पात्र-अम्बिका पांडे, महादेव, रमण शाण्डिल्य, विक्की और जगदीश आदि ऐसे लोग हैं जो पंजाब के बाहर रह रहे इन सिखों को आतंकियों से न केवल बचाते हैं वरन् साम्प्रदायिकता का जहर घोलने वालों के खिलाफ आवाज भी उठाते हैं।

चंद्रकिशोर जायसवाल का उपन्यास *शीर्षक* साम्प्रदायिक दंगों के गोपनीय पक्षों की पड़ताल करता है। उपन्यास के हरिवल्लभ जैसे नेता, रमणी बाबू और गोपाल जी जैसे लोग साम्प्रदायिक दंगे भड़काते हैं। ताकि उनके व्यक्तिगत स्वार्थ पूरे हो सकें। किराये के गुण्डों के अलावा पुलिस की भूमिका भी कमोबेश ऐसी ही होती है जो शांति बहाल करने के बजाय भीड़ को मारकाट के लिए उकसाती है। रूपक भारती और लालपरी जैसे लोग अपने भय के कारण ही चाहते हुए भी साम्प्रदायिक हिंसा को नहीं रोक पाते। सलीम जैसे लोगों से ही समय और समाज की उम्मीदें जुड़ी हैं। जो दंगों में अपने परिजनों के मारे जाने का शोक करने के बजाय पीड़ितों

को बचाने के लिए अपनी जान की बाजी लगा देने से पीछे नहीं हटता।

कमलेश्वर का उपन्यास *कितने पाकिस्तान* पूरे वैश्विक क्षितिज पर फैलकर मानवता के विनाश की, सभ्यताओं के संघर्ष की और अतीत से लेकर वर्तमान तक की पड़ताल करता है। इस उपन्यास का नायक और कोई नहीं वरन् अदीब अर्थात् समय है। जिसके समक्ष हर भले व बुरे को पेश होना पड़ता है, अपने हर गलत कार्य को, पापों और अपराधों को स्वीकार करना पड़ता है। अदीब इतिहास नहीं है क्योंकि वह ऐतिहासिक पात्रों को वर्तमान में तौलता है। अदीब आम आदमी का प्रतिनिधि है, जो आम आदमी की नजर से सोंचता है, देखता है और जीवन की जटिलताओं को महसूस करता है। इतिहास का हर दिग्गज, शूरवीर व बुद्धिजीवी अदीब की अदालत में पेश होता है और अपने गुनाहों को स्वीकार करता है, सफाई देता है। साम्प्रदायिक उन्माद और धर्म के नाम पर लड़ी जाती लड़ाइयाँ किसी एक देशकाल की नहीं वरन् अतीत से वर्तमान तक सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हैं। विस्तृत फलक में समय और समाज की, समूचे विश्व की ज्वलंत समस्या को अपनी ऐतिहासिकता के साथ, बहुत गम्भीरता और विदग्धता के साथ प्रस्तुत करने के कारण यह उपन्यास न केवल महत्त्वपूर्ण है वरन् इस दौर के अच्छे उपन्यासों का पांक्तेय भी है।

विभूतिनारायण राय का उपन्यास *शहर में कर्फ्यू* भी साम्प्रदायिक उन्माद और दंगों का जटिल मनोविज्ञान है। साम्प्रदायिक दंगों में वे गरीब और असहाय लोग ही मारे जाते हैं, जिनका दंगों से कोई लेना देना नहीं होता, जो मेहनत मजदूरी करके अपना पेट भरते हैं। दंगे फैलाने वाले समाज के ही ऐसे प्रतिष्ठित लोग होते हैं जिनका बाहरी आवरण धवल होता है और भीतर निरी कालिख भरी होती है। व्यवस्था भी ऐसे लोगों के साथ होती है जो इन दंगों को फैलाने में अपना योगदान देकर आम जनता के प्रतिरोध का मुख अपनी ओर से हटाकर जनता को ही आपस में लड़ा देना चाहती है। पुलिस भी पीछे नहीं रहती और दंगाइयों को यथासंभव मदद भी देती है। उपन्यास बताता है कि धर्म के नाम पर नफरत फैलाने वाली, एक दूसरे को लड़ाने वाली और वैचारिक रूप से पंगु बनाये रखने वाली व्यवस्था जब तक बनी रहेगी तब तक दंगों, क्रूरताओं और हिंसा का दौर चलता ही रहेगा।

इस अवधि के उपरोक्त उपन्यासों में अमानुषिकता और बर्बरता के कई रूप उभरकर सामने आते हैं। कार्यालयों में अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के ऊपर अपना दबदबा बनाये रखने

के लिए पाशविकता की सीमाएँ पार कर जाने वाले अधिकारीगण, अपराधियों को सबक सिखाने के लिए किया जाने वाला बर्बर बर्ताव जिसे निर्दोष लोगों को भी भोगना पड़ जाता है और इसके साथ ही धर्म व धार्मिक कट्टरता के नाम पर चलायी जाती पाशविक क्रूरताएँ इन उपन्यासों में तो प्रकट होती ही हैं, यथार्थ में भी देखने को मिलती हैं।

(ई) मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, टकराव और पागलपन :-

जिंदगी की भागमभाग और आपाधापी के बीच जीवन से संघर्ष करते हुए व्यवस्था की खामियों से लड़ते हुए और महत्त्वाकांक्षाओं के पीछे भागते हुए समाज का हर वर्ग- स्त्री, पुरुष और बच्चे सभी मानसिक अन्तर्द्वन्द में जीने को विवश हैं। घर के भीतर उपजती तनावपूर्ण स्थितियाँ, परिवेश के साथ सामंजस्य नहीं बैठा पाने की विवशताएँ वर्तमान का सच हैं। *कुलदीप बग्गा* के उपन्यास *हर आदमी का डर* के पात्र शंकर की तरह कभी पति-पत्नी सबन्धों के बीच तनाव व चिंता तो कभी भविष्य के प्रति भय और उद्विग्नता के बीच जिंदगी गुजारने की विवशताएँ हैं। इसी प्रकार का संत्रास *विजयमोहन सिंह* के उपन्यास *कोई वीरानी सी वीरानी है* का नायक विवेक भोगता है। अपनी जिंदगी के प्रति निराशा और ऊब उसके अंदर चिढ़ और घुटन भर देती है। अपने परिचितों और मित्रों के बीच वह स्वयं को असहज महसूस करता है लिहाजा अपने में ही गुमसुम रहता है। स्त्रियों के प्रति अजीब आकर्षण है, जिसे न तो प्रेम कहा जा सकता है और न ही वासना। वह अपने खालीपन से और खुद से ही लड़ता रहता है।

रमेशचंद्र शाह के उपन्यास *किस्सा गुलाम* का नायक एक दलित युवक है, जिसके अंदर समाज का दर्द भरा हुआ है। वह खुद भी इन दारुण स्थितियों को भोगता है इस कारण वह न केवल शोकमग्न हो जाता है वरन् सभी से कटकर विद्रोही हो जाती है। *हिमांशु जोशी* के उपन्यास *सु-राज* के नायक बूढ़े काका की बेचैनी और छटपटाहट बदलते सामाजिक परिवेश, गिरते नैतिक मूल्य और छूटते आदर्शों की चिंता के कारण है। काका ने देश के स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लिया है, गाँधी के के सिद्धान्तों, आदर्शों का अनुसरण किया है। देश को आजादी तो मिली, लेकिन उसके साथ ही ऐसी व्यवस्था भी मिली जिसे स्वराज नहीं कहा जा सकता। समाज पतनशील है, आदर्श व सिद्धान्त अप्रासंगिक हो गए हैं, हर व्यक्ति दुख और कष्ट में जी रहा है, व्यवस्था के तंत्र से जुड़े पुलिस, नेता और अधिकारीगण अपने में ही सिमटे हुए हैं। इन विषम परिस्थितियों से काका लड़ते हैं, हर दुखी, बेसहारा की मदद करने के लिए छटपटाते

हैं, इधर उधर भागते हैं मगर कब तक? उनके घर-परिवार में भी जंग छिड़ी हुई है भाई ही भाई का दुश्मन बना हुआ है, हर ताकतवर अपने से कमजोर को दबाना चाहता है। काका की बेचैनी बढ़ जाती है, उद्विग्नता बढ़ जाती है और इसी जंग को अकेले लड़ते-लड़ते काका को शांत होना पड़ता है, यही उनकी नियति है।

परिवारों में जब सभी सदस्यों की मानसिकता बदल जाती है और एक दूसरे को समझने के बजाय अपने विचार और अपनी राह में डटे रहने की प्रवृत्ति बलवती हो जाती है तो आपसी टकराव, विघटन और निस्संगता ही शेष रह जाती है। *मृदुला गर्ग* के उपन्यास *वंशज* में शुक्ल जी के घर में ऐसी ही स्थितियाँ पैदा होती हैं। शुक्ल जी अंग्रेजों के जमाने से न्यायाधीश के पद पर कार्य करते रहे इस कारण उनका रहन-सहन और ठाठ-बाट भी अंग्रेजियत, अनुशासन और कुलीनता से भरा रहा। शुक्ल जी के बेटे सुधीर की उनसे कभी नहीं पटती रही क्योंकि सुधीर अपनी दुनिया में मस्त रहता और भेदभाव से दूर सबके दुख-दर्द को महसूस करता, दिखावेबाजी व शान-शौकत से घृणा करता। वैचारिक भिन्नताओं ने बाप-बेटे के बीच स्नेह को कभी प्रकट नहीं होने दिया। दोनों के बीच सेतु बनने का कार्य बेटी रेवा के विवाह के बाद सुधीर की पत्नी सविता ने किया। सविता का दुनियादारी, चतुराई और धन लोलुपता ने उसे जितना के शुक्ल जी के नजदीक किया उतना ही सुधीर से दूर कर दिया। शुक्ल जी ने मरने से पहले अपनी सारी जायदाद सुधीर को दे दी। सुधीर भी अपनी लड़ाई हार चुका और शुक्ल जी की सम्पत्ति ने उसके पैर बाँध दिये। वह स्वयं की मुक्ति के लिए छटपटाता रहा लेकिन उसकी बीबी व साले अनूप को सम्पत्ति का बंदरबाँट मंजूर नहीं था। अंततः वह पागल हो गया और अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाने के प्रयास में अधिक बेसहारा व असफल हो गया। *मधु काँकरिया* के उपन्यास *पत्ताखोर* में भी पारिवारिक विघटन और टकराव की स्थितियाँ उजागर की गई हैं। हेमंत बाबू और सुरभि का इकलौता बेटा आदित्य संवेदनशील और महत्त्वाकांक्षी है। बचपन से ही उसकी सीमाएँ बाँध दी गयी हैं। हेमंत बाबू को सादगी पसंद है जबकि पत्नी के अंदर भौतिकता और महत्त्वाकांक्षा का सैलाब है। परस्पर विरोधी विचारधारा वाले सदस्यों के कारण परिवार में टकराव की स्थितियाँ तैयार हो जाती हैं। आदित्य अपने बचपन से ही मिली उपेक्षा और मानसिकता अन्तर्द्वन्द के कारण किशोरावस्था से युवावस्था में प्रवेश करते-करते नशे का आदी हो जाता है। वह अन्तर्मुखी हो जाता है और अवसादग्रस्तता की स्थिति में फँस जाता है। आदित्य के साथ ही विश्वजीत और

राजेश शर्मा जैसे नवयुवक नशे में अपनी चिंताओं व मुक्ति का हल खोजते हैं।

मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास *हरिया हरक्यूलीज़ की हैरानी* के केन्द्रीय पात्र हरिदत्त तिवारी उर्फ हरिया हरक्यूलीज़ की हैरानी की शुरुआत तब होती है जब उसे दुनियादारी की तमाम बातों का, छल-छद्मों, प्रपंचों का ज्ञान होता है। हरिया के साथ हरक्यूलीज़ का नाम तब जुड़ा जब उसके पिता गिरवाण दत्त ने उसे एक हरक्यूलीज़ साइकिल दी ताकि व पिता के परिचितों के बारे में जानकारी आसानी से ला सके और बिस्तर पर पड़े अपने बाप को बता सके। हरिया की जिन्दगी बाबूगिरी की नौकरी और पिता की सेवा-टहल तक सिमटी हुई थी। पत्रकार धारी के बेटे अतुल द्वारा बताये गये 'गूमालिंग' की तलाश में उसके सामने स्त्री पुरुष सम्बन्ध, छल छद्म और दुनिया के ढेरों कार्यकलाप व पापाचार परत-दर-परत खुलने लगते हैं और इन्हीं सबको खोजते, हल निकालते हमेशा अपने काम में लगा रहने वाला निश्चिन्त और सरल स्वभाव का हरिया उद्विग्न हो जाता है, विचलित हो जाता है। वह उन सभी चीजों को पा लेना चाहता है, जिनसे वह वंचित रहा है। उसे शरीर की नश्वरता जैसी बातों का ज्ञान भी होता है। इन्हीं सब के कारण वह हैरान हो जाता है, मानसिक रूप से उद्विग्न हो जाता है, उसकी हरकतें अजीबोगरीब हो जाती हैं और लोग उसे पागल करार दे देते हैं। अंततः एक दिन उसका क्षत-विक्षत कंकाल हिमालय की तराई में पाया जाता है। इस जटिल दुनिया में सीधे-सादे लोगों के दुनियावी ज्ञान में, छल प्रपंच में फँसने पर यही परिणाम निकल कर आते हैं।

आज के समय की भागदौड़ भरी जिंदगी में समस्याओं से जूझते-टकराते हुए, व्यवस्था की विसंगतियों से टकराते हुए मानसिक अन्तर्द्वन्द, अवसाद, चिंता और पागलपन जैसी स्थितियाँ प्रकट होना सामान्य बात हो गई है। इस अवधि के उपन्यासों में इसी मानसिक उलझन, तनाव और अवसाद जैसी स्थितियों को प्रकट किया गया है। भौतिकता और यांत्रिकता के कारण दुष्कर हो गए जीवन में ऐसी स्थितियों की उपस्थिति यथार्थ में भी दिखाई देती है।

(उ) शिक्षा, साहित्य, कला और मीडिया :-

शिक्षा जगत् में बढ़ती अराजकता, विद्वेषपूर्ण राजनीति, साहित्य के क्षेत्र में मचती उठापटक, कलाकारों की दयनीय स्थिति, मीडिया के बदलते रवैये से जुड़े विविध पक्ष भी विवेच्य कालखण्ड के उपन्यासों में प्रकट किए गये हैं। *उषा यादव* का उपन्यास *कितने नीलकण्ठ* शिक्षा जगत् में पैठ बना चुकी धोखाधड़ी, अराजकता और शोषण की दुखद स्थितियों के कई पक्ष प्रस्तुत

करता है। उपन्यास में एक शिक्षित बेरोजगार नवयुवक के संघर्ष का वर्णन है। वह शोध करते हुए अपने शोध निर्देशक द्वारा ही ठगा जाता है। उसके द्वारा मेहनत से तैयार की गयी 'थीसिस' को चुराकर उसका शोध-निर्देशक अपनी किसी चहेती लड़की को दे देता है और उसे दूसरा विषय दे दिया जाता है। शिक्षा जगत् के आदर्शों और गुरुजनों के प्रति उसकी श्रद्धा और आस्था डगमगाने लगती है। उसे नौकरी भी एक छोटे स्कूल में मिलती है, जहाँ पूरी मेहनत और लगन से पढ़ाने के बावजूद उसे उपेक्षा ही मिलती है। अंततः उसे इस बात का ज्ञान हो जाता है कि शैक्षणिक परिवेश में सीधे-सच्चे लोग अप्रासंगिक हैं, वह नौकरी से त्यागपत्र दे देता है और दुख व तनाव भरी जिंदगी जीने को मजबूर हो जाता है।

गिरिराज किशोर के उपन्यास *परिशिष्ट* में शिक्षा जगत् पर छायी जातिवादी मानसिकता का खुलासा किया गया है। दलित छात्र अपनी क्षमता और मेहनत के बूते संविधान द्वारा प्रदत्त सुविधाओं से तकनीकी शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश तो पा जाते हैं लेकिन जातिवाद की संकीर्ण मानसिकता शिक्षा के मंदिरों में भी बरकरार रहती है, जो इन छात्रों को सहजता के साथ अध्ययन नहीं करने देती। उच्च वर्ग से आये छात्र इन छात्रों की उपस्थिति को स्वीकार नहीं कर पाते। *असगर वजाहत* का उपन्यास *कैसी आग लगायी* शिक्षा केन्द्रों में लगी धार्मिक कट्टरता की आग की ओर संकेत करता है। अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के परिवेश पर केन्द्रित इस उपन्यास में वामपंथी छात्र राजनीति के आन्तरिक द्वन्द्व, धार्मिक विद्वेष और आपसी खींचतान के चलते दूषित होती शिक्षा व्यवस्था को, उसकी खामियों को प्रकट किया गया है।

प्रमोद कुमार तिवारी के उपन्यास *डर हमारी जेबों में* के खेला सराय का समूचा शिक्षा तंत्र शिशु मंदिर और कॉलेज के माध्यम से अपनी संततियों को बेइमानी, भ्रष्टाचार, जातिवाद, अंधविश्वास, और गुण्डागर्दी सभी कुछ सिखा देता है। शिक्षा तंत्र से जुड़े लोग भी इन्ही सब में आकंठ डूबे हुए हैं।

वीरेन्द्र जैन का उपन्यास *शब्द वध,* वर्तमान आर्थिक विकासवादी युग में साहित्य और साहित्यकारों की दुर्दशा और प्रकाशन व्यवसाय में अपेक्षा से अधिक बढ़ती व्यावसायिकता, आपसी प्रतिर्स्पध़ा और होड़ के कारण पिसते लेखकों और इस व्यवसाय से जुडे कामगारों की व्यथा-कथा है। उपन्यास में कांता जी, दिलीप जैसे प्रकाशक हैं जो लाभ कमाने की होड़ और प्रतिस्पर्धा में लेखकों को निशाना बनाते हैं। विश्वविद्यालयों में पुस्तकें लगवाने के लिए, बाजार में पुस्तकें बेचने

के लिए रचे जाते कुचक्र, लेखकों की रायल्टी हजम करने के लिए किए जाते विविध उपक्रम, छद्म नामों का प्रयोग करके रचनाएँ छापने और एक ही कृति को अलग-अलग नामों से छापकर भारी मुनाफा कमाने की मानसिकता उपन्यास में उजागर होती है। उपन्यास बताता है कि प्रकाशन व्यवसाय और आढ़त के व्यवसाय में कोई अन्तर नहीं रह गया है- "इसी तरह वहाँ रेणु, यशपाल, प्रेमचन्द, अज्ञेय, जैनेन्द्र, मोहन, सोहन, राही, बेराही, भ्रमर, मक्खियाँ, पतंगे, तिलचट्टे- सबके नामों की बोलियाँ लग रहीं थी। विद्यार्थी क्या पढ़े यह विद्वान नहीं आढ़तिए तय कर रहे थे। विद्यार्थियों को क्या पढ़ना होगा यह प्रकाशक का प्रतिनिधि अपने बक्से में बन्द नोटों के बण्डल गिनकर तय कर रहा था। विद्यार्थी क्यों पढ़े उसे ही- क्योंकि उस जिन्स के विक्रेता की गरज थी। उसके गोदाम में आलू सड रहे थे।"[36] आनन्द वर्धन इस विकृत व्यवस्था के प्रति विरोध दर्ज कराता है और अंततः लेखन व प्रकाशन से दूर कोई दूसरा आय का स्रोत ढूँढने का निर्णय लेता है।

साहित्य की भाँति वर्तमान समय में कला और कलाकार भी उपेक्षित हैं, शोषण का शिकार हैं। *हिमांशु श्रीवास्तव* का उपन्यास *शोक सभा* इसी मुद्दे पर केन्द्रित है। दिवाकर मलिक कथक नृत्यकार हैं। उन्हें विविध समारोहों और कार्यक्रमों में आमंत्रित किया जाता है, लोग उनकी कला का आनन्द मुफ्त में उठाना चाहते हैं। दिवाकर मलिक की पुत्री को यह नागवार गुजरता है और वह समाज की दोतरफा चाल का बदला चुकाती है। वह अपने कार्यक्रम के लिए तगड़ा पारिश्रमिक लेती है। दूसरी तरफ है, राजनीति व प्रशासन द्वारा दिवाकर मलिक का किया जा रहा शोषण, जो कला और कलाकारों के प्रति समूचे तंत्र के क्रूर रवैये को प्रकट करता है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह का उपन्यास *झीनी-झीनी बीनी चदरिया* बनारसी साड़ी बुनने वाले जुलाहों के जीवन की दारुण स्थितियों को प्रकट करता है। कबीर के इन वंशजों को कला तो आती है मगर कला का व्यापार नहीं आता। इनकी कला का व्यापार दूसरे लोग करते हैं। जिनमें पूँजीपति और दलाल सभी शामिल हैं, मुनाफा भी यही लोग कमाते हैं और ये जुलाहे अपना खून जलाते हैं, गम्भीर बीमारियों से जूझते हैं और अभाव झेलते हुए मर जाते हैं। मतीन जैसे जुलाहों के घर में कंगाली रहती है, बीबी के इलाज के अभाव में घुट-घुटकर मरती है और दूसरी ओर हाजी साहब की हवेली तन जाती है। मतीन की अगली पीढ़ी इस अत्याचार और असमानता को नहीं सहती, विरोध और विद्रोह की आवाज बुलन्द होती है।

पंकज बिष्ट का उपन्यास *लेकिन दरवाजा* मीडिया जगत् में सत्यान्वेषण हेतु संघर्षशीलता के स्थान पर सुविधाभोगी मानसिकता के बलवती हो जाने की विषम स्थितियों का चित्रण करता है। नीलांबर एक प्रवक्ता, साहित्यकार और बुद्धिजीवी होने के साथ ही आधुनिक विचारधारा वाली पत्नी सुमन का पति भी है। पत्नी के वर्चस्व की वजह से या फिर मध्यवर्गीय मानसिकता के कारण नीलांबर भी सुविधापरस्त हो जाता है और उसका लेखन भी इसी छल-छद्म के इर्दगिर्द ही रहता है। देबू आम जनता का प्रतीकात्मक प्रतिनिधि है जो नीलांबर के अंदर आते बदलाव को महसूस करता है और शालीनता के साथ इसका प्रतिरोध भी करता है। देबू के मन में नीलांबर के प्रति उपजे आतंक और नफरत के भाव वास्तव में आम जनता के हैं जो मीडिया के खिलाफ प्रकट होते हैं। *निर्मला भुराड़िया* का उपन्यास *आब्जेक्शन मी लार्ड* पूँजीपतियों की गिरफ्त में फँसे मीडिया की स्थिति का चित्रण करता है। मीडिया और राजनीति के आपसी सम्बन्ध, पत्रकारिता के मूल्यों व आदर्शों का पतन, क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति में लगे मीडिया के लोगों का चरित्र इस उपन्यास में उजागर किया गया है। उपन्यास की नायिका माधुरी पत्रकारिता जगत् में पनपती पूँजीवादी, स्वार्थी मानसिकता से आजिज आकर पत्रकारिता छोड़ देती है और स्वयंसेवी संगठन से जुड जाती है। इसी प्रकार *धीरेन्द्र अस्थाना* के उपन्यास *हलाहल* और *गुजर क्यों नही जाता* भी पत्रकारिता जगत् की दुनिया में व्याप्त स्वार्थी मानसिकता और उधेड़बुन, टकराव और शोषण को उजागर करते हैं। दोनों ही उपन्यासों के पात्र पत्रकारिता के पेशे में इतनी यातनाएँ और उपेक्षा भोगते है और अभावग्रस्त जीवन जीते हुए मानसिक असहजता के शिकार होकर दूसरा पेशा अपनाने को बाध्य हो जाते हैं।

(ऊ) युद्ध और शांति :-

अंग्रेजी के प्रख्यात कवि *टी.एस.इलियट* की कविता *द वेस्ट लैण्ड* (1921) और मिस्र के बहुचर्चित, विवादास्पद साहित्यकार *नागिब महफूज़* (1911-2006) के उपन्यास *बिफोर द थ्रोन* (1983) की मिलीजुली शैली में रचा गया उपन्यास कितने पाकिस्तान इस दौर का चर्चित और महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इलियट की कविता का नायक टायरेसियस प्रतीकात्मक रूप से समय है, जो अपने देशकाल सहित समाज और लोगों की पड़ताल करता है, अच्छे-बुरे कर्मों को प्रकट करता है। इसी प्रकार महफूज़ के उपन्यास का नायक भी समय है, समय की अदालत है जिसके समक्ष मिस्र के विभिन्न युगों के राजा व नेता पेश होते हैं। *कमलेश्वर* के उपन्यास *कितने*

पाकिस्तान में समूचा विश्व क्षितिज है। इतिहास के तमाम नेता, शक्तिशाली बादशाह, लेखक, इतिहासवेत्ता, यहाँ तक कि नदियाँ और संस्कृतियाँ भी अदीब (समय) की अदालत में पेश होकर अपना पक्ष रखती हैं। उपन्यास में दाराशिकोह की उपस्थिति न केवल महत्त्वपूर्ण है, वरन् समूची दुनिया में धर्म और जाति के नाम पर चल रहे अप्रत्यक्ष युद्ध की विभीषिका में महत्त्वपूर्ण पक्ष भी रखती है।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद शुरु हुए शीत युद्ध में वर्चस्व और अस्तित्व की स्थापना ने अहम भूमिका निभाई। सोवियत संघ के विघटन के साथ ही शीत युद्ध तो समाप्त हो गया, लेकिन सांस्कृतिक, धार्मिक और जातीय संघर्ष बहुत तेजी के साथ और भयावह रूप में समूचे विश्व में उभरने लगा आज सारी दुनिया जाति और धर्म के नाम पर चल रहे इस अघोषित युद्ध की आग में जल रही है। इस युद्ध और उन्माद का दोषी वर्तमान ही नहीं है, वरन् इतिहास भी है, जिसने कट्टरपंथियों के हाथ में बागडोर सौंपी है। धर्म और जाति के नाम पर निरीह जनता को मौत के मुँह में झोकने वालों को, धरती को बाँटने वालों को और मानवता को रक्तरंजित कर देने वालों को समय कभी माफ नहीं कर सकता। कुछ इसी तरह के विचारों को केन्द्र में रखकर कितने पाकिस्तान लिखा गया है। उपन्यास के कथ्य को विश्लेषित करते हुए रोहिणी अग्रवाल लिखती हैं कि "कितने पाकिस्तान उपन्यास में 'पाकिस्तान प्रतीक है अलगाववादी उस मानसिकता का जो नफरत से हिंसा और हिंसा से आतंक फैलाकर लगातार अपने निहित स्वार्थ पूरे करती चलती है। इसलिए आज समूचे विश्व में पाकिस्तानों की संख्या तेजी से बढ़ती जा रही है। पाकिस्तान यानि 'मज़हब के नाम पर लूटा गया इलाका' जिसे 'मुल्क' कहा जाता है। लेखक पाकिस्तान नामक देश और उसकी एकता को अहमियत देने का हामी है लेकिन "पाकिस्तान नाम के उस जज्बे को गलत और खतरनाक" मानता है जो 'छूत के रोग' की तरह तब तक पाकिस्तानों की श्रृंखला खड़ी करता रहेगा जब तक धर्म, नस्ल, जाति और दुनिया की पहली शक्ति बनने का नशा नहीं टूटता, जब तक सत्ता और वर्चस्व की हवस नहीं छूटती।"[37]

उपन्यास का नायक 'समय' है जिसकी अदालत में इतिहास पुरुष अपने सत्कर्मों के लिए प्रशंसा पाते हैं और दुष्कर्मों के लिए शर्मिन्दा होते हैं। उपन्यास बताता है कि दाराशिकोह जैसे भले और निर्विवाद इंसान सदैव हाशिए में रहते हैं। अगर दाराशिकोह की हत्या न की हुई होती और अकबर के उत्तराधिकारी के रूप में उसका शासन देश पर होता तो देश की गंगा-जमुनी तहजीब

कलंकित न होती, देश का विभाजन न होता। उपन्यास का यह पक्ष न केवल महत्त्वपूर्ण है, वरन् मानवता और विश्व शांति का नया इतिहास लिखने के अपने महान उद्देश्य में उपन्यास को प्रतिष्ठा और कामयाबी की ऊँचाइयों पर स्थापित करता है।

(ऋ) भ्रष्टाचार एवं सामाजिक विघटन :-

राजनीति, अर्थनीति, शिक्षा, साहित्य, मीडिया और कार्यपालिका-न्यायपालिका में व्याप्त भ्रष्टाचार की विभीषिका को रेखांकित करते तमाम उपन्यासों का विवेचन पूर्ववर्ती उपशीर्षकों में समग्रता के साथ किया गया है। राजनीति के नैतिक पतन की स्थितियों और कार्यपालिका में बढ़ती लालफीताशाही की प्रवृत्ति के साथ ही भौतिकता 'ग्लोबलाइजेशन' और 'लिबरलाइजेशन' की तेज गति ने भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया है। आज के दौर में भ्रष्टाचार अपराध नहीं रह गया है वरन् सामाजिक प्रतिष्ठा का मानदण्ड बन गया है। जो जितना अधिक भ्रष्ट है वह उतना ही पूज्य और माननीय है। इसके कारण उपजी सामाजिक विघटन, विद्रोह और अपराध की स्थितियाँ भ्रष्टाचार का दूसरा पहलू है।

यद्यपि भ्रष्टाचार के उपरोक्त दोनों पक्षों सहित भ्रष्टाचार की प्रतिरोधक और विरोधी शक्तियों को केन्द्र में रखकर लिखे गए तमाम उपन्यासों के सन्दर्भ में विस्तृत चर्चा पहले ही की जा चुकी है, तथापि *शैलेश मटियानी* के उपन्यास *मुठभेड़* और *डॉ.विवेकी राय* के उपन्यासों *मंगल भवन* व *सोना माटी* की चर्चा करना आवश्यक होगा। इन उपन्यासों में भी भ्रष्टाचार है किन्तु वृहद अर्थों में। धन के साथ ही चरित्र की भ्रष्टता भी इन उपन्यासों में उजागर होती है जो समाज को कई हिस्सों में तोड़ती है। शैलेश मटियानी के उपन्यास 'मुठभेड़' में कानून, पुलिस, मीडिया और व्यवस्था तंत्र की विद्रूपताओं को, इनमें व्याप्त भ्रष्टाचार, क्रूरता और अनैतिकता को समग्र यथार्थ के साथ उजागर किया गया है। भ्रष्टाचार, चारित्रिक पतन का भी है, जिसने अपना स्थायी रूप गढ़ लिया है। और सामाजिक ढाँचे में इतनी मजबूत और गहरी पकड बना रखी है कि समूचे परिवेश में न्याय और सच्चाई को तलाशना लगभग असंभव है। निरुपेन्द्र जैसे जुझारू, सतर्क पत्रकार और सहाय जैसे कर्मठ पुलिस अधिकारी के जरिए उपन्यासकार ने व्यवस्था तंत्र की विद्रूपता के साथ ही पतनशील और भ्रष्ट समाज को उघाड़कर रख दिया है।

डॉ.विवेकी राय के उपन्यास *सोना माटी* में यही सब शुद्ध ग्रामीण परिवेश में दिखाई देता है। व्यवस्था तंत्र से जुड़े लोगों के लिए गाँव उपयुक्त जगह है। जहाँ वे बेरोकटोक भ्रष्टाचार

की फसल उगा सकते हैं, काट सकते हैं। नेता, अफसर और प्रभुवर्ग गरीब-निरीह ग्रामीणों के शोषण हेतु संगठित है। कभी मजबूरी में तो कभी तटस्थता के कारण शोषण और भ्रष्टाचार का विरोध नहीं होता। ग्रामीणों ने इसे स्वीकार कर लिया है। गाँव के जुझारू, समर्थ और बुद्धिजीवी वर्ग की अपनी लाचारी है। उपन्यास का पात्र मास्टर रामरूप ग्रामीणों की समस्याओं के लिए लड़ता है, भ्रष्टाचार के खिलाफ संघर्ष की भूमि तैयार करता है। इसके साथ ही ग्रामीणों के चरित्र का विश्लेषण भी करता है, ग्रामीणों की उदासीनता और तस्टस्थता को कोसता है। गाँव में आ रही जागरूकता का स्वागत करता है, संवर्द्धन करता है।

डॉ.विवेकी राय का दूसरा उपन्यास *मंगल भवन* भी समाज के दोहरे चरित्र को उजागर करता है। एक ओर राष्ट्र-प्रेम की भावनाओं का उबाल है तो दूसरी और स्वार्थ, षड़यंत्र और कुचक्र हैं। भारत-चीन युद्ध और भारत-पाकिस्तान युद्ध के फलस्वरूप ग्रामीणों में देशप्रेम की भावनाएँ पैदा होती हैं। कुछ नहीं कर सकने की स्थिति में भी राष्ट्रीय भावना का जज्बा पूरे उफान पर है। दूसरी ओर स्वार्थी मानसिकता, कुचक्र और आपसी खींचतान है। राष्ट्र-भक्ति की भावना के सूत्र में बँधे होने के बावजूद समाज विघटित है, अपने स्वार्थो के लिए। यही हाल कमोबेश आज भी है। इस प्रकार यह उपन्यास वर्तमान से भी जुड़ जाता है।

इस प्रकार भ्रष्टाचार के विविध रूपों के कारण समाज में पैदा हुई विकृत सोच स्वार्थी मानसिकता, विघटन और बिखराव की स्थिति को समग्रता के साथ उपन्यासों में प्रकट किया गया है।

(ए) स्वप्न कथा और यथार्थ :-

कल्पना और स्वप्न में गोते लगाकर आत्ममुग्ध हो जाना मानवीय गुण होता है। वर्तमान जीवन की भागम-भाग, जल्दबाजी और 'फास्ट फूड कल्चर' में जीवन इतना क्रूर और जटिल हो गया है कि कल्पना और स्वप्न भी यथार्थधर्मी हो गए हैं। इसके बावजूद बेहतर जीवन की प्राप्ति और मनोकामनाओं की पूर्ति हेतु मानव मन में आसक्ति सदैव जागृत रहती है। जिन्दगी में कभी न आने वाले- अनागत क्षणों की प्राप्ति हेतु मन का भटकाव रहता है। इसी विचार पर केन्द्रित 'अनागत् कविता' के क्रम में 'अनागत कहानी' और स्वप्न कथा का अपना संसार है। हिन्दी के कतिपय उपन्यासों में भी यह परम्परा प्रदर्शित होती है।

विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यास *दीवार में एक खिड़की रहती थी* के मास्टर

रघुवरप्रसाद और उनकी पत्नी सोनसी का अपना संसार है, जहाँ जीवन की जटिलताएँ नहीं हैं, गरीबी है पर अभाव नहीं है, जीवन की तमाम समस्याएँ भी नहीं है। इसी प्रकार *ठाकुर प्रसाद सिंह* के उपन्यास *सात घरों का गाँव* में पाठशाला के मास्टर और आदिवासी युवती के बीच प्रेम-प्रसंग चलता रहता है, तमाम समस्याओं से दूर। इन दोनों उपन्यासों पर विस्तृत चर्चा पहले ही हो चुकी है।

अतीत की सुखद स्मृतियों के सहारे वर्तमान की विद्रूपताओं को, जीवन की समस्याओं को झेलने की जिजीविषा पर केन्द्रित तीन उपन्यासों- *ध्रुव शुक्ल* के *उसी शहर में*, *कृष्णा सोबती* के *समय सरगम* और *निर्मल वर्मा* के *अंतिम अरण्य* की चर्चा करना प्रासंगिक होगा। ध्रुव शुक्ल के उसी शहर में उपन्यास में बचपन की स्मृतियाँ, दोस्तों और सहेलियों के साथ बिताये गये समय की यादें, बचपन की घटनाएँ, हादसे और अनगिनत बातें वर्तमान को कभी सुखद एहसास दे जाती हैं तो कभी बोझिल कर जाती हैं। *कृष्णा सोबती* के उपन्यास *समय सरगम* में अतीत की यही स्मृतियाँ दो बूढ़ों- आरण्या और ईशान को रोमांचित कर देती हैं और अतीत को पूरी जीवन्तता के साथ जी लेने की आत्मसंतुष्टि से भर देती हैं। इसी प्रकार *निर्मल वर्मा* का उपन्यास *अंतिम अरण्य* भी अतीत की सुखद स्मृतियों के सहारे सुखद मृत्यु से साक्षात्कार कराता है। उपन्यास के नायक मेहरा साहब के विधुर और एकाकी जीवन में पत्नी दीवा की सुन्दरता और उसके प्रेम की स्मृतियों की पूँजी है, जिसके सहारे वह अपने जीवन के अंतिम क्षणों को सुखपूर्वक जीते हुए सुखद मृत्यु को प्राप्त करते हैं। उपन्यास के नायक मेहरा साहब की मृत्यु के जरिए यह स्पष्ट करने का प्रयास भी किया गया है कि मौत डरावनी नहीं, बल्कि इस जीवन का अंतिम सुखद एहसास है।

इन तीनों उपन्यासों में वह अल्हडता, बेबाकी, खिलन्दडापन और जीवन्तता नजर नहीं आती जैसी *दीवार में एक खिड़की रहती थी* और *सात घरों का गाँव* में दिखाई देती है। वर्तमान के क्रूर यथार्थ से भागकर अतीत की स्मृतियों में शरण लेने की कवायद *उसी शहर में, समय सरगम और अंतिम अरण्य* उपन्यासों में प्रकट होती है।

वस्तुतः यथार्थ से मुँह मोड़कर कल्पनाशीलता, स्वप्नलोक और स्मृति जगत की उडान भरकर आज के जटिल जीवन को नहीं जिया जा सकता। तमाम अभावों, कष्टों और त्रासदियों के बावजूद जीवन की जिजीविषा मौत को उतना सरल और सुखद नहीं होने देती, जितनी सुखद

मौत *अंतिम अरण्य* के मेहरा साहब को मिलती है। स्वप्न और कल्पना के भरोसे जिंदगी की गाड़ी नहीं चल सकती। सहजता और सुख के पलों को सायास नहीं पाया जा सकता।

स्वप्न, कला और कल्पना के अतिवाद के कारण यह उपन्यास भले ही यथार्थ से दूर दिखाई देते हों, तथापि सहज मानवीय भावनाओं और मानव मन को छूने का, प्रकट करने का प्रयास इन उपन्यासों में हुआ है। वह निःसंदेह प्रभावोत्पादक, सामयिक और महत्त्वपूर्ण है ।

आठवें दशक के बाद के उपन्यासों का उपरोक्त बिन्दुओं के अन्तर्गत विवेचन किया गया। वरिष्ठ पीढ़ी के उपन्यासकारों में से भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा, विष्णु प्रभाकर और राम दरशमिश्र आदि नवें दशक के पूर्व से ही उपन्यास लेखन में सक्रिय रहे हैं और उसी सक्रियता के साथ नवें दशक में प्रवेश किया है। अमृतलाल नागर, देवेन्द्र सत्यार्थी और जैनेन्द जैसे वरिष्ठ साहित्यकार नवें दशक के शुरुआती वक्त में अपने जीवन की अवसान बेला में थे, मगर उनका लेखन कर्म अनवरत् जारी रहा। इस कारण नवें दशक में भी इन उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास दिए। इनमें *जैनेन्द्र कुमार* का उपन्यास *दशार्क, अमृतलाल नागर* के उपन्यास *पीढ़ियाँ* और *करवट* तथा *देवेन्द्र सत्यार्थी* का उपन्यास *तेरी कसम सतलुज* उल्लेखनीय हैं। आठवें दशक के बाद आए बदलावों को स्पष्ट परिलक्षित नहीं कर पाने और अपनी पीढ़ी के अनुरूप ही इन कृतियों को गढ़ने के कारण प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की अपनी सीमाओं के अधीन रहते हुए इन कृतियों का उल्लेख मात्र किया गया है, जो तर्कसंगत और समीचीन होगा।

सन्दर्भ

1. राजकृष्ण मिश्र : दारुलशफा, आवरण पृष्ठ
2. वही, पृष्ठ 22
3. विभूतिनारायण राय : किस्सा लोकतंत्र, पृ. 107
4. वही, पृ. 106
5. प्रियंवद : परछाईं नाच, पृ. 218
6. विभूतिनारायण राय : तबादला, पृ. 130
7. प्रमोद कुमार तिवारी : डर हमारी जेबों में, आमुख पृष्ठ
8. असगर वजाहत : कैसी आग लगाई, पृ. 272
9. कृष्णा अग्निहोत्री : टपरेवाले, पृ. 41
10. वही, पृ. 103
11. कमल : आखर चौरासी, पृ. 126
12. काशीनाथ सिंह : अपना मोर्चा, पृ. 80
13. कर्मेन्दु शिशिर : बहुत लम्बी राह, पृ. 239
14. क्रान्ति त्रिवेदी : यह हार नहीं, पृ. 165
15. भगवानदास मोरवाल : काला पहाड़, पृ. 78
16. चन्द्रकिशोर जायसवाल : चिरंजीव, पृ. 192
17. मोहनदास नैमिशराय : मुक्तिपर्व, पृ. 75
18. विभूतिनारायण राय : घर, पृ. 56
19. भगवानदास मोरवाल : बाबल तेरा देस में, पृ. 79
20. भगवानदास मोरवाल : काला पहाड़, पृ. 374
21. भीष्म साहनी : नीलू नीलिमा नीलोफर, पृ. 87
22. महीप सिंह : अभी शेष है, पृ. 173
23. कामतानाथ : समुद्र तट पर खुलने वाली खिड़की, पृ. 83
24. वही, पृ. 84
25. जया जादवानी : कुछ न कुछ छूट जाता है, पृ. 08

26. रामदरश मिश्र : थकी हुई सुबह, पृ. 110

27. वही, पृ. 111

28. अमरकांत : सुन्नर पांड़े की पतोह, पृ. 147

29. कर्मेन्दु शिशिर : बहुत लम्बी राह, पृ. 199

30. भगवानदास मोरवाल : बाबल तेरा देस में, पृ. 386

31. वही, पृ. 387

32. देवेन्द्र उपाध्याय : ऑखर, पृ. 94

33. वही, पृ. 95

34. राजेन्द्र मोहन भटनागर : अन्तिम सत्याग्रही, पृ. 83

35. कमल : आखर चौरासी, पृ. 75

36. वीरेन्द्र जैन : शब्द वध, पृ. 146

37. रोहिणी अग्रवाल : इतिवृत्त की संरचना और संरूप, पृ. 47

अध्याय : षष्ठ

कथ्यात्मक चिंतन और समय के सत्य के बीच सम्बन्धों के आधार

कथ्यात्मक चिन्तन और समय के सत्य के बीच सम्बन्धों के आधार

पूर्ववर्ती अध्यायों में आठवें दशक के बाद के हिन्दी उपन्यासों और कहानियों के कथ्यात्मक चिन्तन के सन्दर्भ में व्यक्ति, समाज, व्यवस्था के अंग, धर्म, संस्कृति और इतिहास सहित विविध पक्षों का व्यापक विश्लेषण किया गया। आठवें दशक के बाद के हिन्दी कथा-साहित्य में आए बदलाव भी उभरकर सामने आए। हिन्दी कथा-साहित्य की समय के सत्य के साथ निकटता इस बदलाव का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। वर्तमान को, समय के सत्य को और यथार्थ को समग्रता के साथ प्रस्तुत करने के कारण ही हिन्दी कथा-साहित्य को समय और समाज का दस्तावेज कहा जाता है। प्रस्तुत अध्याय में आठवें दशक के बाद के हिन्दी कथा-साहित्य के कथ्यात्मक चिन्तन को समय के सत्य के आलोक में जाँचने-परखने का प्रयास किया जाएगा। इससे पूर्व समय के सत्य के सन्दर्भ में आवश्यक चर्चा कर लेना यहाँ पर उपयुक्त और समीचीन होगा।

समय का सत्य :-

मानव सभ्यता के विकास के साथ ही विकसित हुई सामाजिक अन्तःक्रियाएँ, मानवीय व मानवेतर सम्बन्ध, शिक्षा, धर्म, संस्कृति, दर्शन, राजनीति, व्यवस्था-तंत्र, मानसिकता, व्यवहार, जीवन-स्तर, रहन-सहन, सहित इनसे जुड़े विविध परिवेश किसी काल विशेष में अपने समग्र रूप में समय का सत्य कहे जाते हैं। किसी कालखण्ड के यथार्थ को, समय के सत्य को जानने-परखने के लिए इन्ही पहलुओं को देखा जाता है। कालचक्र की गति को प्रभावित करने और बदलाव की सतत प्रक्रिया को चलाते रहने में यह कारक अपना प्रमुख योगदान देते हैं, दूसरी ओर समय के बदलाव के साथ ही व्यवस्था-तंत्र, धर्म, शिक्षा, संस्कृति, जीवन, रहन-सहन, मानसिकता, व्यवहार और समाज में परिवर्तन होता जाता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि समय का सत्य मानव जीवन के समग्र परिवेश का यथार्थ होता है, जो कालखण्ड विशेष में प्रमुखता के साथ प्रकट होता है। इस समय के सत्य को, वर्तमान के यथार्थ को जब साहित्य द्वारा अंगीकार कर लिया जाता है तब वह साहित्य भी 'समय का दस्तावेज' कहा जाने लगता है। साहित्य की सार्थकता भी इसी में निहित होती है।

इस मायने में आठवें दशक के बाद का हिन्दी कथा-साहित्य अपने पूर्ववर्ती युग के हिन्दी कथा-साहित्य से कहीं आगे दिखाई पड़ता है। कपोल-कल्पित बातों और आत्ममुग्धता की स्थितियों से परे आठवें दशक के बाद के कथाकारों ने समय के सत्य को, अपने वर्तमान के

यथार्थ को गहनता से प्रकट किया है और अपनी कृतियों को यथार्थ का जीवन्त दस्तावेज बना देने का भगीरथ प्रयास किया है। ऐसी कृतियों में कथ्यात्मक चिंतन और समय के सत्य के बीच सम्बन्धों को निम्न बिन्दुओं के आधार पर जानना-समझना होगा :-

(क) राजनीतिक

(ख) आर्थिक

(ग) धार्मिक एवं सांस्कृतिक

(घ) सामाजिक

(ङ) स्त्री-पुरुष सम्बन्ध

(च) व्यवस्था - विरोध

(छ) बदलती मानसिकता

(ज) लिंगभेद एवं स्त्रियों के अधिकार

(झ) विविध अन्य

(क) राजनीतिक :-

आठवें दशक के उत्तरार्द्ध से लेकर नवें दशक के पूर्वार्द्ध तक का कालखण्ड भारतीय राजनीति में उथल-पुथल से भरा रहा। इस उथल-पुथल और बदलाव ने भारतीय राजनीति का स्थाई स्वभाव गढ़ दिया। सन् 1975 में इन्दिरा गाँधी की सरकार द्वारा लगाया गया आपात्काल, नेहरू-शास्त्री युग के साथ ही इन्दिरा और कांग्रेस के युग की समाप्ति, केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार का आगमन और आपसी झगड़ों, अराजकता व अनुशासनहीनता के कारण पाँच वर्ष पूर्ण किये बगैर सन् 1979 में ही जनता पार्टी की सरकार का पतन, सन् 1980 में मध्यावधि चुनावों में कांग्रेस की वापसी, अक्टूबर 1984 में इन्दिरा गाँधी की हत्या और इसके बाद भड़के राष्ट्रव्यापी दंगों की घटनाओं के साथ ही राजनीतिक अवसरवादिता, दलबदल और घोटालों जैसे कारनामों ने राजनीति के उच्च आदर्शों को तिरोहित कर दिया, साथ ही राजनीति के ऐसे चरित्र का निर्माण कर दिया जिसमें भ्रष्टाचार, अपराध, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, स्वार्थ और अवसरवादिता खुलकर प्रकट होने लगी। आगे आने वाली पीढ़ी के नेताओं ने इस चरित्र को न केवल बरकरार रखा वरन् गहनता और स्थायित्व भी प्रदान कर दिया।

सन् 1990 में मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू करने का राजनीतिक फैसला और सन् 1992 में बाबरी मस्जिद का विध्वंस जैसी बड़ी राजनीतिक घटनाओं ने जाति और धर्म पर केन्द्रित राजनीति को बढ़ावा दिया। तमाम स्वयंभू नेताओं के साथ ही क्षेत्रीय दलों के उदय ने राजनीति के स्वरूप को ही बदल दिया। इसके फलस्वरूप राजनीतिक अस्थिरता, राजनीति का अपराधीकरण, घोटाले, भ्रष्टाचार, चुनावी हनक और तामझाम में धन की बर्बादी, परिवारवाद और नैतिकता के पतन जैसी बड़ी समस्याएँ बलवती हो गईं। संविधान के तिहत्तरवें संशोधन विधेयक, 1992 द्वारा लागू की गई 'पंचायत राज प्रणाली' ने गाँवों में भी राजनीति का विष वमन कर दिया लिहाजा गाँवों में भी स्थितियाँ बिगड़ने लगीं। आज के गाँवों में भी राजनीति का वही चरित्र दिखाई देता है जो राष्ट्रीय स्तर पर समूची राजनीति का है।

आठवें दशक के बाद के कथा-साहित्य में राजनीति का यह स्वरूप समग्रता के साथ उजागर होता है। रवीन्द्र वर्मा के उपन्यास 'जवाहर नगर' में आपात्कालीन स्थितियों को उजागर किया गया है। शरत् कुमार का उपन्यास 'लाल कोठी अलविदा' देश के स्वाधीनता आन्दोलन से लेकर वर्तमान तक की कथा कहते हुए वर्तमान में नेहरू के समाजवाद, राजनीतिक नैतिकता व आदर्श और कांग्रेस के पतन को प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार *डॉ. महीप सिंह* के उपन्यास *अभी शेष है, मंजूर एहतेशाम* के उपन्यास *बशारत मंजिल; कमलेश्वर* के उपन्यास *सुबह... दोपहर... शाम..., रेगिस्तान; असगर वजाहत* के उपन्यास *कैसी आग लगाई; गोविन्द मिश्र* के उपन्यास *कोहरे में कैद रंग* और *देवेन्द्र उपाध्याय* के उपन्यास *आँखर* में कथा अतीत से चलते हुए वर्तमान तक आती है और राजनीतिक चरित्र में आए बदलाव को प्रकट करती है। *राजेन्द्र मोहन भटनागर* के उपन्यास *अंतिम सत्याग्रही* का मुख्य पात्र भील नगारा आज के दौर का ही अंतिम सत्याग्रही प्रतीत होता है, जिसने अंग्रेजों से तो लड़ाई जीत ली लेकिन अपने सिद्धान्तों व आदर्शों से समझौता नहीं कर पाने के कारण आजाद देश में 'अपनों' के हाथों ही मार डाला जाता है।

हिमांशु जोशी की कहानी *समुद्र और सूर्य के बीच; विष्णु नागर* की कहानी *जंगल में डेमोक्रेसी; राजेन्द्र मोहन भटनागर* की कहानियों *चाणक्य की हार, उत्तराधिकारी की तलाश' अरुण प्रकाश* की कहानी *छाया युद्ध* सहित *राजकृष्ण मिश्र* के उपन्यास *दारुलशफा; मुद्राराक्षस* के उपन्यास *प्रपंचतंत्र; विभूतिनारायण राय* के उपन्यास *किस्सा*

लोकतंत्र, *तबादला*; *प्रमोद कुमार तिवारी* के उपन्यास *डर हमारी जेबों में*; *स्वयं प्रकाश* के उपन्यास *बीच में विनय*; *रमाकांत* के उपन्यास *जुलूस वाला आदमी* और *कमल* के उपन्यास *आखर चौरासी* आदि उपन्यास व कहानियों में वर्तमान राजनीति के समूचे चरित्र को उघाड़कर रख दिया गया है, जिसमें राजनीतिक उठा-पटक, दाँव पेच, घूसखोरी, अवसरवादिता, आपराधिक संलग्नता और भाई-भतीजावाद में आकण्ठ डूबे नेतागण हैं और दूसरी ओर शोषण, अभावग्रस्तता व उपेक्षा में जीती आम जनता है। वर्तमान राजनीतिक नेतृत्व का भी कमोबेश यही चरित्र है और देश की बहुसंख्य जनता भी इन विद्रूपताओं, विकृतियों के बीच जीने को मजबूर है। यहाँ पर नानी पालखीवाला का यह कथन उल्लेखनीय है- "जन-जीवन का स्तर जितना गिर चुका है, वह अपने आप में एक सर्वकालीन (अप) कीर्तिमान (रिकार्ड) है। हमारे यहाँ लोकतंत्र तो है पर उसमें योग्यता का अकाल है। चाहे मंत्रि-पद हो या अन्य कोई पद, किसी भी उच्च सार्वजनिक पद के लिए अज्ञानता, अदक्षता और असत्यनिष्ठा बाधक नहीं रह गयी है। यदि सत्तारूढ़ और सत्तो से अलग विभिन्न राजनेताओं के विरुद्ध आरोपों की जाँच करानी पड़े तो भारत को अगणित लोकपालों की आवश्यकता पड़ेगी।"[1]

राजनीति के आदर्श, नैतिकता, शुचिता और जनसेवा के बजाय नेतृवर्ग में स्वार्थलिप्सा और भ्रष्टाचार मुखर हो गया है। *विभूतिनारायण राय* के उपन्यास *तबादला* में अधिकारियों के तबादले और लाइसेन्स वितरण की नीति के विधिवत उद्योग में बदल जाने की स्थिति प्रकट होती है।चर्चित राजनीतिक विश्लेषक प्रमोद कुमार अग्रवाल का मत है कि "उत्तर प्रदेश में अधिकारियों का स्थानान्तरण और तैनाती भ्रष्टाचार का मुख्य कारण है।"[2] *श्रवण कुमार गोस्वामी* के उपन्यास *राहु केतु* में सरकारी संस्थानों में नेताओं के हस्तक्षेप के कारण पनपते भ्रष्टाचार तथा अधिकारियों-नेताओं की साठगाँठ से खण्डित लोकतांत्रिक मर्यादाओं का बेबाक चित्रण किया गया है। कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यास 'टपरेवाले' में निम्न वर्ग की आम जनता है, जिसे चुनाव के समय नेताओं द्वारा धन, शराब और कपड़े दिये जाते हैं, किन्तु चुनाव जीत जाने के बाद यही नेतागण जनता का हित करने के बजाय अपने हाल पर जीने के लिए छोड़ देते हैं।

मुद्राराक्षस की कहानी *यूसुफ मियाँ की मृत्यु और प्रधानमंत्री का पानी* में सब्जी विक्रेता युसूफ मियाँ देश की अभावग्रस्त, निरीह, गरीब जनता का प्रतिनिधि है जो नेताओं द्वारा

किए जा रहे लाखों रुपये के बंदरबाँट को देखने और अभाव में घुटकर मरने को मजबूर है। *श्रीलाल शुक्ल* की कहानी *चंद अखबारी घटनाएँ* में भी यही स्थितियाँ प्रकट होती हैं, मगर यहाँ प्रशासनिक अधिकारी भी नेताओं के साथ दिखाई देते हैं। प्रियंवद के उपन्यास *परछाई नाच* में बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ ने केवल नेताओं के साथ हैं वरन् इन कम्पनियों ने समूची राजनीतिक व्यवस्था को अपने अनुकूल बना रखा है। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में विश्व व्यापारीकरण और भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया ने जितनी तेजी के साथ देश में पैर पसारे उतनी ही गति से समूची स्थितियाँ बदलती चली गई। भ्रष्टाचार और स्वार्थलिप्सा की गिरफ्त में पहले से ही फँसे नेताओं के लिए इन कम्पनियों ने व देश में फैलते विश्व बाजारीकरण के प्रभाव ने अर्थार्जन के नए रास्ते सुगम कर दिए। इसके परिणामस्वरूप जनता के हितों पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हित भारी पड़ने लगे। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को लाभ पहुँचाने के नाम पर मिलने वाले धन ने भ्रष्टाचार का एक और मार्ग सुगम कर दिया। सीएसडी, दिल्ली के सीनियर फेलो शिव विश्वनाथ राजनीतिक भ्रष्टाचार की पूरी संरचना को प्रकट करते हुए लिखते हैं कि "भ्रष्टाचार वह तर्क बन गया है जिस पर राज्यतंत्र की इमारत खड़ी है। इसके चार स्तम्भ हैं- दलाल या बिचौलिया, बाबू, पुलिस व विधायक या सांसद। बिचौलिया नौकरशाही का प्रवेश द्वार बन जाता है। बाबू की सूचनाओं पर पकड़ होती है। पुलिस हिंसा को पैसे में तब्दील करती है। हफ़्ता वसूली, कर वसूलने जैसा गरिमामय बन जाता है। रिश्वत नागरिक का पहला कर्म बन जाती है। इस तरह लोकतंत्र भ्रष्टाचार की वितरण प्रणाली हो जाता है।"[3] हवाला काण्ड, पेट्रोल पम्प एवं रसोई गैस काण्ड, बिहार चारा घोटाला, दिल्ली में मकान एवं दुकान वितरण घोटाला, तमिलनाडु में जयललिता काण्ड, लक्खूभाई पाठक धोखाधड़ी काण्ड, बोफोर्स तोप घोटाला, सांसदों द्वारा रिश्वत लेकर संसद में प्रश्न पूछे जाने की घटना जैसे तमाम उदाहरण राजनीति में गहराई तक पैठ बना चुके भ्रष्टाचार को उजागर करने के लिए पर्याप्त हैं। राजनीति में बढ़ते धन के वर्चस्व ने चुनाव को महँगा बना दिया है साथ ही लोकतंत्र को उसके मूल उद्देश्य से, जनता से दूर कर दिया। दूसरी ओर राजनेताओं ने राजनीति को सत्ता सुख भोगने और अर्थार्जन करने का माध्मय बना लिया। लोकसभा के पूर्व अध्यक्ष रवि राय इस सन्दर्भ में लिखते हैं कि "देश के राजनेताओं ने जितना धन अर्जन किया है उसका अहसास अभी भी देश की जनता को ठीक से नहीं है। इसका अंदाजा तो वही लगा सकता है जो सक्रिय राजनीति में हो या रहा हो और जिसने देश भर में सघन

यात्राएँ की हों। मेरा अनुमान है कि देश में जो पूर्व प्रधानमंत्री, पूर्व मुख्यमंत्री या पूर्व केन्द्रीय मंत्री हैं उनमें से अधिकांश की सम्पत्ति 2000 से लेकर 5000 करोड़ रुपये तक है। कुछ अपवादस्वरूप ऐसे जरूर हैं जिनके पास पर्याप्त सम्पत्ति नहीं है, फिर भी राजनीति में आने के पूर्व जो उनकी माली हालत थी और आज जो उनकी हालत है उसमें जमीन-आसमान का फर्क है।''[4]

राजनेताओं द्वारा जनता की गाढ़ी कमाई में लगाई जा रही सेंध, रिश्वतखोरी और आर्थिक शोषण के साथ ही शारीरिक शोषण का चक्र भी निरन्तर चलाये रखा जाता है। इस शोषण का शिकार मुख्य रूप से सामाजिक तौर पर कमजोर, अशिक्षित, गरीब, श्रमिक और बेसहारा लोग होते हैं। *विश्वमोहन* की कहानी *गहरे नाले का काम चल रहा है* और *उर्मिला शिरीष* की कहानी *किसका चेहरा* में राजनीतिक स्वार्थ सिद्धि के लिए गरीब, निरीह और निचले तबके के लोगों का नेताओं द्वारा किये गए शोषण और काम निकल जाने के बाद दुत्कार दिए जाने की स्थितियों का चित्रण किया गया है।

वीरेन्द्र जैन के उपन्यास *डूब* सोहन शर्मा के उपन्यास *समरवंशी* और *नासिरा शर्मा* के उपन्यास *कुइयाँजान* में देश के राजनीतिक नेतृत्व द्वारा लिये गए गलत निर्णयों और विकास के नाम पर असहाय, गरीब व निचले तबके के लोगों का शोषण करने की साजिश का खुलासा होता है। देश का विकास किया जाना उचित और आवश्यक है, किन्तु आम जनता की जिन्दगी के बदले में थोपा गया ऐसा विकास भला सार्थक हो सकता है? राजनीतिक नेतृत्व एक ओर विशाल परियोजनाओं का शिलान्यास कर रहा है और दूसरी ओर इन्ही परियोजनाओं के कारण लाखों लोग अपनी जमीन, अपने घर से बेघर हो रहे हैं, भुखमरी और बेकारी की जिन्दगी बिताने के लिए मजबूर हो रहे हैं। इन परियोजनाओं से पूँजीपतियों की, दलालों, नेताओं और अफसरों की जेबें भर रही हैं। गरीब, निरीह जनता जहाँ-की-तहाँ है। सरदार सरोवर बाँध परियोजना, टिहरी बाँध परियोजना और नदी गठजोड़ परियोजना जैसी बड़ी राष्ट्रीय परियोजनाओं सहित तमाम छोटी-छोटी परियोजनाओं के जरिए देश के नेता भले ही विकास की बेहतरीन तस्वीर पेश कर दें, लेकिन इन परियोजनाओं से बेघर हुए, तबाह हुए लाखों लोगों की दुर्दशा इन परियोजनाओं की असलियत के साथ ही देश के राजनीतिक नेतृत्व की शोषक मानसिकता और संवेदनहीनता को भी उजागर कर देती है।

संजीव के उपन्यास *जंगल जहाँ शुरू होता है; विद्यासागर नौटियाल* के उपन्यास *झुण्ड से बिछड़ा* और *कर्मेन्दु शिशिर* के उपन्यास *बहुत लम्बी राह* में ग्रामीण राजनीति के विद्रूपों को उजागर किया गया है। समय के बदलाव के साथ गाँवों की सामन्तवादी व्यवस्था ने अपना चेहरा बदल लिया है। गाँव का प्रभुत्वशाली, शक्ति सम्पन्न, धनवान और जमींदार तबका आज भी सीधे-सादे, निरीह, गरीब और निचले वर्ग के ग्रामीणों का शोषण कर रहा है, उसने सामन्तशाही को राजनीति और नेतागिरी का लबादा पहना दिया है। गाँवों में लागू हुई पंचायत राज प्रणाली ने इस कार्य में पूरा योगदान दिया है। शहरों में अधिकारी हैं, प्रशासन है तो गाँवों में लेखपाल, सींचपाल, पंचायतकर्मी और स्वास्थ्यकर्मी हैं। शहरों में पुलिस और राजनीतिक संरक्षण प्राप्त गुण्डे हैं तो गाँवों में डकैत हैं। डकैत, कर्मचारी और ग्राम स्तरीय नेता गठबंधन बनाए हुए हैं, ग्रामीणों के शोषण से अपने विविध स्वार्थों की पूर्ति हेतु। इनके दलदल में ग्रामीण पिस रहे हैं। गाँवों की तहजीब, आपसी भाईचारा, सद्भावना और प्राकृतिक-सांस्कृतिक सम्पदा नष्ट हो रही है।

विष्णु नागर की कहानी *जंगल में डेमोक्रेसी, हेतु भारद्वाज* की कहानी *भुवन बिहारी की जीत* और *विभूतिनारायण राय* का उपन्यास *किस्सा लोकतंत्र* आदि उपन्यास और कहानियों में राजनीतिक अपराधीकरण की समस्या को प्रकट किया गया है। चुनावी वैतरणी को पार करने के लिए, अपने प्रतिद्वन्द्वी को परास्त करने के लिए, राजनीति में अपनी हनक बनाए रखने के लिए और व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध करने के लिए नेताओं द्वारा अपराधियों को सरंक्षण दिया जाता है, उनका उपयोग किया जाता है। कालान्तर में यही अपराधी राजनीति की चकाचौंध से प्रभावित होकर तथा कानून से बचने के लिए खुद भी राजनीति में सक्रिय हो जाते हैं। राजनीति का अपराधीकरण और अपराध का राजनीतिकरण इसी की देन है। आज कोई भी राजनीतिक पार्टी ऐसी नहीं है, जिसमें आपराधिक गतिविधियों में संलग्न रहे लोगों का वर्चस्व न हो। ऐसे अपराधी चुनाव भी लड़ते हैं और अपनी ताकत के बल पर आम आदमी को डरा-धमकाकर चुनाव जीत लेते हैं। आज संसद और विधान मण्डलों में कई ऐसे जन प्रतिनिधि बैठे हुए हैं, जिन्हें वास्तव में सलाखों के पीछे होना चाहिए था। राजनीति के साथ ही कानून व्यवस्था पर टिप्पणी करते हुए प्रेमलता लिखती हैं कि "हमारी कानून व्यवस्था के कुछ बड़े ही रोचक पक्ष हैं- कानून तोड़कर उसे स्वीकार करने वालों को राजकीय सम्मान दिया जाता है। एक डकैत

हजार हत्याओं के बाद आत्मसमर्पण करता है तो उसके गले में फूलमालाएँ डाली जाती हैं, उसके सम्मान में समारोह होते हैं और कुछ समय में ही उन्हें एम. पी. का टिकट मिल जाता है। उसकी ख्याति को राजनीतिज्ञ भुनाते हैं।"[5] आखिर कानून भी तो संसद और विधानमण्डलों में बैठने वाले वही नेता बनाते हैं जो अपराधियों और डकैतों को परोक्ष रूप से संरक्षण देते हैं, उनसे व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध करते हैं, लाभ कमाते हैं। राजनीति का मैदान अपराधियों और माफियाओं के लिए खुला हुआ है। दूसरी तरफ राष्ट्रीय स्तर से लगाकर जनपद स्तर तक हर जगह राजनीति तंत्र में माफिया व अपराधी घुसे हुए हैं और ठेका, रिश्वत, पार्टी डोनेशन व चुनावी चंदे के नाम पर माफिया, अपराधी और राजनेता सभी लाभ कमा रहे हैं, अपनी जेबें गर्म कर रहे हैं।

राजनीति में धन के वर्चस्व और बढ़ते भ्रष्टाचार के साथ ही धर्म और जाति के राजनीति पर हावी हो जाने के बाद देश की राजनीतिक स्थिति और अधिक बिगड़ गई। 1984 के सिख विरोधी दंगों, 7 अगस्त 1990 को तत्कालीन वी0 पी0 सिंह सरकार द्वारा लागू की गई मण्डल आयोग की सिफारिशों और 6 दिसम्बर 1992 को बाबरी मस्जिद के विध्वंस ने देश की राजनीति को जाति और धर्म पर केन्द्रित कर दिया। तमाम क्षेत्रीय दलों के उदय तथा विभिन्न धर्मों व जातियों के स्वयंभू नेताओं की उत्पत्ति के साथ ही तुष्टीकरण, अलगाव, हिंसा और भयादोहन की राजनीति की शुरुआत हो गई। राष्ट्रीय स्तर से चलते हुए यह क्रम ग्रामीण राजनीति तक आ गया और धर्म व जाति के नाम पर राजनीति की रोटियाँ सेंकना समूची राजनीति का स्वभाव ही बन गया। *ए. असफल* की कहानी *विश्वासमत, नीरजा माधव* की कहानी *कतरनों वाली फाइल, कविता* की कहानी *फिर आएँगे कबूतर* के साथ ही *कमल* के उपन्यास *आखर चौरासी, कमलेश्वर* के उपन्यास *कितने पाकिस्तान, विभूतिनारायण राय* के उपन्यास *शहर में कर्फ्यू, भगवानदास मोरवाल* के उपन्यासों *काला पहाड़* व *बाबल तेरा देश में* और *चन्द्रकिशोर जायसवाल* के उपन्यास *शीर्षक* में राजनीतिक नेतृत्व द्वारा धर्म व जाति के नाम पर विखण्डित किये गए समाज को, व्यक्तिगत और चुनावी लाभ के लिए भड़काए गए दंगों को तथा इन स्थितियों के कारण दुष्कर हो गए आम आदमी के जीवन की दयनीय दशाओं को समग्रता के साथ प्रकट किया गया है। जातीयता, क्षेत्रीयता, साम्प्रदायिकता, धर्मनिरक्षेपता और पंथनिरपेक्षता जैसे राजनीतिक शिगूफों के बीच निरन्तर लुटते-पिटते रहने और आहत होने के साथ ही स्थितियों के सुधरने की उम्मीद जगाए हुए जीते रहना ही आज के दौर

में आम आदमी की नियति बन गई है। दूसरी ओर देश का राजनीतिक नेतृवर्ग इन स्थितियों को बरकरार रखना चाहता है, इस कारण 2002 के गोधरा (गुजरात) जैसे दंगों और 2006 के आरक्षण विरोधी आन्दोलनों के माध्यम से साम्प्रदायिकता और जातीयता के वीभत्स रूप की पुनरावृत्ति होती रहती है। तुष्टीकरण के माध्यम से 'वोट बैंक' बढ़ाने की मानसिकता भी इन दिनों अपने चरम पर है।

राजनीति की चकाचौंध और सुख-सुविधा भरी दुनिया अंदर से भले ही विकृत और विद्रूप हो मगर बाहर से सदैव आकर्षण का केन्द्र रही है। इस कारण युवा एवं महिलाएँ राजनीति के क्षेत्र में अपना 'कैरियर' बनाने के लिए आकर्षित होते हैं। राजनीति के क्षेत्र में अपना पैर जमाने के लिए इन युवाओं और महिलाओं को न केवल संघर्ष करना पड़ता है वरन् शोषण का शिकार भी होना पड़ता है। इनमें सर्वाधिक शोषण का शिकार महिलाएँ ही होती हैं। *राजकृष्ण मिश्र* के उपन्यास *दारुलशफा, क्रान्ति त्रिवेदी* के उपन्यास *यह हार नहीं, दयानंद पाण्डेय* की कहानी *देह दंश* और *राजेन्द्र मोहन भटनागर* की कहानियों *उत्तराधिकारी की तलाश* व *एक दूसरी जिन्दगी के लिए* में राजनीति के क्षेत्र में उतरी महिलाओं के शोषण और उनकी बदहाल जिन्दगी को उजागर किया गया है। *विश्वमोहन* की कहानी *मंत्री की बेटी, धर्मेन्द्र देव* की कहानी *गुल्लू बाबू जिन्दाबाद, राजाराम सिंह* की कहानी *विवर्ण* और *विभांशु दिव्याल* की कहानी *तंत्र* में उन महिलाओं की दयनीय दशा को उजागर किया गया है जो किसी भी प्रकार से राजनीति और नेताओं के सम्पर्क में आईं और शारीरिक शोषण का शिकार होकर बदतर जिंदगी जीने को मजबूर हो गईं, मर गईं या फिर मार डाली गईं। 02 जुलाई 1995 को नैना साहनी की हत्या, 09 मई 2003 को मधुमिता शुक्ला की हत्या और इसी प्रकार सरला मिश्रा की हत्या जैसी बहुचर्चित घटनाएँ राजनीति के क्षेत्र से जुड़ी महिलाओं की दयनीयता को उजागर करती हैं। इसके साथ 07 मई 1983 को पटना में बॉबी त्रिवेदी की हत्या, पटना में ही राजद नेता गौतम और उसकी प्रेमिका की सामूहिक हत्या, आई.ए.एस. अधिकारी विश्वास की पत्नी चंपा विश्वास के साथ बलात्कार जैसी तमाम छोटी-बड़ी घटनाएँ राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं के दैहिक शोषण को व्यक्त करती हैं और अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा व आर्थिक सम्पन्नता को पाने की चाहत में सब कुछ दाँव पर लगा देने वाली महिलाओं की नियति को भी प्रकट करती हैं। इस संदर्भ में मनोज मेहता लिखते हैं कि "सिर्फ बिहार और उत्तर प्रदेश में ही नहीं बल्कि

महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और दिल्ली में ऐसे कई मामले हैं जो सत्ता की सीढ़ी पर तेजी से चढ़ने की चाहत में लड़खड़ाकर गिर गयी औरतों और राजनेताओं के आपसी रिश्तों को उजागर करते हैं। लगभग एक दशक पूर्व जलकर मरी होशंगाबाद की सरला मिश्रा से संबंध रखने वाले कांग्रेसी नेताओं और वी.आई.पी. लोगों के नाम पर चढ़ा रहस्य का परदा आज तक बरकरार है। उसने आत्महत्या की या हत्या इस बात का पता आज तक नहीं चल पाया।''[6] श्री मेहता समूचे राजनीतिक परिवेश में पनपी इस प्रवृत्ति का विश्लेषण करते हुए अंत में लिखते हैं कि ''ये कुछ ऐसे मामले हैं जो देश और प्रदेश की राजधानियों में घटित हुए और जिन पर मीडिया और जनता की नजर पड़ी और वे सबके सामने आये किंतु देश के हर जिले और ब्लाक में सत्ता का एक केंद्र है जहाँ घटने वाली इस तरह की घटनाएँ उभरकर सामने नहीं आ पातीं। आखिर महाराष्ट्र के जलगाँव सेक्स काण्ड की याद आज कितने लोगों को है?''[7] इसी प्रकार युवकों की क्षमता और शक्ति का उपयोग किया जाता है और लाभ लेने के समय युवाओं को पिछले पायदान में ढकेल दिया जाता है। वर्तमान राजनीति में युवाओं का प्रतिशत अब भी पर्याप्त नहीं है। अपनी उपेक्षा के कारण देश का युवा वर्ग राजनीति के प्रति पहले की अपेक्षा अब उदासीन हो गया है। *दिनेश पालीवाल* की कहानी *कार्यकर्ता* और *अखिलेश* की कहानी *ऊसर* में राजनीति की चकाचौंध के कारण आकृष्ट हुए युवाओं के शोषण की दयनीय व्यथा-कथा है।

राजनीति में बढ़ते भ्रष्टाचार, परिवारवाद, अपराध, युवाओं और महिलाओं के साथ ही आम जनता के शोषण, राजनीति के अपराधीकरण, छल-प्रपंच और स्वार्थी मानसिकता के खिलाफ राजनीति से ही जुड़े रहे तमाम सिद्धान्तवादी और आदर्शवादी राजनेता संघर्ष करते रहे, अपना विरोध व्यक्त करते रहे लेकिन उनकी आवाज नक्कारखाने में तूती बनकर ही रह गई। इधर कुछ वर्षों से आम जनता द्वारा राजनीति की विद्रूपता के खिलाफ उठाए गए प्रतिरोधक और विरोधी स्वर मुखर होने लगे हैं। भले ही ऐसे प्रयास असंगठित हों, मगर इनका दूरगामी प्रभाव है। न्यायपालिका द्वारा विभिन्न मामलों में दिये गये प्रभावकारी फैसलों और दोषी राजनेताओं को दी गई सजा के निर्णयों ने भी राजनीति की निरंकुशता पर लगाम लगाने का प्रयास किया है। *असगर वजाहत* के उपन्यास *कैसी आग लगाई*, *काशीनाथ सिंह* के उपन्यास *अपना मोर्चा*, *विद्यावती दुबे* के उपन्यास *शेफाली के फूल* सहित *स्वयं प्रकाश* की कहानी *सम्मान*, *सतीश जमाली* की कहानी *अर्थतंत्र*, *यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'* की कहानी *अहसास* और

विश्वमोहन की कहानी *लोहा लोहे को काटता है* आदि उपन्यास और कहानियों में राजनीति की विकृतियों, विद्रूपताओं, उपेक्षा और शोषण के खिलाफ आम जनता के प्रतिरोधक, विद्रोही स्वर सुनाई देते हैं।

"विधायक का काम जनहितकारी कानून बनाना है, समस्याओं पर सरकार का ध्यान दिलाना और उनका निराकरण कराना है। विधायक निधि से होने वाले कार्य कार्यपालिका के क्षेत्र के हैं। गाँधी जी के तन पर एक लँगोटी हुआ करती थी और डॉ. लोहिया के पास धोती कुरता के सिवा कुछ नहीं था, लेकिन उनके नाम पर राजनीति करने वाले अपनी सुख-सुविधाएँ बढ़ाने में मशगूल हैं।"[8] उत्तर प्रदेश विधानपरिषद के सदस्य सुनील सिंह का यह कथन न केवल विधानमण्डलों के सदस्यों पर वरन् संसद सदस्यों पर भी खरा बैठता है और देश की वर्तमान राजनीति की सच्चाई को भी उजागर करता है। आठवें दशक के बाद राजनीति में आए बदलाव ने गाँधी, नेहरू, और शास्त्री के आदर्शो व सिद्धान्तों को त्याग दिया, समाजवाद भी तिरोहित हो गया और इसके स्थान पर राजनीतिक अवसरवादिता, भ्रष्टाचार, अनैतिकता तथा सिद्धान्तविहीनता ने अपनी पकड़ मजबूत कर ली। धीरे-धीरे धर्म और जाति पर केन्द्रित राजनीति सक्रिय होती गई, क्षेत्रीय दलों और जाति व धर्म पर आधारित राजनीतिक दलों के प्रादुर्भाव ने भयादोहन की राजनीति को बढ़ावा दिया। राजनीति में धन के बढ़ते वर्चस्व ने अपराधियों के प्रवेश ने और नेता-अपराधी व प्रशासन की साठ्गाँठ ने राजनीति का स्थाई स्वरूप गढ़ दिया। महिलाएँ और युवा राजनीति में शोषण का शिकार होने लगे। निरंकुश राजनीति की पराकाष्ठा ने आम जनता के अंदर विद्रोही, प्रतिरोधी तेवर भी पैदा किये। आठवें दशक के बाद के हिन्दी कथा-साहित्य ने राजनीति के इस प्रतिरोधी व विद्रोही तेवर को और बदलाव की नब्ज को न केवल टटोला है वरन् बड़ी बेबाकी के साथ प्रस्तुत किया है। राजनीति का लगभग हर पहलू, प्रत्येक बदलाव इस दौर के कथा-साहित्य की पैनी नजर से बच नहीं पाया है।

(ख) आर्थिक :-

स्वतंत्र भारत की अर्थव्यवस्था के दो पहलू क्रमशः वैदेशिक आर्थिक नीति और घरेलू आर्थिक नीति स्वतंत्रता के तुरंत बाद के समय में भी देश के शीर्ष नेतृत्व की गलत नीतियों की शिकार हुई और आज भी हैं। नब्बे के दशक के शुरूआती वर्षो में देश की आर्थिक स्थिति इतनी खराब हो गई थी कि विदेशों से कर्ज मिलना भी आसान नहीं रह गया था। घरेलू बाजार को

सक्षम किये बगैर आर्थिक उदारीकरण और विश्व व्यापारीकरण की नीतियों को लागू करने के परिणामस्वरूप देश में आर्थिक समृद्धि आने के बजाय कई तरह की समस्याएँ पैदा हो गईं। यहाँ आर.एन. प्रतिमा त्रिपाठी का विचार उल्लेखनीय है- "भारत में विकास के लिए एक विराट सुविधा तंत्र खड़ा करने का श्रेय उन राष्ट्रीय नीतियों को है जो स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात अपनायी गई किन्तु यह भी किसी सीमा तक सच है कि भारत के विकास में मुख्य बाधा हमारे पास स्थिर और खुले राजनीतिक व सामाजिक तंत्र के अभाव की है, जो तेजी से हो रहे नए संरचनात्मक परिवर्तनों को आत्मसात करते हुए रुकावटों को दूर कर सके ताकि समाज में आर्थिक वृद्धि को प्रोत्साहन मिल सके। ताकि समाज में आर्थिक वृद्धि को प्रोत्साहन मिल सके। उपनिवेशवादी कानून और अन्य रुकावटें भी आर्थिक सुधार में बाधा हैं।"[9] देश के राजनीतिक नेतृत्व की क्षीण इच्छाशक्ति, व्यक्तिगत स्वार्थ, अनियोजित आर्थिक विकास की योजनाएँ, समूचे तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार और आर्थिक असमानता को बढ़ावा देने वाली नीतियों के कारण देश को आर्थिक बदहाली का दंश भोगना पड़ रहा है। देश भर के विशेष आर्थिक क्षेत्र कुछ जगहों पर ही सिमटकर रह गए हैं, जिस कारण चुनिंदा शहर और क्षेत्र आर्थिक रूप से सम्पन्न हैं बाकी देश आर्थिक अभावग्रस्तता से जूझ रहा है। इसी प्रकार की आर्थिक असमानता लोगों में है। देश के बीस प्रतिशत लोग उतनी पूँजी पर कब्जा जमाए हुए हैं, जितनी पूँजी में शेष अस्सी प्रतिशत नागरिकों का जीवन-यापन हो रहा है। देश का उच्च वर्ग आज भी पूँजीवादी साम्राज्यशाही को चलाए हुए है और मध्यमवर्ग व निम्नवर्ग गरीबी, बेकारी और जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के अभाव से संघर्ष कर रहा है। देश की अनियोजित आर्थिक विकास नीतियों, आर्थिक विकास के नाम पर लिये गए गलत फैसलों और आर्थिक प्रगति के नाम पर देश के प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की नीतियों का तेज और तीक्ष्ण प्रभाव निम्न मध्यमवर्ग और निम्नवर्ग पर पड़ता है, सीमान्त कृषकों, लघु उद्यमियों, ग्रामीण-कुटीर उद्यमियों तथा श्रमिकों पर पड़ता है। उच्च वर्ग, देश का नेतृवर्ग और कार्यपालिका से जुड़ा तंत्र इन योजनाओं के जरिए मुनाफा कमाने की स्थिति में रहते हैं। *वीरेन्द्र जैन* के उपन्यास *डूब*, *नासिरा शर्मा* के उपन्यास *कुइयाँजान*, *सोहन शर्मा* के उपन्यास *समरवंशी* सहित *महेश कटारे* की कहानी *मुर्दा स्थगित* और *नीरजा माधव* की कहानी *अभी ठहरो अन्धी सदी* आदि उपन्यास और कहानियों में विकास के नाम पर उपजे अन्तर्विरोधों, समस्याओं और देश के नीति नियन्ताओं की गलत आर्थिक नीतियों के फलस्वरूप

उपजी विद्रूपताओं, विकृतियों को उजागर किया गया है। आर्थिक विकास का मानदण्ड बनीं गगनचुम्बी इमारतें, बड़ी परियोजनाएँ, विशालकाय बाँध, नहरें और राजमार्ग ऊपर से भले ही सुन्दर तस्वीर पेश करते हों, देश की प्रगति के सोपान गढ़ते हों, मगर इनके पीछे की असलियत तमाम वेदनाओं से भरी हुई हैं। यह वेदना विस्थापितों की है, बेघर, बेरोजगारों और भूमिहीन हुए लोगों की है। लाखों लोगों को जिल्लत भरी जिन्दगी जीने के लिए मजबूर कर देने वाली इन योजनाओं व नीतियों के सहारे आखिर किस आर्थिक विकास की बात की जा रही है और किसका आर्थिक विकास किया जा रहा है ?

अनियोजित आर्थिक विकास नीतियों के कारण आर्थिक असमानताएँ भी इस दौर में तेजी के साथ और बड़े विद्रूप तरीके से उभकर सामने आई हैं। पूँजीवादी युग का अंत हो जाने के बावजूद आर्थिक असमानता की खाई इतनी चौड़ी है कि एक ओर सुख-साधन, विलासिता और महँगे जलसों में लाखों रुपये बर्बाद कर देने वाले चंद लोग हैं तो दूसरी ओर दो जून की रोटी के लिए जी-भर संघर्ष करने वाले करोड़ों निरीह लोग है मूलभूत सुविधाओं के लिए तरसते आम आदमी हैं, जिन्हें भविष्य तो दूर, अपने वर्तमान तक का पता नहीं है। *अब्दुल बिस्मिल्लाह* के उपन्यास *झीनी-झीनी बीनी चदरिया* में काशी के बुनकरों की कमाई में दलाली करके अपनी आलीशान हवेलियाँ खड़ी करने वालों जैसे मुनाफाखोरों और दलालों की आजकल कोई कमी नहीं है, जो दूसरों की मेहनत पर अपनी जेबें गर्म करते हैं और अपने से कमजोर तबके की मजबूरी व गरीबी का लाभ उठाते हैं। *कुंदन सिंह परिहार* की कहानी *संकट* और विलास गुप्ते की कहानियों *कुत्ता-दर-कुत्ता* व *सिर्फ एक और* में इन्ही स्थितियों के साथ ही आर्थिक असमानता के कारण उपजी स्थितियाँ प्रकट हुई हैं। *वल्लभ सिद्धार्थ* की कहानी *नया कानून* में भी आर्थिक असमानता प्रकट हुई है। एक ओर 'मंत्री' जी के घर में चलने वाला शानदार जलसा है, जहाँ लजीज व्यंजन बने हैं, बेशकीमती सजावट है, पर्दे लगे हैं, दूसरी ओर भूखी और निर्वसन महिला है, जो अपनी जवान होती बेटी का तन ढँकने के लिए पर्दा चुराते हुए पकड़ी जाती है। माँ जेल में सड़कर मर जाती है और बेटी निर्मम पिटाई के कारण मर जाती है क्योंकि नए कानून के मुताबिक भीख माँगना अपराध है। *हृदयेश* की कहानी *नगर गाथा* उन तमाम नगरों के अधकचरे विकास की दुर्दशा को उजागर करती है जहाँ आर्थिक विकास के पर्याप्त संसाधन उपलब्ध नहीं है और विकास की होड़ में त्रिशंकु की स्थिति में फँसे हुए हैं। आर्थिक व राजनीतिक

रूप से महत्त्वपूर्ण नगरों के अतिरिक्त लगभग हर नगर व कस्बा आज इसी स्थिति से जूझ रहा है।

चाहे महानगर हो, नगर या कस्बा हो या फिर आम आदमी हो, आर्थिक असमानता के साथ जुड़ा हुआ भौतिकता का पक्ष आर्थिक असमानता को खुलकर और तीखे रूप में पेश करता है। धनसम्पन्न लोगों की समृद्धि, उनकी फैशनपरस्ती और उनके भौतिक सुख-साधनों को देखकर उन्हें पाने की लालसा धनलोलुपता को बढ़ावा देती है। आज के समय में सादा जीवन जीते हुए उच्च विचारों का पोषण करना बेमानी हो गया है। तमाम आदर्शों और सिद्धान्तों की जगह भौतिकता और धनलोलुपता हावी हो गई है। *रवीन्द्र वर्मा* के उपन्यास *निन्यानबे* एवं *संतोष दीक्षित* की कहानी *कचरे में लिपिस्टिक*; *प्रेमपाल शर्मा* की कहानी *मेड इन इंग्लैण्ड* और *दिनेश पाठक* की कहानी *वह आदमी* में यही मानसिकता उजागर हुई है। *प्रताप दीक्षित* की कहानी *डबल बेड* और *कृष्ण सुकुमार* की कहानी *मदारी* में महँगाई की मार से आहत हुई सहज मानवीय आकाँक्षाओं की दुखद अभिव्यक्ति हुई है।

बढ़ती महँगाई के अनुपात में ही बढ़ती गरीबी घटती खुशियों, टूटते परिवारों और बिखरते लोगों के दयनीय जीवन को *विभूतिनारायण राय* के उपन्यास *घर* में बड़ी बेबाकी के साथ प्रस्तुत किया गया है। *ज्ञान चतुर्वेदी* का उपन्यास *बारामासी*, *शैलेश मटियानी* का उपन्यास *रामकली*; *वल्लभ सिद्धार्थ* की कहानी *इक्कीसवीं शताब्दी की ओर*, *आलमशाह खान* की कहानी *खून खेती*, *हसन जमाल* की कहानी *शर्मगाह* और *से. रा. यात्री* की कहानी *भूख* आदि उपन्यास और कहानियाँ भी उल्लेखनीय हैं, जिनमें गरीबी के विविध पक्षों को, जीवन से जुड़े प्रश्नों को और गरीबी के कारण अपना तन भी बेच देने को मजबूर होने वाले लोगों की व्यथा-कथा का विदग्ध वर्णन किया गया है। तमाम शराबखानों और वेश्यालयों में काम करने वाली महिलाएँ अपनी मर्जी से नहीं, बल्कि गरीबी के कारण मजबूर होकर ही 'घृणित कार्य' करने को मजबूर होती हैं। वर्तमान समय में देश की गरीबी की भयावहता पर चिंता व्यक्त करते हुए स्वतंत्र टिप्पणीकार कुमार विजय लिखते हैं कि "भारत के विकास को सिर्फ लगातार वजनी होते विदेशी मुद्रा भण्डार से नहीं मापा जा सकता है, न ही शेयर बाजार के सूचकांक से। सच तो यह है कि देश में अभी तक ऐसा कोई विकास नहीं हो पाया है जो पुख्ता तौर पर यह बता सके कि जीडीपी, शेयर बाजार सूचकांक या विदेशी मुद्रा भंडार के बढ़ने से गरीबी खत्म हो

जाएगी। विकास के ये सूचकांक सामाजिक जीवन में एक सीमा तक ही असर डालते हैं। यह भी कम निराशा जनक नहीं कि गरीबी अब राजनीतिक दलों की चिंता भी नजर नहीं आती। चुनावों के लिए इसे एक घिसा-पिटा मुद्दा मान लिया गया है। तभी तो राजनीतिक दलों ने समाज की इस विडंबना से किनारा ही कर लिया है।"[10] इस समय भारत के 27 व्यक्ति दुनिया के अरबपतियों की सूची में हैं और भारत के लगभग 27 प्रतिशत लोग आज भी गरीबी की रेखा से नीचे जीते हुए जीवन की मूलभूत आवश्कताओं से वंचित हैं। "देश के चुनिंदा अरबपतियों की आय और देश की औसत प्रतिव्यक्ति आय में लगभग 90 लाख गुना का अंतर है।"[11] योजना आयोग जैसे 'सरकारी प्रतिष्ठान' भले ही विशालकाय इमारतों, परियोजनाओं और लोक लुभावन ऑकड़ों की बाजीगरी दिखाकर गरीबी की विकराल समस्या से मुँह फेर लें, लेकिन असलियत को छिपाया नहीं जा सकता। आठवें दशक के बाद के हिन्दी कथा-साहित्य से भी यह जमीनी हकीकत छिपी नहीं रह सकी है और पूरे वेग के साथ उभरकर सामने आई है।

गरीबी के साथ ही जुड़ा हुआ मुद्दा बेरोजगारी का है। सीधे तौर पर दोनों के बीच अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। सरकारी नौकरियों में होने वाली 'ऊपरी आमदनी' के कारण सरकारी नौकरियों के प्रति आकर्षण बढ़ा है, जबकि इन नौकरियों की उपलब्धता मॉग के सापेक्ष बहुत कम है। दूसरी ओर गैर सरकारी क्षेत्र की नौकरियाँ हैं, जहाँ काम अधिक और 'ऊपरी आमदनी' के अवसर भी कम हैं। इधर कुछ वर्षो से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के देश में पैर पसारने के बाद इन कम्पनियों द्वारा काफी मात्रा में उपलब्ध कराई गई नौकरियाँ देश के लिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का इकलौता सुखद पक्ष है। इस प्रकार नौकरियों की उपलब्धता के बावजूद आज भी देश का बड़ा तबका बेरोजगारी की समस्या से जूझ रहा है। जनसंख्या बढ़ने के साथ बेरोजगारी की समस्या भी बढ़ती ही गई है इस कारण 1993 से 2004 के बीच दस वर्षो के अन्तराल में शहरों में बेरोजगारी का प्रतिशत 6.7 से बढ़कर 8.1 हो गया है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी 5.6 प्रतिशत से बढ़कर 9 प्रतिशत हो गई है। कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसरों की कमी, कम्प्यूटर क्रांति और मशीनीकरण आदि के कारण भी बेरोजगारी बढ़ी है। 'रोजगार गारण्टी योजना' जैसी तमाम सरकारी योजनाएँ अपना सार्थक परिणाम प्रस्तुत करने के बजाय भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने वाले 'पॉलिटिकल स्टंट' बनकर रह गई हैं। रोजगार के खातिर बड़ी संख्या में लोग अपना घर-बार छोड़कर निर्वासित जीवन व्यतीत करने को बाध्य होते हैं। *डॉ0 रामदरश मिश्र*

का उपन्यास *दूसरा घर* इन्हीं निर्वासित लोगों की जिन्दगी में झाँकने का प्रयास करता है। इसी प्रकार *विभूतिनारायण राय* के उपन्यास *घर, डॉ. मनीषा शर्मा* के उपन्यास *ढहते स्वप्नद्वीप, महावीर राजी* की कहानी *शिनाख्त, डॉ. रामदरश मिश्र* की कहानी *रोटी, यादवेन्द्र शर्मा* की कहानी *छेदवाली जेब* और *पुष्पा सक्सेना* की कहानी *उस एक पल के नाम* आदि उपन्यास और कहानियों में बेरोजगारी का दंश झेलते, गरीबी और पेट पालने की मजबूरी में 'घृणित कार्य' करने को बाध्य होने वाले शोषित, निरीह युवाओं का और उनके परिवार वालों का दर्द उजागर हुआ है। *काशीनाथ सिंह* का उपन्यास *अपना मोर्चा* बेकारी और गरीबी को पालने पोसने वाली नीतियों और व्यवस्था के खिलाफ उपजे युवाओं के आक्रोश को व्यक्त करता है।

इस प्रकार आठवें दशक के बाद पैदा हुई आर्थिक समस्याएँ, विकास के नाम पर बनाए जा रहे विशालकाय भवन, परियोजनाएँ, हवाई अड्डे, राजमार्ग, विशेष आर्थिक क्षेत्र और प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के बावजूद देश की आर्थिक समस्याएँ जैसी थी वैसी ही नजर आती हैं। राजनीतिक नेतृत्व द्वारा लिए गए गलत फैसले, विश्व व्यापारीकरण, बाजारवाद और भौतिकता ने इन समस्याओं को अधिक जटिल बना दिया। इन समस्याओं के विविध पक्षों, यथा- आर्थिक असमानता, गरीबी, भ्रष्टाचार, मुनाफाखोरी, धनलोलुपता, महँगाई और विकास के अन्तर्विरोधों को प्रकट करने के कारण ही आठवें दशक के बाद के कई उपन्यास और कहानियाँ बहुचर्चित और प्रभावशाली रही हैं।

(ग) धार्मिक एवं सांस्कृतिक :-

स्वतंत्रता के बाद भारत में आए तमाम बदलावों के साथ ही देश के धार्मिक और सांस्कृतिक परिवेश में भी बदलाव हुए। देश की गंगा-जमुनी तहजीब में तो आजादी मिलने के पहले ही ग्रहण लग गया था इसी के फलस्वरूप देश का विभाजन हुआ था। आगे आने वाले समय में स्थितियाँ सुधरने के बजाय बिगड़ती चली गईं। इन्दिरा गाँधी की हत्या के बाद सन् 1984 में भड़का दंगा बड़ी आसानी से सिख विरोधी दंगे के रूप में पूरे देश में फैल गया। *कमल्* के उपन्यास *आखर चौरासी, अरुण प्रकाश* की कहानी *भैया एक्सप्रेस, हृदयेश* की कहानी *किस पर, सी0दास बांसल* की कहानी *गृहयुद्ध, पंकज बिष्ट* की कहानी *मोहनजोदड़ो* और *नीलकांत* की कहानी *एक रात का मेहमान* में सिख विरोधी दंगों की भयावहता का, इन

दंगों के फलस्वरूप पाशविक तरीके से मार डाले गए लोगों का और दंगों के कारण प्रभावित हुए तमाम परिवारों का दर्द बड़ी विदग्धता के साथ प्रस्तुत किया गया है। इन दंगों में ऐसे लोग भी शामिल रहे हैं, जिन्होंने दंगे भड़काकर व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध किये हैं। मानव और मानवता के विरोधी तत्त्वों की भी हिन्दी कथा-साहित्य में जमकर खबर ली गई है। भीष्म साहनी की कहानी 'नौसिखुआ' यही उजागर करती है। इस कहानी में पंजाबी आतंकवादियों द्वारा नवयुवकों को आतंकवादी बनने और अपराध करने के लिए प्रेरित किए जाने की दूषित मानसिकता उजागर होती है। अकालीदलों की गुटबाजी और राजनीतिक दलों की क्षुद्र राजनीति के चलते पंजाब में लम्बे अर्से से दबी पड़ी पृथक खालिस्तान की माँग और भिंडरावाला को समर्थन जैसे भड़कीले मुद्दों को आज भी हवा दी जाती है।

यह देश का दुर्भाग्य है कि राष्ट्रीय विकास और अर्थव्यवस्था की प्रगति में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाले दो राज्य- पंजाब और गुजरात साम्प्रदायिक हिंसा व दंगों के सबसे अधिक शिकार हुए हैं। देश की आजादी के बाद कृषि व उद्योग-धंधों के क्षेत्र में द्रुत गति से प्रगति करने वाला पंजाब सन् चौरासी के दंगों के बाद प्रगति के उन सोपानों को नहीं छू पाया है, जिन्हें उसने पूर्व में प्राप्त किया था। लगभग यही स्थिति गुजरात की है, वहाँ दंगों का अतीत भी रहा है और वर्तमान भी है। आजादी के बाद सन् 1969 में हुए बड़े साम्प्रदायिक दंगे के बाद से सन् 2002 तक लगभग दस बड़े दंगे और लगभग एक हजार छोटी बड़ी साम्प्रदायिक हिंसक घटनाएँ गुजरात में हो चुकी हैं। सन् 1990 में लालकृष्ण आडवाणी द्वारा अयोध्या से सोमनाथ तक की रथयात्रा की गई, सन् 1992 में अयोध्या में बाबरी मस्जिद ध्वंस की घटना हुई और तमाम छोटी-बड़ी घटनाओं सहित एकमुश्त 'वोट बैंक' के लालच ने धर्म के राजनीतिकरण की प्रक्रिया चालू कर दी। इसके फलस्वरूप गुजरात सहित समूचे देश में पुनः साम्प्रदायिक दंगों की शुरुआत हो गई। *संजय खाती* की कहानी *अयोध्या, राकेश कुमार सिंह* की कहानी *रूपनगर की रूपकथा, आलमशाह खान* की कहानी *मौत का मजहब, विजय* की कहानी *एक चिट्ठी अहमदाबाद में, नसीम साकेती* की कहानी *अफवाह, विष्णु प्रभाकर* की कहानियों *मेरा बेटा* व *आखिर क्यों* सहित *भगवान सिंह* के उपन्यास *उन्माद, भगवानदास मोरवाल* के उपन्यासों *काला पहाड़* और *बाबल तेरा देस में, निरूपमा सेवती* के उपन्यास *दहकन के पार, विभूतिनारायण राय* के उपन्यास *शहर में कर्फ्यू, चन्द्रकिशोर जायसवाल*

के उपन्यास *शीर्षक* और *कमलेश्वर* के उपन्यास *कितने पाकिस्तान* में साम्प्रदायिक उन्माद, हिंसा और दंगों के समूचे चरित्र की न केवल गहन, गोपन पड़ताल की गई है वरन् इन दंगों हिंसा व अलगाव के कारण दुरूह-दुष्कर हुए आम जनजीवन की, दंगों से पीड़ित बच्चों, महिलाओं, बुजुर्गों और युवाओं की आक्रांत, विक्षिप्त मनोदशा को भी उजागर किया गया है। उपरोक्त उपन्यास व कहानियों में दंगों, अलगाव, साम्प्रदायिक हिंसा को भड़काने वाले और इससे लाभ कमाने वाले लोग हैं तो दूसरी ओर अमन-चैन चाहने वाले लोग भी हैं, जिन्हें साम्प्रदायिकता की नहीं, धर्म की नहीं बल्कि मानव और मानवता की दरकार है। कमलेश्वर का उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' तो इस बात को वैश्विक क्षितिज पर उठाता है। 'कितने पाकिस्तान' में कोई पात्र नहीं बल्कि समय (अदीब) ही मानवता की माँग को, साम्प्रदायिक सद्भाव की आवश्यकता को उठाता है। उपन्यास बताता है कि मजहब के नाम पर हम पहले से ही कई टुकड़ों में बँट चुके हैं अब और कितना विखण्डित होना है। दुनिया की उन तमाम प्रभावशाली हस्तियों को समय (अदीब) ने माफ नहीं किया है, जिन्होने धर्म के नाम पर जमीन, मानव और मानवता को बाँटा है, आगे भी ऐसे लोगों को समय (अदीब) क्षमा नहीं करेगा।

साम्प्रदायिकता के वर्तमान तनावपूर्ण वातावरण के परिप्रेक्ष्य में जीवन की तमाम आवश्यकताओं की पूर्ति से हटकर समाज में निरन्तर बढ़ती साम्प्रदायिकता के कारकों के सन्दर्भ में यहाँ प्रख्यात कथाकार अमरकांत का वक्तव्य उल्लेखनीय है। वे कहते हैं कि ''साम्प्रदायिकता के सवाल के साथ भूख, गरीबी, असमानता, अशिक्षा, बेरोजगारी, अस्वास्थ्य की समस्या को भी समझना होगा। यह सारे बिंदु भी अक्सर साम्प्रदायिकता के कारक बनते हैं।''[12] साम्प्रदायिक ताकतें, अलगाववादी और आतंकवादी संगठन धर्म व 'जेहाद' के नाम पर हिंसक और आतंकी गतिविधियों को चलाने के लिए गरीब, बेरोजगार और मजबूर लोगों का उपयोग करते हैं। पद्मा सचदेव का उपन्यास 'नौशीन' इसी ओर संकेत करता है।

धर्म के ठेकेदारों, आतंकवादी व अलगाववादी संगठनों और राजनीतिक नेतृत्व द्वारा साम्प्रदायिकता को फलने-फूलने दिया जा रहा है। अयोध्या मुद्दे के संदर्भ में यहाँ पर भानुप्रताप शुक्ल क़ा विचार उल्लेखनीय है कि ''मंदिर निर्माण किसी राजनीतिक पार्टी का कार्य नहीं है, यह तो संतों और धर्माचार्यो का दायित्व है। हमारे देश में शासन का कोई मजहब नहीं है। यहाँ सभी मजहबों को समान अधिकार और अवसर प्राप्त हैं। बहुसंख्यकों की तुलना में अल्पसंख्यकों को

अधिक अधिकार प्राप्त हैं, फिर भी राम मंदिर निर्माण के प्रश्न पर राजनीतिक समर्थन या विरोध का मजहबी खेल खेला जाता है।''[13] अयोध्या का मुद्दा हो या फिर साम्प्रदायिकता से जुड़ा कोई दूसरा मुद्दा हो, राजनीतिक दलों का गैरजरूरी हस्तक्षेप स्थितियों को बिगाड़ देता है। राजनीतिक दलों की छद्म नीति और धर्म के तथाकथित ठेकेदारों की साजिशों के विरोध हेतु समाज में प्रतिरोधक शक्ति भी है जो इनका भरसक विरोध करती है और अपनी क्षमता भर संघर्ष भी करती है। *गोविन्द मिश्र* की कहानी *पगला बाबा*, *श्रीनाथ* की कहानी *रणभेरी*, *विष्णु प्रभाकर* की कहानी *आखिर क्यों*, *कृष्ण शुक्ल* की कहानी *सांता क्लाज की वापसी*, *अब्दुल बिस्मिल्लाह* की कहानी *आधा फूल आधा शव*, *नसीम साकेती* की कहानी *सद्दो चाची*, *डॉ. कामिनी* की कहानी *दिल जोड़ने वाली सुगन्ध*, *भगवानदास मोरवाल* के उपन्यासों *काला पहाड़* व *बाबल तेरा देस में* और *भगवान सिंह* के उपन्यास *उन्माद* में ऐसे पात्र दिखाई पड़ते हैं जो साम्प्रदायिक ताकतों से, उनके द्वारा रची जाती साजिशों और कुचक्रों से न केवल संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं वरन् शांतिमय, सुखद भविष्य के आगमन की प्रतीक्षा में साधनारत भी दिखाई देते हैं।

साम्प्रदायिकता के साथ ही धार्मिक कट्टरता और धार्मिक अंधविश्वास भी मानव और मानवता का शत्रु है। देश की तरक्की और 'कम्प्यूटर युग' के बावजूद आज भी धार्मिक संकीर्णता, कट्टरता और अंधविश्वास बरकरार है। विशेषकर युवा और महिलाएँ समाज में कट्टरपंथियों और धर्मान्ध, बहशी लोगों से आहत होते हैं। *भीष्म साहनी* के उपन्यास *नीलू नीलिमा नीलोफर*, *यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'* के उपन्यास *खण्डित अभिमान*, *विश्वमोहन* की कहानी *सूर्योदय*, *डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय* की कहानी *तुम देखते रहियो*, *मालती जोशी* की कहानी *स्नेहबंध*, *एच. भीष्मपाल* की कहानी *असाधारण पुरुष*, *नीरजा माधव* की कहानी *दादी माँ का चौरा* और *विष्णु प्रभाकर* की कहानी *ये बंधन* में स्त्री-पुरुष के आपसी प्रेम सम्बन्धों के बीच आड़े आती धर्मान्ध, वहशी ताकतों के समूचे चरित्र को उजागर करते हुए उन लोगों की संघर्षशीलता को उजागर किया गया है, जिनके लिए प्रेम, धर्म से बढ़कर होता है और वे संघर्ष करके, शोषण और अत्याचार को भोगते हुए भी 'वांछित' को पाना चाहते हैं।

मिथिलेश्वर की कहानी *अजगर करै न चाकरी*, *मुद्राराक्षस* की कहानी *एक बंदर की मौत*, *डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय* की कहानी *पुत्र-मोह*, *ऋता शुक्ला* की कहानी

सातवीं बेटी सहित *यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'* के उपन्यास *खण्डित अभिमान*, *दुर्गा प्रसाद शुक्ल* के उपन्यास *जोगती* और *कामतानाथ* के उपन्यास *समुद्र तट पर खुलने वाली खिड़की* में धार्मिक कट्टरता के साथ ही धार्मिक अंधविश्वास भी प्रकट होता है। धार्मिक अंधविश्वास की आड़ में धर्म के तथाकथित ठेकेदारों और समाज के प्रभुत्वशाली वर्ग के तमाम स्वार्थ सिद्ध होते हैं इस कारण धार्मिक अंधविश्वास आज भी जिंदा है और कई रूपों में सामने आता रहता है।

धार्मिक कट्टरता, धार्मिक अंधविश्वास और धर्म के नाम पर फैलाई जा रही हिंसा, वहशीपन और आतंक के खिलाफ संघर्ष के स्वर *निरूपमा सेवती* के उपन्यास *दहकन के पार*, *भगवानदास मोरवाल* के उपन्यासों *काला पहाड* व *बाबल तेरा देस में*, *भगवान सिंह* के उपन्यास *उन्माद*; *पुन्नी सिंह* की कहानी *काफिर तोता*; *विष्णु प्रभाकर* की कहानी *आखिर क्यों*, *सफर के साथी*, *आज होली है*, *इतनी सी बात* व *अधूरी कहानी*; *अब्दुल बिस्मिल्लाह* की कहानी *आधा फूल आधा शव* और *आदित्य नारायण शुक्ल* की कहानी *महायज्ञ* में सुनाई देते हैं। धर्म के ठेकेदारों, धर्मान्ध, कट्टर लोगों और धर्म की घृणित राजनीति करने वालों की कुत्सित मानसिकता का जवाब समाज में आज भी जीवित है, यही प्रतिरोधक शक्ति और साम्प्रदायिक सद्भाव की चेतना द्वारा ही दिया जाता है। इसी कारण आज भी मानवीय संवेदनाएँ जिन्दा हैं जो मानव-सेवा को, जगत्कल्याण की भावना को धर्म की संकीर्ण परिधि से बाहर रखती हैं। मालती जोशी की कहानी *'सती'* की निःसन्तान नीलम जैसी स्त्रियाँ अगर आज भी धार्मिक मान्यताओं के अनुसार अपवित्र और बहिष्कृत किये जाने के कारण आत्महत्या करने को मजबूर हैं तो *नसीम साकेती* की कहानी *सद्दौचाची* की सद्दौ और *मिथिलेश्वर* की कहानी *अजगर करै न चाकरी* की गजेन्द्र बहू जैसी महिलाएँ भी हैं जो धर्म के नाम पर, धार्मिक मान्यताओं और अंधविश्वास की आड़ में किये जाने वाले अत्याचार और अनैतिक आचरण से डरकर आत्महत्या नहीं करतीं वरन् डटकर मुकाबला करती हैं और समाज को नया रास्ता दिखाती हैं।

रवीन्द्र वर्मा की कहानी *सारनाथ में सन्नाटा*, *कामतानाथ* का उपन्यास *समुद्र तट पर खुलने वाली खिड़की* और *गोविन्द मिश्र* के उपन्यास *धीर समीरे* में धार्मिक स्थानों व तीर्थस्थलों में बढ़ती भौतिकता, व्यावसायिकता, आधुनिकता और क्षीण होती धार्मिक मान्यता

व पवित्रता की भावना की ओर संकेत किया गया है। धार्मिक व तीर्थस्थलों का स्वरूप बदल रहा है लोग इन स्थलों में धर्म कमाने के साथ ही पर्यटन के उद्देश्य के साथ जाते हैं इस कारण इन स्थानों में महँगे बाजार, होटल और शराबखाने खुल गए हैं। तीर्थस्थल मौज मस्ती के अड्डे बन गए हैं। आधुनिकता के साथ ही फैशनपरस्ती भी तीर्थस्थलों में हावी हो रही है। संचार क्रान्ति ने भी धर्म को प्रभावित किया है। देश के तमाम नामी गिरामी धर्मस्थल, मठ और मंदिर 'इंटरनेट' से जुड़े हुए हैं। इन मंदिरों में घर बैठे पूजा आराधना करने की व्यवस्था संचार क्रांति की देन है। इस प्रकार आज धार्मिक कट्टरता, अंधविश्वास और साम्प्रदायिक राजनीति के दौर में धर्म जहाँ जटिल हो गया है, वहीं इतना आसान और सरल भी हो गया है कि घर बैठे ही मन्दिरों में पूजा-अर्चना की जा सकती है और अपने 'टेलीविजन सेट' को चालू करते ही आध्यात्मिक प्रवचन व सत्संग सुना जा सकता है, देखा जा सकता है। इस बदलाव ने पौराणिक आख्यानों और मिथकीय पात्रों को वर्तमान के अनुरूप ढालने की चेतना भी पैदा की है। *भगवान सिंह* के उपन्यासों *अपने-अपने राम* और *महाभिषग* में यही नवचेतना और बदलाव दिखाई देता है।

इस बदलाव का सांस्कृतिक पक्ष भी है। शिक्षा व तकनीकी विस्तार ने, संचार क्रांति ने और भौतिकता, बाजारीकरण व आधुनिकता ने देश के सांस्कृतिक परिवेश को प्रभावित किया है, साथ ही अभूतपूर्व गति से बदलाव भी किया है। आज लोगों के रहन-सहन, जीवन-शैली, खर्चों, विचारों और मानसिकताओं में बदलाव आया है। 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' के नाम पर पुरातन सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना बनाम उपभोक्तावादी संस्कृति (मॉस कल्चर) का संघर्ष चल रहा है। इस सन्दर्भ में बी. टी. रणदिवे स्पष्ट करते हैं कि "यह एक संधिकाल है। पुराने मूल्य अब काम नहीं देते। नयी पीढ़ी उन्हें मानती नहीं। लेकिन उसे नये मूल्य नहीं मिलते। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान पुराने मूल्य टूटते थे तो उनकी जगह नये राष्ट्रीय मूल्य पैदा होते थे, जैसे राष्ट्रीय एकता, साम्राज्यवाद विरोध और स्वाधीनता। लेकिन अब ऐसा कुछ नहीं। नयी पीढ़ी के जुझारूपन के लिए कोई 'स्कोप' ही नहीं है। इसलिए उसे भरमाने वाली संस्कृति पनप रही है, जिसमें 'एडवेंचरिज्म' भी निरर्थक हो गया है, क्योंकि साहित्य, नाटक, फिल्म- सभी जगह नायक को भाड़े का सिपाही बनाया जा रहा है और खलनायक को गौरवान्वित किया जा रहा है।"[14] भारतीय संस्कृति को त्यागकर भारतीयता की बात की जा रही है। *नीरजा माधव* की

कहानी *पृष्ठ संख्या उन्नीस सौ निन्यानबे* इसी ओर संकेत करती है। दूसरी तरफ भौतिकता, बाजारीकरण और आधुनिकता के कारण जीवन-स्तर में बदलाव आ रहा है। प्रतिस्पर्धा के इस युग में हर कोई दूसरे से श्रेष्ठ दिखना चाहता है और समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए दिखावे और महँगे रहन-सहन आदि का प्रयोग करता है। *चन्द्रकांता* की कहानियों *अलग से हटकर* व *एक और परदेस*, *रामधारी सिंह दिनकर* की कहानियों *नवजात* व *धरातल*, *नीरजा माधव* की कहानी *चेकपोस्ट*, *कन्हैयालाल गाँधी* की कहानी *आईरीना*, *उदय प्रकाश* की कहानी *रामसजीवन की प्रेमकथा*, *कृष्ण सुकुमार* की कहानी *बिरादरी* और *रवीन्द्र वर्मा* के उपन्यासों *जवाहर नगर* व *मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगा* इसी मानसिकता से ग्रस्त लोगों के जीवन में झाँकने का प्रयास किया गया है। अपनी संस्कृति को दकियानूस और पिछड़ेपन की निशानी समझने वाले लोग अपनी संस्कृति और अपने लोगों से तो दूर हो जाते हैं मगर दूसरी जगह भी स्थापित नहीं हो पाते और इसी कारण अपनी स्थिति को तलाशने हेतु निरन्तर संघर्ष करते रहते हैं। *कुसुम कुमार* का उपन्यास *पूर्वी द्वार*, *प्रकाश शुक्ल* का उपन्यास *आकाश अपने-अपने* और *सुषमा जगमोहन* का उपन्यास *जिन्दगी ई-मेल* सांस्कृतिक संक्रमण के कारण उपजे अन्तर्विरोधों, टूटते-बिखरते परिवारों और विक्षिप्तता की हद तक पहुँचे लोगों की दयनीयता को उजागर करते हैं। *सुषमा जगमोहन* के उपन्यास *जिन्दगी ई-मेल* में बच्चों की दयनीय दशा प्रकट होती है, तो *कुसुम कुमार* के उपन्यास *पूर्वी द्वार* में नारकीय जीवन जीने को मजबूर बुजुर्ग दिखाई देते हैं। उपन्यास के पात्र सांधी जी अपने बेटे के घर में नौकर की तरह रहने को मजबूर हैं और उनकी मौत भी अंततः 'फादर्स डे' पर ही हो जाती है। अपनी संततियों में आए बदलाव के कारण आज अनेक वृद्ध माँ-बाप इस दयनीय दशा को भोगने के लिए अभिशप्त हैं। जगह-जगह खुल गए वृद्ध सेवाश्रम, पालना घर और 'चाइल्ड केयर' सेंटर', इस बदलाव को सहज ही प्रकट कर देते हैं।

लोकसंस्कृति और लोककला भी उपेक्षा का शिकार हुई है। यद्यपि 'उत्तर-आधुनिकता' के नाम पर लोकसंस्कृति की वापसी की बात उठाई जाती है। मगर यह वापसी एकदम अलग तरह की ही है और इसमें लोकसंस्कृति को संरक्षित-संवर्द्धित करने के बजाय उपभोग और शोषण करने की मानसिकता ही प्रमुखता के साथ कार्य करती प्रतीत होती है। इसीलिए लोकसंस्कृति और लोककलाकारों के प्रदर्शन में 'रीमिक्स' हावी हो रहा है, स्वरूप बदल रहा है और चंद लोगों

के लिए धन कमाने का माध्यम बन रहे लोककलाकार आज भी पर्दे के पीछे शोषण व उपेक्षा का शिकार हो रहे हैं। *हिमांशु श्रीवास्तव* के उपन्यास *शोकसभा*, *अब्दुल बिसमिल्लाह* के उपन्यास *झीनी-झीनी बीनी चदरिया*, *भीष्म साहनी* की कहानी *सेमिनार* और *परदेसीराम वर्मा* की कहानी *नेपथ्य और मंच* में इस शोषण व उपेक्षा का विदग्ध प्रस्तुतीकरण हुआ है। इस दौर में उत्तर-आधुनिकता और संस्कृति की ओर वापसी जैसे मुद्दे भी अपने चरम पर हैं। यह वापसी मूल रूप में नहीं, बल्कि 'आधुनिक संस्करण' के रूप में है। इस सन्दर्भ में शिवकेश मिश्र का यह विचार उल्लेखनीय है- ''सांस्कृतिक संक्रमण का सफेद पक्ष यह है कि अब बिहार का लिट्टी चोखा और राजस्थान की दाल-बाटी चूरमा इतर अंचलों में कौतुक की चीज नहीं रहे। छोले-भटूरे की महिमा से मुक्त हुए इस समाज के किसी भी औसत शहर में ये चीजें दाल-भात के दामों पर उपलब्ध हो रही हैं। हाँ, अलवर के मावे, प्रतापगढ़ के आँवले, जौनपुर की मूली जैसी चीजों को वैसा विस्तार नहीं मिला है पर दूसरी ओर छत्तीसगढ़ी, राजस्थान के वागड़ अंचल के आदिवासियों के गहने (हाँसली, बाजूबंद, बोरला) एंटीक बनकर संभ्रान्त गलों-बांहों में सज रहे हैं।''[15] सांस्कृतिक संक्रमण के कारण आए इस बदलाव को भले ही हिन्दी कथा-साहित्य नहीं देख पाया हो, मगर व्यापक सन्दर्भों में हिन्दी कथा-साहित्य ने सांस्कृतिक संक्रमण और बदलाव को प्रकट किया है, वह वास्तव में सटीक, सारगर्भित और गहन है।

आठवें दशक के बाद धर्म और संस्कृति में आए बदलाव समय के अनुरूप निरंतर प्रगतिशील रहे हैं। आज से बीस वर्ष पूर्व के जैसे हालात आज नहीं है। धार्मिक सहिष्णुता की प्रेरक शक्तियाँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहीं हैं। राजनेताओं द्वारा धर्म के नाम पर की जा रही राजनीति और धर्म के ठेकेदारों, आतंकवादी, अलगाववादी संगठनों द्वारा रची जाती साजिशों की असलियत आज छिपी नहीं है। अंधविश्वास और धार्मिक कट्टरता-पाखण्ड के नाम पर व्यक्ति स्वातंर्य के हनन की सीमाएँ टूट चुकी हैं। यद्यपि धर्म के नाम पर पनपी विद्रूपताओं, विसंगतियों और कट्टरता अब भी बाकी है तथापि बदलाव मुखर हो गया है, खुलकर सामने आने लगा है। इसी प्रकार संस्कृति के क्षेत्र में होते नित नवीन बदलाव, आधुनिक कलेवर में पुरातन संस्कृति की वापसी, सांस्कृतिक संक्रमण और बिखराव समूचे परिदृश्य में दिखाई देता है। चाहे धर्म हो या संस्कृति, अपने समय के हर बदलाव को, हर स्थिति और पहलू को हिन्दी कथा-साहित्य ने जानने, समझने और प्रकट करने का प्रयास किया है। इस दौर में रचे गए उपन्यास और

कहानियों में यह इतना खुलकर सामने आया है मानो धर्म और संस्कृति के साथ चलकर हिन्दी कथा-साहित्य ने हर बदलाव का सफर तय किया हो, हर पहलू को साथ-साथ देखा और महसूस किया हो।

(घ) सामाजिक :-

देश की आजादी के बाद सामाजिक ढाँचे को सक्षम और सशक्त बनाने के लिए, समाज के हर वर्ग, हर व्यक्ति को समर्थ बनाने, सामाजिक समरसता और समानता विकसित करने के लिए किये गए प्रत्येक प्रयास के पीछे छिपी राजनीति, धर्मान्धता, आर्थिक अक्षमता और स्वार्थी मानसिकता भी सक्रिय रही और इस कारण समाज में असमानता, अन्तर्विरोध, वर्ग संघर्ष के साथ ही गरीबी, बेकारी, भ्रष्टाचार और नैतिक पतन की स्थितियाँ पैदा हो गईं। आठवें दशक के बाद यह स्थितियाँ और अधिक तीक्ष्णता के साथ प्रकट होने लगीं। नेहरू का समाजवाद तो पहले ही तिरोहित हो चुका था, कालान्तर में अस्थिर और जनविरोधी सरकारों ने स्थितियों को सुधारने के बजाय बिगाड़ने का ही कार्य किया। *वल्लभ सिद्धार्थ* के उपन्यास *कठघरे* में समाज की वर्तमान स्थिति, विद्रूपताओं और विसंगतियों को तो उभारा ही गया है साथ ही अतीत की भूलों को भी खंगालने का प्रयास किया गया है, जिनके कारण समाज में विसंगतियाँ फैली हैं। उपन्यास के नायक और अधेड़ पात्र के बीच लम्बी वार्ता में पतनोन्मुख समाज का क्रमबद्ध और सटीक विवरण न केवल यथार्थ के निकट ला खड़ा करता है वरन् जाने-अनजाने उन तथ्यों से भी साक्षात्कार करा देता है, जो समाज की इस स्थिति के लिए उत्तरदायी हैं। वर्तमान युगीन परिदृश्य में समाज में गहराता वर्ग-संघर्ष, सामाजिक विघटन, शोषण और भूमण्डलीकरण के कारण आता बदलाव पूरे उफान में नजर आता है। गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक असमानता, जातीय विभेद और जीवन की मूलभूत जरूरतों के अभाव की स्थितियों की पराकाष्ठा ही वर्ग-संघर्ष के रूप में परिलक्षित होती है। वर्ग-संघर्ष में महिला चेतना और अस्मिता के ज्वलंत प्रश्न भी शामिल हैं।

प्रख्यात समाजशास्त्री पी.सी. जोशी समाज में चल रहे वर्ग-संघर्ष को वर्तमान सामाजिक यथार्थ का महत्त्वपूर्ण पक्ष मानते हैं। उनका मत है कि "आज हरिजनों और पिछड़ी जातियों पर जो अत्याचार हो रहा है, वह एक तरह से वर्ग-संघर्ष ही है। इसके दो कारण हैं : एक तो यह सम्पत्ति के ढाँचे की लड़ाई है, क्योंकि भूमि-संघर्ष जाति के माध्यम से ही फूटता है। दूसरे, यह

लड़ाई मानवीय गरिमा और सामाजिक मुक्ति के लिए भी है। सामाजिक मुक्ति आर्थिक मुक्ति जितनी ही जरुरी है। लोग केवल रोजी-रोटी या ज्यादा मजदूरी के लिए ही नहीं लड़ रहे हैं। गाँवों में उन्हें जानवरों से भी बदतर समझा जाता है।''[16] यह स्थिति गाँवों में ही नहीं बल्कि शहरों में भी है। *गिरिराज किशोर* के उपन्यासों *यथा प्रस्तावित* व *परिशिष्ट*, *भगवानदास मोरवाल* के उपन्यासों *काला पहाड़* व *बाबल तेरा देस में*, *राकेश कुमार सिंह* के उपन्यासों *पठार पर कोहरा* व *जो इतिहास में नहीं है*, *मधुकर सिंह* के उपन्यास *बाजत अनहद ढोल*, *विद्यासागर नौटियाल* के उपन्यासों *उत्तर बायाँ है* व *भीम अकेला*, *क्षमा कौल* के उपन्यास *दर्दपुर*, *ठाकुर प्रसाद सिंह* के उपन्यास *सात घरों का गाँव*, *कृष्णा अग्निहोत्री* के उपन्यास *टपरेवाले*, *शिवमूर्ति* के उपन्यास *तर्पण*, *मोहनदास नैमिशराय* के उपन्यास *मुक्तिपर्व*, *मार्कण्डेय* के उपन्यास *अग्निबीज*, *संजीव* के उपन्यास *धार*, *मनमोहन पाठक* के उपन्यास *गगन घटा घहरानी*, *सुरेन्द्र स्निग्ध* के उपन्यास *छाड़न*, *बनाफर चन्द्र* के उपन्यास *जमीन*, *अशोक अग्रवाल* की कहानी *कूड़ेदान*, *अजय नावरिया* की कहानी *चीख*, *अंशु मालवीय* की कहानी *14 अप्रैल*, *रत्नकुमार सांभरिया* की कहानी *फुलवा* और *मिथिलेश्वर* की कहानी *गाँव का मधेसर* में देश के विविध अंचलों में शहरों-गाँवों तथा कस्बों में, आदिवासियों-पिछड़ों तथा दलितों में, भूमिहीन-बंधुवा मजदूरों तथा श्रमिकों में गरीबी, आर्थिक असुरक्षा, बेकारी, जातीय असमानता, अशिक्षा, अनाचार, व्यवस्था तंत्र के उत्पीड़न और प्रभुत्वशाली, पूँजीपति तथा भूस्वामियों के द्वारा किये जा रहे अत्याचार के कारण उपजी वर्ग-संघर्ष की चेतना को विविध रूपों में प्रकट किया गया है। वर्ग-संघर्ष की स्थितियों को उत्पन्न करने में जातिगत भिन्नता और जातीय असमानता के कारण पनपती शोषक मानसिकता का प्रमुख योगदान होता है। राजनीतिक दलों द्वारा जातीयता पर आधारित राजनीति को बढ़ावा दिये जाने के कारण स्थितियाँ बनने के बजाय बिगड़ती ही चली गईं हैं। संजय गुप्त का मत यहाँ पर उल्लेखनीय है कि-''राजनीतिक दल अपने भाषणों और प्रस्तावों में भले ही यह कहें कि वे समाज में हर प्रकार के भेदभाव को मिटाने के लिए संकल्पबद्ध हैं, लेकिन जैसे ही चुनाव आते हैं उनकी संकल्पबद्धता गायब हो जाती है। यदि भारत को विकसित देशों की श्रेणी में खड़ा करना है तो उसे एक ऐसे समाज का निर्माण करना ही होगा जो जांति और पंथ के आधार पर विभाजित न हो।''[17] आज के दौर में राजनीति और धर्म से इस प्रकार की अपेक्षाएँ जोड़ना भारी भूल

होगी। पहले से ही भारतीय समाज को राजनीति और धर्म के नाम पर इतना छला जा चुका है कि आम जनमानस को इनसे उम्मीदें ही शेष नहीं रह गई हैं। वर्तमान में सक्रिय तमाम समाजसेवी लोग संगठन और वैयक्तिक रूप से समाज की विसंगतियों से लड़ने का कार्य कर रहे हैं। *शिवमूर्ति* के उपन्यास *तर्पण* का पात्र पियारे, *मोहनदास नैमिशराय* के उपन्यास *मुक्तिपर्व* का नायक सुमित, *मार्कण्डेय* के उपन्यास *अग्निबीज* के पात्र श्यामा, सागर, मुराद और सुनीत, *सुरेन्द्र स्निग्ध* के उपन्यास *छाड़न* की पात्र सुकिया, *बनाफर चंद्र* के उपन्यास *जमीन* के पात्र जगदीश और नारायण, *अजय नावरिया* की कहानी *चीख* का केन्द्रीय पात्र विनायक *रत्नकुमार सांभरिया* की कहानी *फुलवा* की पात्र, *गोविन्द मिश्र* की कहानी *छवि* का पात्र बाबूलाल, *मोहनदास नैमिशराय* की कहानी *सुनो बरखुरदार* और *मिथिलेश्वर* की कहानियों *गाँव का मधेसर* व *मनबोध मउआर* के पात्र क्रमशः मधेसर और मनबोध मउआर आदि के माध्यम से समाज, धर्म व राजनीति के ठेकेदारों से अपेक्षा जोड़े बगैर निःस्वार्थ समाज सेवा करने वाले, सामाजिक कुरीतियों, वर्गीय अन्तर्विरोधों और सामाजिक समस्याओं से लड़ने वाले लोगों के जीवट को, उनके संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है। इस दौर की कहानियों द्वारा प्रकट किये गए ऐसे जुझारू चरित्रों के सन्दर्भ में कहानियों की यथार्थ से निकटता के परिप्रेक्ष्य में ख्यातिलब्ध कथाकार बलराम की टिप्पणी यहाँ पर उल्लेखनीय है। बलराम लिखते हैं कि "सामाजिक समता एवं स्वतंत्रता और न्याय की जिस सौगंध के साथ हमने इस गणतंत्र का संविधान रचा और स्वीकारा था, उसे मूर्त और साकार करने के लिए अभी हमें बहुत संघर्ष करना पड़ेगा और कहना पड़ेगा कि हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं ने कुछ किया हो, न किया हो मगर हिंदी कहानी ने भारत के अनेक सच्चे और प्रामाणिक चित्र हमें दिए हैं, और दिए हैं वैसे ही चरित्र भी, जिनसे समकालीन भारत का एक मुकम्मल चित्र बनाया जा सकता है। जिन्हें समाजशास्त्रीय ब्यौरे कहकर आप खारिज नहीं कर सकते, क्योंकि कहानी ही वह विधा है, जो समाज और मनुष्य से इस कदर प्रतिबद्ध है कि उनके बिना उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा।"[18]

वर्गीय संघर्ष और वर्गीय अन्तर्विरोधों के साथ ही समाज में महिलाओं की स्थिति, महिलाओं के शोषण, उन पर होने वाले अत्याचार और असमानताओं के साथ ही स्त्री अस्मिता के संघर्ष की स्थितियाँ इस दौर की कहानियों में ही नहीं, बल्कि उपन्यासों में भी पूरी शिद्दत के साथ प्रकट हुई हैं। इस सन्दर्भ में प्रख्यात कथा लेखिका कृष्णा सोबती का विचार उल्लेखनीय

है- "भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों और पारिवारिक चौखटे को लेकर एक गहरी नैतिक हलचल और दूरगामी परिवर्तन और प्रभाव लक्षित हैं। समाज और साहित्य का वैचारिक पर्यावरण स्त्री-विमर्श के प्रकोप में है। एक ओर स्त्री आरक्षण की राजनीतिक उत्तेजना और दूसरी ओर राष्ट्रीय स्तर पर नई स्त्री की उपस्थिति अपनी ऊर्जा से नए उत्साह का संचार कर रही है जो राष्ट्र की नागरिक समृद्धि से भी जुड़ी है। ऐसे में विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थान इन संभावनाओं को नजरअंदाज कर पुराना पारम्परिक राग अलापने में भी पीछे नहीं।"[19] पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में स्त्री की भूमिका द्वैतीयक ही रहती है। देश की आजादी के बाद हुए तमाम विकास के बावजूद स्त्रियों का बड़ा वर्ग आज भी पहले जैसी स्थिति में अपना जीवन निर्वाह कर रहा है। शिक्षा विस्तार और स्त्री-जागरण समाज के प्रभुत्वशाली और समर्थ वर्ग की महिलाओं के बीच ही सिमटकर रह गया है। शिक्षा, राजनीति, व्यवसाय और नौकरी के क्षेत्र से जुड़ी महिलाओं की अपनी समस्याएँ हैं, उन्हें शोषित और उत्पीड़ित किये जाने की स्थितियाँ अलग हैं। इनसे हटकर सामाजिक रूप से दुर्बल और आर्थिक रूप से अक्षम महिलाओं की स्थितियाँ आज भी वैसी ही हैं। नारी मुक्ति और स्त्री समानता पर केन्द्रित तमाम आन्दोलनों की नजर इन स्त्रियों की दयनीय स्थिति पर नहीं पड़ी है, ऐसे आन्दोलन सीमित दायरे में ही सिमटकर वाहवाही लूटने के माध्यम बनकर रह गए हैं। लेकिन हिन्दी कथा-साहित्य ने अपने कर्तव्य का निर्वहन करते हुए इन महिलाओं की सामाजिक स्थिति और शोषण को समग्रता के साथ प्रस्तुत किया है। *भगवानदास मोरवाल* के उपन्यासों *काला पहाड़* एवं *बाबल तेरा देस में* धर्म व पुरुषवादी अहं की आड़ में सताई जाती मेव समाज की महिलाओं की सामाजिक स्थिति का चित्रण किया गया है, इसी प्रकार *निर्मला भुराड़िया* के उपन्यास *आब्जेक्शन मी लार्ड* और *प्रभा खेतान* के उपन्यास *पीली आँधी* में मारवाड़ी समाज की स्त्रियों पर किये जा रहे अत्याचार और शोषण की, उनकी अशिक्षा और आर्थिक असुरक्षा के कारण उपजी दयनीय स्थिति का चित्रण किया गया है। इसी प्रकार *कृष्णा अग्निहोत्री* के उपन्यास *टपरेवाले* में बसोड़, माहर और बलई जाति के लोगों के बीच लड़कियों की खरीद-फरोख्त और विवाहेतर यौन सम्बन्ध बनाने जैसी सामाजिक बुराइयों के कारण कष्ट भोगती महिलाओं का चित्रण किया गया है। *विजय* की कहानी *नागमणि का खो जाना* और *शरद सिंह* के उपन्यास *पिछले पन्ने की औरतें* में 'बेड़नी' स्त्रियों की दयनीय सामाजिक स्थिति को प्रकट किया गया है; *नीलाक्षी*

सिंह की कहानी *रंगमहल में नाची राधा* में *दीवानबाई* के ऊपर सामाजिक बन्धन इतने कड़े हैं कि वह अपने प्रेम को न पा सकने की कसक और घुटन में जीने को मजबूर होती है और अपनी व्यथा उजागर करने पर शोषण व मारपीट की शिकार हो जाती है, *अजय मिश्र* का उपन्यास *पक्का महाल* और *क्रांति त्रिवेदी* की कहानी *गूलर का कीड़ा* समाज में आज भी जीवित बाल विवाह और सती प्रथा जैसी सामाजिक बुराइयों की ओर इंगित करती है। बाल विवाह, सती प्रथा और दहेज प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियाँ पर्दे के पीछे आज भी बदस्तूर जारी हैं। कानून के शिंकजे ने इन बुराइयों को कम जरूर किया है, मगर समाप्त कर पाने में असफल रहा है। प्रख्यात नेत्री वृंदा करात का विचार है कि "हमारे यहाँ सामाजिक भेदभाव इतना है कि अधिकांश महिलाएँ शिक्षा से वंचित रहती हैं। उनके पालन-पोषण में उनके स्वास्थ्य और शिक्षा की तरफ बहुत कम ध्यान दिया जाता है। धर्म, जाति और कुल-गोत्र वगैरह के बंधन उनके मामले मे सख्ती से लागू किये जाते हैं, इसलिए उन्हें सामाजिक स्वाधीनता भी प्राप्त नहीं है। जबरन शादी, बाल विवाह, बहु विवाह और सती प्रथा जैसी भयानक कुरीतियाँ अभी भी हमारे समाज में चल रहीं हैं। महिलाओं के अपमान, उत्पीड़न और बलात्कार की घटनाएँ तो आए दिन हमारे सामने आती ही रहती हैं, भयंकर गरीबी और मुसीबत की मारी लाखों महिलाओं को वेश्यावृत्ति अपनाकर अपना शरीर बेचने पर भी मजबूर होना पड़ता है।"[20] इस संदर्भ में *हसन जमाल* की कहानी *शर्मगाह* का उल्लेख करना आवश्यक होगा, जिसमें कहानी की मुख्य पात्र रूबीना के सामने एक ओर भूख से बिलखता परिवार है, उसकी इज्जत है, दूसरी ओर समाज के बंधन हैं, धर्म है। रूबीना के समक्ष बच्चों की भूख मिटाने की समस्या उसे समाज और धर्म की मान्यताएँ और बंधन तोड़ने को मजबूर कर देती है और वह अपना तन बेचने को मजबूर हो जाती है। यह मजबूरी उसी समाज ने खड़ी की है, जिसने तमाम बंधन बनाकर स्त्रियों को हमेशा कैद रखना चाहा है।

मानव विकास रिर्पोट, 2000 के अनुसार भारत में स्त्री साक्षरता दर 50 प्रतिशत है, जो दुनिया के तमाम छोटे, गरीब और विकासशील देशों से भी कम है। इसी प्रकार वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार प्रति एक हजार पुरुष पर 932 स्त्रियाँ हैं। शिक्षा और जनसंख्या के इन आँकड़ों की बाजीगरी के जरिए देश का व्यवस्था-तंत्र और राजनीतिक नेतृत्व भले ही महिला सशक्तीकरण और स्त्रियों की समानता की बात करें, तेंतीस प्रतिशत आरक्षण देकर महिलाओं

की उन्नति के सब्जबाग दिखाए मगर समाज में महिलाओं की स्थिति पर इन आँकड़ो के खेल से फर्क नहीं के बराबर ही देखने को मिलता है। सरकार द्वारा प्रायोजित तमाम कार्यक्रम, स्वयंसेवी संगठनों के प्रयास और आन्दोलन सार्थक परिणाम तक नहीं पहुँच पाए हैं। पुरुषों की बात तो अलग है, समाज की सम्पन्न, शिक्षित और समाजसेवी महिलाओं द्वारा ही पूर्ण निष्ठा और लगन के साथ महिलाओं की सामाजिक स्थिति सुधारने हेतु कार्य नहीं किये जा रहे हैं। ऐसे कार्यो के पीछे स्वार्थ-साधना और प्रतिष्ठा प्राप्त करने की मानसिकता कार्य करती है। *स्वयं प्रकाश* की कहानी *पाँच दिन और औरत, रश्मि बडथ्वाल* की कहानी *बेताल प्रश्नों के बीच* और *उषा यादव* के उपन्यास *कथांतर* में इसी मानसिकता के साथ ही महिला संगठनों, नेत्रियों और समाजसेविकाओं की असलियत को उघाड़कर रख दिया गया है। इसी प्रकार *हिमांशु जोशी* की कहानी *कोई एक मसीहा* के पात्र सुरेश भाई जैसे समाजसेवी भी आज के दौर में कम नहीं हैं, जो सब के सामने तो समाज सेवक बने रहते हैं, जनता के मसीहा बने रहते हैं और एकान्त में अपने असली रूप में आकर शराब भी पीते हैं और लड़कियों को भी भोगते हैं। उपन्यास की पात्र लघु बेन, जो महिला आश्रम की संचालिका हैं, सुरेश भाई के लिए सारे 'इंतजाम' जुटाने में गर्व महसूस करती है। लघु बेन और सुरेश भाई जैसे लोगों की असलियत आज समाज से छिपी नहीं है। समाज की जुझारू महिलाओं को इनसे उम्मीद भी शेष नहीं है, लिहाजा ऐसी महिलाएँ अपने स्तर पर संघर्ष करने हेतु आगे आई है। *सी. दास बांसल* की कहानी *कार्टूनिस्ट* की मुख्य पात्र श्यामला ऐसी ही महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती है। श्यामला अपने द्वारा बनाए गए कार्टून चित्रों द्वारा समाज के नग्न यथार्थ को प्रकट करती है, साथ इन कार्टूनों के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ संघर्ष भी करती है। इसी प्रकार *मिथिलेश्वर* की कहानी *अजगर करे न चाकरी* की गजेन्द्र बहू समाज में फैले अंधविश्वास के साथ ही धर्म के नाम पर ठगी करने वालों का पर्दाफाश करने के लिए अकेले ही जूझ पड़ती है और अपने संघर्ष में सफल भी रहती है। किसी स्वार्थ और पद व प्रतिष्ठा की चाहत के बिना संघर्षरत महिलाएँ अब अक्सर नजर आती हैं।

समाज की बदलती हुई और विकृत मानसिकता के कारण भी समाज में विद्रूपताएँ पैदा हुई हैं। आपसी ईर्ष्या, द्वेष, नफरत, अविश्वास और घृणा तो हमेशा समाज में विद्यमान रही है इसके साथ ही चुगुलखोरी और अफवाह फैलाने की मनोवृत्ति भी तेजी से समाज में पनपी है।

डॉ. रामकुमार तिवारी की कहानी *उत्तरदायित्व*, *मिथिलेश्वर* की कहानी *सायास*, *आदित्य नारायण शुक्ल* की कहानी *प्रधानमंत्री की प्रेमिका*, *रामधारी सिंह दिवाकर* की कहानी *काकपद* और *विलास गुप्ते* की कहानी *आहट* में इसी मनोवृत्ति का खुलासा हुआ है।

समाज के लिए निःस्वार्थ भाव से कार्य करने वालों के प्रति समाज द्वारा कृतज्ञता ज्ञापित करने के बजाय उन्हें भी उपेक्षित और अप्रासंगिक बना देने की मानसिकता समाज में पनपती संवेदनहीनता और विभिन्न प्रकार के असामाजिक तत्वों के बढ़ते वर्चस्व के कारण उपजती है। समाज के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने वाले समर्पित लोगों को आज गुमनामी व उपेक्षा की जिन्दगी गुजारनी पड़ रही है। विभिन्न समाचार पत्रों में आए दिन छपने वाली खबरें समाज की इस मानसिकता की भयावहता को स्वतः प्रकट कर देती हैं। *दिनेश पालीवाल* की कहानी *असामाजिक* के हेड साहब और *स्वयं प्रकाश* की कहानी *सम्मान* के प्रशान्त जी की दुखद मृत्यु वर्तमान यथार्थ के निकट ला कर खड़ा कर देती है। हेड साहब की मृत्यु के बाद कोई उनके कफन की व्यवस्था करने वाला भी नहीं है, जबकि दूसरी ओर उसी दिन शहर के एक अपराधी किस्म के व्यक्ति की लाश पर फूल चढ़ाने हेतु शहर की जनता ने मुख्यमंत्री पर दबाव डालकर आने के लिए मजबूर कर दिया है। इसी तरह प्रशान्त जी अपने जीते-जी अभावों से जूझते रहे और अब उनकी मौत के बाद वाहवाही लूटने की राजनीति हो रही है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि समाज में पनपी विकृतियों व विद्रूपताओं के लिए समाज भी दोषी है। समाज की संवेदनहीनता और उपेक्षा आपराधियों और असामाजिक तत्वों को ही बढ़ावा दे रही है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि आठवें दशक के बाद के समाज में व्यापक बदलाव आये हैं। शोषण और अत्याचार के खिलाफ उपजा वर्ग-संघर्ष पूरे उफान पर है। यह संघर्ष जितना 'गैरों' के खिलाफ है उतना ही 'अपनों' के खिलाफ भी है, जो सम्पन्नता और सबलता पाकर खुद ही असमानता को बढ़ावा देने लगे हैं। राजनीतिक नेतृत्वकर्ताओं और समाजसेवियों से इतर वैयक्तिक संघर्ष की चेतना भी इस अवधि में विकसित हुई है। इसके साथ ही महिलाओं का अपने अस्तित्व के लिए, सामाजिक समानता और स्त्री मुक्ति के लिए संघर्ष मुखर हुआ है और सशक्त रूप से उभरकर सामने भी आया है। सामाजिक कुरीतियों, कुप्रथाओं, विद्रूपताओं और विसंगतियों के खिलाफ युवा भी संगठित हुए हैं। आठवें दशक के बाद के उपन्यास और कहानियों में सामाजिक बदलाव के यह तमाम स्वरूप पूरे वेग के साथ प्रस्तुत हुए हैं।

भूमण्डलीकरण, संचार क्रांति और आधुनिकता के कारण समाज में आए बदलाव भी कहानियों और उपन्यासों में दिखाई देते हैं। ऐसे बिन्दुओं पर इसी अध्याय में ही आगे चर्चा की जाएगी।

(ङ) स्त्री-पुरुष सम्बन्ध :-

समाज, धर्म, राजनीति और संस्कृति का प्रभाव स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर भी पड़ता है और इनमें होने वाला कोई भी बदलाव स्त्री और पुरुष के बीच सम्बन्ध को भी प्रभावित करता है। समाज में आ रहा बदलाव, पुरुषवादी मानसिकता का वर्चस्व, स्त्रियों की आर्थिक असुरक्षा, शिक्षा का विस्तार, भूमण्डलीकरण व आधुनिकता की विद्रूपताएँ, सांस्कृतिक संक्रमण, संचार क्रान्ति का आगमन, राजनीति में तथा रोजगार के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी, संयुक्त परिवारों के विघटन, नितान्त व्यक्तिवादी और अपने तक ही सिमटते जाने की स्थितियाँ, भागदौड़ भरी जिन्दगी और स्त्री-मुक्ति, स्त्री-स्वातंत्र्य आदि के आन्दोलनों ने स्त्री-पुरुष के मध्य सम्बन्धों में नए आयाम और विकृतियों को जन्म दिया है। 'नई स्त्री' शोषण व अत्याचार के ख़िलाफ संघर्ष को उद्यत है साथ ही प्रेम सम्बन्धों में पुरुष का वर्चस्व स्वीकार करने के बजाय समानता और समर्पण प्राप्त करने के लिए भी तत्पर है। वह दासी नहीं, बल्कि सहचरी की भूमिका चाहती है। स्त्री-पुरुष प्रेम सम्बन्धों के बीच आए इस बदलाव को आठवें दशक के बाद की कहानियों और उपन्यासों में बड़ी विदग्धता के साथ प्रस्तुत किया गया है। *उदयभानु पाण्डेय* का उपन्यास *बनानी* बेमेल विवाह और प्रेम सम्बन्धों की आपसी टकराहट से उपजी स्थितियों को प्रकट करता है, *जया जादवानी* के उपन्यास *कुछ न कुछ छूट जाता है* की नायिका ऋतु आर्थिक रूप से समक्ष और शिक्षित होने के बावजूद निःस्वार्थ प्रेम को जीवन भर तलाशती रहती है, किन्तु उसे प्रेम नहीं मिलता, पुरुषवादी वर्चस्व के दंभ से जूझना ही उसकी नियति बन जाती है, *सुभाष नरूला* के उपन्यास *आधा मसीहा* की पात्र निर्मल प्रेम के झूठे दिखावे के कारण छली जाती है और जिंदगी भर उसका दंश भोगने को मजबूर हो जाती है, *दिनेशनंदिनी डालमिया* के उपन्यास *मुझे माफ करना* की नायिका के प्रेम में उसकी सौन्दर्यहीनता आड़े आ जाती है, *भीष्म साहनी* के उपन्यास *नीलू नीलिमा नीलोफर* में प्रेम की राह में दीवार बनकर खड़े हो जाने वाले समाज के पूर्वाग्रहों और धर्मान्धता के वहशीपन को प्रकट किया गया है, *सत्येन कुमार* के उपन्यास *छुट्टी का दिन* के नायक आदित्य के लिए असफल प्रेम व अतीत की मधुर स्मृतियाँ ही उसकी ताकत बन जाती हैं और इन्हीं के सहारे वह अपने जीवन के संघर्षों

आघातों से जूझता है, *धीरेन्द्र अस्थाना* के उपन्यास *हलाहल* में स्थितियाँ इसके विपरीत हैं। उपन्यास का नायक सिद्धार्थ जीवन के संघर्षों और त्रासदियों से इतना विचलित हो जाता है कि अमृता पर ही बरस पड़ता है, दोनों के बीच विघटन की स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं इसके बावजूद आपसी प्रेम का नाजुक सूत्र टूटने नहीं पाता, *राजेश जैन* के उपन्यास *बर्ड हिट* की नायिका दिव्या आपसी प्रेम में आड़े आती पुरुषवादी और भोगवादी मानसिकता का डटकर विरोध करने को उद्यत हो जाती है। इसी प्रकार *डॉ. कामिनी* की कहानी *रेत पर चलते हुए, हिमांशु जोशी* की कहानी *छोटी इ, दयानंद पाण्डेय* की कहानी *प्रतिनायक मैं* तथा *वक्रता, अचला नागर* की कहानी *चेहरे, नीरजा माधव* की कहानी *हव्वा, पुन्नी सिंह* की कहानी *इस इलाके की सबसे कीमती औरत* और *अलका सरावगी* की कहानी *कहानी में नाटक में नेलपालिश का महत्त्व* में समाज के पूर्वाग्रहों, पुरुषवादी मानसिकता, जीवन की जटिलता, आर्थिक असमानता, शोषक मानसिकता और विवशताओं के कारण विद्रूप हो गए स्त्री-पुरुष सम्बन्धों और प्रेम की असफलता के कारण उपजी स्थितियों की पड़ताल की गई है, साथ ही इनसे जुड़े कई पहलुओं को उजागर भी किया गया है।

अशोक लव की कहानी *टूटते-बनते रिश्ते, वंदना* की कहानी *झगड़ा, रजनी गुप्ता* की कहानी *एक नई सुबह, क्रान्ति त्रिवेदी* की कहानी *फूलों का क्या होगा, अचला नागर* की कहानी *जईफ, डॉ. कामिनी* की कहानी *भोली सी आशा, कैलासचन्द्र शर्मा* की कहानी *स्वीकार, सुभाष नरूला* के उपन्यास *आधा मसीहा* और *क्षमा शर्मा* के उपन्यास *मोबाइल* में स्त्रियों के प्रति पुरुषों की भोगवादी विकृत मानसिकता को उजागर किया गया है। बदलते समय के अनुसार स्त्रियों के प्रति पुरुषों के प्रेम में भी बदलाव आया है। पुरुष, स्त्री देह को भोगना चाहता है और इसके लिए वह प्रेम का ढोंग रचाने में भी पीछे नहीं हटता। इसी तरह आवेग में आकर, आकर्षण में बँधकर प्रेम सम्बन्ध कायम तो कर लिये जाते हैं, मगर इन प्रेम सम्बन्धों के विवाह में बदलने के साथ ही स्त्री और पुरुष के बीच सम्बन्ध भी बिगड़ते चले जाते हैं क्योंकि पुरुष 'दूसरी औरत' को पाने की जद्दोजहद में लग जाता है। इंडिया टुडे के उन्नीसवें वार्षिकांक में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में आए बदलाव को प्रकट करते हुए लिखा गया है कि "बदलते वक्त के साथ प्यार का मतलब जनम-जनम का बंधन नहीं बल्कि बस कुछ पलों का साथ रह गया। गौरतलब है कि 80 के दशक के शुरू तक कोई पति अपने माँ-बाप के सामने अपने बच्चों

को चूमने से कतराता था कि इसे परोक्ष रूप से पत्नी का चुंबन समझ लिया जाएगा।''[21] यह कथन स्त्री-पुरुष के बीच तेजी से बदलते सम्बन्ध, आपसी प्रेम सम्बन्धों में आते खुलेपन के साथ ही उपजती विकृत स्थितियों का भी खुलासा करने हेतु पर्याप्त है।

पुरुषों की मानसिकता में आते बदलाव के साथ ही स्त्रियों में भी बदलाव आया है। यद्यपि यह बदलाव आर्थिक रूप से सक्षम और अभिजात्य वर्गीय महिलाओं में ही प्रायः देखने को मिलता है। विवाह की बाध्यताएँ, परिवार से जुड़कर रहने की मजबूरी, पतिव्रत धर्म और नीति व मर्यादाओं की बातें अपना अर्थ बदल चुकी हैं। आज के समय में विवाह संस्था भी अप्रासंगिक हो गई है, क्योंकि इसमें पारस्परिक समर्पण के बजाय आपसी समझौते जैसी मानसिकता काम कर रही है, जहाँ समझौता टूट जाता है, वहीं पति और पत्नी के रास्ते अलग हो जाते हैं। घरेलू हिंसा और तलाक जैसी समस्याएँ भी इनके कारण बलवती हो गई हैं। दूसरा बदलाव उन्मुक्त यौनाचारण का है। संयम का स्थान स्वच्छंदता ने ले लिया है। पुरुषों के साथ ही अब महिलाओं द्वारा भी ऐसे आचरण किये जाने के कई मामले सामने आने लगे हैं। इंडिया टुडे के उन्नीसवें वार्षिकांक में प्रस्तुत उन्नीस बरस के अंदर आए बदलाव के लेखा-जोखा को यहाँ पर पुनः उद्ध‍ृत करना होगा, जो यह बतलाता है कि ''अस्सी के दशक के आखिर में महिलाओं के सेक्स के प्रति रूझान को भी आँका गया। महिलाएँ सिर्फ घर-गृहस्थी तक सीमित नहीं थीं। वे वैवाहिक जीवन में समानता और पति से अच्छा सेक्स चाहती थीं और ऐसा न होने पर विवाहेतर सम्बन्ध की तलाश में पड़ जाती थी। देश में सेक्स के बदलते माहौल के कई सबूत दिखने लगे। नए और कामोत्तेजक कपड़े, अश्लील वीडियो फिल्में, कामुक विज्ञापन और छोटे शहरों में सेक्स क्लिनिक दिखने लगे। फिर 90 के दशक के आखिर में पौरुषहीनता के इलाज के लिए लोग व्याकुल दिखे।''[22] आठवें दशक के बाद के हिंदी कथा-साहित्य में इस बदलाव के विविध पहलू गहनता के साथ प्रकट होते हैं। *क्रान्ति त्रिवेदी* की कहानी *नहीं बँधूँगी, अचला नागर* की कहानी *छिपकली, रजनी गुप्ता* की कहानी *बेबस और निरुपाय, जितेन्द्र भाटिया* की कहानी *दो नंबर का दर्जा, से. रा. यात्री* की कहानी *दिशाहीन, मो0 आरिफ* की कहानी *दाम्पत्य* के साथ ही *गोविन्द मिश्र* के उपन्यासों *तुम्हारी रोशनी में* व *धीर समीरे, क्षमा शर्मा* के उपन्यास *मोबाइल, उदयभानु पाण्डेय* के उपन्यास *बनानी, से. रा. यात्री* के उपन्यास *अनदेखे पुल* और *अभिमन्यु अनत* के उपन्यास *घर लौट चलो वैशाली* में

महिलाओं की बदलती मानसिकता के फलस्वरूप उपजी स्थितियों के साथ ही पुरुषवादी वर्चस्व के दंभ को तोड़कर अपनी मनचाही और स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने के लिए संघर्षरत महिलाओं द्वारा स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की बदल दी गई परिभाषा को भी प्रकट किया गया है।

शिक्षा के प्रसार, आर्थिक सक्षमता और भौतिकता के वर्चस्व ने गाँवों और कस्बों में भी स्त्रियों को प्रभावित किया है और इसके फलस्वरूप शहरों में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में आए बदलाव कस्बों और गाँवों में भी दिखने लगे हैं। इस कथ्य को लेकर यद्यपि हिंदी कथा-साहित्य में बहुत कम लेखन हुआ है, तथापि इस विषय पर रचे गए उपन्यास और कहानियाँ कम होने के बावजूद अपने समय में बहुचर्चित रही हैं और आज भी हैं। *सुरेन्द्र वर्मा* का उपन्यास *मुझे चाँद चाहिए, रवीन्द्र वर्मा* का उपन्यास *जवाहर नगर, मैत्रेयी पुष्पा* का उपन्यास *इदन्नमम, अजय मिश्र* के उपन्यास *पक्का महाल, रामदरश मिश्र* के उपन्यास *थकी हुई सुबह, अचला नागर* की कहानी *चेहरे* और *यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'* की कहानी *मिनखखोरी* आदि उल्लेखनीय हैं, जिनमें स्त्री पुरुष सम्बन्धों के बदलते आयामों को ग्रामीण व कस्बाई परिवेश में देखने व बदलाव को, बदलाव की विकृतियों को उजागर करने का सशक्त प्रयास किया गया है।

स्त्री-पुरुष के मध्य सम्बन्धों में आते बदलाव, पुरुषवादी मानसिकता के टूटते दंभ और पनपती विकृतियों के फलस्वरूप उपजी विद्रूपताओं में घरेलू हिंसा और विवाहेतर यौन सम्बन्ध प्रमुख हैं और आज के दौर में ऐसे मामले बहुधा सुनने को मिलते हैं। विवाहेतर यौन सम्बन्धों को तो मानों समाज में प्रतिष्ठा का मानदण्ड ही बना लिया गया है। आजकल 'डेटिंग' और 'सेक्स पार्टनर' की अदला-बदली का चलन भी जोर पकड़ता जा रहा है। भौतिकता और उन्मुक्तता के कारण उपजे ऐसे विद्रूपों के कारण तमाम समस्याएँ और पारिवारिक विघटन जैसी स्थितियाँ भी पैदा हुई है। *वंदना* की कहानी *झगड़ा, क्रांति त्रिवेदी* की कहानियाँ *फूलों का क्या होगा* और *नीली आँखों का आकाश, अशोक गुजराती* की कहानी *भड़ास, विभांशु दिव्याल* की कहानी *पिता, मत्स्येन्द्र शुक्ल* की कहानी *खामोश, रामकुमार* की कहानी *पिता, अचला नागर* की कहानी *जईफ, रामधारी सिंह दिवाकर* की कहानी *अनाम संज्ञा, रामदरश मिश्र* के उपन्यास *रात के सफर, राजेश जैन* के उपन्यास *बर्ड हिट, उदयभानु पाण्डेय* के उपन्यास *बनानी* और *कृष्णा सोबती* के उपन्यास *दिलोदानिश* में विवाहेतर यौन सम्बन्धों के कारण उपजी स्थितियों तथा पारिवारिक विघटन को प्रकट किया गया है। इसी प्रकार

डॉ. कृष्णावतार पाण्डेय के उपन्यास *रंग गई मोर चुनरिया, रामदरश मिश्र* के उपन्यास *थकी हुई सुबह, मृदुला गर्ग* के उपन्यास *कठगुलाब, मृणाल पाण्डे* के उपन्यास *रास्तों पर भटकते हुए, अमरकांत* के उपन्यास *सुन्नर पांडे की पतोह, क्रांति त्रिवेदी* कहानी *आदत* और *नहीं बँधूँगी* में घरेलू हिंसा के चित्र प्रकट होते हैं। घरेलू हिंसा स्त्रियों के प्रति पुरुषों की बदलती मानसिकता के कारण ही पनपती है। स्त्री के प्रति पहले जैसा भाव अब देखने को नहीं मिलता स्त्रियों को मात्र भोग्या समझा जाता है। स्त्रियों में बढ़ती जागरूकता और शिक्षा के प्रसार के कारण घरेलू हिंसा की घटनाएँ अब घरों में ही कैद होकर नहीं रह जातीं वरन् समाज के सामने प्रकट होने लगी हैं।

पति-पत्नी के सम्बन्धों में पनपता अलगाव व घरेलू हिंसा का प्रभाव परिवार और बच्चों पर भी पड़ता है। *डॉ. कामिनी* की कहानी *भोली सी आशा* की नायिका अपने पति से अतीत में मिले प्यार और वर्तमान में मिल रही उपेक्षा के बीच उलझकर अपनी बेटी के सुखद भविष्य की उम्मीद बाँधे जी रही है, *से. रा. यात्री* की कहानी *दिशाहीन* का नायक अपनी पत्नी की फिजूलखर्ची तानों और आरोपों के कारण व्यथित है, किन्तु हर बार उसे अपने बच्चों के खातिर स्थितियों से समझौता करना पड़ता है। *नीलकांत* की कहानी *कर्मजली* की मुख्य पात्र रमता को अपने पति से उपेक्षा इसलिए मिलती है क्योंकि वह अपनी कोख से पति को बेटा नहीं दे सकी और चार बेटियाँ पैदा कर दीं, रमता का पति इसी कारण खेत में मकान बनवाकर रहता है और दूसरी औरतों के साथ रातें रंगीन करता है। *आलमशाह खान* की कहानी *आँसुओं का अनुवाद* की पात्र संजू को विवाह से ही घृणा हो जाती है क्योंकि वह बचपन से ही अपने माँ-बाप के बीच अहं की लड़ाई देख रही है। *मृदुला गर्ग* के उपन्यास *कठगुलाब* की पात्र असीमा को हर मर्द 'हरामी' नजर आता है क्योंकि उसके बाप ने शारीरिक भूख की तृप्ति के लिए दूसरा ब्याह कर लिया और अपने बीबी-बच्चों को उनके हाल पर छोड़ दिया, असीमा को इसी कारण विवाह से ही नफरत हो जाती है। *कृष्णा सोबती* का उपन्यास *दिलोदानिश* आज के समाज की उस ज्वलंत समस्या से साक्षात्कार करा देता है, जो हिन्दी कथा-साहित्य से सर्वथा अछूती ही रह गई थी। यह समस्या 'घर' के बाहर 'दूसरा घर' बना लेने के कारण उपजी स्थितियों पर केन्द्रित है। विवाहेतर सम्बन्ध बना कर शारीरिक भूख की समस्या का हल तो पाया जा सकता है किन्तु इससे तमाम नई समस्याएँ उपजती हैं। पहली बात, समाज द्वारा ऐसे सम्बन्ध स्वीकार

नहीं किये जाते। दूसरे, इस सम्बन्ध के कारण पैदा हुए बच्चे अपने माँ-बाप की उच्छृंखलता का दंश जीवन पर्यन्त भोगने को बाध्य होते हैं। 'दिलोदानिश' के पात्र बदरू व मासूमा जैसे तमाम बच्चों का भविष्य अंधकारमय होता है और वर्तमान तमाम दुखों व कष्टों से भरा हुआ।

और अंत में दो उपन्यासों-*ठाकुर प्रसाद सिंह* कृत *सात घरों का गाँव* तथा *विनोद कुमार शुक्ल* कृत *दीवार में एक खिड़की रहती थी,* को समय के सत्य की कसौटी पर परखना होगा। दोनों उपन्यासों में सुखद प्रेमकथा है। *सात घरों का गाँव* में एक आदिवासी युवती मंगरी और गाँव की पाठशाला के एक युवा शिक्षक की प्रेमकथा है। उपन्यास में आदिवासी जीवन है, आदिवासियों के जीवन के, उनके संघर्ष, शोषण और उन पर होते अत्याचारों की कथा है, गाँव में अकाल भी पड़ता है, मगर इन सबसे दूर मंगरी और मास्टर अपनी दुनिया में ही खोए रहते हैं। इसी प्रकार *दीवार में एक खिड़की रहती थी* के मास्टर रघुवर प्रसाद अपनी नवविवाहिता के साथ प्रेम भाव में इतना डूब जाते हैं कि मानवेतर जीवन भी उनके प्रेम में सहभागी हो जाता है। यद्यपि रघुवर प्रसाद निम्न मध्यमवर्गीय व्यक्ति हैं, उनके समक्ष आर्थिक संकट है, महाविद्यालय से वेतन भी बहुत कम मिलता है, अपने खर्चे वहन करते हुए उन्हें अपने माँ-बाप के पास भी कुछ रुपये हर महीने भेजने होते हैं, उनके समक्ष जीवन की जटिलताएँ भी कम नहीं है, फिर भी उन पर कोई अन्तर दिखाई नहीं देता। निहायत वैयक्तिक और जटिल होते जीवन में, आज के मारकाट और भागदौड़ भरे जीवन में गरीबों और निम्न मध्यमवर्गीय लोगों की जिन्दगी इतनी जटिल और दुष्कर है कि उसमें सरलता, सहजता, सुख और प्रेम की कल्पना करना मुश्किल ही नहीं, बल्कि असंभव भी लगता है। फिर इन दोनों उपन्यासों के प्रेमी-प्रेमिकाओं के जीवन में इतनी सरलता, सहजता, प्रेम और सुख उपन्यासकारों की कल्पनाशीलता के स्तर पर तो आ सकता है, किन्तु यथार्थ के धरातल पर नहीं। अपने परिवेश में और अपने जीवन में भी इतनी जटिलता होने के बावजूद इनसे प्रभावित हुए बिना, निर्लिप्त होकर जीवन जीने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अपनी रचनात्मकता और कल्पनाशीलता के स्तर पर दोनों उपन्यास नितान्त महत्त्वपूर्ण और सराहनीय हैं, किन्तु यथार्थ के धरातल पर दोनों ही उपन्यास नहीं टिक पाते। इस संदर्भ में विचारणीय है कि कुछ वर्ष पूर्व हिन्दी कविता में 'अनागत' की परिकल्पना को इन दोनों उपन्यासों से जोड़कर देखा जाय। 'अनागत कविता' की भाँति इन दोनों उपन्यासों में भी उस सुख और मनोवांछित की प्राप्ति की कल्पना चरम बिंदु तक की गई

है, जिसे जीवन में चाहने के बावजूद पाया नहीं जा सकता।

इस प्रकार आठवें दशक के बाद के हिंदी उपन्यास और कहानियों में स्त्री-पुरुष के बीच सम्बन्धों के विविध पहलुओं को जाँचते-परखते हुए और समय के सत्य के हरावल पर कसते हुए यह कहा जा सकता है कि जितनी गहनता और विदग्धता के साथ समय के अनुरूप बदलते स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के विविध पहलू हिन्दी कहानियों और उपन्यासों में उजागर हुए हैं, वह पाठक को यथार्थ के समक्ष लाकर खड़ा कर देते हैं।

(च) व्यवस्था-विरोध :-

आठवें दशक के बाद देश की राजनीति, समाज, संस्कृति और धर्म में आए बदलाव और स्थितियों को पूर्ववर्ती उपशीर्षकों में परखते हुए हिन्दी कथा-साहित्य की समय के सत्य से निकटता को जानने-समझने का प्रयास किया गया। राजनीति, कार्यपालिका, समाज की मानसिकता, धर्म और इनसे जुड़े सभी पहलुओं के समवेत तंत्र को, जिनके बीच आदमी का जीवन चलता है, मोटे तौर पर व्यवस्था तंत्र कहा जा सकता है। आठवें दशक के बाद विविध क्षेत्रों में आए बदलाव के कारण व्यवस्था में भी बहुत बदलाव आए हैं। राजनीति की अवसरवादिता, स्वार्थी मानसिकता, भ्रष्टाचार, सरकारी विभागों और पुलिस द्वारा किये जा रहे शोषण, समाज के अन्तर्विरोध, वर्ग-विभेद, बेरोजगारी, गरीबी, आर्थिक असमानता, धर्म की संकीर्णता, धार्मिक कट्टरता, जीवन-शैली में बदलाव, जीवन में निरन्तर बढ़ती जटिलताएँ और इन सबके बीच आम आदमी की लाचारी-बेबसी जैसी तमाम बातें वर्तमान व्यवस्था की ही देन हैं। इनसे आजिज आकर व्यवस्था के प्रति उपजा विरोध भी वर्तमान की सच्चाई है। *मुद्राराक्षस* का उपन्यास *प्रपंचतंत्र* समूचे व्यवस्था तंत्र की विद्रूपताओं को खोलकर रख देता है। इसी प्रकार *तेजिन्दर* का उपन्यास हेलो सुजीत, *कृष्णा अग्निहोत्री* का उपन्यास *टपरेवाले*, *मृणाल पाण्डे* का उपन्यास *रास्तों पर भटकते हुए*, *जगदीश चंद्र* का उपन्यास *नरक कुंड में वास*, *विभूतिनारायण राय* का उपन्यास *किस्सा लोकतंत्र*, *मंजूर एहतेशाम* का उपन्यास *सूखा बरगद*, *कुलदीप बग्गा* का उपन्यास *हर आदमी का डर*, *परिपूर्णानन्द वर्मा* की कहानी *डाकू*, *कैलास चन्द्र शर्मा* की कहानी *कैक्टस के जंगल*, *शीतांशु भारद्वाज* की कहानी *मुसाफिर*, *कुन्दन सिंह परिहार* की कहानियों *नई सदी का आदमी* व *दरिद्रनारायण*, *विश्वमोहन* की कहानी *आदमखोर* तथा *हम बीस सूत्रीय कार्यक्रम का समर्थन करते हैं*, *नीलकांत* की कहानी

अनसुनी चीख, *कैलास वानखेड़े* की कहानी *स्कालरशिप*, *शैलेश मटियानी* की कहानी *अहिंसा*, *मधुकर सिंह* की कहानी *कालचक्र कथा*, *जितेन्द्र भाटिया* की कहानी *राजरोग*, *अरुण प्रकाश* की कहानी *जल प्रान्तर*, *देवेन्द्र सिंह* की कहानी *सूली पर टँगा सत्य*, और *शीतांशु भारद्वाज* की कहानी *धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र* आदि में समूची व्यवस्था के विद्रूपों के कारण उपजी स्थितियों का व्यापक चित्रण किया गया है इसके साथ ही इन विद्रूपों और विकृतियों के बीच जीने की आम आदमी की मजबूरी का भी बेबाक चित्रण इन उपन्यास और कहानियों में हुआ है। चाहे राजनीति हो, सरकारी-गैर सरकारी कार्यालय व कर्मचारी हों, समाज या धर्म की विसंगतियाँ हों या फिर जीवन की दुश्वारियों से जुड़ा कोई भी पहलू हो, लगभग सभी कुछ इन उपन्यास और कहानियों में प्रकट हो गया है।

आज के जीवन में जटिलताएँ हर जगह, हर स्तर पर मुँह फैलाए खड़ी हैं। गरीबी, बेकारी, जातीय और आर्थिक असमानता जैसी बड़ी समस्याओं के साथ ही दैनन्दिन जीवन के हर स्तर पर व्यवस्था के तंत्र से, व्यवस्था की विद्रूपता से जूझना आम आदमी की नियति बन गई है। आज प्रत्येक कार्यालय में घूसखोरी, भ्रष्टाचार और लालफीताशाही हावी है, पुलिसिया उत्पीड़न आम आदमी को जबरदस्ती अपराधी बना रहा है, जबकि अपराधियों की पुलिस से साठगाँठ जगजाहिर है; पुलिस व राजनीति के संरक्षण में गुण्डे व अपराधी सक्रिय हैं; गरीब लगातार गरीब होते जा रहे हैं जबकि अमीरों की जेब वजनी होती जा रही है; भुखमरी के हालात बढ़ते जा रहे हैं; चिकित्सा, स्वास्थ्य, शिक्षा और रोजगार जैसी मूलभूत जरूरतें आज भी देश की बहुसंख्य जनता की पहुँच से दूर हैं; इन मूलभूत सेवाओं को उपलब्ध कराने के नाम पर भी राजनीति खेली जा रही है; मुनाफाखोर, दलाल और धोखेबाज लोग सक्रिय हैं; धर्म के नाम पर राजनीति और राजनीति के नाम पर धर्म के दुरूपयोग के कारण जटिलताएँ बढ़ी है; शोषण बढ़ा है; देश के राजनीतिक नेतृत्व की अदूरदर्शिता के दुष्परिणाम अब खुलकर दिखने लगे हैं; बढ़ती महँगाई की मार से आहत लोगों को दो जून की रोटी के लिए अपने गाँव-घर से पलायन के लिए मजबूर होना पड़ रहा है, विकास के अन्तर्विरोध उपज रहे हैं; विशाल भवनों व परियोजनाओं के निर्माण की कीमत गरीबों को भूमिहीन होकर, बेरोजगार होकर चुकानी पड़ रही है; आदर्श व सिद्धान्त न केवल अप्रासंगिक हो गए हैं वरन् आदर्शवादी और सिद्धान्तवादी बने रहकर जीना भी दूभर हो गया है। वर्तमान व्यवस्था तंत्र की बात करें तो यही तमाम विसंगतियाँ, विद्रूपताएँ

उभरकर सामने आती हैं। उपेक्षा, शोषण और नारकीय जीवन की त्रासद यंत्रणाओं को भोगते हुए व्यवस्था के प्रति विरोध उपजना स्वाभाविक है। यह व्यवस्था विरोध कहीं वैयक्तिक रूप से तो कहीं पर सामूहिक रूप से आठवें दशक के बाद के हिंदी उपन्यास और कहानियों में यथार्थ से पूरी निकटता के साथ प्रकट होता है।

विविध उपन्यासों और कहानियों को परखने से पूर्व वीरेन्द्र जैन के उपन्यास 'डूब' की चर्चा करना यहाँ पर आवश्यक होगा क्योंकि इस उपन्यास में समूची जनता एकजुट होकर व्यवस्था के विद्रूप और विकास के कारण उपजी दुष्कर स्थितियों से संघर्ष करती है। बाँध बनने के कारण बेघर हुई जनता की लड़ाई एक ओर समूचे व्यवस्था तंत्र से है तो दूसरी ओर विकास के कारण उपजे अन्तर्विरोधों से भी है। यह लड़ाई बाँध परियोजना तक ही सीमित नहीं है वरन् राजनीतिक नेतृत्व की अदूरदर्शिता, अनियोजित विकास व छलनीति के खिलाफ भी है, जो बाँध परियोजना जैसी विकास की तमाम योजनाओं की कलई खोल देती है। उपन्यास का पात्र माते तो मानो तारनहार है- आज के तमाम भूमिहीनों, विस्थापितों, बेघरों और गरीबों का। यह उपन्यास निःसन्देह जनता की आँख से आज के सत्य को, यथार्थ को देखता है।

इसी प्रकार का एक और उपन्यास है- *राजेन्द्र मोहन भटनागर* का *अंतिम सत्याग्रही*। उपन्यास का नायक भील नगारा वास्तव में अंतिम सत्याग्रही है क्योंकि व्यवस्था के विद्रूपों के खिलाफ संघर्ष में न तो उसका कोई सानी है और न ही व्यवस्था व उससे जुड़े लोग ऐसे आदर्शवादी, सिद्धान्तवादी व्यक्ति को पचा पाते हैं, लिहाजा वह मार डाला जाता है। भील नगारा की मौत प्रतीकात्मक रूप से उस निषेध तंत्र की, संघर्षशीलता और सैद्धान्तिकता की मौत है, सत्य का आग्रह करने की क्षमता का अंत है, जो बेलगाम व्यवस्था व उसके विद्रूपों का डटकर मुकाबला करने में सक्षम है।

वल्लभ सिद्धार्थ का उपन्यास 'कठघरे' भी बहुत महत्त्वपूर्ण उपन्यास है, जिसमें पतनशील समाज की त्रासदियाँ, लोकतंत्र का विनाश, व्यवस्था की विकृतियाँ और जनता की निराशा, सब कुछ इतनी गहरी संवेदना और यथार्थपरकता के साथ प्रकट होता है कि वर्तमान यथार्थ से, समय के सत्य से मुँह फेरकर भाग पाना सम्भव नहीं रह जाता। समय और समाज के इस चुनौती भरे, संवेदनशील वृत्तान्त में सुखद भविष्य के खातिर संघर्ष के प्रति गहरे विश्वास को भी सहज ही पाया जा सकता है। यह विश्वास भीषण पतन के बीच खड़े, त्रासदियों और यातनाओं को भोग

रहे आम आदमी को आगे की राह दिखाता है, जीवन की जिजीविषा को जिलाए रखता है।

मृणाल पाण्डे का उपन्यास *रास्तों पर भटकते हुए; जगदीश चन्द्र* का उपन्यास *नरक कुंड में वास; संजीव* के उपन्यास *जंगल जहाँ शुरू होता है* व *सावधान! नीचे आग है* और *विभूति नारायण राय* का उपन्यास *किस्सा लोकतंत्र* भी उल्लेखनीय हैं, जिनमें व्यवस्था के सभी पहलुओं का, शोषण की तमाम स्थितियों का चित्रण किया गया है, साथ ही संघर्ष के खातिर तैयार होती जमीन को भी प्रस्तुत किया गया है। ऐसे उपन्यास बदलाव के संक्रान्ति काल में खड़े लोगों की मानसिकता और संघर्षशीलता को भी उजागर करते हैं। व्यवस्था तंत्र की विकृतियों के बीच जीते और भोगते हुए आज प्रत्येक व्यक्ति के भीतर एक लावा उबल रहा है और लगातार उस चरम बिंदु की ओर बढ़ता जा रहा है, जहाँ यह लावा फटकर समूची व्यवस्था को पलट कर रख देगा।

यह विरोध और संघर्षशीलता आठवें दशक के बाद की कहानियों में भी दिखाई देती है। *परिपूर्णानन्द वर्मा* की कहानी *डाकू* का स्वतंत्रता संग्राम सेनानी चारों ओर भ्रष्टाचार को देखकर खुद भी भ्रष्ट हो जाता है, अपराधियों की संगत पाकर डाकू हो जाता है मगर अपने उसूलों को नहीं छोडता। *ऋता शुक्ला* की कहानी *बिसात* की गंगा देवी सरकारी तंत्र के भ्रष्टाचार से आजिज आकर पति के मरणोपरांत मिले वीरता पदक को लेने से इंकार कर देती है। साथ ही *हृदयेश* की कहानी *घिराव, धर्मेन्द्र देव* की कहानी *संघर्ष* और *विलास गुप्ते* की कहानी *क्रमशः विश्वमित्र* में बदलाव आने के विश्वास तथा परिवर्तनकामी आस्था के स्वर सुनाई देते हैं।

शैलेश मटियानी की कहानी *अहिंसा* का पात्र जगेसर अपने साथ होने वाले अन्याय और आर्थिक शोषण से टक्कर संघर्ष करता है और अंततः हिंसा में उतर आता है और डाक्टर गुदौलिया को मार डालता है। *सतीश जमाली* की कहानी *अर्थतंत्र* में राजनीतिक नेतृत्व के खिलाफ उपजे जनाक्रोश को उजागर किया गया है। कहानी के पात्र को प्रधानमंत्री का कातिल समझे जाने पर क्षोभ नहीं, बल्कि गर्व महसूस होता है। *यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'* की कहानी *बदलाव* में स्वार्थी नेताओं के प्रति जनता की मानसिकता में आए बदलाव को प्रकट किया गया है। जनता अपने कष्टों और मूलभूत आवश्यकताओं के अभाव का एहसास कराने के लिए नेता जी की जीप की पेट्रोल टंकी में बालू भर देती है। *विश्वमोहन* की कहानी *लोहा लोहे को*

काटता है, *शीतांशु भारद्वाज* की कहानी *राष्ट्रभक्त*, *अरुण प्रकाश* की *ये अधूरी कहानी*, *ओम भारती* की कहानी *बदअमनी*, *स्वयं प्रकाश* की कहानी *उल्टा पहाड*, *रत्नकुमार सांभरिया* की कहानी *आखेट*, *अनिल कुमार सिन्हा* की कहानी *एक क्लर्क की मौत*, *राजेश शर्मा* की कहानी *अण्डर अबव सरकमस्ट्रान्सेज*, *धनेश्वर प्रसाद* की कहानी *छटपटाहट*, *सतीश जमाली* की कहानी *गोली बन्दूक से निकलती है*, *मदन मोहन* की कहानी *बच्चे बड़े हो रहे हैं*, *मिथिलेश्वर* की कहानी *मेघना का निर्णय*, *चन्द्रमोहन प्रधान* की कहानी *एहि नगरिया में केहि विधि रहना*, *सतीश जमाली* की कहानी *ठाकुर संवाद*, *अरुण प्रकाश* की कहानी *मँझधार किनारे*, *सी. भास्कर राव* की कहानी *दौडते रहो दंडपाणि*, *गिरिराज किशोर* की कहानी *वल्द रोजी* और *चित्रा मुद्‌गल* की कहानी *जनावर* आदि में व्यवस्था के प्रति विरोध के सशक्त स्वर उभरते हैं।

सृंजय की कहानी *कामरेड का कोट* और *राजेन्द्र राव* की कहानी *जहाज* का अलग से उल्लेख करना यहाँ पर आवश्यक होगा क्योंकि इन दोनों कहानियों में संघर्षशीलता का जो स्वरूप दिखाई देता है, वह वास्तव में अद्‌भुत और प्रेरणापरक है। पहली कहानी राजनीति से सम्बन्धित है तो दूसरी सरकारी तंत्र से। दोनों ही कहानियों के प्रमुख पात्रों में एक समानता है कि वे अपने संघर्ष से पीछे नहीं हटते और तमाम कष्ट व हानि उठाने के बावजूद डटे रहते हैं, हालाँकि अपने संघर्ष से और विद्रोही मानसिकता से हटने पर उनके लिए कई प्रकार के लाभ व अवसर उपलब्ध हैं, यह बात जानने के बावजूद उनकी संघर्षशीलता में कोई कमी नहीं आती, विद्रोही मानसिकता में कोई बदलाव नहीं आता। कामरेड का कोट कहानी का कामरेड कमलाकांत उपाध्याय ग्रामीण स्तर का कार्यकर्ता है। उसने ग्रामीणों के शोषण को न केवल देखा है वरन् भोगा भी है। वह अपने शीर्ष नेतृत्व को संघर्ष के लिए प्रेरित करता है, किन्तु वरिष्ठ नेतागण बिना किसी विरोध और संघर्ष के अपनी राजनीति चमकाना चाहते हैं। ग्रामीण कार्यकर्ताओं की उपेक्षा व वरिष्ठ नेताओं की कोरी भाषणबाजी, अवसरवादिता और सिद्धान्तविहीनता ने कमलाकांत को अपने नेतृत्व के प्रति विद्रोह के लिए प्रेरित किया और वह अपने बूते पर संघर्ष करने को उद्यत हो जाता है। दूसरी कहानी 'जहाज' का मुख्य पात्र जहाज अपनी उच्च शिक्षा और योग्यता के बावजूद मामूली नौकरी करता है। उसके विभाग में भ्रष्टाचार है, चापलूसी और स्वार्थी मानसिकता है, आपसी भेदभाव और षड़यंत्र हैं। वह इन सबसे लड़ता है। उसके विरोध और विद्रोही

मानसिकता के कारण आला अफसर उससे नाखुश रहते हैं, आशंकित रहते हैं इस कारण उसकी पदोन्नति नहीं हो पाती, उसकी स्थिति ज्यों-की-त्यों ही बनी रहती है। किन्तु वह अपने संघर्ष, विरोध और विद्रोही मानसिकता से पीछे नहीं हटता। चाहे राजनीति हो या सरकारी तंत्र हो इस तरह के चरित्र दोनों ही जगह दिखाई नहीं देते। अपवाद स्वरूप भले ही ऐसे इक्के-दुक्के लोग दिखाई दे जाएँ तो अलग बात है। आजकल हर कोई लाभ कमाना चाहता है। नौकरी और राजनीतिक तरक्की के लिए आदर्श और सिद्धान्त बहुत बड़ी रुकावट है, यह वर्तमान की हकीकत है। राजनीति में आने वाला अदना सा कार्यकर्ता भी जानता है कि सिद्धान्तों को सहेज कर तरक्की नहीं की जा सकती। यही स्थिति नौकरियों में भी है। इसके बावजूद अपवाद के स्वरूप में ही सही, ऐसे लोग भी हैं जो अपने सिद्धान्तों को, अपनी संघर्षशीलता और स्वाभिमान को किसी भी कीमत पर मरने नहीं देना चाहते।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आजादी के बाद निरन्तर बिगडती गई स्थितियों ने विभिन्न प्रकार से व्यवस्था के विद्रूपों को जन्म दिया और इनके कारण आम आदमी का जीवन दूभर होने लगा तब व्यवस्था के विरोध की जमीन भी तैयार होने लगी। आठवें दशक के बाद जिस प्रकार समाज में व्यवस्था के विद्रूपों के खिलाफ संघर्ष प्रकट होने लगा, लगभग उसी तरह इस दौर की कहानियों और उपन्यासों में भी व्यवस्था के विरोध के स्वर मुखरित होने लगे। व्यवस्था के विरोध पर केन्द्रित कई बेहतरीन उपन्यास और कहानियाँ इस दौर में रची गई जिनमें से कई उपन्यास और कहानियाँ इसी प्रस्तुतीकरण के कारण ही चर्चा में रहीं और आज भी हैं।

(छ) बदलती मानसिकता :-

आज की छीन-झपट और मारामारी भरी जिन्दगी में जहाँ आदमी लगातार पिट रहा है और परिस्थितियों से, व्यवस्था के विद्रूपों से निरन्तर संघर्ष करते हुए अकेला पड़ता जा रहा है, महत्त्वाकांक्षाएँ और सुखद भविष्य की कामनाएँ लगातार दौड़ने के लिए बाध्य कर रही हैं। इन सबके कारण घर हो या बाहर हर जगह तनावपूर्ण स्थितियाँ, असहजता, अन्तर्द्वन्द्व, एकाकीपन, विक्षिप्तता, भयग्रस्तता, चिन्तातुरता और मानसिक उद्वेग का उपजना स्वाभाविक है। भूमण्डलीकरण और बाज़ारीकरण के दुष्प्रभावों के कारण स्थितियाँ और अधिक खराब हो गई हैं। इस संदर्भ में *मो. आरिफ* की कहानी *पापा का चेहरा* का उल्लेख किया जा सकता है। क्लर्क की नौकरी करने वाले पापा के ऊपर विज्ञापनों और फिल्मी ग्लैमर का ऐसा भूत सवार है कि वह अपनी

षोडशी की बेटी को सानिया मिर्ज़ा जैसा बनाने के लिए अपनी बेटी सोनल पर इतना अधिक मानसिक दबाव डालता है कि सोनल हीन भावना और घृणा से भरकर अपनी पढ़ाई छोड़ देती है, अपनी जाँघें नोच डालती है। इसी प्रकार *मृदुला गर्ग* की कहानी *शहर के नाम* का बप्पा अपनी बेटी पर अपनी महत्त्वाकांक्षा, इज्जत और संवेदनाएँ इस कदर लाद देता है कि बेटी मानसिक अशांति, उलझन और एकाकीपन का शिकार हो जाती है। व्यक्ति की महत्त्वकांक्षाएँ असीमित हैं और संसाधन सीमित हैं लिहाजा ऐसी मनोदशा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। प्रतिस्पर्धा, होड़ और दिखावेबाजी के कारण भी ऐसी मनोविकृतियाँ उपजती हैं। यहाँ पर मनोविश्लेणवाद के जन्मदाता फ्रायड का विचार सटीक बैठता है। फ्रायड का मत है कि- मनुष्य की मूल प्रवृत्तिजन्य कामनाओं और बाह्य परिवेश के मध्य निरंतर चलने वाले संघर्ष में जब मनुष्य का अहं संतुलन नहीं बिठा पाता तब मनुष्य में मानसिक असामान्यता उपजती है। यह असामान्यता किसी भी रूप में यथा- समाज विरोधी आचरण, यौन विकृति, अपराध या फिर मनोरोग के रूप में प्रकट होती है। आजकल तमाम अपराध मनोविकृतियों के कारण ही हो रहे हैं। इसके साथ ही मानसिक रोगियों की संख्या में भी इजाफा हुआ है।

हिन्दी कथा-साहित्य में ऐसे मनोविकृत और मानसिक रूप से असामान्य हो गए लोगों के साथ ही उन परिस्थितियों को भी उजागर करने का प्रयास किया गया है, जो इन स्थितियों के लिए उत्तरदायी होती हैं। *रमेशचन्द्र शाह* के उपन्यास *किस्सा गुलाम* का नायक अपने दलित समाज के लोगों की दयनीयता और उपेक्षा से इतना आहत हो जाता है कि शोकमग्न रहने लगता है और विद्रोह पर उतर आता है *हिमांशु जोशी* के उपन्यास *सु-राज* के बूढ़े काका की बेचैनी और मानसिक उद्विग्नता समाज, धर्म, राजनीति व संस्कृति में आते बदलाव और नैतिक पतन के कारण उपजी है; *विजयमोहन सिंह* के उपन्यास *कोई वीरानी सी वीरानी है* का नायक विवेक अकेलेपन और खालीपन का शिकार होकर एकाकी और खामखयाल हो गया है, अपनी ही खोज में वह परिचितों व मित्रों के बीच खुद को असहज महसूस करता है, स्त्रियों के प्रति अजीब आकर्षक है। धर्म, राजनीति व संस्कृति में आते बदलाव और नैतिक पतन के कारण उपजी है, *विजयमोहन सिंह* के उपन्यास *कोई वीरानी सी वीरानी है* का नायक विवेक अकेलेपन और खालीपन का शिकार होकर एकाकी और खामखयाल हो गया है, अपनी ही खोज में वह परिचितों व मित्रों के बीच खुद को असहज महसूस करता है, स्त्रियों के प्रति अजीब

आकर्षण है जिसे न तो प्रेम कहा जा सकता है और न ही वासना।

शैलेश मटियानी की कहानी *सदाशयी बाबू* में हर क्षण अपशकुन और अनहोनी से भयाक्रान्त और मानसिक उथल-पुथल में ही उलझे रहने वाले व्यक्ति की कथा है, *कैलासचन्द्र शर्मा* की कहानी *हादसे* का नायक बम धमाकों की खबर सुनते-सुनते इतना भयाक्रान्त हो गया है कि उसे हर जगह साजिश रचे जाने की शंका नजर आती है और इस कारण वह पागलों जैसी हरकत करने से भी बाज नहीं आता, *हिमांशु जोशी* की कहानी *अंतराल* का नायक तुल'दा हर जगह खुद को अजनबी पाता है इस कारण वह गाँव और शहर के बीच भटकता रहता है। *रक्षा शुक्ला* की कहानी *अजनबियों के बीच* और *अचला नागर* की कहानी *बोल मेरी मछली* की नायिकाओं को प्रत्येक व्यक्ति स्वार्थी नजर आता है और इस कारण वे हर जगह खुद को अजनबी महसूस करतीं हैं। *डॉ. जगदीश महाजन* की कहानी *इस दर्द की दवा तुम नहीं हो* की नायिका विमला अपनी शिक्षा और पदवी के घमण्ड व अहं के कारण मानसिक तौर पर अपने माँ-बाप से अलग हो जाती है और कृष्ण भावुक की कहानी 'तनाव' में दो पीढ़ियों के बीच अन्तर के कारण मानसिक अंतर्विरोधों का जन्म होता है। मानसिक उद्वेलन और असामान्यता को चिंतन व दर्शन के नजरिए से देखते हुए इन्दिरा मोहन लिखती हैं कि "हमारे देश की बुनावट भी बदली है। मूल्यों की आस्था हाशिये पर सकपकायी खड़ी है, नैतिकता को वनवास मिल गया है। निजता को पीसकर प्रसाधन बनाने वाली सभ्यता पनप रही है, जिसमें न स्पर्श की ऊष्मा है, न गंध की शीतलता। बुद्धि ने हृदय पक्ष और भावना पक्ष को सुखा दिया है। मानसिक शक्तियाँ विकसित हुई, पर वे उस अहं की चेरी हो गयीं, जो स्वयं इच्छाओं और वासनाओं के हाथ की कठपुतली है- साधनों-सुविधाओं को बीच एकाकी मन शंका, निराशा और अवसाद से घिरा भोग की ज्वाला में जल रहा है।"[23]

संयुक्त परिवारों की समाप्ति के साथ ही परिवारों के सिमटते दायरे, पारिवारिक भावना व आपसी समर्पण-सामंजस्य में होते निरंतर ह्रास, आधुनिकता, भौतिकता के प्रसार के साथ ही पति और पत्नी के पृथक स्वतंत्र अस्तित्व की स्थापना जैसे तमाम कारणों से मानसिक अशांति, आवेग और अस्थिरता पैदा होती है। *कुलदीप बग्गा* के उपन्यास *हर आदमी का डर* का पात्र शंकर अपनी पत्नी के चरित्र को लेकर चिंतित और तनावग्रस्त रहता है, *मृदुला गर्ग* के उपन्यास *वंशज* में बाप-बेटे के बीच वैचारिक भिन्नताएँ परिवार को असहज स्थितियों में डाल देती हैं;

मधु काँकरिया के उपन्यास *पत्ताखोर* में पारिवारिक विघटन और टकराव के कारण मानसिक अन्तर्द्वन्द्व से जूझ रहे युवा नशाखोरी की गिरफ्त में आ जाते हैं, *सी. दास बांसल* की कहानी *धुएँ भरा घर* में धुआँ मानसिक अशान्ति का है, जो वैचारिक भिन्नता, पारिवारिक कलह और ऊब के कारण पैदा हुआ है, *यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'* की कहानी *जीवन का गणित* व *सतीश जायसवाल* की कहानी *तापमान* पारिवारिक और मैत्री सम्बन्धों में व्यावसायिक और स्वार्थी मनोवृत्ति के विकसित हो जाने की स्थितियों को उजागर करती है, *गज़ाला ज़ैग़म* की कहानी *नेक परवीन* और *डॉ. कामिनी* की कहानी *टूटी हुई चूड़ियाँ* पति-पत्नी के बीच पनपते अविश्वास के कारण उपजी मानसिक अशांति, आक्रोश और उद्वेलन के कारण बिना सोचे-समझे निर्णय ले लेने की स्थितियाँ उजागर करती हैं और *भीष्म साहनी* की कहानी *देवेन* में यथार्थ जीवन की परेशानियों और परिस्थितियों से डरकर भागने तथा मानसिक रूप से असंतुलित और उद्वेलित हो जाने के कारण निश्चय और अनिश्चय के बीच निरन्तर भटकाव को उजागर करती है। इन उपन्यासों और कहानियों में प्रकट हुए मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, टकराव और विक्षिप्तता जैसी स्थितियाँ वर्तमान जीवन की जटिलताओं, संघर्षों, परिस्थितियों और भविष्य के प्रति चिन्ता के कारण उपजी हैं। अपने आसपास दैनन्दिन जीवन में ऐसे तमाम लोग मिलते हैं, जो मानसिक रुग्णता के शिकार होते हैं। इनमें से बहुत ऐसे भी होते हैं जिन्हें साधारणतया पहचाना नहीं जा सकता, किन्तु उनके बोलचाल, हरकतों और आदतों द्वारा उनकी मानसिक रुग्णता व असामान्यता प्रकट हो ही जाती है।

मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास *हरिया हरक्यूलीज़ की हैरानी* का मुख्य पात्र हरिदत्त तिवारी उर्फ हरिया ऊपरी तौर पर साधारण आदमी दिखाई देता है, किन्तु वह मानसिक रूप से असामान्य है। वह असामान्य इस कारण है कि उसकी अपनी बँधी बँधाई जिन्दगी है, जिसमें वह लगातार चल रहा है। उसकी निज़ी दुनिया से इतर कोई ज्ञान उसको नहीं है। जब तक उसे दुनियावी ज्ञान नहीं होता तब तक उसे कोई हैरानी भी नहीं होती। दुनियादारी का ज्ञान पनपने के साथ ही उसके अंदर हैरानी, बेचैनी, जिज्ञासा और उद्विग्नता भी पैदा हो जाती है। वह पहले असामान्य था या दुनियावी ज्ञान पाकर असामान्य हो गया, इसका आकलन भले ही कठिन हो, किन्तु यथार्थ से उपन्यास की निकटता का प्रश्न जरूर खड़ा होता है। आज के दौर में शिक्षा व संचार माध्यमों के विकास ने वह तमाम 'बातें' छोटे-छोटे बच्चों की जानकारी के लिए भी

सुलभ कर दी हैं, जिनसे हरिदत्त उर्फ हरिया चालीस वर्षों तक अनजान बना रहा। यह अनभिज्ञता सहज नहीं, बल्कि सायास ओढ़ी हुई लगती है जो उपन्यास को यथार्थ से दूर कर देती है। दुनियादारी की तमाम बातें निःसन्देह हैरानी का सबब बन जाती हैं मगर चालीस वर्षों तक इस हैरानी से बचकर भी नहीं रहा जा सकता है।

आठवें दशक के बाद के हिन्दी उपन्यास और कहानियों में प्रकट हुए मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, आक्रोश, असहजता, बेचैनी, भय और उद्विग्नता जैसे तमाम लक्षण इस दौर के जटिल जीवन की, विद्रूपताओं और बदलाव की देन है। साठोत्तरी हिंदी कथा-साहित्य में भी ऊब, चिढ़, संत्रास, मानसिक टकराव जैसी 'थीम' बहुतायत में दिखाई देती थी, किन्तु इस दौर के कथा-साहित्य को इससे अलग रखा जा सकता है, क्योंकि जितनी यथार्थपरकता, सत्य से निकटता और खुलेपन के साथ मानव-मन में हो रही हलचल को पढ़ने का काम आठवें दशक के बाद के हिंदी कथा-साहित्य ने किया है, उतना संभवतः पहले कभी नहीं हुआ।

(ज) लिंगभेद एवं स्त्रियों के अधिकार :-

तमाम बदलावों के बावजूद स्त्रियों की दशा में अपेक्षित सुधार नहीं हुआ है। आज भी स्त्री-पुरुष असमानता हमारी व्यवस्था में, समाज में बदस्तूर जारी है। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार प्रति एक हजार पुरुष पर 932 स्त्रियाँ हैं। विज्ञान ने इस असमानता को कम करने के बजाय बढ़ाया है, भ्रूण हत्याओं के मामले अब बहुतायत में सामने आने लगे हैं। "भ्रूण हत्या से कन्या बच भी जाए तो जीवन भर यौन शोषण और अन्य प्रकार की सामाजिक, मानसिक हिंसा का सतत खतरा। उद्‌बोधन, आंदोलन और स्वयंसेवी संगठनों के प्रयासों के बावजूद परिणाम वही ढाक के तीन पात। वजह वही एक सामान्य स्त्री-पुरुष से लेकर विशिष्ट व्यक्तियों (बुद्धिजीवी, आंदोलनकर्ता, राजनेता) द्वारा पितृसत्तात्मक व्यवस्था का आंतरिकीकरण। इसलिए हैरत नहीं होती जब 48 प्रतिशत न्यायाधीश पत्नी की पिटाई को जायज मानते हैं और 74 प्रतिशत जज घरेलू हिंसा का शिकार होने के बाद भी स्त्री से घर संभालने की एकनिष्ठा के आकांक्षी हैं।"[24] यह प्रताड़ना और लिंगभेद घर के बाहर, कार्यक्षेत्र में, हर जगह है। *चन्द्रकान्ता* की कहानी *गंगा से गंगोत्री तक* और *अचला नागर* की कहानी *बोलो माँ बोलो* लिंगभेद की इस मानसिकता पर करारा प्रहार करती है। कामकाजी महिलाएँ और राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय महिलाएँ अपने अस्तित्व के लिए हर जगह, हर स्तर पर संघर्ष कर रही हैं और पुरुष समाज

के शोषण व उपेक्षा को भोग भी रहीं हैं।

कामकाजी महिलाएँ चाहे वह सरकारी नौकरी में हों या गैर सरकारी, संगठित क्षेत्र में हों या असंगठित और ग्रामीण कुटीर रोजगार से जुड़ी हों, स्थितियाँ कमोबेश एक सी ही हैं। इस संदर्भ में लता शर्मा लिखती हैं कि ''पति-पत्नी दोनों नौकरी करते हैं। लेन-देन, जमा खर्च का हिसाब क्या परमेश्वर के हाथ में! कहाँ निवेश करना है क्या खरीद बेच करनी है, सब निर्णय वही लेंगे। जरूरत पड़ने पर ऋण भी स्त्री लेगी और वही चुकाएगी। भला बताइए! औरत के कमाने का क्या फायदा अगर वह अपनी कमाई अपने पास ही रखने लगे। नौकरी करने पर भी स्त्री को आर्थिक स्वतंत्रता नहीं मिली। उसकी कमाई पर सबकी निगाह रहती है, सबको उससे सहायता रहती है और शाम को रोटी पानी (किसी भी तरह) भी वही जुटाएगी। कैसी स्वतंत्रता है यह ?''[25] यह बात महज स्वतंत्रता की ही नहीं, असमानता की भी है। पुरुषवादी मानसिकता से उपजी यह असमानता कार्यालयों में भी दिखती है। सहकर्मी चाहे युवा हो या वृद्ध, स्त्री को भोगना चाहता है, उसे दबाकर रखना चाहता है। *क्षमा शर्मा* की कहानी *कमीज पहन रहा है जैक द रिपर; डॉ. जगदीश महाजन* की कहानी *ये मेरे हितैषी, यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'* की कहानी *लुगाईजात, दिनेश पालीवाल* की कहानी *चुभन, मालती जोशी* की कहानी *आखिरी सौगात, राजेश शर्मा* की कहानी *अण्डर अबव सरकमरट्रान्सेज* और *नीरजा माधव* की कहानी *हव्वा* में इसी मानसिकता को उजागर किया गया है।

पुन्नी सिंह की कहानी *इस इलाके की सबसे कीमती औरत, राजेन्द्र यादव* की कहानी *हासिल, महेन्द्र वशिष्ठ* की कहानी *सोचो सलमा सोचो, डॉ. मनीषा शर्मा* के उपन्यास *अँधियारे उजियारे, क्षमा शर्मा* के उपन्यास *मोबाइल,* ज्ञान प्रकाश विवेक का उपन्यास *अस्तित्व,* प्रमोद कुमार तिवारी के उपन्यास *डर हमारी जेबों* में, मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास *चाक,* रजनी गुप्ता के उपन्यास *किशोरी का आसमाँ*, *सुरेन्द्र वर्मा* के उपन्यास *मुझे चाँद चाहिए* और *उषा यादव* के उपन्यास *कथांतर* में स्त्रियों के प्रति असमानता के भाव और लिंगभेद के विविध आयामों सहित स्त्रियों के दैहिक, आर्थिक और मानसिक शोषण की विभिन्न स्थितियाँ उजागर हुई है। शोषण की यह स्थितियाँ स्त्री-पुरुष असमानता के कारण ही पैदा हुई हैं, जिनमें युवा और अधेड़ तो दूर वृद्ध भी पीछे नहीं रहते। *शमोएल अहमद* की कहानी *ऊँट* में बताया गया है कि स्त्री की मजबूरियों का लाभ उठाने, दैहिक शोषण करने और

अपने बचाव के लिए स्त्री की हत्या तक कर डालने में धर्म आड़े नहीं आता। तमाम धर्मस्थल और इनसे जुड़े लोगों का बाकायदा तंत्र है, जो स्त्री और पुरुष के लिए अलग-अलग धर्म की, नीति की बातें बतलाकर असमानता को बढ़ावा देता है साथ ही स्त्रियों के शारीरिक शोषण के अवसरों को भी नहीं छोड़ता। तमाम समाचार पत्रों में आए दिन ऐसी घटनाएँ छपती रहती हैं।

राजनीति के क्षेत्र में भी महिलाओं को उपेक्षा और असमानता का शिकार होना पड़ता है। राजनीति में आज भी पुरुष वर्ग का वर्चस्व है, जिस कारण महिलाएँ उपेक्षित ही रहती हैं और यौन शोषण का शिकार भी हो जाती हैं। इस संदर्भ में प्रख्यात साहित्यकार और पत्रकार मृणाल पाण्डे लिखती हैं कि "राजनीतिक दलों के भीतर पुरुषों से शुरू होकर उन्हीं पर खत्म होने का यह वरीयता क्रम तथा महिलाओं की उपेक्षा आज के नहीं हैं। 1991 के लोकसभा चुनावों के कुछ आँकड़े, जो हमें चुनाव आयोग से प्राप्त हुए, इसी क्षेत्र की अन्य गंभीर सचाइयाँ रेखांकित करते हैं। 1991 में पंजीकृत मतदाताओं में पुरुषों की तादाद दो करोड़ बासठ लाख तथा स्त्रियों की संख्या दो करोड़ छत्तीस लाख दर्ज की गई है। इसमें से मतदान करने वाले पुरुषों का राष्ट्रीय प्रतिशत 61 तथा स्त्रियों का 51 प्रतिशत पाया गया। इस चुनाव में कुल 8699 प्रत्याशी खड़े किये गए, जिनमें से मात्र 325 महिलाएँ थीं। चुनाव में जीतने वाले पुरुषों की संख्या 482 तथा औरतों की 35 थी (चार महिलाएँ बाद को चुनी जाकर लोकसभा में आईं) अर्थ साफ है। मतदान करने वालों की तादाद की कसौटी पर औरतों और मर्दों की बीच जरूर हल्का-सा फर्क दीखता है लेकिन प्रत्याशी के रूप में चुनावों में खड़े होने वाले स्त्री-पुरुषों के अनुपात में जमीन-आसमान का अंतर नजर आता है।"[26] सन् 1991 से अब तक के बीच में हालात कमोबेश वैसे ही हैं। महिलाओं को तैंतीस प्रतिशत आरक्षण दिये जाने का मुद्दा राजनीतिक बुखार की तरह चढ़ता-उतरता रहता है। तैंतीस प्रतिशत आरक्षण के विषय में राजनीतिक दलों की आपसी खींचतान तो दिखावे के लिए है असली खेल तो नेपथ्य के पीछे पुरुषवादी मानसिकता का है, जो स्त्रियों को बराबरी का दर्जा मिलने की चिंता से ग्रस्त है। हिन्दी कथा-साहित्य ने राजनीति के क्षेत्र में कार्यरत और नवागन्तुक महिलाओं के प्रति बरती जा रही उपेक्षा, असमानता और शोषण को केन्द्र में रखकर कई बहुचर्चित और प्रभावशाली कृतियाँ दी हैं। *राजकृष्ण मिश्र* का उपन्यास *दारूलशफा*, *क्रान्ति त्रिवेदी* का उपन्यास *यह हार नहीं*, *राजेन्द्र मोहन भटनागर* की कहानियों *उत्तराधिकारी की तलाश* व *एक दूसरी जिन्दगी के लिए* आदि का

उल्लेख इस संदर्भ में किया जा सकता है। *दयानंद पाण्डेय* की कहानी *देह-दंश*, *राजाराम सिंह* की कहानी *विवर्ण*, *धर्मेन्द्र देव* की कहानी *गुल्लू बाबू जिन्दाबाद*, *विश्वमोहन* की कहानी *मंत्री की बेटी* और *विभांशु दिव्याल* की कहानी *तंत्र* में राजनीतिक नेतृत्व का ऐसा रूप प्रकट होता है जो महिलाओं को महज अपने मन बहलाने का साधन समझता है, महिलाओं की मजबूरी का लाभ उठाता है और अपनी तरक्की के लिए महिलाओं का 'उपयोग' करता है।

इसी प्रकार समाज व परिवार के स्तर पर भी स्त्री-पुरुष असमानता व्याप्त है। दूसरे क्षेत्रों में इस असमानता का मूल कारण भी यहीं से उपजता है क्योंकि समाज और परिवार ही प्रमुख और मूल इकाई होते हैं। महिलाओं की शिक्षा, जीवन-स्तर और आर्थिक स्तर में काफी बदलाव आए हैं। अपेक्षा से कम होने के बावजूद इन बदलावों का अपना महत्त्व है। घरेलू हिंसा, दहेज प्रथा, सती प्रथा, बाल विवाह और अशिक्षा की समस्याएँ आज भी समाज में व्याप्त हैं। ऐसी समस्याएँ स्त्री और पुरुष के बीच की असमानता के कारण उपजती हैं क्योंकि पुरुष द्वारा स्त्री को भोग्या और अनुचरी ही समझा जाता है, हमारे धर्मशास्त्र भी स्त्रियों को बराबरी का दर्जा नहीं देते। *डॉ. कृष्णावतार पाण्डेय* के उपन्यास *रंग गई मोर चुनरिया*, *अभिमन्यु अनत* के उपन्यास *घर लौट चलो वैशाली*, *क्षमा शर्मा* के उपन्यास *मोबाइल*, *ज्ञान प्रकाश विवेक* के उपन्यास *अस्तित्व*, *मृदुला गर्ग* के उपन्यास *कठगुलाब*, *अमरकांत* के उपन्यास *सुन्नर पांडे की पतोह*, *प्रमोद कुमार तिवारी* के उपन्यास *डर हमारी जेबों में*, *अजय मिश्र* के उपन्यास *पक्का महाल*, *राजेश जैन* के उपन्यास *बर्ड हिट*, *दिनेशनंदिनी डालमिया* के उपन्यास *मुझे माफ करना*, *जया जादवानी* के उपन्यास *कुछ न कुछ छूट जाता है*, *कृष्णा सोबती* के उपन्यास *दिलोदानिश*, *क्रांति त्रिवेदी* की कहानी *नीली आँखों का आकाश*, *डॉ0 उषा माहेश्वरी* की कहानी *सिमटती हुई धूप*, *डॉ0 रामकुमार तिवारी* की कहानी *सहयात्री*, *आशा जोशी* की कहानी *निर्णय*, *यशपाल बैद* की कहानी *टूटती सीमाएँ*, *रामधारी सिंह दिवाकर* की कहानी *खोई हुई जमीन*, *दयानंद पाण्डेय* की कहानी *बड़की दी का यक्ष प्रश्न*, *आलमशाह खान* की कहानी *अबला जीवन का गणित*, *द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'* की कहानी *दिशाहीन* और *मालती जोशी* की कहानी *आखिरी सौगात* में परिवार और समाज में व्याप्त लिंगभेद की विकृत मानसिकता के कारण उपजी घरेलू हिंसा, शोषण और उपेक्षा को भोगती स्त्रियों की दारुण दशा उजागर हुई है। समाज हो या परिवार, हर जगह स्त्रियों को

समानता के अधिकार से वंचित रखने का प्रयास भी इसी कारण किया जाता है ताकि उन्हें अपनी मर्जी के मुताबिक 'उपयोग' किया जा सके, शोषण किया जा सके।

सामाजिक बदलाव, शिक्षा के प्रसार और शोषण की पराकाष्ठा ने लिंगभेद और असमानता की स्थितियों को बदला है। स्त्रियों में अधिकारों के प्रति जागरूकता आई है और शोषण के खिलाफ संघर्ष करने का माद्दा भी विकसित हुआ है। आठवें दशक के बाद की महिलाएँ अपनी कार्यक्षमता और कार्यकुशलता के बूते स्वयं को सिद्ध करने और लिंगभेद का करारा जवाब देने में सफल दिखाई देती हैं। नवें दशक के बाद की महिलाएँ हर क्षेत्र में कामयाबी का झण्डा बुलन्द करती दिखाई देती हैं। इस दौर में लिंगभेद भी घटता दिखाई देता है, पुरुष भी स्त्रियों की शक्ति और क्षमता को स्वीकारते नजर आते हैं। यद्यपि इसे पूर्ण सत्य नहीं कहा जा सकता, तथापि बदलाव को भी नहीं झुठलाया जा सकता। जहाँ पर असमानताएँ हैं, स्त्रियों का शोषण है, वहाँ जागरूकता बढ़ रही है, महिलाएँ संघर्ष हेतु आगे आ रही हैं। विभिन्न क्षेत्रों के साथ ही सेना में भी महिलाएँ भागीदारी हेतु आगे आई हैं। जनवरी 1992 को डाक सेवा, जज एडवोकेट जनरल, सेना शिक्षा कोर, सेना आर्डिनेंस कोर एवं सेना कोर की शाखाओं में महिलाओं की भर्ती हेतु सरकार द्वारा मंजूरी प्रदान की गई। जटिल शारीरिक श्रम और परिस्थितियों से हार नहीं मानने वाली कर्मठ महिलाएँ सेना में भी सक्रिय हो गई। "भारतीय सेना में क्रान्तिवीर महिलाओं ने अपनी आमद तो दर्ज करा दी है, पर उन्हें अभी इतिहास लिखना बाकी है। इन वीरांगनाओं के उत्साह को देखते हुए यही लगता है कि अन्य क्षेत्रों के माफिक सैन्य क्षेत्रों में ये एक दिन छा जाएँगी।"[27] सेना में महिलाओं के प्रवेश तक ही बात सीमित नहीं है, वरन् पुरुष वर्चस्व वाले विविध क्षेत्रों में महिलाओं की सशक्त भागीदारी उस संघर्षशीलता का परिचायक है, जो महिलाओं में इस अवधि में विकसित हुई है, जिसने स्त्री और पुरुष के बीच की असमानता को दूर करने का प्रयास किया है, जिसने महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक किया है और अधिकारों को पाने के लिए लड़ना सिखाया है। आठवें दशक के बाद के हिंदी कथा-साहित्य ने इस संघर्षशीलता को न केवल पहचाना है, वरन् अपने अधिकारों के लिए लड़ने वाली स्त्रियों के संघर्ष को, शोषण, अत्याचार और लिंगभेद के खिलाफ उठने वाली हर आवाज को बखूबी प्रस्तुत भी किया है। इस संन्दर्भ में *अलका सरावगी* की *कहानी में नाटक में नेल पालिश का महत्त्व, डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय'* की

कहानी *सुनहरे सपने*, *डॉ. उषा माहेश्वरी* की कहानियों *बहू का सपना* व *भविष्य के द्वार*, *मालती जोशी* की कहानियाँ *मोरी रंग दी चुनरिया* तथा *आखिरी सौगात*, *नीरजा माधव* की कहानी *उत्तरार्द्ध की किरण*, *आलमशाह खान* की कहानियों *आँसुओं का अनुवाद* व *एक और सीता*, *यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'* की कहानी *लुगाईजात*, *उषा यादव* का उपन्यास *कथांतर*, *कर्मेन्दु शिशिर* का उपन्यास *बहुत लम्बी राह*, *मैत्रेयी पुष्पा* के उपन्यास *चाक* और *इदन्नमम*, *अजय मिश्र* का उपन्यास *पक्का महाल*, *अमरकांत* का उपन्यास *सुन्नर पांडे की पतोह*, *मृणाल पाण्डे* का उपन्यास *रास्तों पर भटकते हुए*, *रामदरश मिश्र* का उपन्यास *रात का सफर*, *राजी सेठ* का उपन्यास *तत् सम*, *राजेश जैन* का उपन्यास *बर्ड हिट* आदि उल्लेखनीय हैं। इन उपन्यास और कहानियों के स्त्री पात्र अपने शोषण के खिलाफ और अपने अधिकारों की प्राप्ति हेतु जिस सक्रियता से संघर्ष करती हैं, पुरुषवादी वर्चस्व का मुखर विरोध करती हैं वह निःसन्देह यथार्थ के निकट लाकर खड़ा कर देता है। यहाँ गौरतलब है कि स्त्रियों का संघर्ष नकारात्मक नहीं, बल्कि सकारात्मक नजर आता है। उच्च शिक्षा प्राप्त करके समाज में प्रतिष्ठापूर्ण स्थान पाने, अपनी आर्थिक सामर्थ्य को विकसित करने और समूची स्त्री जाति के कल्याण के लिए प्रस्तुत रहने जैसी सकारात्मक सोच स्त्रियों को सक्षम बनाने और स्त्री-पुरुष समानता विकसित करने के साथ ही समाज के विकास के लिए भी उपयोगी है। यह कहा जा सकता है कि सकारात्मक सोच का विकास युवा मानसिकता के बदलाव के कारण हुआ है, जो आज के दौर में दिखाई देता है।

देश-दुनिया में हो रहे बदलावों के अनुरूप महिलाओं और पुरुषों के बीच अंतर कम हुआ है, साथ ही आपसी तालमेल भी कायम हुआ है। इस बदलाव को परखते हुए हितेश शंकर अपना मत व्यक्त करते हैं कि "खास बात यह है कि समाज भले लिंग-भेद खत्म करने में जरा सुस्त रहा हो, युवा वर्ग के आपसी ताने-बाने में लड़का-लड़की का यह फर्क अब इतना अहम नहीं रहा। मेल और मैसेजिंग के अलावा मिल-बैठने के मस्ती भरे मौकों पर भी तमाम तरह की बातें आपस में खुलकर साझा की जाती हैं। और अब इसके लिए युवा एक-दूसरे से नजरें नहीं चुराते।"[28] युवाओं के बीच पनप रही इस समझदारी और बदलाव से भी आज के दौर की हिंदी कहानियाँ और उपन्यास अनजान नहीं हैं। *शीतांशु भारद्वाज* की कहानी *अनजानी भूलें*, *मो. आरिफ* की कहानी *दाम्पत्य*, *डॉ0 उषा माहेश्वरी* की कहानियाँ *कचोट* और *फॉस*, *सी. दास*

बांसल की कहानी *बिका हुआ आदमी, डॉ. अशोक गुजराती* की कहानी *अग्नि/अग्नि* और *धीरेन्द्र अस्थाना* के उपन्यास *हलाहल* का जिक्र यहाँ पर किया जा सकता है। इन उपन्यास और कहानियों में युवा (स्त्री और पुरुष) मन में आए बदलाव को भले ही आधुनिक और समाज (तथाकथित ?) के विपरीत समझा जाए, मगर यह बदलाव भविष्य का सुखद संकेत भी है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि बदलाव के बावजूद कायम असमानता, पुरुषवादी मानसिकता और स्त्री-शोषण कम न हुआ हो, किन्तु परिवर्तन आया है, मानसिकता बदली है। समय और समाज के साथ इस बदलाव को हिन्दी कथा-साहित्य ने भी देखा है और अपने समय के सत्य को कहानियों व उपन्यासों में बड़ी विदग्धता के साथ प्रस्तुत भी किया है।

(झ) विभिन्न अन्य :-

आठवें दशक के बाद के हिंदी कथा-साहित्य और समय के सत्य के बीच सम्बन्धों को परखने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत अलग से अध्ययन अपेक्षित और अनिवार्य है-

1. गाँव, नगर और महानगर
2. भ्रष्टाचार और नैतिक पतन
3. नौकरीपेशा लोगों का शोषण और अत्याचार
4. युद्ध और आतंक की विभीषिका तथा शान्ति
5. प्रकृति और पर्यावरण के विनाश की स्थितियाँ
6. फिल्मी ग्लैमर, भौतिकता और आधुनिकता के प्रभाव
7. बच्चों, युवाओं और वृद्धों की स्थिति
8. सीमान्त कृषक और असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों की स्थिति
9. आदिवासी जनजीवन
10. शिक्षा, कला, साहित्य और मीडिया की स्थिति

(1) गाँव, नगर और महानगर :-

देश की आजादी के बाद आए बदलावों ने गाँवों से लेकर महानगर तक हर जगह अपना प्रभाव छोड़ा है। नगरों और महानगरों में बेरोजगारों की बढ़ती भीड़, महँगाई, कोलाहल, फैशनपरस्ती और विकसित होते बाजारों सहित कई बदलाव आए हैं। गाँवों में पंचायती राज प्रणाली की शुरुआत ने बहुत कुछ बदला है। वर्ग-संघर्ष, गुटबाजी, परम्परागत उद्यमों, हस्तशिल्पों

का विनाश, कृषकों और कृषि क्षेत्र से जुडे श्रमिकों के जीविकोपार्जन की समस्या, मूलभूत आवश्यकताओं का अभाव जैसे बदलाव गाँवों में देखने को मिलते हैं। भौतिकता, आधुनिकता के विस्तार और सांस्कृतिक संक्रमण की स्थितियाँ तो हर जगह हैं, चाहे वह गाँव हो या कस्बा या फिर नगर और महानगर।

पंचायती राज प्रणाली की स्थापना, गाँवों में बढ़ते मशीनीकरण, बदलते जीवन स्तर और अधकचरे विकास के कारण गाँवों में असमानताएँ बढ़ी, लघु उद्यमी और श्रमिक बेरोजगार होकर पलायन को मजबूर हुए, आर्थिक असमानता ने वर्ग संघर्ष को बढ़ावा दिया, मूलभूत आवश्यकताओं के अभाव तथा अशिक्षा ने सामाजिक ताने-बाने को दूषित कर दिया, अपराध बढ़ गए, सरकारी योजनाओं द्वारा विकास के नाम पर गाँव का प्रभुत्वशाली वर्ग अपनी जेबें गर्म करने लगा, शोषण और अत्याचार के लिए गाँव के प्रभुत्वशाली, भूस्वामी, पूँजीपति वर्ग और पुलिस व सरकारी कर्मचारियों का संगठित वर्ग तैयार हो गया; भौतिकता ने भी गाँवों में पैर पसारने शुरू कर दिये। गाँवों में आए इन बदलावों के कारण गाँवों का स्वरूप एकदम बदल गया। इस बदलाव और पारिवारिक-सामाजिक विघटन को केंद्र में रखकर कई उपन्यास और कहानियाँ लिखी गई हैं। *कैलासचन्द्र शर्मा* की कहानी *सुरस्ती ताई, नीलकांत* की कहानी *ताँत के बोल* तथा *कैलास बनवासी* की कहानी *एक गाँव फुलझर* में गाँवों में पैर पसारते मशीनीकरण के कारण जटिल होती स्थितियों का चित्रण किया गया है। *रामधारी सिंह दिवाकर* की कहानी *आतंक, शैलेश पंडित* की कहानी *वंदे भगवती, संजीव* की कहानी *तिरबेनी का तड़बन्ना, कृष्ण सुकुमार* की कहानी *झाम्बा, कृष्णा अग्निहोत्री* के उपन्यास *टपरेवाले, चन्द्रकिशोर जायसवाल* के उपन्यास *चिरंजीव, विवेकी राय* के उपन्यासों *सोना माटी* व *मंगल भवन* और *सुरेन्द्र स्निग्ध* के उपन्यास *छाड़न* में ग्रामीणों के शोषण और गाँवों के पूँजीपति, सेठ, साहूकारों व भूस्वामियों द्वारा बरपाए जा रहे आतंक और कहर को प्रकट किया गया है।

राकेश कुमार सिंह के उपन्यास *पठार पर कोहरा, शिवमूर्ति* के उपन्यास *तर्पण, मोहनदास नैमिशराय* के उपन्यास *मुक्तिपर्व, मार्कण्डेय* के उपन्यास *अग्निबीज, संजीव* के उपन्यासों *धार* व *सूत्रधार, बनाफर चन्द्र* के उपन्यास *जमीन, कर्मेन्दु शिशिर* के उपन्यास *बहुत लम्बी राह, चन्द्र किशोर जायसवाल* की कहानी *हिंगवाघाट में पानी रे, हरिहर*

वैष्णव की कहानी *मुनादी, दयानंद पाण्डेय* की कहानी *मेड़ की दूब, भवानी सिंह* की कहानी *सपनों में साइकिल* और *धर्मेन्द्र देव* की कहानी *उथल-पुथल* में ग्रामीणों के अंदर जागृत होती संघर्षशीलता और विद्रोही मानसिकता को प्रकट किया गया है। यह विद्रोह गाँव के साहूकारों, भूस्वामियों, दबंगों और प्रभुत्वशाली वर्ग के शोषण के कारण ही नहीं बल्कि सरकारी योजनाओं के छल और सरकारी कर्मचारियों के शोषक-भ्रष्ट रवैये के कारण उपजता है।

यहाँ पर *श्रीलाल शुक्ल* के उपन्यास *विश्रामपुर का संत* का उल्लेख करना नितांत आवश्यक होगा। भूदान आंदोलन की यथार्थवादी और गहन पड़ताल करता हुआ यह उपन्यास सरकार और राजनीति के उस दोहरे चरित्र को उजागर करता है, जो अपने लोककल्याणकारी, जनप्रिय चेहरे के पीछे प्रगति का विरोध करने और क्रांति को दबाने की मानसिकता को छिपाए रखता है। सरकारी अनुदान और कृपा पर आश्रित रहकर खड़ा किया गया जनान्दोलन नैतिकता का महज ढोंग करता है, उसमें जरूरतमंदो की मदद करने की क्षमता, साहस और आत्मबल नहीं होता। देश का किसान आज भी असंगठित है और इसी कारण समूचे राष्ट्र की ग्रामीण आबादी आज भी दोहरे शोषण की यातनाएँ भोग रही है। गाँवों के प्रभु वर्ग के साथ ही सरकार द्वारा 'प्रायोजित' शोषण भी कमतर नहीं है। गाँवों की हालत सुधारने और किसानों की खातिर चलाई जाने वाली योजनाएँ और आन्दोलन वातानुकूलित कक्षों तक ही सिमटी हुई हैं। *कमलाकांत त्रिपाठी* का उपन्यास *बेदखल* भी महत्त्वपूर्ण उपन्यास है, जो छद्म और स्वार्थी राजनीति को उघाड़कर रख देता है। गाँवों में शोषण के खिलाफ किसान संगठित हो रहे हैं। देश का राजनीतिक नेतृत्व जानते हुए भी अनजान बना रहता है, क्योंकि वह अपने धनकुबेरों (पूँजीपतियों व भूस्वामियों) को नाराज नहीं करना चाहता। आन्दोलन तेज होता है, विरोध मुखर होता है। दूसरी ओर आन्दोलन को दबाने के प्रयास तेज हो जाते है। राजनीति के छद्म-प्रपंच और पूर्वाग्रह आंदोलन को ध्वस्त कर देते हैं, गाँवों को उनकी हालत पर छोड़कर नेतृवर्ग खुद में ही मगन हो जाता है। पंचायती राज प्रणाली ने भी इस स्थिति के निर्माण में प्रमुख योगदान दिया है। अब बाहरी लोगों की गाँव में आवश्यकता नहीं, ग्रामीण आपस में ही लड़ रहे हैं, मर-कट रहे हैं। देश का शीर्ष राजनीतिक नेतृत्व और सरकारी मशीनरी तमाशबीनों की तरह सुकून के साथ इस मार-काट को देख रही है। विद्रूप तरीके से हो या फिर सही रास्ते पर जा रही, गाँवों में राजनीतिक चेतना का विकास हो रहा है। *स्वयं प्रकाश* के उपन्यास *बीच में*

विनय, विद्यावती दुबे के उपन्यास *शेफाली के फूल, विद्यासागर नौटियाल* के उपन्यास *झुण्ड से बिछड़ा, पुन्नी सिंह* की कहानी *सैनिक लोग* और *मधुकर सिंह* की कहानी *दुश्मन* आदि उल्लेखनीय उपन्यास और कहानियाँ हैं, जिनमें गाँव में विकसित होती राजनीतिक चेतना के प्रगतिवादी स्वरूप का चित्रण किया गया है।

गाँवों की बदहाली का अत्यंत महत्त्वपूर्ण कारक गाँवों में बढ़ती आधुनिकता व उपभोक्तावादी मानसिकता का है। ग्रामीण समाज में पैर पसारती आधुनिकता, भौतिकता और उपभोक्तावादी मानसिकता ने तमाम विकृतियों को जन्म दिया है। गाँवों की परम्परागत सस्कृति, श्रेष्ठता, रहन-सहन और जीवन स्तर में इसी कारण बदलाव तो आया ही है, साथ ही आपसी समन्वय, भाईचारा और मानव-मूल्य भी नष्ट हुए हैं। राजकिशन नैन इस बदलाव के सन्दर्भ में लिखते हैं कि ''ग्रामीणों की प्रमुख शिकायत यह है कि रेडियो, दूरदर्शन और सिनेमा ने गाँवों की मानसिकता को रुग्ण कर दिया है। उनका कहना किसी हद तक ठीक है। किन्तु लोकगीत, सांग, आल्हा, भजन और परम्परागत तीज-त्योहार जैसे रस-रंग से भरपूर आयोजन किसने लोप किये? स्वयं ग्रामीणों ने....... यह कटु सत्य है कि आधुनिकता के दौड़ में गाँववालों ने अपनी समृद्ध चीजें ही खो दीं।''[29] हिन्दी कथा-साहित्य ने आए इस बदलाव को भी उजागर किया है, साथ ही इसकी प्रतिरोधक चेतना के विकास को भी प्रकट किया है। *ऋता शुक्ला* की कहानी *सरबहारा, उदय प्रकाश* की कहानी *रामसजीवन की प्रेमकथा, स्वयं प्रकाश* की कहानी *बलि* और *पंकज मित्र* के उपन्यास *हुडुकलुल्लु* में फैशनपरस्ती, संचार क्रांति, भौतिकता और उपभोक्तावाद के कारण गाँवों में आए बदलाव के कारण उपजी स्थितियों व दयनीयता का चित्रण किया गया है। *नीरजा माधव* की कहानी *ताकि* के पात्र मरजाद सिंह जैसे लोग भी गाँवों में पाये जा सकते हैं, जो इस बदलाव के खिलाफ संघर्ष को उद्यत होते हैं। भले ही उनका संघर्ष नकरात्मक रुख वाला हो और वे अपनी आने वाली पीढ़ी को अशिक्षित रखकर आधुनिकता और भौतिकता से बचना चाहते हों।

भारत डोगरा ग्रामीण विकास और बदलाव के सन्दर्भ में अपना पक्ष रखते हैं कि ''हमारे देश में ग्रामीण विकास की कितनी आकर्षक लगने वाली परियोजनाएँ बनीं हैं और इन्हे कार्यान्वित करने के लिए विकास का कितना बड़ा प्रशासनिक ढाँचा खड़ा किया गया है, फिर भी ग्रामीण विकास के उद्देश्य पूरे होते नजर नहीं आ रहे हैं। गरीबी और अभाव की मौजूदगी

बहुत बड़े पैमाने पर हुई है, वर्तमान विकास के प्रति असन्तोष भी बढ़ता जा रहा है। ग्रामीण विकास को यदि वास्तव में गरीबी और असंतोष दूर करने के अनुरूप बनाना है तो उसमें कुछ बुनियादी बदलाव जरूरी है।''[30] यह बदलाव ग्रामीणों के साथ ही राजनीति और व्यवस्था तंत्र में भी जरूरी है। आधुनिकता अगर सही ढंग से ग्रहण की जाए तो लाभकारी भी हो सकती है। गाँवों के बदलाव को ही नहीं, बल्कि ग्रामीण विकास की आवश्यकताओं, अपेक्षाओं सहित वर्तमान यथार्थ के तमाम पक्ष हिन्दी-कथा साहित्य ने बड़ी सिद्धान्त के साथ उजागर किए हैं।

गाँवों की ही भाँति नगरों और महानगरों में भी बदलाव आया है। नगर और महानगर राजनीति, शिक्षा, व्यापार और उद्योग-धन्धों का केन्द्र होने के कारण गाँवों से भिन्न पहचान और विकासशीलता रखते हैं। इसी अनुपात में शहरों में भ्रष्टाचार, भागम भाग, अपराध और हिंसा का साम्राज्य रहता है। नगरों और महानगरों में दोहरी जिंदगी चलती है। एक ओर आलीशान हवेलियों में रहने वाले, महँगी कारों में घूमने वाले और हर दिन उत्सव, हर रात रंगीन करने वाले अभिजात्य वर्ग की जिंदगी होती है और दूसरी ओर गाँव से शहर भागकर आए गरीब, बेरोजगार लोगों की जिंदगी होती है, जिन्हें दो जून की रोटी के लिए अथक संघर्ष करना होता है, सिर छिपाने के लिए जगह ढूँढनी होती है या फुटपाथ में रातें बितानी होती हैं। इन लोगों की आबादी शहरों के 'पॉश' इलाकों से दूर झुग्गी-झोपड़ियों में सिमटी रहती है। *डॉ. रामदरश मिश्र* इस सन्दर्भ में अपना विचार व्यक्त करतें हैं कि ''महानगर आधा तो गाँव ही है, इसके आधे लोग गाँव से आए हुए हैं- वे पढ़े लिखे लोग भी हैं और शारीरिक मेहनत मजूरी करके पेट पालने वाले लोग भी। पढ़े-लिखे लोग गाँवों से जुड़े रहकर भी धीरे-धीरे उनसे कट जाते हैं और शहरों में ही घर बनाकर रहने की सोचने लगते हैं अपनी पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति में ही उलझे रहने के कारण तथा एक नयी प्रकार की मानसिकता विकसित हो जाने के कारण ये लोग गाँव में रह रहे अपने बाप-माँ, भाई-बहन आदि से कट जाते हैं (फिर भी किसी न किसी तरह जुड़े रहते हैं) किन्तु मजदूर तबका नौकरी-चाकरी के बाद गाँव लौट जाता है और नौकरी के क्रम में भी वह लगातार गाँव से जुड़ा रहता है। शहरों में अकेला रहकर पैसा बचा-बचाकर गाँव भेजता रहता है। दरअसल, ये लोग एक ओर महानगर में गाँव को ले आते हैं, दूसरी ओर महानगर के भले बुरे प्रभावों को गाँव की ओर ले जाते हैं।''[31] महानगरों-नगरों में बसा यह आधा गाँव कई तरीकों से शोषण, अत्याचार और प्रताड़ना का शिकार होता है।

झुग्गी झोपड़ियों के जीवन सहित नगरीय और महानगरीय जीवन की त्रासदियों और यंत्रणाओं को केन्द्र में रखकर आठवें दशक के बाद कई उपन्यास और कहानियाँ लिखी गई हैं। *धर्मेन्द्र देव* की कहानी *रूपान्तर, विलास गुप्ते* की कहानी *बीच जंगल में, हृदयेश* की कहानी *गाँव, श्याम व्यास* की कहानी *महानगर एक दहशत है, मंजुल भगत* की कहानी *शैतानबाजा, जितेन्द्र भाटिया* की कहानी *साँप, सीढ़ी और साँप, विजय* की कहानी *भायखला फ्लाई ओवर, माधव नागदा* की कहानी *जहरकाँटा, शैलेश मटियानी* के उपन्यास *रामकली, डॉ. मनीषा शर्मा* के उपन्यास *ढहते स्वप्नदीप, डॉ. रामदरश मिश्र* के उपन्यास *दूसरा घर, रवीन्द्र वर्मा* के उपन्यास *जवाहर नगर,* और *कुलदीप बग्गा* के उपन्यास *हर आदमी का डर* में महानगरीय जीवन की त्रासद यंत्रणाओं असमानताओं, जीवन की जटिलताओं, विद्रूपों और समस्याओं का, शोषण, अनैतिकता और अधकचरे विकास की विकृतियों का खुलासा किया गया है। *मनोज रूपड़ा* की कहानी *दफन* विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जो यह बताती है कि नगरों और महानगरों में जिंदगी ही नहीं, मौत भी बहुत जटिल होती है। *नीलाक्षी सिंह* की कहानी *स्वांग* और *रघुनंदन त्रिवेदी* की कहानी *गुड्डू बाबू की सेल* महानगरीय जीवन में योग्यता और शिक्षा की निरर्थकता के साथ ही बेकारी की समस्या की ओर ध्यान खींचती है। *यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'* की कहानी *तीसरा बिस्तर* और *अचला नागर* की कहानी *अपना घर* महानगरों में दिन प्रतिदिन जटिल होती जा रही आवास की समस्या को बड़े मार्मिक तरीके से प्रस्तुत करती है।

शोषण महँगाई, आवास और बेकारी जैसी समस्याएँ गाँवों से शहर आने वाले लोगों के सपनों को धूल-धूसरित कर देती हैं। इसके साथ ही परिवार के सिमटते दायरे और निहायत स्वार्थी मानसिकता, अजनबीपन और तमाम मजबूरियों के कारण शहर छोड़कर पुनः गाँव लौट जाने के लिए विवश हो जाते हैं। ऐसे लोगों की व्यथा *चन्द्रकान्ता* की कहानी *किस्सा नारायण राव का, शैलेश मटियानी* की कहानियों *उत्तरपथ* व *बिद्दू अंकल, कैलासचन्द्र शर्मा* की कहानी *मोहभंग* और *शीतांशु भारद्वाज* की कहानी *गाँव की गंध* आदि कहानियों में उजागर होती है। *कांति देव* की कहानी *त्रिशंकु* के पात्र रामू जैसे लोग गाँव और शहर के बीच ही भटकते रहते हैं, क्योंकि वे दोनो में से किसी भी जगह व्यवस्थित नहीं हो पाते। *धीरेन्द्र अस्थाना* की कहानी *सूखा* में महानगरीय जीवन की जटिलताओं में सूख गये सुखद क्षणों और

जीवन्तता का, त्रासदाओं और विषमताओं के बीच नष्ट हो गये सपनों का दर्द उजागर हुआ है।

गाँव हो या नगर या फिर महानगर हर जगह जीवन की आपाधापी और मारकाट की वजह से, महँगाई, बेकारी, गरीबी और शोषण की वजह से जीवन कठिन ही नहीं दुष्कर भी हो गया है। आठवें दशक के बाद के हिन्दी कथा-साहित्य ने जीवन की इस दुरूहता और विषमता को बखूबी पहचानते हुए इसके विविध पक्षों को कहानियों और उपन्यासों में उजागर भी किया है।

(2) भ्रष्टाचार और नैतिक पतन :-

आजकल भ्रष्टाचार की समस्या सबसे गम्भीर और राष्ट्रव्यापी नजर आती है। राजनीति और सरकारी तंत्र में भ्रष्टाचार की व्यापकता अब किसी भी से छिपी नहीं रही है। तमाम छोटे-बड़े घोटाले, घूसखोरी की घटनाएँ अब समाचार पत्रों का स्थायी स्तम्भ बन गई हैं। अन्तरराष्ट्रीय भ्रष्टाचार वाचडाग एजेन्सी- ट्रांसपेरेंसी इन्टरनेशनल द्वारा हर वर्ष कराये जाने वाले सर्वेक्षण के अनुसार भ्रष्टाचार में भारत की स्थिति सुधरती नजर नहीं आती। भ्रष्टाचार के संदर्भ में राष्ट्रीय सहारा के हस्तक्षेप विशेषांक (21 अक्टूबर 2000) में छपी टिप्पणी यहाँ पर उल्लेखनीय है कि "बड़े-बड़े घोटाले और सत्ताशीर्ष के भ्रष्टाचार का कभी-कभी भंडाफोड़ तो हो भी जाता है, पर निचले स्तर का भ्रष्टाचार अबाध गति से जारी है। आम लोग हर दिन और लगभग हर जगह ऐसे भ्रष्टाचार के शिकार होते हैं जिसका वे कुछ नहीं कर सकते हैं। वह भ्रष्टाचार इतना छोटा होता है और चूँकि उसमें कोई बड़ा नेता शामिल नहीं रहता, इसलिए अखबार में भी उसे सुर्खियों में नहीं छापते। इस छोटे और सर्वव्यापी भ्रष्टाचार को इतना आम मान लिया गया है कि सदाचार की तरह समाज ने इसे स्वीकृति प्रदान कर दी है। इस सर्वव्यापी भ्रष्टाचार का सिलसिला बच्चे के जन्म से शुरू होकर जवानी, बुढ़ापे से होते हुए मृत्यु तक चलता है। एक आम भारतीय को अपने बच्चे का जन्म प्रमाण-पत्र हासिल करने के लिए क्लर्क को 500 रुपये तक घूस देने पड़ते है। स्कूल के दाखिले के लिए 5 हजार से 5 लाख तक, स्कूली पढ़ाई से इतर कोचिंग के लिए प्रतिमाह एक हजार, इंजीनियरिंग और मेडिकल में दाखिले के लिए 50 हजार से 10 लाख तक बतौर कैपिटेशन फीस, राशन कार्ड बनवाने के लिए कम से कम 500 रुपये क्लर्क और चपरासी जैसी नौकरियों के लिए हजारों लाखों रुपये (जितने में सौदा तय हो जाय), नियुक्ति और स्थानान्तरण में भी घूस की रकम निर्धारित है।"[32] भ्रष्टाचार की इस

भयावहता के कारण एक ओर साधारण आदमी का जीना दूभर है वहीं दूसरी ओर देश की प्रतिभाशाली युवा शक्ति कुंठित हो रही है। नौकरियों के खातिर होने वाली रिश्वतखोरी के कारण होनहार युवक कुंठित है। ऐसा लगता है कि नौकरियों के नाम पर भ्रष्टाचार और जेब गर्म करने की कुत्सित और संगठित नीति को परोक्ष रूप से चलाए रखने के लिए ही सरकारी क्षेत्र में नौकरियों के पयाप्त अवसर उपलब्ध नहीं कराये जाते हैं। यदि नौकरियों की उपलब्धता पर्याप्त हो जायेगी तो व्यवस्था तंत्र में बैठे लोगों का 'बिजनेस' बंद हो जाएगा। विभिन्न क्षेत्रों राष्ट्रीय विकास के साथ ही भ्रष्टाचार में हुई बढ़ोत्तरी को, इसकी भयावहता को और भ्रष्टाचार के कारण परिवार व समाज में पनपे विद्रूपों को हिन्दी उपन्यास और कहानियों में बड़ी विदग्धता के साथ उजागर किया गया है। *पैमिला मानसी* की कहानी *कोई और राह*, *हेतु भरद्वाज* की कहानी *यात्रा में*, *सतीश जमाली* की कहानी *दुख-दर्द*, *नीरजा माधव* की कहानी *पुन्नो के दार जी*, *राजेन्द्र लहरिया* कहानी *उर्फ गाँधी*, *नसीम साकेती* की कहानी *घोसला*, *देवेन्द्र सिंह* की कहानी *सूली पर टँगा सत्य*, *प्रेमपाल शर्मा* की कहानी *सोचा*, *मुद्राराक्षस* के उपन्यास *प्रपंचतंत्र*, *वल्लभ सिद्धार्थ* के उपन्यास *कठघरे*, *विद्यासागर नौटियाल* के उपन्यासों *उत्तर बायाँ है* तथा *भीम अकेला* और *देवेन्द्र उपाध्याय* के उपन्यास *आँखर* में भ्रष्टाचार के विविध पहलू उजागर होते हैं इसके साथ ही भ्रष्टाचार के कारण जटिल होती स्थितियों को भी उजागर किया गया है। *द्विजेन्द्रनाथ मिश्र* की कहानी *कालचक्र* और *विभूतिनारायण राय* के उपन्यास *घर* बेरोजगारी की समस्या के साथ ही साथ नौकरी के खातिर घूस देने की दयनीय स्थिति को उजागर करते हैं।

सरकारी विभागों के अतिरिक्त राजनीति में भी भ्रष्टाचार अपने चरम पर है। यदि यह कहा जाए कि भ्रष्टाचार के मामले में नेता और लालफीताशाह एक दूसरे के आसरे हैं तो गलत नहीं होगा। क्योंकि एक का कार्य योजनाओं का निर्माण करना है और दूसरे का कार्यान्वित कराना। लिहाजा तमाम परियोजनाओं के जरिए धन का बंदरबाँट करने में दोनो आपस में सहयोगी सिद्ध होते हैं। इसके अलावा लाइसेंस, तबादला, कोटा, परमिट और ठेके जैसे तमाम भ्रष्टाचार के उद्योग हैं। *विभूतिनारायण राय* के उपन्यास *तबादला*, *किस्सा लोकतंत्र*; *राजकृष्ण मिश्र* के उपन्यास *दारुलशफा*; *श्रवण कुमार गोस्वामी* के उपन्यास *राहु-केतु*; *प्रियंवद* के उपन्यास *परछाई नाच*; *हिमांशु जोशी* की कहानी *समुद्र और सूर्य के बीच* और

कृष्ण भावुक की कहानी *वनतंत्र* आदि में नेताओं के व अफसरशाहों की साठगाँठ से पनपते भ्रष्टाचार को उजागर किया गया है।

मीडिया और न्यायपालिका भी अब भ्रष्टाचार से अछूते नहीं हैं। *शानी* की कहानी *चौथी सत्ता* और *निर्मला भुराड़िया* के उपन्यास *आब्जेक्शन मी लार्ड* मीडिया के क्षेत्र में पनपते भ्रष्टाचार को उजागर करते हैं। इसी प्रकार *देवेन्द्र* की कहानी *रंगमंच पर थोड़ा रुक कर* और *हृदयेश* की कहानी *नागरिक* में न्यायपालिका को लगते भ्रष्टाचार के रोग की ओर इशारा किया गया है। इस बीच न्यायपालिका में भ्रष्टाचार की घटनाओं को लेकर तमाम खबरें समाचार पत्रों में दिखाई देने लगी हैं। यद्यपि यह भ्रष्टाचार निचली अदालतों में ही सीमित है, प्रमुख अदालतों में भ्रष्टाचार आज भी नहीं है, आम जनता को आज भी अगर न्यायालयों में विश्वास है तो उसका प्रमुख कारण निष्पक्षता और समानता ही है। जिस दिन न्यायालयों में भ्रष्टाचार के कारण जनता का विश्वास उठ जाएगा उस दिन अपराध, अराजकता और नैतिक पतन बड़े घातक रूप में सामने आएगा।

भ्रष्टाचार की निषेधात्मक और संघर्षशील शक्तियाँ भी समाज में और व्यवस्था तंत्र में मौजूद हैं। भले ही अपवादस्वरूप हों, किन्तु आज भी कई ऐसे लोगों का उदाहरण दिया जा सकता है जो महत्त्वपूर्ण पदों पर बैठकर भी अपने सिद्धान्तों पर अडिग हैं, भ्रष्टाचार के विरोधी हैं। साथ ही भ्रष्टाचार के कारण दारुण यातनाएँ भोगकर आजिज आ चुके लोगों तथा युवाओं के अन्दर भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ने की प्रेरणा भी पैदा हुई है। प्रतीकात्मक रूप में ही सही, किन्तु यह बदलाव भविष्य के लिए अच्छा संकेत है। हिन्दी कथा-साहित्य में ऐसी संघर्षशीलता और सिद्धान्तवादिता को पूरी सक्रियता के साथ उजागर किया गया है। *रमेश उपाध्याय* की कहानी *लाइ लो*, *शीतांशु भारद्वाज* की कहानी *धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र*, *नीरजा माधव* की कहानी *उद्र उद्र ही सही*, *पुष्पा सक्सेना* की कहानी *अंतिम पड़ाव*, *गोविन्द मिश्र* की कहानी *निष्कासन*, *नसीम साकेती* की कहानी *शंकर का तीसरा नेत्र* और *स्वयं प्रकाश* की कहानी *दस साल बाद* में भ्रष्टाचार के खिलाफ सक्रिय लोगों के संघर्ष को उजागर किया गया है। *स्वयं प्रकाश* की कहानी *दस साल बाद* निःसन्देह मर्मस्पर्शी कहानी है। इसमें बतलाया गया है कि भ्रष्ट होकर धन तो बहुत कमाया जा सकता है, किन्तु आत्मिक शांति और स्नेह-प्रेम नहीं पाया जा सकता। नैतिकता से पतित होकर केवल धन बचता है। ऐसा धन और विलासिता के साधन

आखिर किस काम के हैं, जब आत्मा को शान्ति न हो, अपनत्व की जगह महज दिखावा रह जाए।

शैलेश मटियानी की कहानी *जुलूस* भ्रष्टाचार की भयवाहता के पीछे न्याय और नैतिकता का प्रश्न भी उठाती है। अपराधी भले ही रईस हो या गरीब,उसे दण्ड मिलना ही चाहिए किन्तु भ्रष्टाचार और घूस खोरी के कारण अमीर अपराधी बच निकलते हैं और गरीब को दण्ड भोगना पड़ता है। इस कहानी में यही स्थिति दर्शाई गई है। कहानी की पात्र बूढ़ी माँ अपनी गरीबी के कारण पुलिस को लम्बी रकम नहीं दे सकने के कारण बेटे पर बरपाए जा रहे अमानवीय कहर को देखने के लिए बाध्य है, जबकि अमीर घरों के लड़के पहले ही घूस देकर बच निकलते हैं।

जाने-माने साहित्यकार असगर वजाहत लिखते हैं कि "इसमें संदेह नहीं कि भ्रष्टाचार का सबसे अधिक प्रभाव गरीब जनता पर पड़ता है। उनके लिए भ्रष्टाचार की मार बहुआयामी होती है। एक ओर भ्रष्टाचार समाज में 'काले धन' की सत्ता को स्थापित करता है, जिसके मुकाबले 'सफेद धन' का मूल्य घट जाता है। बाजार तथा सेवाएँ महँगी होती चली जाती हैं और गरीब इससे बाहर हो जाते हैं, जैसे गरीब आदमी आज अच्छी और उपयोगी शिक्षा के क्षेत्र से बाहर हों गया है। तीस-चालीस साल पहले ऐसी स्थिति नहीं थी।"[33] बेशक तब भ्रष्टाचार का प्रकोप भी इतना नहीं था। आने वाले समय में भ्रष्टाचार जितना अधिक बढ़ेगा आम आदमी के लिए मूलभूत जरूरतें पूरी कर पाना कठिन होता जाएगा, आर्थिक असमानता बढ़ेगी और इसके साथ ही तमाम तरह के अपराध, विघटन और अत्याचार बढ़ेगें। हिन्दी कथा-साहित्य ने भ्रष्टाचार की भयावहता के वर्तमान सहित विविध पक्षों को तो बहुत सटीक तरीके से प्रकट किया है, किन्तु भविष्य की भयावहता को केन्द्र में रख कर लिखे जाने वाले उपन्यास और कहानियों की कमी महसूस होती है।

(3) नौकरीपेशा लोगों का शोषण और अत्याचार :-

शैलेन्द्र सागर का उपन्यास *चलो दोस्त सब ठीक है* एकदम अलग तासीर का उपन्यास है और वर्तमान यथार्थ के ऐसे महत्त्वपूर्ण, जटिल, जरूरी और अनछुए प्रश्न पर टिका है, जिसे छोड़ा नहीं जा सकता। इस उपन्यास में पुलिस विभाग की बर्बरता के पीछे उन तमाम पुलिस कर्मियों का दर्द छिपा है, जिसे पुलिस विभाग का ही व्यक्ति देख सकता है, महसूस कर

सकता है। उपन्यास में छोटे पदों पर कार्यरत पुलिस कर्मियों के जीवन की बदतर हालत, आला अफसरों द्वारा इनके साथ किये जाते दुर्व्यवहार का, कठिन जीवनचर्या के साथ ही तमाम अभावों और आला अधिकारियों की गलतियों का खामियाजा इन निचले दर्जे के पुलिस कर्मियों द्वारा भोगे जाने की मजबूरियों समेत उन तमाम पक्षों को उजागर किया गया है। ऐसी मजबूरियाँ, शोषण और उपेक्षा निचले दर्जे के पुलिस कर्मियों को भ्रष्ट, अमानवीय और कार्य के प्रति लापरवाह बना देती हैं। यहाँ पर हरवंश दीक्षित का विचार उल्लेखनीय है कि "मानवाधिकारों के उल्लंघन के लिए बदनाम पुलिस तंत्र का बहुत बड़ा तबका खुद मानवाधिकारों से वंचित है। अनुशासन के नाम पर निचले स्तर के कर्मचारियों से पूरे वर्ष चौबीस घंटे काम करने की अपेक्षा की जाती है। उन्हें कई-कई दिनों तक लगातार बगैर आराम किए काम करना पड़ता है। उससे उनमें हताशा और कुंठा के भाव पनपने लगते हैं। इस खीझ को वे अक्सर आम जनता पर उतारते हैं। इस खीझ को पैदा होने से रोकने के उपाय करने की जरूरत है।"[34]

पुलिस विभाग जैसी स्थिति कमोबेश दूसरे विभागों और निजी क्षेत्र की कम्पनियों में भी है। विभागीय कर्मचारियों को अपने आला अफसरों की मर्जी पर चलते हुए न चाहकर भी भ्रष्टाचार और दलाली करने के लिए, नीति विरोधी और गलत काम करने के लिए तथा अधिकारियों के दबाव में कार्य करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। अपने कार्य को पूरी निष्ठा और उत्तरदायित्व के साथ करने की स्वतंत्रता निचले दर्जे के कर्मचारियों को नहीं होती, प्रायः अधिकारियों के दबाव के साथ ही सत्ताधारी दल के नेताओ, अपराधियों और धनबली लोगों का दबाव इनको स्वतंत्रता के साथ कार्य नहीं करने देता। इन सब बातों के साथ ही अनुशासन के नाम पर नौकरी चले जाने, निष्कासन और अनुशासनात्मक कार्यवाही का डर भी छोटे पदों पर कार्यरत कर्मचारियों को मानसिक रूप से बेचैन किये रहता है। सहकर्मियों के बीच पनपती ईर्ष्या, स्वार्थी मानसिकता, चापलूसी, छल-छद्म और आपसी राजनीति अधिकारियों द्वारा विधिवत प्रायोजित की जाती है, ताकि मातहत कर्मचारियों को संगठित होने से रोककर उनका अधिक से अधिक दोहन-शोषण किया जा सके। इसके कारण कार्यालयों में गुटबाजी, जातिवाद और क्षेत्रवाद हावी होता है और प्रतिभासम्पन्न कर्मचारी उपेक्षित होता है। तरक्की के अवसर और 'कमाई वाली डेस्क' का लाभ चाटुकार किस्म के कर्मचारी ही उठा पाते हैं, जो अपने अफसरों को खुश करने के लिए महंगी सौगातों और धन के अलावा अपनी बीबियों को 'परोसने' से भी पीछे नहीं हटते।

इन स्थितियों के कारण कार्यालयों में अजीब बदलाव आया है। निचले दर्जे के कर्मचारियों का जनविरोधी, उपेक्षित बर्ताव, कार्य के प्रति उदासीनता, भ्रष्टाचार, घूसखोरी की मानसिकता, आपसी ईर्ष्या-द्वेष भावना, चाटुकारिता, चापलूसी और विकृत मानसिकता, अधिकारियों को किसी भी तरह से खुश करने की मानसिकता, आपसी ईर्ष्या-द्वेष भावना, चाटुकारिता, चापलूसी और विकृत मानसिकता की स्थितियाँ पैदा हुई हैं। विभूतिनारायण राय का उपन्यास 'तबादला' बड़ी विदग्धता के साथ इन स्थितियों को प्रकट करता है। उपन्यास यह भी बतलाता है कि सहकर्मियों को नीचा दिखाने के लिए नैतिकता की सारी हदें तोड़कर स्वार्थ सिद्ध करने की मानसिकता किस तरह कार्यालयों में विकसित हुई है और राजनीतिक नेतृत्व ने इस मानसिकता के संरक्षण-संवर्द्धन में कितना बहुमूल्य योगदान दिया है ?

कार्यालयीय संस्कृति के वर्तमान यथार्थ के इन्हीं तमाम यक्ष प्रश्नों के सार्थक उत्तर की तलाश में भटकती तमाम हिन्दी कहानियों में से महत्त्वपूर्ण कहानियों का नामोल्लेख करना यहाँ पर समीचीन और आवश्यक होगा। ऐसी कहानियों में *जितेन्द्र भाटिया* की *राजरोग, देवेन्द्र सिंह* की *सूली पर टँगा सत्य, प्रेमपाल शर्मा* की *सोचा* व *सत्संग, अनिल कुमार सिन्हा* की *एक क्लर्क की मौत, शीतांशु भारद्वाज* की *धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र, नसीम साकेती* की *जहाँ मस्तिष्क कैद है* व *घोसला, संजीव* की *मकतल, यशपाल वैद* की *कटी जेब, धनेश्वर प्रसाद* की *छटपटाहट* आदि उल्लेखनीय हैं। इन कहानियों में कर्मचारियों के शोषण की स्थितियों के साथ ही प्रतिरोधक स्वर भी सुनाई देते हैं। राजेन्द्र राव की कहानी *मुठभेड* का नायक जहाज अपनी क्षमता, बुद्धिकौशल और योग्यता के बल पर ही अपने अधिकारियों के षड़यंत्र, भ्रष्टाचार और शोषण से लड़ता है, अपने सहकर्मियों की विकृत मानसिकता का माकूल जवाब देता है। जहाज जैसी योग्यता साहस और क्षमता बिरले कर्मचारियों में ही होती है। इसलिए तमाम नौकरीपेशा लोग अपने अधिकारियों के चहेते बने रहने के लिए, अपनी नौकरी बचाने, कामचोरी करने और शोषण से बचने के लिए तमाम हथकंडे अपनाते हैं। *यशपाल बैद* की कहानी *कटी जेब* और *प्रेमपाल शर्मा* की कहानी *सत्संग* इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं।

विश्वमोहन की कहानी *सौदागर* और *नसीम साकेती* की कहानी *अमोघ अस्त्र* एकदम अलग तासीर की कहानियाँ हैं और समसामयिक ज्वलंत प्रश्न से साक्षात्कार कराती हैं। कर्मचारियों द्वारा अपने स्वार्थ के लिए, पदोन्नति, स्थानांतरण और लाभ वाला पद पाने के लिए

अनैतिक कार्य करने से भी पीछे नहीं हटने की मानसिकता को इन कहानियों में उजागर किया गया है। अपने बॉस को खुश करने के लिए अपनी पत्नी तक को बॉस का हमबिस्तर बना देने में भी ऐसे कर्मचारियों को कोई गुरेज नहीं होता। नैतिकता की सारी हदें तोड़कर कायम किये गए ऐसे यौन सम्बन्ध मर्जी से बने हों या मजबूरी में, यह बात तय है कि कार्यालयीय संस्कृति में इनका वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। इस तरह की तमाम घटनाएँ आए दिन सुनने को मिलती हैं। *राजेश शर्मा* की कहानी *अण्डर अबव सरकमस्ट्रान्सेज* मर्मस्पर्शी कहानी है और वर्तमान व्यवस्था-तंत्र की पतित नैतिकता पर करारा प्रहार करती है। कहानी की नायिका रीता के घर की मजबूरियाँ उसे नौकरी के लिए बाध्य करती हैं। कम्पनी का मैनेजर और उसका लड़का दोनों रीता की मजबूरियों का लाभ उठाकर उसका यौन शोषण करना चाहते हैं। महिला कर्मचारियों के साथ किये जाने वाले यौन शोषण को न तो कानून रोक पाता है और न ही समाज व व्यवस्था तंत्र। कभी मजबूरियाँ तो कभी सहमति ऐसे सम्बन्धों को कायम रखने में कामयाब हो जाती है।

आठवें दशक के बाद की हिन्दी कहानियों और उपन्यासों ने जिस कुशलता के साथ व्यवस्था-तंत्र के इस अनछुए पहलू को उजागर किया है वह वास्तव में बेजोड़ प्रयास है और समय की सत्यता को, वर्तमान के यथार्थ को निकट से देखने की प्रबल इच्छाशक्ति का परिचायक भी है।

(4) युद्ध और आतंक की विभीषिका तथा शान्ति :-

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद वैश्विक परिदृश्य से युद्ध जैसी स्थिति समाप्त हो गई। सोवियत रूस और अमेरिका के बीच वर्चस्व की स्थापना और दुनिया भर के बाजारों में अपने कब्जे को लेकर शीत युद्ध छिड़ गया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सोवियत संघ द्वारा बाल्कन और याल्टा समझौते को तोड़कर विश्व में साम्यवाद फैलाए जाने के विरोध में पश्चिम, विशेषकर अमेरिका के सक्रिय होने के साथ ही शुरू हुए 'शीत युद्ध' ने समूची दुनिया को दो ध्रुवों में बँटने के लिए मजबूर कर दिया। 1 अक्टूबर 1949 को चीन में च्यांगकाई शेक की पराजय और माओत्से तुंग की जीत ने पश्चिम को झकझोर कर रख दिया। इसके साथ ही शीत युद्ध की तीव्रता बढ़ती गई। कभी प्रथम पक्ष हावी हो जाता तो कभी द्वितीय पक्ष और इस प्रकार शीत युद्ध भी अपनी परिणति की ओर चल पड़ा। मार्च 1985 में मिखाइल गोर्बाचोव द्वारा सोवियत संघ का नेतृत्व संभालने के बाद स्थितियाँ तेजी से बदलीं और शीत युद्ध अपनी समाप्ति की ओर

तेजी से अग्रसर हुआ। इस संदर्भ में रंजीत कुमार लिखते हैं कि "गोर्बाचोव के पेरेस्त्रोइका (पुर्नरचना) और ग्लासनोस्त (खुलापन) कार्यक्रम को देखते हुए अमेरिका का भी सेवियत संघ पर विश्वास बढ़ा। फलस्वरूप दोनों महाशक्तियों में शिखर बैठकों का सिलसिला गोर्बाचोव और रोनाल्ड रीगन के बीच शुरू हुआ।"[35] गोर्बाचोव के पुर्नरचना और खुलापन के सिद्धान्तों ने, साम्यवाद के खिलाफ बढ़ते जनाक्रोश और लोकतंत्र की माँग ने सोवियत संघ और पूर्वी योरोपीय देशों पर खासा प्रभाव डाला। 24 अगस्त 1989 को पोलैण्ड में प्रजातांत्रिक सरकार की स्थापना के बाद हंगरी, चेकोस्लोवाकिया, रूमानिया आदि देशों में प्रजातंत्र स्थापित हुआ। शीत युद्ध की प्रतीक 'बर्लिन की दीवार' को तोड़कर पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी की जनता एक हो गई। सोवियत संघ के बाल्टिक क्षेत्र- लिथुआनिया, लाटविया, एस्टोनिया, अजरवेजान और आर्मीनिया में स्वतंत्रता और गृहयुद्ध की स्थितियाँ बनने लगीं। गोर्बाचोव के समक्ष इन परिस्थितियों को स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई चारा शेष नहीं बचा।

19 अगस्त 1991 को गोर्बाचोव के विरुद्ध सैनिक विद्रोह हुआ और 25 दिसम्बर 1991 को गोर्बाचोव द्वारा सोवियत संघ के अंतिम राष्ट्रपति के रूप में पद से त्यागपत्र दिये जाने के बाद विश्व के मानचित्र से सोवियत संघ का नाम मिट गया। पश्चिमी देशों में भी बदलाव आया। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन सशक्त हुआ। सन् 1961 में बेलग्रेड में हुए इसके प्रथम शिखर सम्मेलन में शामिल 25 देशों की संख्या बढ़कर सन् 1998 में डरबन में हुए बारहवें शिखर सम्मेलन में 114 पर पहुँच गई। दुनिया के सभी उपनिवेश आजाद हो गए (तिब्बत राष्ट्र इसका अपवाद है) प्रथम विश्व युद्ध की शुरुआत से लगातार चल रही वर्चस्व की जंग शीत युद्ध की समाप्ति के बाद थम गई। दुनिया के अमीर देशों की निगाहें विश्व के बाजारों पर लग गईं। दुनिया के तमाम देशों में अपनी मुद्रा को विश्व बाजार में सबसे कीमती बनाने की होड़ चालू हो गई। महात्मा गाँधी हों या गोर्वाचोव, दलाई लामा हों या फिर यासर अराफात, पूँजी की दौड़ में सभी अप्रासंगिक हो गए।

विश्व युद्ध और शीत युद्ध की समाप्ति के बाद स्थापित हुए वैश्विक शक्ति संतुलन को देखते हुए तीसरे विश्व युद्ध की संभावनाएँ अभी नजर नहीं आती हैं, किन्तु एक युद्ध परोक्ष रूप से सारी दुनिया के अब भी लगातार चल रहा है। यह युद्ध दुनिया में तमाम धर्म और संस्कृतियों के बीच वर्चस्व की स्थापना और नफरत को लेकर आदिकाल से अब तक अनवरत चल रहा है।

इज़राइल-फिलीस्तीन मुद्दा, ईराक़-ईरान मुद्दा, अफ़गानिस्तान, यूगोस्लाविया, पाकिस्तान, ताइवान और बोस्निया इसी नफरत की आग में झुलसे हुए हैं। सभ्यता की ओर बढ़ते मानव के निरन्तर क्रूर, बर्बर और असभ्य होने की दास्ताँ किसी एक देश की नहीं, बल्कि समूची दुनिया की है। मानवता और विश्व बंधुत्व की भावनाएँ पददलित होने को बाध्य हैं। वैश्विक इतिहास के तमाम महान पुरुष समूचे विश्व को अनगिनत टुकड़ों में बँटते हुए देखने को बाध्य हैं। इन स्थितियों को पैदा करने वाले आज भी समय और इतिहास की अदालत के कठघरे में खड़े हैं, अपने किये की सजा सुनने हेतु।

कमलेश्वर के उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में समय (अदीब) की यही अदालत लगी हुई है। मानव सभ्यता के अतीत को, बीती हुई सदियों को नए नजरिए से देखकर व्याख्यायित करने वाला यह उपन्यास दाराशिकोह समेत उन तमाम इतिहास पुरुषों के व्यक्तित्व को प्रकट करता है, जो अपने समय में अप्रासंगिक होकर इतिहास की गर्त में पड़े हैं, जिनकी सक्रियता आज की दुनिया का चेहरा बदल सकती थी। प्रख्यात समीक्षक और विद्वान *डॉ. नामवर सिंह* की नजर में कमलेश्वर की कृति 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास की शर्तो को पूरा नहीं करता, लिहाजा वे इसे उपन्यास नहीं मानते। 'कितने पाकिस्तान' को उपन्यास कहा जाय या नहीं, इस प्रश्न में उलझने के बजाय इसके कथ्य पर गौर करना उचित होगा। उपन्यास में दाराशिकोह के व्यक्तित्व को समग्रता के साथ प्रस्तुत किया गया है। दारा के जरिये उन तमाम लोगों को भी याद किया गया है, जिनकी उपस्थिति और सक्रियता सारी दुनिया में मानवता की रक्षा कर सकती थी, दुनिया में चल रहे बर्बर, पाशविक और क्रूर खेल को, धर्मान्धता के वहशीपन को और संस्कृतियों के संक्रमण को रोक सकती थी।

उपन्यास में दाराशिकोह की त्रासदी इतिहास की दारुण त्रासदी के रूप में उभरती है। हालाँकि इतिहास की दूसरी त्रासदियाँ उपन्यास में नहीं उभरतीं और नाटकीयता की स्थितियाँ कहीं-कहीं पर भटकाव भी पैदा कर देती हैं। फिर भी मानवता पर संकट, धर्मांधता के वहशीपन, सांस्कृतिक संक्रमण और क्रूरता-बर्बरता के समूचे इतिहास को वैश्विक परिदृश्य में देखने वाला यह उपन्यास निःसन्देह नायाब और समय का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है।

यहाँ पर दो अन्य उपन्यासों- *नासिरा शर्मा* के *सात नदियाँ : एक समन्दर* और *कामतानाथ* के *पिघलेगी बर्फ़* का जिक्र करना प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण होगा। *नासिरा शर्मा*

ने अपने उपन्यास *सात नदियाँ : एक समंदर* में पश्चिमी साम्राज्यशाही से मुक्त होने के लिए ईरान में हुई क्रान्ति के फलस्वरूप बदले हुए ईरान को पेश किया है। आय्यात उल्लाह खूमैनी की 'ईरान क्रांति' और 'धार्मिक शुद्धीकरण' के नाम पर धार्मिक कट्टरता, अत्याचार, शोषण, स्वतंत्रता का हनन, भ्रष्टाचार और अनाचार की गिरफ्त में फँसे ईरान की हालत और अपने ही कारणों से निरर्थक हो गई 'ईरान क्रांति' को उजागर किया है। धर्म और संस्कृति की रक्षा के नाम पर मानवता का जिस बेरहमी के साथ कत्ल हुआ, व्यक्ति-चेतना और स्वतंत्रता को दबाने के लिए जिस निर्दयता और पाशविकता का सहारा लिया गया और असभ्यता-बर्बरता का जैसा क्रूर खेल ईरान में खेला गया, वह ईरान के गौरवशाली अतीत को ही नहीं, वरन समूची मानवता को, सारे विश्व की सभ्यताओं को कलंकित करने के लिए काफी है।

इसी प्रकार की स्थितियाँ *कामतानाथ* के उपन्यास *पिघलेगी बर्फ़* में भी उजागर होती है। तिब्बत दुनिया का अंतिम उपनिवेश है। तिब्बतियों की अपनी अनूठी संस्कृति और सभ्यता है, जिसका गौरवशाली अतीत रहा है, जो एक जीवित राष्ट्र के रूप में विश्व मानचित्र पर प्रदर्शित होता रहा है। जिसके अपने अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्ध रहे हैं, जिसने विश्व को अपने ज्ञान से गौरवान्वित किया है और विश्व बंधुत्व-मानवता की राह दिखाई है। उस तिब्बत राष्ट्र को मुक्त कराने के नाम पर चीन ने तिब्बत में अपना कब्जा जमा लिया, वहाँ के लोगों के साथ ही तिब्बत की संस्कृति, सभ्यता और पर्यावरण को नष्ट कर डालने की खातिर क्रूरता और पाशविकता की सारी हदें पार कर डालीं। तिब्बत को आखिर किससे मुक्त कराया गया? इस प्रश्न का उत्तर चीन के पास नहीं हैं। यहाँ पर पुनः शीत युद्ध के कारण बने वैश्विक परिदृश्य का, विश्व के द्विध्रुवीकरण की स्थितियों का, साम्यवाद बनाम पश्चिमी प्रजातंत्रवाद का और वर्चस्व की स्थापना की जंग का स्मरण करना होगा। चीन में 'लाल क्रान्ति' के अगुओं को एहसास था कि तिब्बत पर अंग्रेजों का प्रभाव रहा है और ब्रिटिश भारत व तिब्बत के बीच सन् 1914 में शिमला समझौता भी हुआ था। इसलिए तिब्बत में अग्रेजों के वर्चस्व की स्थापना आशंका से आक्रान्त होकर 'लाल क्रान्ति' के एक वर्ष के भीतर ही साम्यवादी चीन की जनमुक्ति सेना ने 'तिब्बत की मुक्ति' के नाम पर तिब्बत को रौंद डाला। विश्व की छत पर मानवता करुण क्रन्दन करती रही और सारा विश्व देखता रहा। चीनी उपनिवेशवादी ताकतों ने तिब्बत के मूल निवासियों को खदेड़ दिया और वहाँ पर तमाम बदलाव कर डाले। महँगे बाजार, आलीशान भवन, रेल-सड़क मार्ग और नए

शहरों के निर्माण के बीच तिब्बत की संस्कृति, सभ्यता और मानवता का दम घुट गया। यह स्थितियाँ आज भी बरकरार हैं। कामतानाथ का उपन्यास 'पिघलेगी बर्फ' एक घुमक्कड़ी की नजर से तिब्बत की वर्तमान दारुण दशा को, तिब्बत में आए बदलाव को, सांस्कृतिक संहार और मानवता के विनाश को देखता है। साथ ही उस अनूठी संस्कृति से, उसकी विशिष्टताओं से साक्षात्कार कराता है।

इन उपन्यासों के साथ ही आठवें दशक के बाद की हिन्दी कहानियों में भी मानवता के विनाश और संस्कृति के संहार को उजागर किया गया है। रमाकांत की कहानी कार्लो हब्शी का संदूक' दक्षिण अफ्रीका के कबीलाई आदिवासियों के साथ रंगभेद और गुलामी की यातना को प्रकट करती है। चन्द्रकांता की कहानी किस्सा गाशकौल' में कश्मीरी पंडितों के विस्थापन का दर्द उजागर होता है। सरयू शर्मा कहानी कितनी बार' में भारत के पूर्वोत्तर राज्यों, विशेषकर मिजोरम में फैले सशस्त्र अलगावादी संगठन-- मिजो नेशनल फ्रन्ट के खात्मे के नाम पर आम जनता के ऊपर बरपाये जा रहे कहर को उजागर किया गया है। *चन्द्रकांता* की कहानी *फॉस, भीष्म साहनी* की कहानी *झुटपुटा* और *अशोक गुजराती* की कहानी *मैं जिन्दा रहना चाहता हूँ* आदि में आतंक से, क्रूरता और पाशविकता से भयाक्रान्त लोगों की दारुण व्यथा-कथा है।

आतंक के खिलाफ, विश्वशांति और मानवता के खातिर संघर्ष करने वाले लोग भले ही अपवादस्वरूप हों, किन्तु उनकी उपस्थिति भविष्य के खातिर शुभ लक्षण है। *विश्वमोहन* की कहानी *न्यूयार्क से नई दिल्ली* की पात्र अमेरिकी युवती विश्व शांति और मानवता के खातिर शांति की तलाश में अपना वतन छोड़कर सारी दुनिया में भटकती है। युद्ध की आग में समूचे देश की झोंक देने की नेतृवर्ग की मानसिकता के खिलाफ संघर्ष करते हुए अमेरिकी दूतावास के सामने आमरण अनशन पर बैठ जाती है। *मिथिलेश्वर* की कहानी *लापता* में एक सैनिक की वेदना को उजागर किया गया है। देश के शासकों की मनमर्जी और आदेश पर सीमा में युद्ध करने वाले सैनिक के मारे जाने या फिर पकड़ लिए जाने पर उस देश के शासकों को तो कोई फर्क नहीं पड़ता है, किन्तु उस सैनिक का परिवार बदहाली और यातना भोगने को मजबूर हो जाता है। इसी प्रकार *सुमति अय्यर* की कहानी *देशान्तर; विष्णु प्रभाकर* कहानियाँ *ये बंधन, मेरा बेटा, आखिर क्यों, सफर के साथी* तथा *आज होली है* और *केवल सूद* की कहानी *कटा हुआ बाजू* के साथ ही *कमल* का उपन्यास *आखर चौरासी* और *चन्द्रकिशोर*

जायसवाल के उपन्यास *शीर्षक* आदि उल्लेखनीय हैं। इन उपन्यास और कहानियों के पात्रों द्वारा की जा रही शांति और मानवता की तलाश भले ही छोटा प्रयास हो, लेकिन स्वयं में महत्त्वपूर्ण है और तमाम शांति विरोधी, युद्ध प्रिय, क्रूर तथा बर्बर शासकों, नेताओं और आततायियों के लिए सबक भी है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि *कमलेश्वर* के *कितने पाकिस्तान* में युद्ध, आतंक और अमानवीयता की जिस विभीषिका और शांति के प्रयासों को वैश्विक परिदृश्य में प्रस्तुत किया गया है, लगभग वही बात 'सात नदियाँ : एक समंदर' और पिघलेगी बर्फ' में है, भले ही इन दोनों उपन्यासों का फलक अपेक्षाकृत व्यापक नहीं है। युद्ध की विभीषिका, आतंक, क्रूरता और पाशविकता से त्रस्त सारे विश्व की आम जनता का दर्द और उनकी शांति व मानवता की कामना वर्तमान परिस्थितियों में निःसन्देह प्रासंगिक है। आम जनता की यह कामना और मानवता के विनाश का दर्द भी इस दौर के उपन्यास व कहानियों में बड़ी कुशलता के साथ प्रकट हुआ है।

(5) प्रकृति और पर्यावरण के विनाश की स्थितियाँ-

मानवता के विनाश के संकट के साथ ही प्रकृति और पर्यावरण के विनाश का संकट वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस संकट को खड़ा करने में उपभोगवादी मानसिकता के साथ ही तकनीकी और वैज्ञानिक विकास भी अहम भूमिका अदा करता है। जलवायु और मानसून में परिवर्तन, ग्रीन हाउस गैसों के दुष्प्रभाव के कारण धरती का बढ़ता तापमान, घटते हिमनद और बढ़ते समुद्र जैसी समस्याएँ समूचे विश्व को अपनी गिरफ्त में लिए हुए हैं। पर्यावरण विनाश के संकट के सन्दर्भ में सोवियत अध्येता और दर्शन शास्त्री स. न. स्मिर्नोव का यह कथन उल्लेखनीय है। वे लिखते हैं कि "सभ्यता के प्रारम्भ में लोगों और पर्यावरण के बीच सम्बन्धों में अपनी सारी आद्य शक्तियों सहित प्रकृति हावी थी, मनुष्य प्रकृति में होने वाले परिवर्तनों को नियंत्रित करने में असमर्थ था, अतः उसे अपने आपको उसके अनुकूल बनाना पड़ता था। लेकिन तकनीकी प्रगति के दौरान लोगों ने शनैः शनैः प्रकृति को अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप बनाना, उसे बदलना तथा रूपांतरित करना शुरू किया। वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति के मौजूदा स्तर पर प्रकृति के साथ समाज के सम्बन्धों में मनुष्य-जाति प्रकृति पर हावी हो गई। अब हम प्रकृति में और भी गहरे प्रविष्ट हो रहे और उसमें भूमण्डलीय पैमाने

पर फेर बदल कर रहे हैं। परन्तु ऐसे प्रबल प्रभाव के बावजूद हम प्रकृति तथा पृथ्वी पर जीवन के लिए उसे दीर्घकालिक परिणामों को हमेशा ध्यान में नहीं रखते हैं। अब स्वतः स्फूर्त मनुष्य प्रकृति पर हावी है न कि स्वतः स्फूर्त प्रकृति मनुष्य पर।''[36] यह बदलाव कई कारणो से आया है जिनमें वैज्ञानिक-तकनीकी व उपभोक्तावादी विकास, जनसंख्या में वृद्धि और प्राकृतिक संसाधनों के भरपूर दोहन की मानसिकता जैसे बिन्दु प्रमुख हैं। दुनिया के तमाम देश अपनी प्राकृतिक सम्पदा का दोहन करने में, वनों को काटकर तथा पर्वतों को तोड़कर नए नगर और महानगर बसाने में, बेतहाशा प्रदूषण फैलाकर प्राकृतिक असन्तुलन पैदा करने में पीछे नहीं रहते। विकसित देशों के साथ विकासशील देशों में भी यही स्थिति है। परमाणु शस्त्रास्त्रों और बिजली घरों ने परमाण्विक कचरे का संकट भी खड़ा कर दिया है।

औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाले दूषित द्रव और गैसों के कारण प्रदूषण की समस्या जटिल होती जा रही है। अपने देश में भी पर्यावरण विनाश के दुष्प्रभाव दिखाई देने लगे हैं। नदियों में बढ़ते प्रदूषण, वनों की अंधाधुंध कटाई के कारण सिमटते जंगल, निरन्तर घटती कृषि योग्य भूमि ग्रीन हाउस प्रभाव और लुप्त होते वन्यजीवों के कारण मानव जीवन पर खतरा बढ़ता जा रहा है। जनसंख्या वृद्धि की स्थिति भयवाह हो गई है, भोजन और शुद्ध जल का संकट गहराने लगा है। विज्ञान का स्वरूप जनकल्याणकारी न रह कर विनाशकारी हो गया है। स्वतंत्र टिप्पणीकार रहीस सिंह इस सन्दर्भ में लिखते हैं कि 'वैज्ञानिकों की इन घोषणाओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि ८० के दशक के बाद से यह देखा गया है कि अधिकांश देश अर्थव्यवस्था के विकास की अंधी दौड़ में सभी को पछाड़ देने के लिए पारिस्थितिकी को भूल गये हैं।''[37]

आठवें दशक के बाद के हिंदी कथा-साहित्य ने प्रकृति और पर्यावरण पर गहराते संकट को बड़ी कुशलता के साथ प्रकट किया है। *नासिरा शर्मा* का उपन्यास *कुइयाँजान* पानी के संकट की भयावहता की ओर ध्यान खींचती है। तमाम विज्ञान-कथाएँ रोचक तरीके से प्रकृति और पर्यावरण की विनाश लीला को, मानव जाति के भविष्य को, आने वाले संकट को प्रदर्शित करती हैं। *राकेश सिंह* की कहानी *रक्तबीज, अचला नागर* की कहानी *नींबू का पेड, जितेन्द्र भाटिया* की कहानी *अगले अंधेरे तक* और *विजय* की कहानी सोनामी का नीरो में पर्यावरण विनाश और प्राकृतिक संतुलन के कारण मानव जीवन के समक्ष उत्पन्न होने वाली जटिल समस्याओं, प्राकृतिक विनाश व जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणामों और वर्तमान भौतिकतावादी,

बाजारवादी व्यवस्था के दुष्प्रभावों को प्रकट किया गया है।

सुरेश उनियाल की कहानियों *परखनली शिशुओं के युग में* और *मानव स्पर्श* भविष्य की कल्पना करती हैं। 'मानव स्पर्श' कहानी में कृषि योग्य भूमि नहीं बचने के कारण खाद्य पदार्थों के अभाव की वजह से कैप्सूल खाकर जिन्दा रहते लोग और आक्सीजन की कमी को दूर करने के लिए लगाये गये बड़े-बड़े संयंत्र हैं। इसी प्रकार परखनली शिशुओं के युग में उस युग की बात कही गई है जब बढ़ती जनसंख्या, एड्स आदि यौन रोगों की बढोत्तरी और यौन अनाचार की पराकाष्ठा के कारण सरकारी तौर पर कानून बनाकर यौन सम्बन्ध बनाने पर रोक लगा दी जायेगी तथा सरकारी 'आनन्द लोक' में वैज्ञानिक तरीके से यौनेच्छाओं की पूर्ति कराई जाएगी। इस युग में केवल परखनली द्वारा ही बच्चे पैदा किए जाएगें। 'फैण्टेसी' होने के बावजूद इन कहानियों में जिस जटिल यथार्थ का प्रस्तुतीकरण किया गया है, वह भविष्य ही नहीं, वर्तमान की भी सच्चाई है।

मिथिलेश्वर की कहानी *डॉ सेन का सपना* में विज्ञान के जनकल्याणकारी और मानवता विरोधीस्वरूप के बीच द्वन्द्व को प्रकट किया गया है। यह कहानी भी 'फैण्टेसी' पर आधारित होने के बावजूद दुनिया के उन तमाम दबंग व आतंकी मानसिकता वाले देशों की नीयत को उजागर कर देती है, जो विज्ञान का प्रयोग अपना आतंक और दबंगई कायम करने के लिए ही करते हैं, उन्हें विज्ञान का जनकल्याकारी रूप पसंद नहीं आता। वे ऐसे किसी भी अविष्कार को नष्ट कर देना चाहते हैं, जो उनके प्रभाव को कम करता हो।

प्रकृति और पर्यावरण के विनाश के विविध पहलुओं सहित विज्ञान व तकनीकी पर केन्द्रित उपन्यास और कहानियाँ भले ही कम हों या 'फैण्टेसी' पर आधारित हों, किन्तु इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि आठवें दशक के बाद के हिन्दी कथा-साहित्य ने पर्यावरण विनाश के गहराते संकट और भविष्य में आने वाली जटिल प्राकृतिक आपदाओं को भी बड़ी विदग्धता के साथ प्रस्तुत किया है, भले ही प्रस्तुतीकरण में 'फैण्टेसी' का सहारा लिया गया हो।

(6) फिल्मी ग्लैमर, भौतिकता और आधुनिकता के प्रभाव-

बीस पच्चीस वर्षो के अन्दर देश में आए बदलाव ने, विश्व व्यापारीकरण के कारण विकसित होते आधुनिक बाजारों ने, सूचना क्रांति ने, भूमण्डलीकरण ने और आर्थिक उदारीकरण ने देश की बहुसंख्य जनता की मानसिकता को बहुत तेजी से प्रभावित किया है। साधारण तरीके

से जीवन जीना आज पिछड़ेपन की निशानी बन गई है, जबकि महँगे सौन्दर्य प्रसाधनों, महँगे वस्त्रों-जूतों और मोबाइल-लैपटाप आदि का उपयोग आधुनिकता की पहचान। यह बदलाव इतनी तेजी से हुआ कि दो पीढ़ियों के बीच अन्तर और अन्तर्विरोध सहज ही दिखाई पड़ता है। पिता शीर्षक से रची गई धीरेन्द्र अस्थाना और ज्ञानरंजन की कहानियों में यह बदलाव दिखाई देता है। इस बदलाव का मुख्य कारण सूचना क्रांति और आधुनिकतम सूचना तकनीकी का तीव्रतम विस्तार है। सन् 1982 में दिल्ली में एशियाई खेलों के दौरान देशवासियों के बीच रंगीन टीवी आई। लगभग बीस वर्षों के अन्तराल में ही सौ से अधिक 'सेटेलाइट चैनल', डी. टी. एच. (डायरेक्ट टू होम) सेवा और ब्राडबैंड टीवी के साथ 'मल्टीप्लेक्स' सिनेमाघरों ने मनोरंजन और फिल्म उद्योग को अतिपिछड़े इलाकों तक पहुँचा दिया साथ ही इन उद्योगों को इतना महँगा और 'ग्लैमरस' बना दिया कि अधिकांश युवाओं का लगाव इसी ओर मुड़ने लगा। नीरा गर्ग इस बदलाव को अपने नजरिए से देखते हुए मत व्यक्त करती हैं कि "आज तो वीडियो कैसेट के उत्तेजक खेल घर के सूने कोने में नन्हें-मुन्नों को भी चिपकाये रहने के लिए काफी हैं। शारीरिक श्रम के खेल छूटते जा रहे हैं। हड्डियों को जो पुष्टता हॉकी, फुटबाल, कबड्डी आदि से मिलती थी, उसकी जगह वीडियो खेलों के उत्तेजक प्रभाव नाड़ियों को कमजोर कर मनुष्य को पंगु बना रहे हैं। फिल्में आदमी को दिवा-स्वप्नजीवी तो बनाती ही हैं, किशोर- किशोरियों को क्रूर और अपराधी भी बना देती हैं।"[38] मानसिकता में बदलाव के कारण 'फिल्म सिटी' की ओर आकर्षित हुए युवाओं को वहाँ पर तमाम शोषण और उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। *सुरेन्द्र वर्मा* का उपन्यास *मुझे चाँद चाहिए* अपनी नायिका वर्षा के जरिए 'बॉलीवुड' में नवागन्तुक युवाओं के संघर्ष, शोषण और चकाचौंध के पीछे छिपी क्रूरताओं को उजागर करता है। एक कस्बाई लड़की के गाँव-कस्बे से निकलकर बम्बई पहुँचने तक के सफर और फिल्मी चकाचौंध से आजिज आकर वापसी के मार्मिक और हृदयस्पर्शी वृत्तान्त के जरिए उपन्यासकार ने फिल्म जगत् और नाट्य जगत् के तमाम अनछुए पहलुओं को समग्रता और यथार्थ के साथ उघाड़कर रख दिया है। इसी प्रकार *रवीन्द्र वर्मा* के उपन्यास *जवाहर नगर, ऋता शुक्ला* की कहानी *सरबहारा, अचला नागर* की कहानी *अनाम, राजेश शर्मा* की कहानी *वेकेण्ट फॉर मैरिज, रघुनंदन त्रिवेदी* की कहानी *कैरियर, मंजुल भगत* की कहानी *सैलानियों का कश्मीर, नीरजा माधव* की कहानी *ताकि* और *स्वयं प्रकाश* की कहानी *बलि* में फिल्मी जिंदगी की चकाचौंध की ओर

आकृष्ट होकर उसमें अपना भविष्य तलाशते युवक और युवतियों के शोषण की, विकृत मानसिकता और फिल्मी दुनिया के पीछे छिपी असलियत की ढेरों बातें, विविध पहलू उजागर होते हैं। फिल्मी दुनिया के दिखावे व शोषण से आजिज लोगों की व्यथा और उनकी वापसी की कथा भी कहानियों में उजागर हुई है। *हेतु भारद्वाज* की कहानी *असंगत* में बच्चों के भीतर पनपती फिल्मी संस्कृति और फिल्मों की ओर बढ़ते लगाव को प्रकट किया गया है।

फिल्मों के साथ ही विज्ञापन संस्कृति ने भी लोगों की मानसिकता को बहुत प्रभावित किया है। आज के दौर की उपभोक्तावादी प्रतिस्पर्धा में विज्ञापनों का बहुत महत्त्व है। देशी उत्पाद हो या विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की वस्तुएँ, बाजार में अपनी धमक बनाए रखने और ग्राहकों को लुभाने के लिए कम्पनियों ने अपने 'ब्रांड एम्बेसडर' नियुक्त कर रखे हैं। फिल्म सहित तमाम क्षेत्रों में ख्यातिलब्ध लोगों को अपना 'ब्रांड एम्बेसडर' नियुक्त करके इन लोगों की सामाजिक प्रतिष्ठा और ख्याति के बल पर कम्पनियों द्वारा अपने उत्पाद बेचे जाते हैं। विज्ञापनों में बहुत चमत्कारिक तरीके से दिखाई जाने वाली चीजें लोगों को आकृष्ट करती हैं, साथ ही 'उन जैसा' बनने की मानसिकता भी पैदा करती हैं। *मो. आरिफ* की कहानी *पापा का चेहरा, पंकज बिष्ट* की कहानी *बच्चे गवाह नहीं हो सकते, कुणाल सिंह* की कहानी *इति गोंगेश पाल वृत्तान्त, राकेश मिश्र* की कहानी *राजू भाई डाट कॉम* और *टी. श्रीनिवास* की कहानी *राजू* में विज्ञापनों की (अप) संस्कृति के कारण उपजे विद्रूपों की, लोगों की बदलती मानसिकता की और साथ ही विज्ञापनों के शिकार होकर मानसिक असंतुलन व विक्षिप्तता का दंश भोग रहे बच्चों-युवाओं की दयनीयता का नितान्त यथार्थ और गहन चित्रण किया गया है।

आर्थिक उदारीकरण की नीतियों, पाश्चात्य संस्कृति के विस्तार, भौतिकता और आधुनिकता की ओर भागने की मानसिकता ने बहुत कुछ बदला है। न केवल शहरों में, बल्कि गाँवों और कस्बों में भी यह बदलाव देखने को मिलता है। *उदय प्रकाश* की कहानी *वारेन हेस्टिंग्स का साँड़* जहाँ इस बदलाव को अंग्रेजों के चले जाने के बाद देश में छूट गई अंग्रेजियत और अंग्रेजियत की गुलामी के रूप में देखती है। वहीं *उदय प्रकाश* की ही कहानी *रामसजीवन की प्रेमकथा* इस बदलाव को रहन-सहन और जीवन-स्तर में आए बदलाव के रूप में देखती है। सुधीर गोरे का मत यहाँ उल्लेखनीय है, वे लिखते हैं कि "बीते दो दशक के दौरान भारत में लोगों का जीवन खासा बदल गया है। इसकी वजह है समय और स्थान का संकुचन और

भौगोलिक दूरी के तो अब मायने ही खत्म हो गये हैं। कम्प्यूटर, इंटरनेट, ई-मेल के बगैर 8 फीसदी की आर्थिक विकास दर का लक्ष्य पूरा होना कल्पना से परे है। अब 10,000 रुपये के कम्प्यूटर, 999 रुपये के मोबाइल फोन, 50 पैसे के एस. एम. एस. और 250 रुपये प्रतिमाह इंटरनेट ने देश के खास ही नहीं कस्बों तक में आम आदमी की जिंदगी को भी बदल दिया है।"[39] *उदय प्रकाश* की कहानी *पॉल गोमरा का स्कूटर* के पात्र रामगोपाल सक्सेना जैसे लोग बदलाव की इस आंधी में अगर अपना नाम रामगोपाल से पॉल गोमरा कर लेते हैं, आधुनिक बनने के लिए स्कूटर खरीद लेते हैं, उन्हें अपना नाम दकियानूसी और परम्परावादी लगता है तो इसमें कोई अचरज की बात नहीं है। हालाँकि ऐसे लोगों को आधुनिकता की अंधी दौड़ से थककर वापस लौटना ही पड़ता है या मानसिक रूप से विक्षिप्त हो जाना ही उनकी नियति हो जाती है, तथापि बहुसंख्य जनता का बहाव इस बदलाव को स्वीकार करता है और उसी अनुरूप बदलता भी जाता है। *पंकज मित्र* का उपन्यास *हुड़कलुल्लु* गाँवों में आते बदलाव, बढ़ती भौतिकता और उपभोक्तावादी मानसिकता को प्रकट करता है। इसी प्रकार *क्षमा शर्मा* का उपन्यास *मोबाइल* और *सुषमा जगमोहन* का उपन्यास *जिन्दगी ई-मेल*, पारिवारिक जीवन में सेंध लगाते भौतिक संसाधनों, आधुनिकता और उपभोक्ता वाद के कारण दुष्कर और विषम होते पारिवारिक सम्बन्धों के दर्द को उजागर करते हैं। *मधु काँकरिया* की कहानी *लोड शेडिंग*, *विभांशु दिव्याल* की कहानी *कहीं कुछ अटका हुआ*, *नरेन्द्र अनिकेत* की कहानी *अनंत यात्रा*, *नीरजा माधव* की कहानी *लाक्षागृह*, *ऋता शुक्ला* की कहानी समय की गति, *इन्दु जैन* की कहानी *मक्खी*, *संतोष तिवारी* की कहानी *मिट्टी से जो छूटा*, *चन्द्रकांता* की कहानी *खुदा बाकी रहे*, *गोविन्द मिश्र* की कहानी *आक्रामाला*, *अकील कैस* की कहानी *उजबक*, *आशा जोशी* की कहानी अर्न्तद्वन्द्व, *डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय'* की कहानी *सपनों की सीमा*, *पुष्पा सक्सेना* की कहानी *यादों के नाम* और *भगवानदास मोरवाल* की कहानी *सूतक* सहित *स्वयं प्रकाश* के उपन्यास *ईंधन*, *रवीन्द्र वर्मा* के उपन्यास *मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगा*, *कुसुम कुमार* के उपन्यास *पूर्वी द्वार* और *प्रकाश शुक्ल* के उपन्यास *आकाश अपने-अपने* आदि ढेरों उपन्यास व कहानियों के नाम लिये जा सकते हैं, जो भौतिकता व आधुनिकता के कारण, धनलोलुपता व फैशनपरस्ती के पीछे भागते रहने के कारण और उपभोक्तावादी (अप) संस्कृति के विस्तार के कारण टूटते-बिखरते परिवारों, सिमटती पारिवारिक

मर्यादाओं, पति-पत्नी के बीच गहराती रिक्तता और अकारण ही कष्ट भोगते बचपन को पूरी शिद्दत के साथ यथार्थवादी नजरिए से पेश करती हैं।

भले ही आधुनिकता की अंधी दौड़ ने बहुसंख्य लोगों को दौड़ते रहने के लिए विवश कर दिया हो, मगर समाज में ऐसी प्रतिरोधक शक्ति भी जीवित है, जो आदमी को अपनी जड़ों से उखड़ने नहीं देती; उपभोक्तावादी मानसिकता, भौतिकता व आधुनिकता के खतरों से आगाह करती रहती है। भारतीयता बनाम पाश्चात्य संस्कृति का द्वन्द्व भी देखने को मिलता है। *रवीन्द्र वर्मा* के उपन्यास *मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगा* के पात्र मुरली के आधुनिकता व पश्चिमी संस्कृति के प्रति संघर्ष को भुलाया नहीं जा सकता। *चन्द्रकिशोर जायसवाल* की कहानी *दुतारा में दो बूढ़े,* रिटायर्ड भाइयों के बीच अनवरत कायम रहने वाले प्रेम को, गहन आत्मीय रिश्ते को आधुनिकता, भौतिकता और धनलोलुपता तोड़ नहीं पाती है। संतोष तिवारी की कहानी 'मिट्टी से जो छूटा के पात्र अमर को देर से ही सही, मगर महसूस होता है कि अपनी जड़ों से उखड़ जाना कितना दुःखदायी होता है। *मृणाल पाण्डे* की कहानी *पितृदाय* में माँ-बाप को देशी औरं विदेशी का अन्तर तब समझ में आता है, जब उनका सीधे-सरल स्वभाव वाला बेटा ही उनकी बीमारी के वक्त काम आता है।

आठवें दशक के बाद की हिन्दी कहानियों एवं उपन्यासों में उजागर हुए फिल्मी ग्लैमर, आधुनिकता, भौतिकता और उपभोक्तावादी मानसिकता के विविध पक्षों को यथार्थ जीवन में, समय के सत्य में खोजना कोई कठिन कार्य नहीं है क्योंकि बदलाव की जैसी स्थितियाँ उपन्यास और कहानियों में प्रस्तुत की गयी हैं, वे गाहे-ब-गाहे हमारे दैनन्दिन जीवन में, अपने आस-पास व समाज में दिखाई देती रहती हैं।

(7) बच्चों, युवाओं और वृद्धों की स्थिति :-

बदलते परिवेश के अनुरूप समाज में पनपते अन्तर्विरोधों, संयुक्त परिवारों के विघटन, निहायत वैयक्तिक होती मानव चेतना, बदलते हुए मूल्यों, यांत्रिक संवेदनाओं और पति-पत्नी के बीच अहं की लड़ाई से उपजी स्थितियों के कारण तथा आधुनिकता, भौतिकता, गरीबी, बेरोजगारी और अवसरों की असमानता के कारण समाज में बच्चों, युवाओं और वृद्धों की स्थिति दयनीय हो गयी है। तमाम अपराध, नशाखोरी और मानसिक विक्षिप्तता इसी कारण बढ़ रही है।

वर्तमान परिवेश में बच्चों की दयनीय स्थिति के संदर्भ में वैधानिक पक्ष रखते हुए

डॉ. प्रेमलता अपना मत व्यक्त करती हैं "दाम्पत्य सम्बन्धों की तिड़कन में जो सबसे भयावह घटित हो रहा है, वह है मासूम बच्चों की मानसिक यंत्रणा जो उन्हें इतना अकेला और असुरक्षित कर देती है कि ऐसे बच्चों के भविष्य का फैसला करते समय न्याय करने वालों की रूह काँप-काँप जाती है। कुछ साल पहले तक स्थिति यह थी कि कोई कठोर नियम न होते हुए भी प्रायः 5 वर्ष से कम उम्र तक के बच्चे को माँ के पास रहने की अनुमति देकर बाद में बच्चे का आधिपत्य पिता को ही दे दिया जाता था, परन्तु अब स्थिति वैसी नहीं रही क्योंकि पत्नी भी धनोपार्जन में समर्थ है। इसे अपने अधिकारों के प्रति जागृति कहें या आत्मनिर्भरता की ओर महिलाओं के बढ़ते कदम- अब वे अन्याय सहने के लिए तैयार नहीं होतीं और पुरुष स्वभावतः झुकना नहीं जानते- परिणामतः परिवार टूट रहे हैं और महिलाएं भी यह दावा करने लगी हैं कि बच्चों की परवरिश पुरुषों की तरह अच्छी तरह से कर सकती हैं।"[40] इस प्रकार पारिवारिक विघटन की स्थितियाँ तलाक के बाद भी नहीं सुलझतीं और पति-पत्नी की आपसी अहं की लड़ाई में बच्चों को आजीवन उपेक्षा, अपराध-बोध, स्नेह रिक्तता और मानसिक अवसाद का दंश भोगना पड़ता है। आठवें दशक के बाद की हिन्दी कहानियों और उपन्यासों ने ऐसे बच्चों की दारुण दशा का मुखर चित्रण किया है। *रजनी गुप्ता* की कहानी *रेत के घरौंदे, गायत्री कमलेश्वर* की कहानी *घटनाओं में झूलता मन, दीपक शर्मा* की कहानी *कुंजी, सुमति अय्यर* की कहानी *एक असमाप्त कथा, स्नेह मोहनीश* की कहानी *बौर फागुन का, ध्रुव शुक्ल* की कहानी *उसी शहर में* और *मृदुला गर्ग* के उपन्यास *कठगुलाब* में पारिवारिक विघटन, घरेलू हिंसा, अहं के टकराव, तलाक और सम्बन्ध विच्छेद जैसी स्थितियों के कारण परिवारों में दयनीय स्थितियों को भोगने के लिए मजबूर होते, उपेक्षा और क्रोध को अपने अन्दर दबाकर मानसिक अवसाद, विद्रोही प्रवृत्ति और कुंठा के शिकार होते बच्चों की व्यथा को समग्रता के साथ उजागर किया गया है।

माँ-बाप द्वारा बचपन में ही बच्चों पर थोपी गयी अपनी अपेक्षाएँ और बच्चों की रुचि को पहचाने बगैर उन पर की गयी जबरदस्ती प्रायः बच्चों को मानसिक रूप से इतना अधिक प्रताड़ित कर देती है कि उनका व्यवहार असामान्य हो जाता है, विद्रोही मानसिकता पनपने लगती है और बच्चे गलत राह की ओर मुड़ जाते हैं। इसका प्रमुख कारण बढ़ती प्रतिस्पर्धा, भौतिकता और आधुनिकता है। *मो. आरिफ* की कहानी *पापा का चेहरा* मे पिता की आधुनिकता और जबरिया

दबाव ने बेटी को मानसिक रूप से इतना अधिक प्रताड़ित कर दिया कि वह पढ़ाई से दूर हो गई और मानसिक रूप से असामान्य होकर वैसा ही व्यवहार करने लगी। इसी प्रकार की स्थितियाँ *स्वयं प्रकाश* की कहानी *एक यूँ ही मौत* और *अशोक आत्रेय* की कहानी *बच्चे* में उजागर होती है। *कृष्ण सुकुमार* की कहानी *बीड़ी* और *रवीन्द्र वर्मा* की कहानी *ललिता पवार* की भूमिका में परिवेश से सीखने के बाल मनोविज्ञान को बखूबी प्रस्तुत किया गया है।

दिनेश पालीवाल की कहानी *खेल और खेल, रामधारी सिंह दिवाकर* की कहानी *सम्बन्ध वाचक, पद्मा सचदेव* के उपन्यास *नौशीन* में बाल शोषण के विविध पक्ष प्रस्तुत किये गए हैं। बच्चों के यौन शोषण और नौकर से लगाकर आतंकवादी बनाने हेतु किये जाने वाले शारीरिक शोषण और मानसिक प्रताड़ना की स्थितियाँ वर्तमान का कटु यथार्थ हैं। ऐसी स्थितियाँ बच्चों को असमय ही अपराध के लिए प्रेरित करती हैं और उनके भविष्य को तहस-नहस कर देतीं हैं।

वर्तमान समय और समाज की ज्वलंत और मार्मिक समस्या उठाने के कारण *कृष्णा सोबती* का उपन्यास *दिलोदानिश* इस दौर के बहुचर्चित व खास उपन्यासों में गिना जाता है। दिलो दानिश में विवाहेतर सम्बन्धों का दंश भोगती 'दूसरी पत्नी' के साथ ही इन सम्बन्धों से पैदा हुए बच्चों की हाशिये की जिंदगी को एकदम उघाड़कर रख दिया गया है। वकील कृपानारायण जैसे लोग अपनी इच्छापूर्ति के लिए विवाहेतर सम्बन्ध तो बना लेते हैं, किन्तु इससे पैदा हुए बच्चों को अकारण ही जीवन भर दुःख भोगने के लिए बाध्य होना पड़ता है। इन बच्चों को बाप का नाम भी नहीं मिलता और भविष्य की कोई राह भी इनके सामने नहीं होती। वकील कृपानारायण की चिंता और महक का तनाव अपनी जगह पर है, किन्तु निरपराध बच्चों को बेवजह मिलने वाली सजा, तनाव और विवशता को भुक्तभोगी बच्चे ही महसूस कर सकते हैं, साथ ही समाज से मिलने वाले ताने-उलाहने बच्चों को मानसिक अवसाद, विक्षिप्तता या अपराध करने की मनोवृत्ति की ओर मोड़ देते हैं। कमोबेश यही स्थितियाँ *सुभाष नरुला* के उपन्यास *आधा मसीहा* में और *स्नेह मोहनीश* की कहानी *बौर फागुन* का में उजागर होती हैं।

अचला नागर की कहानी *नसीबाँ अली* में समाज की विकृत मानसिकता, अशिक्षा, गरीबी और बेकारी के कारण अपराध जगत में प्रवेश करते युवाओं की व्यथा उजागर हुई है,

मधु काँकरिया के उपन्यास पत्ताखोर में घर-परिवार की कलह से ऊबकर नशेबाजी में मन की शांति तलाशते किशोरों का दर्द प्रकट हुआ है, *कमल कुमार* के उपन्यास *औरत और पोस्टर* में किशोरों के अन्दर पनपती यौन विकृतियों व अपराधी मानसिकता को उजागर किया गया है और सुषमा जगमोहन के उपन्यास जिन्दगी ई-मेल' में माँ-बाप की आधुनिक, धनलोलुप और भौतिकतावादी मानसिकता के कारण अप्रासांगिक हो गये बच्चों-किशोरों की मार्मिक वेदना को प्रकट किया गया है। यह तीनों स्थितियाँ वर्तमान परिवेश में हर जगह देखने को मिल जाती हैं।

बात जब युवाओं की होती है तो सबसे बड़ी समस्या बेरोजगारी की उभरकर आती है। देश में अबाध गति से बढ़ रही जनसंख्या, सिमटते संसाधन, आर्थिक असमानता और सरकारी तंत्र-नेतृ वर्ग की व्यवस्थाजन्य खामियों व विसंगतियों के कारण बेरोजगारी तेजी से फैल रही है। श्रमशक्ति का अवमूल्यन, सरकारी नौकरियों की कमी, योग्यता व क्षमता की उपेक्षा, निजी क्षेत्र में कर्मचारियों का शोषण और युवाओं की गरीबी-मजबूरी का लाभ उठाने की मानसिकता आदि विविध पक्ष बेरोजगारी की समस्या के ही अंग हैं। *विभूतिनारायण राय* के उपन्यास *घर, पुष्पा सक्सेना* की कहानी *उस एक पल के नाम, मधुकर सिंह* की कहानी *उसका सपना, मिथिलेश्वर* की कहानी *प्रेत की जट, नीलाक्षी सिंह* की कहानी *स्वांग, यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'* की कहानी *छेदवाली जेब* व स्वयं को निगलते हुए, *कृष्ण भावुक* की कहानी *समान्तर, विश्वमोहन* की कहानी *स्वतंत्र, कृष्ण सुकुमार* की कहानी *रामचन्द्र बनाम छित्तर, रामदरश मिश्र* की कहानी *रोटी, रघुनन्दन त्रिवेदी* की कहानी *गुल्लू बाबू की सेल, कैलास बनवासी* की कहानी *एक गाँव फुलझर* और *पंकज बिष्ट* की कहानी आवेदन करो में बेरोजगारी की भयावह समस्या के साथ ही इससे जुड़े विविध पक्षों का; युवाओं के अन्दर पनपती असुरक्षा, अवसादग्रस्तता व भविष्य की चिंता का; आर्थिक असमानता के कारण छोटी और अस्थायी नौकरी करते हुए निकाले जाने की चिंता, भयग्रस्तता व शोषण का तथा हताशा, कुंठा व निराशा का यथार्थवादी और विदग्ध प्रस्तुतीकरण किया गया है।

आधुनिकता और भौतिकता के पीछे भागती युवा पीढ़ी के द्वारा अधिक से अधिक धन कमाकर भौतिक सुख-साधनों को जुटाने की मानसिकता और परम्परागत रूढ़िवादी मानसिकता को तजकर बेबाकी और खुलेपन के साथ जिन्दगी जीने के वैचारिक बदलाव ने युवा पीढ़ी के जीवन-स्तर और रहन-सहन के तौर तरीकों सहित बहुत कुछ बदला है। सूचना क्रांति और 'विश्व

ग्राम' के कारण यह बदलाव बहुत तेजी से हुआ है, जिससे दो पीढ़ियों के बीच अन्तर्विरोध भी उतनी ही गति से मुखर हो गया है। इस बदलाव को अपने शब्दों में व्यक्त करते हुए हितेश शंकर लिखते हैं कि ''एक्सप्रेस युअरसेल्फ' जैसे मोबाइल मंत्र के सहारे संकोच के दायरे तोड़ने में जुटे युवाओं को बेलाग तरीके से अपनी बात कहना आ गया है। अगर किसी को इससे खीझ पैदा होती हो तो उनके पास इसके लिए 'कूल डाउन' का मरहम भी है।''[41] वैचारिक अभिव्यक्ति के मामले में व्यावहारिकता और बेहद खुलेपन ने दो पीढ़ियों के बीच अन्तर्विरोध के साथ ही वैचारिक टकराव की स्थितियों को भी जन्म दिया है। *मृदुला गर्ग* के उपन्यास *वंशज*, *रजनी गुप्ता* की कहानी *गंतव्य* और *स्वयं प्रकाश* की कहानी *'मूलचंद* बाप तथा अन्य' में यही टकराव और अन्तर्विरोध प्रकट हुआ है।

परिवारों के सिमटते दायरे में शारीरिक रूप से अक्षम हो चले वृद्धों का वजूद सिमटने लगता है। अपने बच्चों के लिये उठाए गए तमाम कष्ट वृद्धावस्था में वजूद खो देते हैं और बच्चों के द्वारा ही बुजुर्गवारों को उपेक्षा व शोषण का शिकार होना पड़ता है। सारी जिंदगी संघर्ष करते रहने वाले लोग अपनी वृद्धावस्था में बच्चों के लिए अप्रासंगिक हो जाते हैं। *रजनी गुप्ता* का उपन्यास *किशोरी का आसमाँ*, *हिमांशु जोशी* का उपन्यास *सु-राज*, *कृष्ण सुकुमार* की कहानी *सूखे तालाब की मछलियाँ*, *डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय* की कहानी *बावला*, *डॉ. रामकुमार तिवारी* की कहानी *सत्यम् शिवम् सुन्दरम* व *सिद्धेश* की कहानी *आहत समय* में बुजुर्गों के इस दर्द को बेबाकी के साथ प्रस्तुत किया गया है।

जीवन में यांत्रिकता और भौतिकता के बढ़ते दबाव, सिमटते संसाधन, महँगाई और पारिवारिक मूल्यों में आते बदलाव के कारण अब वृद्ध सेवाश्रमों की बाढ़ सी आ गई है। कमाई में अक्षम वृद्धों को उनके बच्चे इन सेवाश्रमों में छोड़ देने में कोई गुरेज नहीं रखते। वृद्धाश्रमों में रहते हुए इन वृद्धों के मन की पीड़ा का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इसी प्रकार घर में रहने वाले बुजुर्गवारों से नौकर की तरह काम लिया जाता है और बदले में उन्हें भरपेट भोजन व दूसरी जरूरतों की पूर्ति भी नहीं की जाती। बहुसंख्य लोगों द्वारा किए जा रहे इस बर्ताव को समाज और नैतिकता में आए बदलाव की नजर से देखा जा सकता है। *कुसुम कुमार* के उपन्यास *पूर्वी द्वार*, *यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'* की कहानी *नए ढंग का अपंग*, *जया जादवानी* की कहानी *शाम की धूप*, *कुन्दन सिंह परिहार* की कहानी *गणित*, *नीरजा*

माधव की कहानी *एरियर, रजनी गुप्ता* की कहानी *माँ की डायरी, हरियश राय* की कहानी *वृन्दावन, मिथिलेश्वर* की कहानी *चल खुसरो घर आपने* और *हिमांशु जोशी* की कहानी *एक बार फिर में* वृद्धावस्था के कारण अपने बेटे-बहू व परिवार के दूसरे सदस्यों से मिलने वाली उपेक्षा और शोषण को, विविध आयामों को समग्र यथार्थ के साथ प्रकट किया गया है।

कामतानाथ की कहानी *अंजीर का पेड़, गोविन्द मिश्र* की कहानी *यत्र धर्मः, नीरजा माधव* की कहानी *साँझ से पहले, रामधारी सिंह दिवाकर* की कहानी *नीड़ पाखी, सत्येन कुमार* की कहानी *अधूरी चिट्ठी, राम गुप्त* की कहानी *उस बूढ़े आदमी के कमरे में', विमल पाण्डेय* की कहानी *साथ, दिनेश पालीवाल* की कहानी *बूढ़े वृक्ष का दर्द* और *रामधारी सिंह दिवाकर* की कहानी *नायक प्रतिनायक सहित, कुसुम कुमार* के उपन्यास *पूर्वी द्वार* में समाज व परिवार की उपेक्षा व शोषण से संघर्ष करते हुए बुढ़ापे में भी पराश्रित रहने के बजाय अपनी बौद्धिक शक्ति व क्षमता के बल पर समाज को नई राह दिखाने, बेसहारा लोगों की मदद करने का जज्बा रखते बुजुर्गों के जीवट और साहस को प्रस्तुत किया गया है।

प्रियंवद की कहानी *चूहे, नसीम साकेती* की कहानी *पीढ़ियाँ, नरेन्द्र नागदेव* की कहानी *सैलानी, मृणाल पाण्डे* की कहानी *दूरियाँ* और *क्षमा शर्मा* की कहानी *पिता* यह सोचने को मजबूर कर देती हैं कि वृद्धों की उपेक्षा समाज व परिवार को तोड़ देती है। जीवन की गति के साथ पिता बनने और वृद्धावस्था में पहुँचने पर वैसी ही स्थितियाँ प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष उत्पन्न हो सकती हैं, जिन स्थितियों में वृद्धों को उपेक्षित और शोषित किया जाता है। यह एहसास उपजना स्वाभाविक है, जो वृद्धों की दयनीयता और अपने माँ-बाप की बेबसी, दुःख और कष्टों के प्रति सहज मानवीय चेतना को झकझोर कर रख देती है।

बच्चे, युवा और वृद्ध समाज के अनिवार्य अंग होते हैं और किसी समाज या राष्ट्र के विकास में इनकी भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है। बच्चों और युवाओं में देश का भविष्य झाँकता है, जबकि वृद्धों के पास ज्ञान का असीमित भण्डार होता है। इनकी उपस्थिति को नकारकर; इनको उपेक्षित, शोषित और तिरस्कृत करके कोई परिवार, समाज या राष्ट्र वास्तविक प्रगति नहीं कर सकता। आठवें दशक के बाद का हिन्दी कथा-साहित्य बच्चों, युवाओं और वृद्धों के प्रति समाज के दायित्व को निरन्तर स्मरण कराने की अपनी जिम्मेदारी निभाने में सर्वथा सक्षम और सफल सिद्ध हुआ है। इस दौर की कहानियों व उपन्यासों में यथार्थ का बेबाक

प्रस्तुतीकरण समय के सत्य से साक्षात्कार ही नहीं है, वरन् पथ-प्रदर्शक भी है।

(8) कृषक और असंगठित श्रमिक :-

देश की अर्थव्यवस्था का बहुत बड़ा भाग कृषि क्षेत्र पर निर्भर है। भारत को कृषि प्रधान देश कहा जाता है। देश में कुल किसान आबादी लगभग 8.93 करोड़ की है, लेकिन देश के किसानों की हालत दयनीय है। तमाम किसान कर्ज के जाल में फँसे हुए हैं। कृषि उत्पादों पर छोटी-बड़ी, देशी-विदेशी तमाम कम्पनियों का कब्जा है। इन उत्पादों के जरिए तमाम कम्पनियाँ, दलाल, मुनाफाखोर और पूँजीपतियों की तिजोरियाँ भर गई हैं, किन्तु किसान अब भी भूख, गरीबी और कर्ज के जाल में फँसकर मरने को मजबूर है। मौसम की मार, कृषि उपकरणों व खाद आदि के बढ़ते दाम, महँगाई और बाजार में पूँजीपतियों के कब्जे ने किसानों को ऐसी जगह ला कर खड़ा कर दिया है, जहाँ मौत को चुनने के अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता शेष नहीं है। इस दयनीय दशा का सबसे अहम कारण किसानों का असंगठित होना है। बड़े भूस्वामियों के पास बाहुबल है, धनबल है और उन्होंने सत्ता में भागीदारी करके सत्ता का बल भी अपने साथ मिला लिया है। ऐसी हालत में लघु-सीमान्त कृषक शोषण के लिए प्रस्तुत है। कृषि क्षेत्र व किसानों के हित के लिए तमाम योजनाएँ बनाते समय हमारा सरकारी तंत्र और नेतृ वर्ग परोक्ष रूप से इस बात के लिए चिंतित रहता है कि किसान संगठित नहीं होने पाएँ। क्योंकि किसानों के बहुत बड़े वर्ग के संगठित विरोध को दबा सकने की क्षमता किसी में नहीं है। स्वार्थी राजनीति के कुचक्रों के कारण किसानों के आन्दोलनों को उपजने से पहले ही दबा दिया गया। *कमलाकांत त्रिपाठी* का उपन्यास *बेदखल*, राजनेताओं द्वारा किसान शक्ति का अपने हित में उपयोग किए जाने और संगठित होने वाले किसानों को विभाजित कर उनका शोषण किए जाने की मानसिकता को उजागर करता है। इसी प्रकार *श्रीलाल शुक्ल* का उपन्यास *विश्रामपुर* का संत सरकारी सहायता के बल पर खड़े होने वाले आन्दोलनों के जरिये किसानों की संघर्षशीलता और विरोधी तेवर को नष्ट-भ्रष्ट कर देने की राजनीतिक साजिश का खुलासा करता है। *संजय* की कहानी *कामरेड का कोट*, *चंद्रमोहन प्रधान* की कहानियों *एनकाउंटर* व *एहि नगरिया मा केहि विधि रहना* और *मधुकर सिंह* की कहानी *मेरे गाँव के लोग* में भी यही स्थितियाँ उजागर हुई हैं।

वैश्वीकरण, आधुनिकीकरण और आर्थिक उदारीकरण के नाम पर देश के नेताओं द्वारा

किये गए वैश्विक समझौतों का प्रभाव भारतीय कृषि पर पड़ा है। इस सन्दर्भ में भारत डोगरा लिखते हैं कि "आधुनिक तकनीक और बढ़ते अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की इस सिमटती दुनिया में हमारे दूर-दूर के गाँवों में किसान भी विकसित देशों की चकाचौंध वाले शहरों में हो रही गतिविधियों से नजदीकी तौर पर प्रभावित होने लगे हैं। वाशिंगटन, लन्दन, पेरिस या बॉन में पहले से सबसे अमीर देशों को और मुनाफा पहुँचाने के लिए जो नीतियाँ बनाई जा रही हैं या तकनीक विकसित की जा रही है, उसका प्रतिकूल असर उत्तर प्रदेश या कर्नाटक के गाँवों में कार्यरत किसानों को भी झेलना पड़ सकता है। दुनिया अधिक जटिल होती जा रही है और खेती किसानी से सरोकार रखने वाले लोगों को भी इन जटिलताओं का सामना करना पड़ सकता है।"[42] *कैलास बनवासी* की कहानी *एक गाँव फुलझर, ऋता शुक्ला* की कहानी *सरबहारा* और *पंकज मित्र* के उपन्यास *हुड़ुकलुल्लु* में ऐसी जटिलताएँ और समस्याएँ उजागर होती हैं।

किसानों में बहुत बड़ा वर्ग खेतिहर मजदूरों का होता है, जिनके पास कृषि योग्य भूमि नहीं होती किन्तु वे कृषि कार्य से जुड़े रहकर अपना परिवार चलाते हैं, पेट पालते है। ऐसे किसान या खेतिहर मजदूर चौतरफा शोषण के शिकार होते हैं। गाँव के भूस्वामियों के अत्याचार के साथ ही महँगाई, अशिक्षा और अभावग्रस्तता इन खेतिहर मजदूरों की जिन्दगी को जटिल और विद्रूप बना देती है। *संजीव* की कहानी *तिरबेनी का तड़बन्ना, कमलाकान्त त्रिपाठी* की कहानी *पुण्यात्मा, अरुण प्रकाश* की *कहानी नहीं, विजेन्द्र अनिल* की कहानियाँ *विस्फोट व हल, विजयकांत* की कहानी *बीच का समर, मदन मोहन* की कहानी *बच्चे बड़े हो रहे हैं* और *मिथिलेश्वर* की कहानी *मेघना का निर्णय* सहित *सुरेन्द्र स्निग्ध* का उपन्यास *छाड़न,* खेतिहर मजदूरों की दयनीयता को उजागर करता है। इन मजदूरों को 'बँधुआ' की तरह काम करते हुए भी शोषण से निजात नहीं मिलती। भूस्वामियों के अत्याचार के साथ ही गाँव के साहूकारों का शोषण, कृषि क्षेत्र में आधुनिक उपकरणों का आगमन और परम्परागत कृषि विधियों-तकनीकों की समाप्ति। घटती कृषि भूमि के साथ ही महँगाई और कम मजदूरी के कारण गाँवों के खेतिहर मजदूरों को शहर की ओर पलायन करना पड़ता है। ऐसे लोग शहरों में आकर भवन निर्माण, घरेलू कार्य, दूकानों पर चौकीदारी, रिक्शा-हाथगाड़ी से ढुलाई और फैक्ट्रियों आदि में दिहाड़ी मजदूरी जैसे कार्य करते हैं। चूँकि यह लोग शहर से आकर भी असंगठित क्षेत्र में कार्य करते हैं, इस कारण इनका शहरों में भी जमकर शोषण किया जाता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद औद्योगीकरण के बढ़ने के साथ ही 'ट्रेड यूनियन' सक्रिय होते गये। बाद के वर्षों में राष्ट्रीय राजनीतिक दलों ने अपने श्रमिक संगठन बना लिए। वर्तमान में इण्टक, एटक, सीटू, हिन्द मजदूर सभा सहित कई मजदूर मोर्चा और श्रमिक संगठन सक्रिय हैं। जार्ज फर्नाण्डीज़ के नेतृत्व में रेल चक्का जाम आन्दोलन, दत्ता सामंत का कपड़ा मिल मजदूर आन्दोलन और स्वामी अग्निवेश का बँधुआ-मुक्त आन्दोलन जैसे बड़े आन्दोलनों सहित स्थानीय स्तर पर तमाम श्रमिक आन्दोलनों ने संगठित क्षेत्र के श्रमिकों को न केवल जागरुक किया है वरन् शोषण व अत्याचार के खिलाफ लड़ने की राजनीतिक, सामाजिक चेतना भी विकसित की है। किन्तु असंगठित क्षेत्र के श्रमिक आज भी शोषण के शिकार हैं। प्रकारान्तर से यदि इन्हें बँधुआ मजदूर कहा जाय तो गलत नहीं होगा। आठवें दशक के बाद के हिन्दी कथा-साहित्य में इन मजदूरों के जीवन की विषमताओं और शोषण-अत्याचार को केन्द्र में रखकर कई बहुचर्चित कृतियाँ रची गयी हैं। *प्रेमपाल शर्मा* की कहानी *सूबेदार, जितेन्द्र भाटिया* की कहानियाँ *अनुष्ठान व ग्लोबलाइजेशन, हृदयेश* की कहानी *मजदूर, हरि भटनागर* की कहानी *खूंखार लोग, सी. दास बांसल* की कहानी *उसकी रोटी, कामेश्वर पाण्डेय* की कहानी *अच्छा तो फिर ठीक है, विश्वमोहन* की कहानी *गुलाम, सतीश जमाली* की कहानी *ठाकुर संवाद, नीरजा माधव* की कहानी *नया फ्लैट, शिवमूर्ति* की कहानी *तिरिया चरित्र, अरुण प्रकाश* की कहानी *भैया एक्सप्रेस, सी. भास्कर राव* की कहानी *दौड़ते रहो दण्डपाणि* और *हसन जमाल* की कहानी *एक दिन के साथ ही, डॉ. राम दरश मिश्र* के उपन्यास *दूसरा घर* और *अब्दुल बिस्मिल्लाह* के उपन्यास *झीनी-झीनी बीनी चदरिया* आदि उपन्यास और कहानियों में असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के जीवन की, उनकी समस्याओं, शोषण और अत्याचार की दयनीयता से जुड़े विविध पहलू और शोषक वर्ग की विकृत मानसिकता उजागर की गई है। इस सन्दर्भ में हृदयनारायण दीक्षित लिखते हैं कि "असंगठित श्रमिक एक ही संस्था में लम्बे समय तक काम नहीं कर पाते। वे कभी सड़क कूट रहे होते हैं, तो कभी झाड़ू पोंछा लगाते हैं। बहुधा स्वयं को बेचने की खातिर महानगरों की सड़कों पर पंक्तिबद्ध बैठकर इंतजार करते हैं। जिन्हें खरीद्दार मिल जाता है वे खरीददार के साथ चले जाते हैं, जिन्हें नहीं मिलता वे उदास हताश अपने रैन बसेरे की तरफ रुख करते हैं। भारतीय राष्ट्र राज्य इतना क्रूर भी नहीं था। निर्धनता बेशक थी, पर संवेदनशीलता भी थी। राजनेता, पूँजीपति, नौकरशाह, ठेकेदार और इसी

स्तर पर आय वाले अन्य वर्गों ने मिलकर एक नया उपभोक्ता समाज बनाया है।''[43]

अमरकान्त की कहानी *बहादुर*, *अर्चना वर्मा* की कहानी *राजपाट*, *नारायण सिंह* की कहानी *चारा*, *जवाहर सिंह* की कहानी *रेतघर*, *दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय'* की कहानी *कड़वा थूक*, *विश्वमोहन* की कहानी *गरीबी हटाओ*, *चित्रा मुद्गल* की कहानी *इस हमाम में*, *भीष्म साहनी* की कहानी *संभल के बाबू* और *अखिलेश* की कहानी *खोया हुआ पुल* में घरेलू नौकरों की जिन्दगी में झाँकने का सटीक प्रयास हुआ है। बच्चों से लगाकर वृद्ध तक हर आयु वर्ग के नौकरों सहित महिला नौकर (नौकरानियाँ) अपनी तमाम मजबूरियों के कारण अपने नियोक्ता के शारीरिक, आर्थिक और यहाँ तक कि यौन शोषण को भोगने के लिए बाध्य होते हैं। कम मजदूरी पर कार्य करते हुए कभी भी नौकरी से निकाल दिये जाने का भय इन लोगों को चुपचाप शोषण का शिकार होते रहने के लिए बाध्य करता है। किन्तु जब सीमाएँ टूट जाती हैं और परिस्थितियाँ असहनीय हो जाती हैं तब यह नौकर भी विरोध पर उतर पड़ते हैं।

आलमशाह खान की कहानी *जूतों का कफन*, *नीलकांत* की कहानी *ताँत के बोल*, *अमितेश्वर* की कहानी *धंधा*, *हरि भटनागर* की कहानी *सगीर और उसकी बस्ती के लोग*, *मधुसूदन आनंद* की कहानी *मिस्त्री*, *सईद अहमद शेरकोट वाले*, *यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'* की कहानी *वे दोनों* और *शीतांशु भारद्वाज* की कहानी *यात्री* में परम्परागत उद्यमों और हस्तशिल्पों के व्यवसाय से जुड़े लोगों की दयनीयता को प्रकट किया गया है। आर्थिक उदारीकरण के दौर ने, मशीनीकरण और विकसित होते बाजारों ने परम्परागत उद्यमियों, हस्तशिल्पियों और गाँव-कस्बे स्तर के छोटे व्यवसायियों की कमर तोड़ दी है। ऐसे लोग अपने धंधे में लगातार घाटा सहते हुए, महँगाई की मार झेलते हुए भुखमरी की कगार पर आ खड़े हुए हैं। *चित्रा मुद्गल* की कहानी *जनावर* इस वेदना को उजागर करते हुए दिल को दहलाकर रख देती है। परम्परागत उद्यमियों और हस्तशिल्पियों की मजबूरी में उनकी मानसिकता को बदल दिया है। *गिरिराज किशोर* की कहानी *वल्दरोजी* का पात्र युवक अपने पैतृक व्यवसाय को इसी कारण छोड़ देना चाहता है। उसे किसी भी सरकारी दफ्तर में चपरासी बनना मंजूर है, वह दस्तकारी के अपने पैतृक धंधे को नहीं करना चाहता। वैसे भी तमाम समस्याएँ और मजबूरियाँ इन परम्परागत उद्यमियों, हस्तशिल्पियों और छोटे व्यवसायियों को अपना कारोबार छोड़ने के लिए मजबूर कर देती हैं। इनमें से अधिकांश को खेतिहर मजूदरों की ही तरह असंगठित क्षेत्र में मजदूरी करने

के लिए और वहाँ के शोषण को भोगने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

कुल मिलाकर इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि देश के किसानों और असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के रूप में एक बड़ा वर्ग; राजनीतिक पूँजीपति, भूस्वामी और व्यवस्था तंत्र से जुड़े लोगों के अपेक्षाकृत छोटे संगठन के शोषण, अन्याय व अत्याचार को भोगने-सहने के लिए मजबूर है। बदलते आर्थिक ढ़ाँचे के कारण यह मजबूरियाँ बढ़ी हैं। यदि इस दौर के हिन्दी कथा साहित्य ने किसानों और श्रमिकों के जीवन की विद्रूपताओं और वास्तविकताओं को नहीं देखा होता, परखा होता तो समय के सत्य के साथ कथा-साहित्य की निकटता शायद अधूरी ही रह जाती।

(9) आदिवासी जनजीवन :-

देश की आबादी में बड़ा हिस्सा आदिवासियों का भी है। सामान्य तौर पर जंगलों में रहने वाले, वनोपज पर आश्रित रहकर अपना जीवन-यापन करने वाले आदिवासियों के जीवन पर शहरी लोगों का, वर्तमान में चल रहे मशीनीकरण और भौतिकता का संकट छाया हुआ है। जंगलों की कटाई के कारण, शहरों के विस्तार के कारण और वनों पर सरकारी नियंत्रण के कारण आदिवासी भूमिहीन और बेघर भी हुए हैं, उन पर अत्याचार भी बढ़े हैं। आदिवासियों पर हो रहे अत्याचार और शोषण के सन्दर्भ में फागराम का कथन उल्लेखनीय है- "सवाल यह है कि आदिवासी का कोई हक है या नहीं ? उसे अपना पेट भरने और जिंदा रहने की आजादी है या नहीं ? जिन मानव अधिकारों की बात की जाती है वे आज कहाँ हासिल हैं ? वन विभाग कहता है कि आदिवासी ने अतिक्रमण किया है लेकिन वह कहाँ से आया है ? दूसरे देश तो नहीं आया है। वह तो यहीं का रहने वाला है। आदिकाल से यहाँ रहता आया है तभी तो उसका नाम आदिवासी है यह हो सकता है कि पिछले सौ-पचास सालों में उसे एक जगह से दूसरी जगह जाकर बसना पड़ा है। इसके पीछे भी उसकी कोई मजबूरी रही होगी। कहीं सरकार ने उस पर झूमखेती (डहिया) बंद करके एक जगह बसने का दबाव डाला है, कहीं पर जंगल खतम हो जाने से उसकी जीविका नहीं बची है। कहीं पर दूसरे लोगों ने आकर चालाकी से उसकी जमीन हथिया ली है। कहीं बाँध, कारखाना, राष्ट्रीय उद्यान, फायरिंग रेंज या शहर बनने से उसे उजड़ना पड़ा है। सरदार सरोवर बाँध, बरगी बाँध, तवा बाँध, बारना बाँध, मान बाँध- सब तो आदिवासियों की भूमि पर ही बने हैं। सरकार ने हर परियोजना में उसे उखाड़ा है और उसे उठाकर फेंक दिया

है। यह कहना सही होगा कि अतिक्रमण आदिवासी ने नहीं किया। बल्कि दूसरे लोगों ने और खुद सरकार ने उसकी जिंदगी में अतिक्रमण किया है। उसके बाद भी उसी को मारा जा रहा है, उसी के घर जलाए जा रहे हैं।''[44] इसके साथ ही अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी, शोषण, आधुनिकता व भूमण्डलीकरण के दुष्प्रभावों ने आदिवासियों के जीवन को दुष्कर बना दिया है। आदिवासियों की दयनीय हालत के यथार्थ को उसके विविध पक्षों को केन्द्र में रखकर विवेच्य कालखंड में तमाम कहानियाँ और उपन्यास लिखे गये हैं।

आलमशाह खान की कहानी *खून खेती*; *संजीव* की कहानियों *खोज*, *प्रेतमुक्ति* व *दुनिया की सबसे हसीन औरत*; *मनीष राय* की कहानी *शिलान्यास*; *राकेश वत्स* की कहानी *अवशेष*; *राकेश कुमार सिंह* के उपन्यासों *पठार पर कोहरा* व *जो इतिहास में नहीं हैं*; *मधुकर सिंह* के उपन्यास *बाजत अनहद ढोल*; *विद्यासागर नौटियाल* के उपन्यास *उत्तर बाँया हैं* व *भीम अकेला*; *ठाकुर प्रसाद सिंह* के उपन्यास *सात घरों का गाँव*; और *मनमोहन पाठक* के उपन्यास *गगन घटा घहरानी*; में आदिवासियों के जीवन की विषमताओं को उजागर किया गया है। अपनी जमीन से उखड़कर तमाम आदिवासी बँधुआ मजदूर बनने को बाध्य हो गए हैं। शहरी लोगों, सरकारी कर्मचारियों और नेताओं ने इन आदिवासियों को प्रताड़ित करने और इनकी जमीन हड़पने के दुष्चक्र चला रखे हैं। साहूकारों के कर्ज तले दबे रहना इन आदिवासियों की मजबूरी है। पुलिस और भूस्वामियों के अत्याचारों से आदिवासी महिलाएँ भी नहीं बची हैं; आदिवासी महिलाओं की मजबूरी का लाभ उठाकर जबरदस्ती यौन शोषण किया जाता है। इसके साथ ही सरकारी परियोजनाओं ने, अशिक्षा, बेकारी और गरीबी की बर्बर यातनाओं ने आदिवासी जीवन को दयनीय और वीभत्स बना दिया है। इन स्थितियों में विद्रोह उपजना कोई बड़ी बात नहीं है। ''अतः कई क्षेत्रों में आदिवासी अपना धैर्य खो बैठे हैं। वे आन्दोलन का रास्ता अपनाकर जंगलों की कटाई करने हेतु विवश हैं, क्योंकि विरोध प्रकट करने का उनके पास कोई दूसरा साधन नहीं है। समय रहते यदि समुचित व्यवस्था नहीं की गयी, तो वनों का विनाश होकर रहेगा, जिसके कुप्रभाव से आदिवासियों एवं वन्य जन्तुओं का जीना दूभर हो जायेगा।''[45]

बदलते समय के अनुरूप आदिवासियों में भी जागृति आ रही है, उनमें राजनीतिक चेतना जागृत हो रही है। अन्याय, शोषण, अत्याचार का प्रतिकार करने की शक्ति का उदय हो

रहा है। शिक्षा के प्रसार और आधुनिकता के प्रभाव ने आदिवासी जनजीवन को प्रभावित किया है। आदिवासी संगठित विरोध की ओर अग्रसर हुए हैं। हिन्दी कथा-साहित्य ने आदिवासियों में जागृत होती चेतना को न केवल जाना-समझा है वरन् उजागर भी किया है। *मनमोहन पाठक* के उपन्यास *गगन घटा घहरानी, मधुकर सिंह* के उपन्यास *बाजत अनहद ढोल, राकेश कुमार सिंह* के उपन्यासों *पठार पर कोहरा* व *जो इतिहास में नहीं है, विद्यासागर नौटियाल* के उपन्यास *उत्तर बाँया है, अरुण प्रकाश* की कहानी *बेला एक्का लौट रही है, भालचन्द्र जोशी* की कहानी *पहाड़ों पर रात, संजीव* की कहानी *पाँव तले की दूब, ललित शाह* की कहानी *गुरमा, पुन्नी सिंह* की कहानी *मोर्चा* और *राकेश कुमार सिंह* की कहानी *हाँका* में आदिवासियों की जागृत चेतना और संघर्षशीलता पूरे यथार्थ के साथ परिलक्षित होती है। कहीं यह विद्रोह नक्सली आन्दोलन का रूप ले लेता है तो कहीं वैयक्तिक संघर्ष-चेतना नवजागरण का संदेश देती है।

आदिवासी समाज की अपनी अलग जीवन-शैली, अनूठी संस्कृति और रहन-सहन के कारण तथाकथित सभ्य समाज से अलग रहा और इस कारण सभ्य समाज ने अपनी सभ्यता (?) के विकास के लिए इन आदिवासियों को ठगा, शोषण किया, अत्याचार किये। आज आदिवासियों में भी बदलाव की बयार चल रही है, वे खुलकर संघर्ष कर रहे हैं। आठवें दशक के बाद के हिन्दी कथा साहित्य ने इन दोनों ही स्थितियों को, बदलाव के विविध पक्षों को समग्रता के साथ, वास्तविकता के साथ प्रकट किया है।

(10) शिक्षा, कला, साहित्य और मीडिया की स्थिति :-

देश में चल रही तेज बदलाव की लहर ने कला, साहित्य और मीडिया के साथ ही शिक्षा तंत्र में आमूल चूल परिवर्तन किया है। भौतिकता, वैश्विक प्रभाव और बदलते मूल्यों ने कला और कलाकारों को, साहित्य और साहित्यकारों को बदला है। पुराने आदर्श और मूल्य तिरोहित हुए हैं। इलेक्ट्रानिक मीडिया के वर्चस्व, तेज संचार माध्यमों और 'घरानों' की गिरफ्त में आते मीडिया में बहुत कुछ बदला है। इसी प्रकार शिक्षा-तंत्र में हावी होती राजनीति, लालफीताशाही, उदारीकरण की मानसिकता और छात्रों के अन्दर आए तमाम बदलावों ने शिक्षक-छात्र सम्बन्धों में बदलाव के साथ ही पढ़ाई के तौर-तरीकों को भी प्रभावित किया है।

प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा दो वर्गों में बटी हुई है। एक ओर महँगे कान्वेन्ट स्कूल

और कॉलेज हैं, दूसरी ओर अनुदानित/सरकारी स्कूल और कॉलेज हैं। महँगे विद्यालयों की शिक्षा गरीब और मध्यम वर्ग के छात्रों के लिए सुलभ नहीं है। साथ ही शिक्षा की गुणवत्ता भी संदेहास्पद है। ग्रामीण इलाकों, जनजातीय क्षेत्रों तथा दूरदराज के इलाकों में तो शिक्षा की स्थिति और अधिक दयनीय है। यहाँ पर सुविधाओं के साथ ही शिक्षकों का भी अभाव रहता है। उच्च शिक्षा में भी बेहतर शैक्षणिक वातावरण नजर नहीं आता। विश्वविद्यालयों की आपसी राजनीति और अन्दरूनी उठापटक के साथ ही राजनीति के बढ़ते वर्चस्व ने शिक्षा के स्वरूप को विकृत कर दिया है। विश्व विद्यालयों की वर्तमान स्थिति पर डॉ. सुरेश अवस्थी टिप्पणी करते हैं कि "एक तो विश्वविद्यालय पहले से ही स्वतंत्र नहीं हैं, उन पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं राज्य सरकारों का व्यापक दबाव है; उस पर परिसरों में पनप रही छात्र अराजक राजनीति, राजनीतिक स्तर पर कुलपतियों की नियुक्तियों एवं शिक्षकों की अध्ययन-अध्यापन से हटकर दूसरे धंधों में विशेष रुचि ने विश्वविद्यालयों की वह अवधारणा जिसे 'विश्वविद्यालय' जैसे एक शब्द विशेष में समाहित किया गया था, को बुरी तरह से क्षत-विक्षत कर दिया है। एक ओर सरकारें उच्च शिक्षा में सुधार के लिए उदासीनता धारण किए हुए हैं तो दूसरी ओर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग इतनी तेजी से दौड़ रहा है कि दोनों के बीच समायोजन नहीं हो पा रहा है। इसका नतीजा यह है कि शिक्षकों, प्रयोगशालाओं, आलीशान भवनों तथा कर्मचारियों पर अरबों रुपया खर्च करने के बाद भी यह विश्वविद्यालय युवा पीढ़ी को डिग्री के नाम पर बस बेरोजगारों की पंक्ति में खड़े होने का 'टोकन' पकड़ा रहे हैं।"[46] विश्वविद्यालयों में पनपी इस अराजकता के साथ ही शिक्षा केन्द्रों में बरकरार जातीय और धार्मिक संकीर्णताएँ व विभेद, भ्रष्टाचार, आर्थिक असमानता, शोषण व उपेक्षा और हावी होती भौतिकता, आधुनिकता ने शिक्षा जगत की स्थिति को सोचनीय बना दिया है। शिक्षा जगत् की वर्तमान स्थिति और इसके विविध पहलुओं को आधार बनाकर लिखे गए उपन्यास और कहानियों में उषा यादव का उपन्यास कितने नीलकंठ, गिरिराज किशोर का उपन्यास परिशिष्ट, असगर वजाहत का उपन्यास कैसी आग लगाई, प्रमोद कुमार तिवारी का उपन्यास डर हमारी जेबों में, राजेश शर्मा की कहानी घटना-दुर्घटना, कृष्ण भावुक की कहानी काली रोशनी और विश्वमोहन की कहानी ब्रह्मा विष्णु महेश आदि उल्लेखनीय हैं।

सुशीला झा की कहानी *चुनाव में राजनीति* के वर्तमान स्वरूप की छवि कान्वेन्ट स्कूल में हावी होती दिखाई देती है। धन, बल और छल से स्कूल का एक छात्र अपनी क्लास की

'मॉनीटरशिप' का चुनाव जीत लेता है, बाकी छात्र प्रतिद्वन्द्वी भी ऐसा ही करते हैं, किन्तु वे पीछे ही रह जाते हैं। कन्हैयालाल गाँधी की कहानी शमशीर सिंह का थैला, शिक्षा जगत में माफियाओं की बढ़ती पकड़ को उजागर करती है। मास्टर शमशीर सिंह एक तरह से शिक्षा माफिया हैं जो अपने भ्रष्ट कारनामों के साथ ही शिक्षा जगत् में भ्रष्टाचार के तमाम स्रोतों सहित धन लोलुपता व नैतिकता के पतन को खोलकर रख देता है। यहाँ विभांशु दिव्याल का विचार दृष्टव्य है– "वास्तविकता यह है कि शिक्षा, शिक्षार्थी और शिक्षालय से बने शिक्षा तंत्र की सरोकारी दीवारें ढह गयी हैं और जो थोड़ी बहुत बची भी हैं वह ढहने की कगार पर हैं। इस समय का उच्च शिक्षा तंत्र राजनीतिबाजों, नौकरशाहों और अवैध पैसेवालों के उस माफियाई गिरोह का हिस्सा बन गया है जो गठजोड़ तथाकथित खुलेपन और उदारता के इस युग में अभावग्रस्तों को और अधिक अभावग्रस्त बना रहा है और जिनके हाथों में दोहन की क्षमता है उन्हें और मजबूत बना रहा है। अब यह केवल चन्द दिनों की ही बात है कि उच्च शिक्षा की इन मण्डियों के लिए निर्धन तो अछूत हो ही जायेंगे प्रतिभाशाली निर्धन भी अछूत हो जायेंगे। इसलिए अछूत हो जायेंगे कि उनके पास इनमें प्रवेश के लिए पैसा नहीं होगा।"[47] यशपाल बैद की कहानी सौदा इसी ओर ध्यान आकृष्ट कराते हुए उच्च शिक्षा में बढ़ते धन के खेल की भयावहता को प्रकट करती है।

कन्हैयालाल गाँधी की कहानी *साक्षात्कार* में शिक्षक और छात्रा के बीच कायम हुए अवैध सम्बन्धों के जरिए शिक्षक-छात्र के बीच सम्बन्धों में आए बदलाव को रेखांकित करते हुए इस सम्बन्ध की शुचिता पर प्रश्नचिन्ह लगाती है। इन दिनों बिहार के प्रो. मटुकनाथ चौधरी के उनकी छात्रा जूली से अवैध सम्बन्धों को लेकर चर्चा-परिचर्चा का बाजार गर्म है। समय के गर्त में दबे ऐसे तमाम रिश्ते शिक्षा के अवमूल्यन को ही प्रकट करते हैं। भीष्म साहनी की कहानी चोरी और *शिशिर पाण्डेय* की कहानी *जीन्स और लूजर* में भी शिक्षा के अवमूल्यन की स्थितियाँ प्रकट हुई हैं। उच्च शिक्षा और ढेरों डिग्रियाँ पाने के बावजूद स्तरहीन नौकरी करने के लिए बाध्य होने वाले युवाओं के मन में शिक्षा के प्रति हिकारत पैदा होना वाजिब है।

शिक्षा के अवमूल्यन, भ्रष्टाचार और धनलोलुपता के बावजूद शिक्षा जगत् में आज भी ऐसे व्यक्तित्व के धनी शिक्षक मौजूद हैं, जो समाज को नई दिशा देने में छात्रों के समक्ष उच्च आदर्श कायम करने में अग्रणी हैं। इसके साथ ही शिक्षा जगत् के विद्रूपों से संघर्ष कर रहे तमाम महान व्यक्तित्व भी प्रायः दिखाई देते हैं, जो किसी भी कीमत पर अपने आदर्शों और सिद्धान्तों

से समझौता नहीं करते। *मिथिलेश्वर* की कहानियों *एक थे प्रो0बी0लाल* व *अपने घर से*, *यशपाल बैद* की कहानी *फैसला* और *रजनी गुप्ता* की कहानी *यथावत* में अपने आदर्श और सिद्धान्तों के धनी शिक्षकों के व्यक्तित्व के साथ ही उनके संघर्ष को उजागर किया गया है।

गिरिराज किशोर की कहानी *स्वप्न दंश*, *श्रीप्रकाश शुक्ल* की कहानी *लोफर*, *भीष्म साहनी* की कहानी *प्रादुर्भाव* और *नसीम साकेती* की कहानी *तलाश जारी है* में उन तमाम समर्पित साहित्यकारों के दयनीय जीवन के दर्शन होते हैं जो अपनी अभावग्रस्तता के कारण समाज और व्यवस्था तंत्र के बीच उपेक्षित होते हैं। तमाम तुक्कड़ और भोंड़े साहित्य को समाज द्वारा स्वीकार किया जाता है, जबकि बढ़िया साहित्य वह स्थान नहीं पाता। आज के दौर की भागदौड़ भरी जिन्दगी में साहित्य के प्रति रुझान कम हुआ है। साहित्यिक परिचर्चाएँ प्रायोजित आयोजनों, जलसों तक सिमटकर रह गयी हैं। इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण प्रकाशन व्यवसाय में धन और पूँजी का बढ़ता वर्चस्व भी है।

प्रकाशन व्यवसाय अब साहित्यकारों के हाथ से निकलकर पूँजीपति घरानों और 'कॉरपोरेट जगत्' का खिलौना बन गया है। इसमें साहित्य के प्रति लगाव के बजाय घोर व्यावसायिकता हावी हो गई है। लेखकों को कम भुगतान देकर, रॉयल्टी में कटौती करके और महँगे दामों में किताबें बेचकर अधिक से अधिक लाभ कमाने तथा सरकारी 'सप्लाई' में बाजी मार लेने की होड़ ने प्रकाशन व्यवसाय में राजनीति, छल, छद्म और षड़यंत्र को भी बढ़ावा दिया है। *विभांशु दिव्याल* की *असली कहानी* और *वीरेन्द्र जैन* के उपन्यास *शब्द-बध* को पढ़ते हुए प्रकाशन व्यवसाय और साहित्य जगत् के तमाम अनजान-अनछुए पहलू, परत-दर-परत खुलते चले जाते हैं, साथ ही प्रकाशन संस्थानों में हावी राजनीति, साहित्यकारों की दुर्दशा और साहित्य की दयनीयता भी समूचे यथार्थ के साथ प्रकट हो जाती है।

साहित्य की भाँति कला भी पूँजीपतियों के हाथ का खिलौना बनकर रह गयी है। कुशल और समर्पित कलाकार उपेक्षित हैं, जबकि कला के नाम पर 'कुछ और' परोसने वाले समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त कर रहे हैं, अपनी जेबें भर रहे हैं। दूसरी ओर ऐसे तमाम कलाकार हैं जो अपना जीवन 'ढोने' के लिए संघर्ष कर रहे हैं, अभावग्रस्तता, महँगाई, बीमारी और गरीबी से जूझ रहे हैं। *से. रा. यात्री* की कहानी *दोहरे मापदण्ड* में प्रकारान्तर से इसी दोहरे मापदण्ड को उजागर किया गया है। इसी प्रकार अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यास झीनी-झीनी बीनी चदरिया में

विश्वप्रसिद्ध बनारसी साड़ी तैयार करने वाले जुलाहों के जीवन की दयनीयता को उजागर किया गया है। इन जुलाहों की मेहनत और कला को बाजार में बेचकर तमाम साहूकारों, मुनाफाखोरों, व्यापारियों और दलालों ने अपनी हवेलियाँ खड़ी कर लीं, तिजोरियाँ भर लीं और जुलाहे अपने जीवन की मूलभूत जरूरतों की पूर्ति के लिए तरसते रहे गये।

हिमांशु जोशी का उपन्यास *शोकसभा* कलाकारों की मानसिकता में आते बदलाव को प्रकट करती है। प्रख्यात कथक नर्तक दिवाकर मलिक की कला का दोहन-शोषण करके तमाम लोगों ने खूब धन कमाया, सरकार ने भी उपेक्षा की और लोगों ने उनकी कला का मुफ्त में लुत्फ़ उठाया। दिवाकर मलिक की भाँति उनकी बेटी स्वयं को शोषण, उपेक्षा और मुफ्तखोरी के लिए समर्पित करने को तैयार नहीं है। वह अपने कार्यक्रमों के आयोजन हेतु आयोजकों से तगड़ा पारिश्रमिक लेती है।

निर्मला भुराड़िया का उपन्यास *आब्जेक्शन मी लॉर्ड,* और *पंकज बिष्ट* का उपन्यास *लेकिन दरवाजा* मीड़िया जगत् में आए बदलाव की पड़ताल करते हैं। एक जमाने में सक्रियता, संघर्षशीलता, सत्यान्वेषण और जनता के सुख-दुख की साझेदारी करने वाला मीडिया जगत् आज सुविधाभोगी हो गया है। मीडिया पर भी पूँजीपति घरानों और 'कारपोरेट जगत्' के कब्जे ने बहुत कुछ बदल दिया है। जनता की आवाज उठाने, जनता की लड़ाई लड़ने और पूर्ण सत्यनिष्ठा के साथ राष्ट्र विरोधी, समाज विरोधी, जन विरोधी ताकतों को बेनकाब करने की मानसिकता बदल गई है। राजनीति और मीड़िया के आपसी सम्बन्धों ने पत्रकारिता के आदर्शों व मूल्यों को तिरोहित कर दिया है। लगभग दो दशक पहले दूरदर्शन को 'सरकार का भोंपू' कहा जाता था। आज प्रिंट मीडिया के साथ ही इलेक्ट्रानिक मीडिया के तमाम समाचार पत्र और 'न्यूज चैनल' यही कार्य कर रहे हैं।

यद्यपि कई चीजें बदली हैं। तहलका खुलासा कांड, सांसद रिश्वत कांड जैसे तमाम छोटे बड़े ज्वलंत प्रश्नों को 'जनता की अदालत' के समक्ष उठाकर 'न्यूज पोर्टल्स' ने अपनी कामयाबी के स्वर बुलंद किये हैं, साथ ही निष्पक्षता और बेबाकी भरे 'इलेक्ट्रानिक मीडिया' ने अपनी शैशवावस्था में ही प्रामाणिकता, प्रतिष्ठा और वर्चस्व के नये कीर्तिमान भी स्थापित किये हैं। 'पीत पत्रकारिता' का वजूद आज भी कायम है। लुटी-पिटी जनता का विश्वास इतना अधिक टूट चुका है कि उसे सहजता से पा सकना सम्भव नहीं लगता। इसके लिए 'प्रिंट मीडिया' को बदलाव

लाना होगा। साथ ही 'इलेक्ट्रानिक मीडिया' को अपने असंदिग्ध स्वरूप को बेहतर ढंग से प्रमाणित करना होगा। मीडिया जगत् में आए बदलाव और संघर्ष के नये आयामों को प्रकट करने में आठवें दशक के बाद का हिन्दी कथा-साहित्य पीछे रह गया है। हिन्दी कथा साहित्य को भी इस चुनौती को स्वीकार करना होगा।

इस प्रकार समय के सत्य और आठवें दशक के बाद के हिन्दी कथा-साहित्य के बीच सम्बन्धों को विविध उपशीर्षकों के अन्तर्गत विश्लेषित किया गया। हर जगह, हर स्तर पर अपनी साहित्यिक मर्यादाओं को निभाते हुए हिन्दी कथा-साहित्य ने बड़ी विदग्धता के साथ वर्तमान के यथार्थ को, उसके समस्त पक्षों-पहलुओं को जाँचा-परखा है और प्रकट भी किया है। गिने-चुने उपन्यास और कहानियाँ अत्याधिक कल्पनाशीलता का शिकार होकर सत्य से भटकी हुई दिखाई पड़ती हैं, किन्तु गहराई से देखने पर उनमें भी सत्य का जैसा आग्रह दिखाई देता है, उसे अप्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। ऐसी ढेरों कहानियाँ और उपन्यास हैं, जिनमें सत्यता इतने गहरे धँसी हुई है कि उन्हें पढ़ते हुए, विश्लेषित करते हुए मानो निजी जीवन ही झाँकने लगता है, राह दिखाने लगता है। कल्पनाशीलता साहित्य का नैसर्गिक स्वभाव होता है, उसे तजकर साहित्य बहुत कुछ बन सकता है, किन्तु फिर वह खुद से ही विलग हो जाता है। इसलिए सत्य की भट्ठी में इन तमाम उपन्यास और कहानियों को तपाते हुए साहित्य के स्वभाव को, कल्पनाशीलता को जिलाए हुए रखने का ही प्रयास किया गया है। अंततः यह भी स्वीकार करना होगा कि समय के सत्य और हिन्दी कथा-साहित्य के बीच सम्बन्ध इतने सहज और व्यापक हैं कि कोई पहलू, कोई भी कोना छूट गया हो, ऐसा संज्ञान में नहीं आता।

संदर्भ

1. नानी पालखीवाला : हम भारत के लोग, 'यह कैसी दलदल?', पृ. 15
2. प्रमोद कुमार अग्रवाल : भारत के विकास की समस्याएँ और समाधान, 'भ्रष्टाचार को नियंत्रित करना विकास के लिए अनिवार्य', पृ. 87
3. शिव विश्वनाथ : राष्ट्रीय सहारा, 21 अक्टूबर-2002, 'भ्रष्टाचार की वितरण प्रणाली बना लोकतंत्र', 'हस्तक्षेप' विशेषांक
4. रवि राय : राष्ट्रीय सहारा, 21 अक्टूबर 2000, 'हर बड़े नेता के पास हजार करोड़ रुपये हैं', 'हस्तक्षेप' विशेषांक
5. प्रेमलता : विधि व्यवस्था का यथार्थ, पृ. 20
6. मनोज मेहता : सहारा समय, 31 मई 2003, 'और ये सत्यकथाएँ', 'पड़ताल' कॉलम
7. वही
8. सुनील सिंह : दैनिक जागरण, 14 अगस्त 2005, 'विधायकों को प्रलोभन है, 'रविवासरीय' विशेषांक
9. आर. एन. प्रतिमा त्रिपाठी : दि इकॉनामिक्स आफ डेवलपिंग कण्ट्रीज, पृ. 28
10. कुमार विजय : दैनिक जागरण, 12 मई 2006, 'गरीबी पर अमीरी का पर्दा', सम्पादकीय पृष्ठ
11. वही
12. अमरकांत : दैनिक जागरण, 04 मार्च 2005, 'कथाकार अमरकांत से यश मालवीय की बातचीत का अंश', 'पुनर्नवा' विशेषांक
13. भानुप्रताप शुक्ल : अमर उजाला, 2 दिसम्बर 2002, 'छद्म सेकुलर जमात की ढोल', सम्पादकीय पृष्ठ
14. बी. टी. रणदिवे : हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकार, संपा.-रमेश उपाध्याय, 'हमारे समाज के सांस्कृतिक विकास को कौन रोक रहा है', पृ. 24
15. शिवकेश मिश्र : इण्डिया टुडे (वार्षिकांक), 23 नवम्बर 2005, 'बदल रहा पर हौले-हौले', पृ. 56
16. पी. सी. जोशी : हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकार, संपा.- रमेश उपाध्याय,

'समकालीन भारतीय समाज में वर्णों और जातियों का वर्गों से क्या सम्बन्ध है ?' (परिचर्चा), पृ. 134

17. संजय गुप्त : दैनिक जागरण, 19 जून 2005, 'सामाजिक समरसता की बाधाएँ', सम्पादकीय पृष्ठ

18. बलराम : आजकल, मई 2005, 'समकालीन हिंदी कहानी में समय और समाज,' पृ. 87

19. कृष्णा सोबती : वागर्थ, जुलाई 2002, 'कथाकार कृष्णा सोबती से अनामिका की बातचीत का अंश', पृ. 18

20. वृंदा करात : हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकार, संपा. रमेश उपाध्याय, 'दहेज विरोधी संघर्ष का जनवादी परिप्रेक्ष्य क्या है ?,' पृ. 141

21. मोहम्मद वक़ास : इंडिया टुडे, 23 नवम्बर 2005, 'और बदलती गई दुनिया', पृ. 32

22. वही

23. इन्दिरा मोहन : कादम्बिनी, फरवरी 1989, 'संकट- मन की ऊर्जा का', पृ. 141

24. रोहिणी अग्रवाल : कथाक्रम, अक्टूबर 2005, 'पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विद्रूप और स्त्री लेखन',पृ. 88

25. लता शर्मा : राष्ट्रीय सहारा, 18 जनवरी 2003, 'अब बदलना होगा', 'आधी दुनिया' कालम

26. मृणाल पाण्डे : परिधि पर स्त्री, 'महिला वोटर- जगना एक सुषुप्त वोट बैंक का', पृ. 24

27. रंजना सक्सेना : माया, 31 जनवरी 1994, 'भारतीय सेना में महिलाएँ', पृ. 62

28. हितेश शंकर : इंडिया टुडे, 23 नवम्बर 2005, 'बेबाकी भरा बेहतर बदलाव', पृ. 42

29. राजकिशोर नैन : कादम्बिनी, जनवरी 1989, 'सिमट रहा है भाईचारा....उजड़ रहे हैं गाँव', पृ. 74

30. भारत डोगरा : विकास और विषमता, 'कैसा हो ग्रामीण विकास', पृ. 33

31. डॉ. रामदरश मिश्र : कादम्बिनी, मई 1982, 'एक मौत बेख़ौफ घूमती है', पृ. 121

32. राष्ट्रीय सहारा, 21 अक्टूबर 2000, 'हस्तक्षेप' विशेषांक, पृ. 03

33. असगर वजाहत : अमर उजाला, 25 अक्टूबर 2005, 'इसके चलते पूरी व्यवस्था चरमरा

जाएगी', सम्पादकीय पृष्ठ

34. हरवंश दीक्षित : अमर उजाला, 4 अगस्त 2005, 'खाकी वरदी के पीछे छिपा अनकहा दर्द', सम्पादकीय पृष्ठ

35. रंजीत कुमार : नवभारत टाइम्स, 4 अक्टूबर 1989, 'निःशस्त्रीकरण का नया दौर', सम्पादकीय पृष्ठ

36. स. न. स्मिर्नोव, अनु.-जगदीशचन्द्र पाण्डेय : समाज और पर्यावरण, 'भौतिक उत्पादन का विकास और प्रकृति के साथ समाज की अन्तर्क्रिया को अनुकूलतम बनाना', पृ. 162

37. रहीस सिंह : दैनिक जागरण, 21 दिसम्बर 2005, 'संकट के साये में भविष्य', सम्पादकीय पृष्ठ

38. नीरा गर्ग : कादम्बिनी, नवम्बर 1981, 'टेलीविज़न आदमी को खा रहा है', पृ. 54

39. सुधीर गोरे : इंडिया टुडे, वार्षिकांक, 23 नवम्बर 2005, 'अपने-अपने हिस्से का सुख', पृ. 50

40. डॉ. प्रेमलता : विधि व्यवस्था का यथार्थ, 'न्याय में विलम्ब से पनपती स्थितियाँ', पृ. 142

41. हितेश शंकर : इंडिया टुडे, 23 नवम्बर 2005, 'बेबाकी भरा बेहतर बदलाव', पृ. 40

42. भारत डोगरा : विकास और विषमता, 'गैट वार्ता, व्यापार और किसान', पृ. 59

43. हृदयनारायण दीक्षित : दैनिक जागरण, 18 नवम्बर 2005, 'अमानवीय दशा में श्रमिक', सम्पादकीय पृष्ठ

44. फागराम : सामयिक वार्ता, मई 2005, 'आदिवासियों पर वन विभाग के बर्बर अत्याचार', पृ. 36

45. डी. एन. तिवारी : कादम्बिनी, सितम्बर 1983, 'जंगल के राजा : आदिवासी', पृ. 109

46. डॉ. सुरेश अवस्थी : दैनिक जागरण, 20 अगस्त 1995, 'अराजकता में आकण्ठ डूबे विश्वविद्यालय', 'रविवासरीय' विशेषांक

47. विभांशु दिव्याल : राष्ट्रीय सहारा, 29 जुलाई 2000, 'माल और मण्डियाँ', 'हस्तक्षेप' विशेषांक

निष्कर्ष

[7]

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के विविध अध्यायों में हिन्दी कथा-साहित्य के अतीत, निरूपण व परिधि,आठवें दशक तक के कथा साहित्य के परिचय; आठवें दशक के बाद के राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा साहित्यिक परिदृश्य; आठवें दशक के बाद के वर्षों में सक्रिय तथा नवागत कथाकारों के संक्षिप्त जीवन-परिचय सहित इस दौर के कथा-साहित्य के कथ्य की विशिष्टताओं; समय और समाज के विविध पहलुओं/पक्षों को केन्द्र में रखकर लिखे गए आठवें दशक के बाद के कथा-साहित्य के कथात्मक चिंतन के विविध सन्दर्भों के साथ ही समय के सत्य और कथ्यात्मक चिंतन के मध्य सम्बन्धों को विस्तृत फलक पर जानने-परखने का कार्य किया गया।

मानव सभ्यता के विकास के साथ ही लोक जीवन में विकसित होने वाली लोककथाएँ, लोक गाथाएँ और किस्से मानव और मानवेतर परिवेश से उपज कर स्वस्थ मनोरंजन और शिक्षा का माध्यम थीं। वाचिक परम्परा के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानान्तरित होने वाली प्रकीर्ण साहित्य की यह विधा संस्कृति, सभ्यता और मानवीय मूल्यों में आते बदलाव और तमाम वैज्ञानिक-तकनीकी संसाधनों के विकास के बावजूद लोकजीवन में जीवित रही है, जीवन्त रही है और कमोबेश आज भी है। ललित (साहित्यिक) कथा-परम्परा भी लोककथाओं, लोकगाथाओं और किस्से-कहानियों से खाद-पानी पाकर ही उपजी है, विकसित हुई है।

वैदिक संस्कृत के ग्रंथों- वेद, पुराण, उपनिषदों आदि से लेकर प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य के ग्रंथों में कथा-परम्परा के विस्तृत सूत्र मिलते हैं। हिन्दी के भक्तिकाल और रीतिकाल में प्रचलित कथा-काव्य और सानुप्रास या तुकमय गद्य की रचनाओं में भी वैदिक काल से चली आ रही कथा-परम्परा दृष्टिगोचर होती है। यह कथा-परम्परा आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य की उपजीव्य भी है।

हिन्दी के आधुनिक कथा-साहित्य की उत्पत्ति सामान्य तौर पर बंगला और अंग्रेजी के कथा-साहित्य के प्रभाव के फलस्वरूप ही मानी जाती है। यद्यपि भारतवर्ष की पुरातन और सद्यः प्रवाहित कथा-परम्परा के अस्तित्व और योगदान को झुठलाया नहीं जा सकता, तथापि भारतेन्दु युग तथा द्विवेदी युग के अनूदित और मौलिक कथा-साहित्य को देखते हुए यह स्वीकार करना होगा कि हिन्दी का आधुनिक कथा-साहित्य, बंगला और अंग्रेजी के कथा-साहित्य के प्रभाव से उपजा और विकसित हुआ है।

हिन्दी कथा-साहित्य ने अपनी उत्पत्ति के प्रारम्भिक कालखण्ड में ही हिन्दी के प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय योगदान दिया है। बाबू देवकी नंदन खत्री के तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यासों और गोपालराम गहमरी व किशोरीलाल गोस्वामी के जासूसी उपन्यासों को पढ़ने के लिए हजारों लोगों ने हिन्दी सीखी। प्रेमचंद युग के कथा-साहित्य ने देश के स्वाधीनता आन्दोलन में अपने योगदान के साथ ही राष्ट्र, समाज और आम आदमी की समस्याओं, संकट और विद्रूपताओं को अपने में समेटते हुए, उजागर करते हुए पूरी जिम्मेदारी, सक्रियता, संवेदना, कुशलता और ईमानदारी के साथ समय और सत्य के प्रति अपने दायित्व का निर्वहन किया है और साहित्य की अन्य विधाओं के बीच अपना वर्चस्व स्थापित किया है। संभवतः इसी कारण अपने समय के स्थापित और प्रतिष्ठित कवियों का रुझान भी कथा-लेखन की ओर मुड़ा और प्रसाद, निराला, अज्ञेय, मुक्तिबोध, सुभद्राकुमारी चौहान, धर्मवीर भारती और नरेश मेहता प्रभृति कवि-कथाकारों ने तमाम अच्छे उपन्यास और कहानियों की रचना करके कथा-साहित्य को समृद्ध किया।

प्रेमचंद के परवर्ती कालखण्ड में उपजे विविध आन्दोलनों, वाद और विचारधाराओं ने कथा-साहित्य की प्रगति में गुणात्मक योगदान किया, साथ ही शिल्प और कथ्य के स्तर पर नित नवीन प्रयोगों ने; आम आदमी के जीवन की जटिलताओं, विकृतियों व विद्रूपताओं के साथ कथा-साहित्य की साझेदारी ने और समय व सत्य के साथ कथा-साहित्य की निकटता ने आठवें दशक के अंत तक हिन्दी कथा-साहित्य को श्रेष्ठ ऊँचाइयों तक पहुँचा दिया। आठवें दशक के बाद का हिन्दी कथा-साहित्य बड़ी विदग्धता और ईमानदारी के साथ समय की क्रूर सच्चाइयों तथा इतिहास की त्रासद यंत्रणाओं के हरावल में जुतकर मानवीय, सामाजिक और राष्ट्रीय मूल्यों की वकालत कर रहा है, इन्हें अपने में समेट रहा है।

आठवें दशक के बाद चुनौतियाँ भी बढ़ी हैं। इन्दिरा गाँधी की हत्या, सिख विरोधी दंगे, बाबरी-विध्वंस, मंडल आयोग, सूचना क्रांति, पंचायती राज और आर्थिक उदारीकरण जैसी बड़ी राष्ट्रीय घटनाओं ने आठवें दशक के बाद के समूचे परिदृश्य को एकदम बदलकर रख दिया है। राजनीति, अर्थनीति, समाज, धर्म, संस्कृति, शिक्षा और मानसिकता में आए बदलाव के कारण यह कालखण्ड पूर्ववर्ती युग से भिन्न है।

भ्रष्टाचार, अवसरवादिता, अपराधीकरण, साम्प्रदायिकता, जातीयता, क्षेत्रीयता, सिद्धान्तविहीनता,

अनैतिकता और शोषक मानसिकता ने राजनीति में स्थाई चरित्र गढ़ लिया। 'पंचायती राज' ने गँवई राजनीति को बढ़ावा देने के साथ ही राष्ट्रीय और प्रादेशिक राजनीति के स्थाई चरित्र को गाँवों में भी उतार दिया। नेता-पुलिस और अफसरों की साठगाँठ से समूचा तंत्र भ्रष्टाचार और शोषण में लिप्त हो गया, लिहाजा 'व्यवस्था-विरोध' मुखर हुआ।

अदूरदर्शिता और इच्छाशक्ति के अभाव के फलस्वरूप आर्थिक नियोजन ने असमानता, गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी और अपराध को बढ़ावा दिया। आर्थिक उदारीकरण और विश्व व्यापारीकरण ने हस्तशिल्पियों, मजदूरों और किसानों के जीवन को बदतर बना दिया। नए पूँजीपति, मुनाफाखोर और साहूकार वर्ग का उदय हुआ। श्रमिकों में असंतोष बढ़ा, मजदूरों का शोषण बढ़ा और गाँवों से शहर की ओर पलायन बढ़ा।

भौतिकता और आधुनिकता ने संस्कृति को प्रभावित किया। 'मॉस कल्चर' और 'नव आधुनिक संस्कृति' के पनपने के साथ ही दिखावा, होड़ और अंधानुकरण की मानसिकता पनपी। फिल्मी चकाचौंध के प्रति युवाओं के आकर्षण ने शहर ही नहीं गाँवों में भी पैर पसारे।

धर्म, राजनीति के हाथ का खिलौना बनकर तमाम नेताओं और धर्म के ठेकेदारों की व्यक्तिगत स्वार्थ-साधना का माध्यम बन गया। रूढ़ियों और अंधविश्वासों की पकड़ ढ़ीली पड़ने के बावजूद धार्मिक कट्टरता बढ़ी, वैमनस्य बढ़ा और आपसी सौहार्द व समन्वय की भावना का ह्रास हो गया।

संयुक्त परिवारों के विघटन के साथ ही नितान्त वैयक्तिकता की वृद्धि ने समाज को कई स्तरों में तोड़ा। महिलाओं के प्रति अत्याचार बढ़े, दहेज हत्या और तलाक के मामलों की संख्या में वृद्धि हुई; युवाओं में विघटनकारी और आपराधिक मानसिकता बढ़ी; बच्चों के भविष्य का संकट गहराया और वृद्धों को पारिवारिक उपेक्षा का शिकार होकर असहाय जीवन बिताने को मजबूर होना पड़ा। शिक्षा के विस्तार, राजनीतिक चेतना के आगमन और शोषण व अत्याचार के खिलाफ मुखर विरोध ने वर्ग-संघर्ष को तेज और तीक्ष्ण किया, सामाजिक अन्तर्विरोध भी बढ़े।

जीवन की जटिलताओं, संघर्ष, भौतिकता की होड़ और तनाव भरी जिन्दगी के कारण मनोरोगी बढ़े, यौन विकृतियाँ और यौन अपराध भी बढ़े। मानसिक शांति के लिए भटकते लोगों की संख्या में भी बढ़ोत्तरी हुई।

शिक्षा, कला, साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में पूँजीपतियों का वर्चस्व बढ़ा। तमाम

आदर्श, सिद्धान्त और नैतिक-मूल्य तिरोहित हो गए और इनके स्थान पर आ गई कोरी व्यावसायिकता ने इन क्षेत्रों को भी राजनीति का अखाड़ा बना दिया, धन कमाने का माध्यम बना दिया।

बदलते परिवेश ने जीवन जीने के तौर-तरीकों को भी बदल दिया और भागते जीवन में सुख-चैन और आत्मिक शांति जैसी चीजें पीछे छूट गयीं। दौड़ते-भागते, समय की विद्रूपताओं से टकराते, व्यवस्था से संघर्ष करते और त्रासद यंत्रणाओं को भोगते लोगों की आत्मिक शांति की प्राप्ति की कामना, मनोवांछित की प्राप्ति की लालसा और सुख की तलाश तेज हो गयी। कथा-साहित्य में भी ऐसे ही जटिल जीवन की वास्तविकताएँ उजागर होती हैं।

आठवें दशक के बाद के इस युगीन परिदृश्य का सुखद और सकारात्मक पक्ष भी है, किन्तु अपवाद के दायरे में ही सिमटा हुआ है। इस कारण आठवें दशक के बाद के कथा-साहित्य में यह पक्ष नहीं के बराबर ही प्रकट हुआ है और इस कालावधि के समूचे परिवेश में उभरी मूल प्रवृत्तियों, यथा- भ्रष्टाचार, आर्थिक असमानता, गरीबी, भूख, बेरोजगारी, धार्मिक-जातीय उन्माद, शोषण, वर्ग-संघर्ष, भौतिकता व आधुनिकता, अनैतिकता और मानसिक-यौन विकृतियों को कथा-साहित्य में उजागर किया गया है।

आठवें दशक के बाद के हिन्दी उपन्यास और कहानियों के कथ्यात्मक चिन्तन और समय के सत्य के मध्य सम्बन्धों को स्थापित करते हुए प्राप्त निष्कर्षों को प्रमुख रूप से निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है :-

1. अस्थिरता, सिद्धान्तहीनता, नैतिक पतन, भ्रष्टाचार और भयादोहन के राजनीतिक परिवेश में धर्म और जाति पर आधारित राजनीति के स्थापित वर्चस्व; नेता-अपराधी व प्रशासन के गठजोड़ की शोषक मानसिकता, संवेदनहीनता और अदूरदर्शिता से त्रस्त आम जनता की दयनीय स्थिति; शहरों के साथ ही गाँवों में हावी होती राजनीति; राजनीति के प्रति उपजती निराशा; नेतृवर्ग के प्रति उपजते जनाक्रोश और राजनीति की चकाचौंध के वशीभूत होकर इस क्षेत्र में आकृष्ट हुए युवा और महिलाओं के शोषण को समग्रता के साथ कथा-साहित्य में प्रकट किया गया है।
2. आर्थिक उदारीकरण के दुष्प्रभाव, नए पूँजीपति, मुनाफाखोर और दलाल वर्ग के उदय;

विकास के नाम पर उपजे अन्तर्विरोध; बेतहाशा बढ़ती महँगाई; जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के अभाव; बेरोजगारी; गाँव से शहर की ओर बढ़ते पलायन; गरीबी के कारण पनपती आपराधिक मानसिकता और इन सबके कारण उपजते जनाक्रोश की सामयिक आर्थिक स्थिति को कथा-साहित्य में कुशलता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

3. समूचे व्यवस्था-तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, सरकारी दफ्तरों में रिश्वतखोरी की पराकाष्ठा, पत्रकारिता जगत् और न्यायालयों में लगे भ्रष्टाचार के रोग, रिश्वतखोरी के कारण तिरोहित हो गए सिद्धान्त, समानता, न्याय और नैतिक मूल्यों के कारण उपजे विरोधी स्वरों के साथ ही भ्रष्टाचार के प्रति निषेधात्मक और संघर्षशील शक्तियों के जुझारूपन और सक्रियता को भी कथा-साहित्य में सम्पूर्णता के साथ दर्ज किया गया है।

4. समाज की वर्तमान स्थिति, विद्रूपता, विसंगति, असमानता, अशिक्षा, शोषण, अनाचार और व्यवस्था-तंत्र की खामियों के कारण उपजे वर्ग-संघर्ष; सामाजिक कुप्रथाओं, कुरीतियों व रूढ़ियों के खिलाफ उपजी वैयक्तिक संघर्ष-चेतना व जागरूकता और समाजसेवियों व नेताओं द्वारा समाज-कार्य के नाम पर की जा रही स्वार्थ साधना के साथ ही द्रुत गति से चल रही सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया कथा-साहित्य में मुखर हुई है।

5. गाँवों में भूस्वामियों, साहूकारों, दबंगों और प्रभुत्वशाली वर्ग द्वारा किए जा रहे शोषण, अन्याय, अत्याचार; पंचायती राज प्रणाली के फलस्वरूप पनपी विकृत राजनीति और आपराधिक प्रवृत्तियाँ; ग्रामीणों में पनपते असंतोष, वर्ग-संघर्ष और व्यवस्था-विरोध; गाँवों में बढ़ती भौतिकता के कारण आए बदलाव और गरीबी-महँगाई के कारण शहर की ओर पलायन करने को मजबूर ग्रामीणों की दयनीय दशा के विविध आयाम कथा-साहित्य में प्रकट हुए हैं। इसी प्रकार नगरों और महानगरों में झुग्गी-झोपड़ियों के जीवन सहित महँगाई, बेकारी, गरीबी, भौतिकता, शोषण और जीवन की तमाम जरूरतों के अभाव को झेल रहे शहरी लोगों के जीवन की त्रासद यंत्रणाओं को, भागदौड़ और आपाधापी भरे नगरीय जीवन की विषमता और दुरूहता को समग्र यथार्थ के कारण कथा-साहित्य में प्रकट किया गया है।

6. विश्व व्यापारीकरण के कारण विकसित हुई बाजारू मानसिकता; सूचना क्रांति, भूमण्डलीकरण और आर्थिक उदारीकरण के फलस्वरूप आए बदलाव; विज्ञापन संस्कृति के विद्रूप; शहरों

के साथ ही गाँवों में हावी होती आधुनिकता के कारण विघटित होते परिवार, टूटती मर्यादाएँ, बच्चों व युवाओं के अंदर पनपती विकृत, आपराधिक मानसिकता और फिल्मी चकाचौंध की ओर आकृष्ट होकर बर्बाद होते लोगों के साथ ही आधुनिकता और परम्परा के द्वन्द्व को, पश्चिमी संस्कृति के खिलाफ सक्रिय चेतना के संघर्ष और विरोध को भी कथा साहित्य में समग्रता के साथ दर्ज किया गया है ।

7. धर्म के नाम पर भड़के दंगों की भयावहता, धर्म का राजनीतिकरण, धार्मिक अलगाव, साम्प्रदायिक हिंसा, धार्मिक कट्टरता, धार्मिक अंधविश्वास और धर्म के तथाकथित ठेकेदारों द्वारा की जा रही व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि के वर्तमान परिवेश में शोषण और उपेक्षा के शिकार होते लोगों की दयनीयता और वर्तमान की जटिल परिस्थितियों का बेबाक प्रस्तुतीकरण करते हुए कथा-साहित्य में धर्म की विसंगतियों और विद्रोह से संघर्ष करती, सद्भाव और सहिष्णुता की स्थापना हेतु सक्रिय जनचेतना को भी प्रकट किया गया है।

8. देश के सांस्कृतिक परिवेश में आए बदलाव, 'मॉस कल्चर' और 'फिल्मी ग्लैमर' के वर्चस्व, भौतिकता व बाजारीकरण के प्रभुत्व, परम्परा और आधुनिकता के बीच टकराव और सांस्कृतिक संक्रमण को गहनता के साथ प्रकट किया गया है। लोककलाओं, लोकसंस्कृति और लोक कलाकारों की दयनीयता और इनके अस्तित्व पर गहराए संकट पर केन्द्रित स्फुट कथा-कृतियों में सामयिक गम्भीर प्रश्नों को उठाया गया है।

9. राजनीति, कार्यपालिका, न्यायपालिका और समाज में व्याप्त विसंगतियों, विद्रूपताओं और शोषक मानसिकता के कारण जटिल हो गए जीवन से आजिज आकर पनपे व्यवस्था-विरोध के विविध पक्षों, पहलुओं को कथा-साहित्य में विदग्धता के साथ दर्ज किया गया है। इसके साथ ही सिद्धान्त, नैतिकता और मानवीय संवेदना की रक्षा व संरक्षण हेतु कटिबद्ध जनचेतना के स्वर भी कथा-साहित्य में मुखर हुए हैं।

10. कार्यालयीय संस्कृति की विकृतियों और बदलाव के कारण, समूचे व्यवस्था-तंत्र के नैतिक पतन के कारण और व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए सक्रिय नेता-अधिकारी गठजोड़ के कारण होते कर्मचारियों के शोषण, पनपते षड़यंत्र और भ्रष्टाचार, कर्मचारियों के यौन उत्पीड़न और योग्यता के तिरस्कार के मार्मिक पक्ष को भी आठवें दशक के बाद के हिन्दी कथा-साहित्य ने उजागर किया है।

11. फैक्ट्री मजदूरों की समस्याएँ, यूनियन के नेताओं की बदनीयती, विकृत राजनीति; फैक्ट्री मजदूरों में व्याप्त असंतोष, भविष्य की चिंता और इन सबके कारण मजदूरों में जागृत हुई संघर्षशीलता व मुखर विरोध भी सामयिकता और व्यापकता के साथ कथा-साहित्य में प्रकट हुआ है।

12. सरकारी कर्मचारियों और फैक्ट्री मजदूरों से भी बदतर जिंदगी गुजारने को मजबूर असंगठित क्षेत्र के श्रमिक, दिहाड़ी मजदूर और बंधुआ मजदूर अपने दयनीय जीवन की विद्रूपताओं, विकृतियों, शोषण और प्रताड़ना को समग्र रूप में प्रकट करते हुए कथा-साहित्य में उपस्थित हैं। लघु उद्यमियों और हस्तशिल्पियों के जीवन की दयनीयता और मजदूर बनने की क्रमबद्ध स्थितियों का भी सटीक चित्रण कथा-साहित्य में हुआ है।

13. कर्ज के बोझ से लदे, राजनीतिक उपेक्षा और अदूरदर्शी नीतियों के कारण बदहाल जीवन जीने को मजबूर, बाजारवाद और भौतिकता के दुष्प्रभावों को झेलते और भूमिहीन होकर बंधुआ मजदूरी करने या पलायन करने को विवश होते किसानों की दुर्दशा पर केन्द्रित कई बेहतरीन रचनाएँ लिखी गई हैं। परिमाण में कम होने के बावजूद किसानों पर केन्द्रित कथा-साहित्य अपनी प्रभावोत्पादकता और अभिव्यक्ति में कमतर नहीं आँका जा सकता।

14. स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में आते बदलाव; सांस्कृतिक संक्रमण व आधुनिकता के कारण स्त्रियों के प्रति बदलती मानसिकता; समाज के हर वर्ग में महिलाओं के शोषण, अत्याचार और पिछड़ेपन; पुरुषवादी अहं और वर्चस्व; घरेलू हिंसा और यौन उत्पीड़न; लिंग-भेद; आर्थिक असुरक्षा और धार्मिक जातीय बंधनों व रूढ़ियों की शिकार होती महिलाओं की दयनीय दशा को उजागर करने के साथ ही महिलाओं की संघर्षशीलता को भी प्रकट किया गया है। इस दौर की लेखिकाओं के कथा-संसार में स्त्री का नया संघर्षशील रूप भी प्रकट होता है, जिसमें स्त्री का दुःख, शोषण और बेबसी मात्र नहीं है, वरन् स्त्री का विद्रोह और संघर्ष पूरी साहसिकता, प्रामाणिकता और मुक्ति की कामना के साथ मौजूद है।

15. स्त्री-स्वातंत्र्य और स्त्री-मुक्ति के साथ जुड़े तमाम प्रश्नों, यथा- अन्तर्जातीय व अन्तर्धर्मीय विवाह की विसंगतियों के फलस्वरूप प्रताड़ना, यातना और उपेक्षा झेलती महिलाओं, काम-प्रेम सम्बन्धों की विद्रूपताओं और विवाहेतर यौन सम्बन्धों व यौन

विकृतियों के फलस्वरूप उपजी पारिवारिक विघटन की स्थितियों को भी कथा-साहित्य में समग्रता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

16. पारिवारिक विघटन, घरेलू हिंसा, माँ-बाप के बीच अहं के टकराव, मानसिक दबाव और शारीरिक-शैक्षिक-मानसिक विकास के समुचित साधनों की अनुपलब्धि के कारण बच्चों और किशोरों में पनपते अपराधबोध, हीन भावना, असामान्य व्यवहार, विकृत मानसिकता, कुंठा, भविष्य की चिंता, यौन विकृतियाँ और विद्रोही तेवरों को तथा शारीरिक शोषण व यौन उत्पीड़न की दुखद स्थितियों को कथा-साहित्य में परिवेशगत यथार्थ के साथ अभिव्यक्त किया गया है।

17. किशोरों और बच्चों के साथ ही युवाओं का जीवन-संघर्ष, उनके असुरक्षित भविष्य की चिंता, अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी, भयग्रस्तता, मानसिक कुंठा, शारीरिक शोषण, अवसरों की असमानता, अवसादग्रस्तता, विद्रोही मानसिकता और भौतिकता व आधुनिकता के फलस्वरूप उपजी विकृतियों तथा बदलाव को समग्रता के साथ कथा-साहित्य में प्रकट किया गया है।

18. सांस्कृतिक-सामाजिक संक्रमण, जीवन में बढ़ती यांत्रिकता और व्यस्तता, संसाधनों के अभाव, परिवारों के विघटन और शारीरिक अक्षमता के कारण वृद्धों के जीवन की दयनीय स्थिति को कथा-साहित्य में चित्रित किया गया है। इसके साथ ही अपनी उम्र के आखिरी पड़ाव में भी समाज व परिवार के लिए कुछ कर दिखाने और अपने व्यापक अनुभवों व बौद्धिक क्षमता का समाज हित में उपयोग करने का बुजुर्गवारों का जज्बा व साहस भी स्फुट कथा-रचनाओं में प्रकट हुआ है।

19. जिन्दगी की भाग-दौड़ और विषम परिस्थितियों के कारण उपजी तनावपूर्ण स्थितियों, मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, एकाकीपन, असहजता, मानसिक विक्षिप्तता, भयातुरता, अवसाद, कुण्ठा, निराशा और मानसिक उद्वेग को भी कथा-साहित्य में उजागर किया गया है। असीमित महत्त्वाकांक्षा के पीछे भागते लोगों; प्रतिस्पर्धा, दिखावेबाजी और होड़ के कारण बढ़ते मानसिक दबाव और मानसिक अशांति तथा पारिवारिक सामाजिक ढाँचे में आए बदलाव के कारण उपजे मानसिक तनाव और अन्तर्द्वन्द्व को प्रकट करके आठवें दशक के बाद के हिन्दी कथा-साहित्य ने अभूतपूर्व तरीके से मानव-मन को पढ़ने का प्रयास किया

है।

20. जीवन की आपाधापी, विकृत मानसिकता, विसंगति और मानसिक तनाव भरे परिवेश में भी जीवित मानवीय संवेदनाएँ, आपसी सद्‌भाव, सहानुभूति और समर्पण की स्थितियाँ; वर्तमान की विद्रूपताओं के बीच जीवित सुखद भविष्य की आकाँक्षाएँ एवं जटिल जीवन में छिपे हुए सुख के पल, अनुभूतियाँ और सकारात्मक विचार दुर्लभ होने के बावजूद जीवित हैं, जीवन्त हैं। और आठवें दशक के बाद के कथा-साहित्य में जीवन का यह पक्ष, सुखानुभूति, अनागत की अनवरत प्रतीक्षा, स्वप्नशीलता तथा सकारात्मक विचार भी प्रकट हुए हैं। कथा-साहित्य में अल्प परिमाण में होने के बावजूद इस पक्ष के प्रस्तुतीकरण और उपस्थिति को विस्मृत नहीं किया जा सकता।

21. राष्ट्रीय परिदृश्य के साथ ही समूचे विश्व में व्याप्त युद्ध के भयावह आतंक, मानवता के विनाश, धर्म और वर्चस्व की स्थापना के खातिर छिड़ी जंग के साथ ही दंगों व क्रूरताओं से भरे बर्बर युग की यातनाओं को भी इस दौर के हिन्दी कथा-साहित्य ने अपने में समेट करके बड़ी कुशलता और प्रभावोत्पादकता के साथ व्यक्त किया है।

22. आदिवासियों के परम्परागत विशिष्ट जीवन में उपजी विषमताओं, गैर आदिवासियों द्वारा किये जा रहे शोषण, मूलभूत सुविधाओं के अभाव में जिंदा रहने और अपनी जमीन से, वनों से बेदखल होने को मजबूर आदिवासियों के जीवन को समग्र यथार्थ के साथ आठवें दशक के हिन्दी कथा-साहित्य में उतारा गया है।

23. बढ़ते व्यवसायीकरण और पूँजीपतियों व मुनाफाखोरों के बढ़ते वर्चस्व के कारण शिक्षा, साहित्य और कला के क्षेत्र में आए बदलावों, शिक्षा केन्द्रों में पनपी अराजकता, शिक्षा-पद्धति और शैक्षिक मूल्यों में हुए परिवर्तन, छात्र राजनीति और छात्र असंतोष की स्थितियों, आपसी खींचतान के कारण शिक्षा के बदलते स्वरूप के साथ ही साहित्य के क्षेत्र में पूँजीपति घरानों का बढ़ता वर्चस्व, नैतिक मूल्यों और सिद्धान्तों के ह्रास की स्थितियों को समग्रता के साथ कथा-साहित्य में उजागर किया गया है।

24. इसी प्रकार मीडिया जगत के विविध पक्षों को, पूँजीपतियों के बढ़ते वर्चस्व के साथ ही गिरते नैतिक मूल्यों, सिद्धान्तों और निचले स्तर पर कार्य करने वाले मीडिया कर्मियों के शोषण को उजागर करते हुए हिन्दी कथा-साहित्य, विशेषकर उपन्यासों में पत्रकारिता

जगत् के समग्र सामयिक यथार्थ को शिद्दत के साथ प्रकट किया गया है।

25. इसी प्रकार आठवें दशक के बाद के हिन्दी उपन्यासों में इतिहास के पुनराख्यान की परम्परा पुनः बलवती होती है। तमाम ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों के साथ ही पौराणिक पात्रों व प्रसंगों को सामयिक मूल्यों की कसौटी में कसकर तथा वर्तमान के अनुरूप ढालकर नवयुगीन चेतना से सम्पृक्त ऐतिहासिक उपन्यासों का भी महत्त्व कम नहीं है।

26. नितान्त वैयक्तिकता के बढ़ते दबाव के बावजूद जीवित राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रीयता की भावना को उजागर करती कहानियाँ भी इस दौर में लिखी गई हैं, अल्प परिमाण में होने के बावजूद इनकी प्रभावोत्पादकता अपनी ओर बरबस ही आकृष्ट करती है।

27. प्रकृति और पर्यावरण के विनाश की जटिल स्थितियाँ तथा विज्ञान और तकनीक के बढ़ते वर्चस्व के दुष्प्रभावों से जुड़े विविध पक्ष भी आठवें दशक के बाद की हिन्दी कहानियों से अछूते नहीं हैं। स्वप्न चित्र, कल्पना और रोचक वर्णन से परिपूर्ण ऐसी कहानियों का अपना यथार्थ है, जो प्राकृतिक और पर्यावरणीय असंतुलन के दुष्परिणामों को रेखांकित करता है, साथ ही भविष्य की दुनिया के कटु यथार्थ से भी साक्षात्कार करा देता है।

समय के सत्य का, जीवन से जुड़ा हर पहलू, प्रत्येक कोना आठवें दशक के बाद के हिन्दी कथा-साहित्य में उजागर हुआ है। इतना ही नहीं यह कथा-साहित्य दैनन्दिन जीवन के अनुभवों से उद्भूत विचारों से सम्पृक्त होने के साथ ही पथ-प्रदर्शक के रूप में आगे का रास्ता भी दिखाता है। कथा-साहित्य की यह विशिष्टता समय के सत्य के साथ संलग्नता और भोगे हुए यथार्थ की सटीक अभिव्यक्ति के कारण उपजी है। इसका महत्त्वपूर्ण कारण लेखकों का वैयक्तिक जीवन और उनके व्यापक अनुभवों का भण्डार भी है।

इस दौर में साहित्यकारों के विशिष्ट वर्ग की सीमाएँ टूटी हैं। आज का कथाकार भी आम आदमी की तरह जीवन की विद्रूपताओं और यंत्रणाओं को भोगता है। वातानुकूलित कक्ष और 'कॉफी हाउस' में बैठकर महज कल्पनाशीलता के भरोसे रचनाएँ करना बीते जमाने की बातें हो गई हैं। समाज के विविध वर्गों और विभिन्न व्यवसायों से जुड़े लोग आज कथा-लेखन के क्षेत्र में आए हैं। बड़ी संख्या में आगत कथाकारों के विविध क्षेत्रों का व्यापक अनुभव और उनके भोगे हुए यथार्थ ने कथा-साहित्य के कथ्य को समृद्ध किया है। विष्णु प्रभाकर प्रभृति वयोवृद्ध कथाकार

से लेखक नीलाक्षी सिंह और शशिभूषण द्विवेदी जैसे नई उम्र के कथाकार भी लेखन-कर्म में प्रवृत्त हैं। कथा लेखिकाओं का वर्चस्व भी इस दौर में स्थापित हुआ है और पुरानी पीढ़ी की स्थापित लेखिकाओं के साथ ही युवा लेखिकाएँ भी बड़ी तादाद में कथा-लेखन हेतु आगे आई हैं। इनकी रचनाओं में स्त्री की उपस्थिति के साथ ही समय और समाज के ज्वलंत मुद्दों को भी विदग्धता और बेबाकी के साथ उठाया गया है। व्यापक, वृहद और विस्तृत अनुभव की उपलब्धि ने, भोगे हुए यथार्थ ने, समय की जीवन्त सच्चाइयों के साक्षात्कार ने और जीवन के संघर्ष ने कथा-साहित्य को यथार्थधर्मी बना दिया है।

इस कारण विविध वाद और आंदोलनों के अवसान के साथ ही इस दौर में स्थापित विमर्शों का उफान भी हल्का पड़ा है। ऊर्ध्वाधर विकास के साथ ही कथा-साहित्य के क्षैतिज विकास की तीव्र गति ने वैचारिक कट्टरता, वाद की सीमा और विमर्शों के प्रचलित दायरे से मुक्ति पाई है। दुःख, पीड़ा, अन्याय और शोषण की अभिव्यक्ति के साथ ही संघर्षशीलता, विद्रोह और जुझारूपन की उपस्थिति ने कथा-साहित्य की मुक्ति में मुख्य भूमिका अदा की है। ऐसे मुक्त और मुक्तिकामी कथा-साहित्य के कथ्यात्मक चिंतन में मानव और मानवता की स्वतंत्रता निहित है, मनुष्य के शाश्वत प्रजातंत्र की भावना समाहित है। इस कारण से भी आज का कथा-साहित्य अपने समय की सच्चाई और यथार्थ के साथ खड़ा है।

यद्यपि हिन्दी के कथा-साहित्य का विस्तार भारत तक सीमित नहीं है (अर्थात् समग्र विश्व की छवि और वातावरण को इसमें देखा जा सकता है) फिर भी समय के सत्य के आईने में जो तस्वीर उभरकर आती है वह अपने भारत की ही है। वस्तुतः आज का भारत ऐसा है कि जिसमें एक साथ ही यूरोप, अमरीका और अफ्रीका समाहित हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत के अंदर ही अनेक प्रकार के समाजों का निर्माण हो गया है। यहाँ वे महानुभाव भी हैं जो पाँच सितारा जिंदगी बिताते हैं और आलीशान महलों में रहते हैं और ऐसे मजलूम भी हैं जिनके पास सिर छिपाने की जगह भी नहीं है। समय एक ही है किंतु जीवन का ढ़ंग अलग-अलग। ये विद्रूपताएँ समग्रतः इस कथा-साहित्य में चित्रित हैं।

जल्दबाजी और तदर्थवाद आज के जीवन का अभिन्न अंग हैं। हर कार्य में जल्दबाजी 'फास्ट फूड' की तरह विकृत संस्कृति बनती जा रही है। जल्दी शादी, जल्दी बच्चा .... यहाँ तक कि जल्दी मरने से भी परहेज नहीं है। यह भी समय का विकृत सत्य है और इसका चित्रांकन

भी भलीभाँति हुआ है। कामचलाऊपन एक संस्कार बन चुका है जो मानवीय पहलू को लीले जा रहा है। इस पहलू का भी बखूबी आकलन किया गया है।

कथा-साहित्य की निजी मर्यादाओं के साथ ही कल्पनाशीलता और रोचकता कथा का प्रमुख अंग होती हैं। इनके बगैर कथा-साहित्य का अस्तित्व नहीं होता। समय के सत्य और कथ्यात्मक चिंतन के बीच सम्बन्धों का आकलन करते हुए इस तथ्य को विस्मृत नहीं किया जा सकता। आठवें दशक के बाद के कथा-साहित्य में भी कल्पनाशीलता और रोचकता है, इनकी उपस्थिति को यथार्थ और समय के सत्य से विमुखता नहीं माना जा सकता। यथार्थ के प्रतीक और सामयिक परिवेश की मूलभूत प्रवृत्तियाँ ही कथा-साहित्य में प्रकट होकर अपने सत्य पर हमारा भरोसा कायम करती हैं। इसी आधार पर आठवें दशक के बाद के कथा-साहित्य को समय के सत्य के विविध सन्दर्भों में जाँचा-परखा गया है।

इन बिन्दुओं के अन्तर्गत विशद विवेचन करते हुए इस तथ्य को स्वीकार करना होगा कि आठवें दशक के बाद का हिन्दी कथा-साहित्य अपने समय की ज्वलंत सच्चाइयों से साक्षात्कार करते हुए, उन्हें अपने में समेटते हुए, कथा-साहित्य की परिधि में रहकर अपने कथ्य और कथ्यात्मक चिंतन के माध्यम से वर्तमान जीवन की जटिलताओं, समस्याओं, विकृतियों, विद्रूपताओं और व्यक्ति व परिवेश के मध्य सार्थक सम्बन्धों को प्रकट करने में और अपने व्यक्त यथार्थ के प्रति हमारा विश्वास कायम करने में सक्षम और सफल हुआ है।

कथ्य की विविधता, खुलेपन और परिवेश के गहन यथार्थ की अभिव्यक्ति ने कथा-साहित्य की प्रामाणिकता को भी स्थापित किया है, और इसी कारण साहित्य की अन्य विधाओं के बीच अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाते हुए आठवें दशक के बाद का कथा-साहित्य लोकप्रिय भी हुआ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ :

(अ) कहानी-संग्रह :-

1. 1986 प्रतिनिधि हिंदी कहानियाँ : सं. हेतु भारद्वाज, पंचशील प्रकाशन, जयपुर,1986।
2. शाहजहाँ की आँख : राजेश शर्मा, विक्रम प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992।
3. साँसो का रेवड़ : आलमशाह खान, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1994।
4. कुछ बेमतलब लोग : दिनेश पालीवाल, लाइब्रेरी बुक सेण्टर, नई दिल्ली, 1994।
5. नागरिक : हृदयेश, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 2002।
6. एक और धर्मयुद्ध : कमलचंद वर्मा, पांडुलिपि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995।
7. पॉल गोमरा का स्कूटर : उदय प्रकाश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004।
8. एक नई सुबह : रजनी गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998।
9. अँधेरा फेंकने वाला टार्च : विलास गुप्ते, ज्ञान भारती, नई दिल्ली, 2000।
10. वह दुनिया और अन्य कहानियाँ : कुन्दन सिंह परिहार, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद,1993।
11. पोरबन्दर में सिकन्दर : विश्वमोहन, ममता प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001।
12. सूरज फ्यूज हो गया : नसीम साकेती, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 1987।
13. अंगुलीहीन हथेली : डॉ. अशोक गुजराती, दिनमान प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990।
14. लाखों के बोल सहे : अरुण प्रकाश, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995।
15. मानुष गंध : सूर्यबाला, किताबघर, नई दिल्ली, 2005।
16. ललस : संतोष दीक्षित, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005।
17. निर्वासन : उर्मिला शिरीष, ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005।
18. अजगर करे न चाकरी : प्रेमपाल शर्मा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005।
19. पारुल दी : दिनेश पाठक, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2004।
20. बोल मेरी मछली : अचला नागर, भारत प्रकाशन, लखनऊ, 2000।
21. नारी मन की कहानियाँ : क्रांति त्रिवेदी, कविता बुक सेण्टर, नई दिल्ली, 2002।
22. टूटते अभिमन्यु : कृष्ण भावुक, दिनमान प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995।
23. सूखे तालाब की मछलियाँ : कृष्ण सुकुमार, पी.एन. प्रकाशन, दिल्ली, 1998।
24. अभी ठहरो अंधी सदी : नीरजा माधव, केतन प्रकाशन, सारनाथ, वाराणसी, 1998।
25. आदमी अभी तक सो रहा है : केवल सूद, साहित्य प्रचारक, दिल्ली, 1991।
26. भूख तथा अन्य कहानियाँ : से.रा.यात्री, साहित्य प्रचाकर, दिल्ली, 1993।
27. चुनी हुई कहानियाँ : जोगिन्दर पाल, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005।
28. यह कल्पना लोक नहीं : सुरेश उनियाल, सचिन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988।
29. उसके हिस्से का पुरुष : पुष्पा सक्सेना, अभिधा पुस्तक योजना, दिल्ली, 1991।
30. कालचक्र कथा : मधुकर सिंह, आचार्य प्रकाशन, इलाहाबाद, 1994।
31. इक्यावन कहानियाँ : यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पुस्तकानयन, नई दिल्ली, 1984।
32. उदाहरण के लिए : अशोक आत्रेय, विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 1986।
33. बच्चे गवाह नहीं हो सकते : पंकज बिष्ट, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 1986।
34. तंत्र और अन्य कहानियाँ : विभांशु दिव्याल, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993।
35. बचुली चौकीदारिन की कढ़ी : मृणाल पाण्डे, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 1990।
36. आदिम गंध तथा अन्य कहानियाँ : नीरजा माधव, संजय बुक सेण्टर, वाराणसी, 2002।
37. क्रौंचवध तथा अन्य कहानियाँ : ऋता शुक्ला, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1985।

38. आदिम संस्कार : यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992।
39. धरातल : रामधारी सिंह दिवाकर, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1997।
40. प्रतिनिधि कहानियाँ- 83 (लेखिकाओं की) : अभिव्यंजना, नई दिल्ली, 1983।
41. पाली : भीष्म साहनी, राजकमल, नई दिल्ली, 1989।
42. एक और क्रांति : डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय', नवप्रभात साहित्य, दिल्ली, 2000।
43. प्रतिनिधि कहानियाँ : ज्ञानरंजन, राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली, 1984।
44. पटाक्षेप नहीं होगा : हेतु भारद्वाज, पंचशील प्रकाशन, हापुड़, 1991।
45. बड़की दी का यक्ष प्रश्न : दयानंद पाण्डेय, जनवाणी प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, 2000।
46. कालचक्र : द्विजेन्द्र नाथ मिश्र 'निर्गुण', पाण्डुलिपि प्रकाशन-दिल्ली, 1993।
47. शिखंडी का युद्ध : डॉ. रामकुमार तिवारी, राजभाषा प्रकाशन, दिल्ली, 2000।
48. आसमान कितना नीला : गोविन्द मिश्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992।
49. उसके हिस्से का पुरुष : पुष्पा सक्सेना, अभिधा पुस्तक योजना, दिल्ली, 1991।
50. हिन्दी की पुरस्कृत कहानियाँ : संपा. श्रीकृष्ण, सन्मार्ग प्रकाशन, नई दिल्ली, 1989।
51. अमोघ अस्त्र : नसीम साकेती, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1993।
52. आदमी जात का आदमी : स्वयं प्रकाश, किताबघर, नई दिल्ली, 1994।
53. महुआ की नीलामी : धर्मेन्द्र देव, भारत बुक सेण्टर, लखनऊ, 1996।
54. वंशबेल : विजय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005।
55. बूढ़ा बरगद : कैलासचन्द्र शर्मा, दिनमान प्रकाशन, दिल्ली, 1992।
56. भैया एक्सप्रेस : अरुण प्रकाश, आयाम प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992।
57. अहिंसा तथा अन्य कहानियाँ : शैलेश मटियानी, साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, 1987।
58. सिद्धार्थ का लौटना : जितेन्द्र भाटिया, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2000।
59. कोठे पर कागा : चन्द्रकांता, किताबघर, नई दिल्ली, 1993।
60. तलाश : शीतांशु भारद्वाज, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986।
61. अजगर और बूढ़ा बढ़ई : नीलकांत, हाथ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1990।
62. बाजार में रामधन : कैलास बनवासी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005।
63. इन्द्रावती : मनीष राय, प्राची प्रकाशन, दिल्ली, 1982।
64. काफ़िर तोता : पुन्नी सिंह, अस्मिता प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999।
65. चल खुसरो घर आपने : मिथिलेश्वर, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2000।
66. दुनिया की सबसे हसीन औरत : संजीव, यात्री प्रकाशन, दिल्ली, 1990।
67. तीली-तीली आग : शरद सिंह, सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली, 2005।
68. मेरी चौदह कहानियाँ : शीतांशु भारद्वाज, जीवन ज्योति प्रकाशन, दिल्ली, 1990।
69. आखिर कब तक : एस.एल.मीणा, प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली, 1992।
70. प्रसंग : श्रीकांत वर्मा, संभावना प्रकाशन, हापुड़, 1981।
71. पत्थरगली : नासिरा शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983।
72. दुर्गा बनी रुक्मिणी : विश्वमोहन, रजनी प्रकाशन, दिल्ली, 2001।
73. बूढ़े वृक्ष का दर्द : दिनेश पालीवाल, लाइब्रेरी बुक सेण्टर, दिल्ली, 1994।
74. दूसरे देशकाल में : राजी सेठ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1992।
75. हुकुम की दुग्गी : रत्नकुमार सांभरिया, रचना प्रकाशन, जयपुर, 2005।
76. मुखौटा : ममता कालिया, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004।
77. अजगर करे न चाकरी : प्रेमपाल शर्मा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005।
78. पहली बरसी : यशपाल बैद, नालन्दा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1982।

79. नौसिखिया : राजेन्द्र राव, सत्साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983।
80. बहू का सपना : डॉ. उषा माहेश्वरी, प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली, 1994।
81. सहपाठी तथा अन्य कहानियाँ : सतीश जमाली, नई कहानी, इलाहाबाद, 1992।
82. विस्फोट : विजेन्द्र अनिल, प्रतिमान प्रकाशन, इलाहाबाद, 1984।
83. बीच का समर : विजयकांत, प्रतिमान प्रकाशन, इलाहाबाद, 1983।
84. कामरेड का कोट : सृंजय, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1993।
85. बच्चे बड़े हो रहे हैं : मदन मोहन, दिशा प्रकाशन, दिल्ली, 1989।
86. प्रतिनिधि कहानियाँ : मिथिलेश्वर, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1989।
87. तीसरी चिट्ठी : प्रेमपाल शर्मा, सचिन प्रकाशन, दिल्ली, 1989।
88. सगीर और उसकी बस्ती के लोग : हरि भटनागर, भारत-भारती, इलाहाबाद, 1989।
89. बिका हुआ आदमी : सी.दास.बांसल, भारत ग्रंथ निकेतन, बीकानेर, 2000।
90. बच्चे : सतीश जमाली, शीर्षक प्रकाशन, हापुड़, 1982।
91. पगला बाबा : गोविन्द मिश्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1988।
92. पथरकट : हृषीकेश सुलभ, प्रकाशन संस्थान दिल्ली, 1987।
93. मेरी प्रिय कहानियाँ-भाग-2 : जवाहर सिंह, हिमाचल पुस्तक भण्डार दिल्ली, 1993।
94. इस हमाम में : चित्रा मुद्गल, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1987।
95. पत्थरों से बँधे पंख : अशोक लव, संजीव प्रकाशन, दिल्ली, 1998।
96. हुक्का-पानी : अमितेश्वर, संभावना प्रकाशन, हापुड़, 1983।
97. प्यासों का रेगिस्तान : यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 1992।
98. मैं पत्नी हूँ किसी और की : डॉ. जगदीश महाजन, सीमांत प्रकाशन, दिल्ली, 1981।
99. जिंदगी एक रिहर्सल : विष्णु प्रभाकर, सृजन प्रकाशन, हापुड़, 1987।
100. हिमांशु जोशी की कहानियाँ : विकास पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 1984।
101. आखिर क्यों? : विष्णु प्रभाकर, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001
102. मालती जोशी की कहानियाँ : विकास पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 1984।
103. क्या सच कहूँ : एच. भीष्मपाल, साहित्य निधि, दिल्ली, 1995।
104. प्रधानमंत्री की प्रेमिका : आदित्य नारायण शुक्ल, शांति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996।
105. मोरी रंग दी चुनरिया : मालती जोशी, विकास पेपरबैक्स, दिल्ली, 1992।
106. इस उम्र में : श्रीलाल शुक्ल, राजकमल, नई दिल्ली, 2004।
107. चाणक्य की हार : राजेन्द्र मोहन भटनागर, सुयोग्य प्रकाशन, दिल्ली, 1993।
108. परिस्थितियाँ : मत्स्येन्द्र शुक्ल, आचार्य प्रकाशन, इलाहाबाद, 1990।
109. अगली किताब : स्वयं प्रकाश, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1988।
110. अजनबियों के बीच : रक्षा शुक्ला, समीक्षा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2001।
111. जो नहीं कहा गया : नवनीत मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2004।

(आ) उपन्यास :-

1. कैसी आग लगाई : असगर वजाहत, राजकमल, नई दिल्ली, 2004।
2. बशारत मंजिल : मंजूर एहतेशाम, राजकमल, नई दिल्ली, 2004।
3. बहुत लम्बी राह : कर्मेन्दु शिशिर, संभावना प्रकाशन, हापुड़, 2004।
4. लाल कोठी अलविदा : शरत कुमार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004।
5. बाबल तेरा देस में : भगवानदास मोरवाल, राजकमल, नई दिल्ली, 2004।
6. काला पहाड़ : भगवानदास मोरवाल, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 1999।
7. पठार पर कोहरा : राकेश कुमार सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2003।

8. पक्का महाल : अजय मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004।
9. कोहरे में कैद रंग : गोविन्द मिश्र, ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2004।
10. समरवंशी : सोहन शर्मा, रचना प्रकाशन, जयपुर, 2005।
11. कुछ न कुछ छूट जाता है : जया जादवानी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005।
12. किशोरी का आसमाँ : रजनी गुप्ता, किताबघर, नई दिल्ली, 2005।
13. जिदव्गी-ई-मेल : सुषमा जगमोहन, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005।
14. कही ईसुरी फाग : मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल, नई दिल्ली, 2004।
15. डूब : वीरेन्द्र जैन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991।
16. हुडुकलुल्लु : पंकज मित्र, तद्भव-12, फरवरी-2005।
17. बाजत अनहद ढोल : मधुकर सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005।
18. झीनी झीनी बीनी चदरिया : अब्दुल बिस्मिल्लाह, राजकमल, नई दिल्ली, 1987।
19. मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगा : रवीन्द्र वर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005।
20. पिछले पन्ने की औरतें : शरद सिंह, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005।
21. जो इतिहास में नहीं है : राकेश कुमार सिंह, ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005।
22. सूखा बरगद : मंजूर एहतेशाम, राजकमल, नई दिल्ली, 1986।
23. यथा प्रस्तावित : गिरिराज किशोर, राजकमल, नई दिल्ली, 1982।
24. परिशिष्ट : गिरिराज किशोर, राजकमल, नई दिल्ली, 1984।
25. किस्सा लोकतंत्र : विभूतिनारायण राय, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 1993।
26. सर्कस : संजीव, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 1984।
27. जंगल जहाँ शुरू होता है : संजीव, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 2000।
28. सावधान ! नीचे आग है : संजीव, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 1986।
29. धार : संजीव, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 1990।
30. नरक कुंड में वास : जगदीश चन्द्र, राजकमल, नई दिल्ली, 1994।
31. गगन घटा घहरानी : मनमोहन पाठक, कतार (उपन्यास विशेषांक), जनवरी से सितम्बर 1991, धनबाद (बिहार), 1991।
32. परछाई नाच : प्रियंवद, ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2000।
33. कुइयाँजान : नासिरा शर्मा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005।
34. कठघरे : वल्लभ सिद्धार्थ, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 1997।
35. तर्पण : शिवमूर्ति, राजकमल, नई दिल्ली, 2004।
36. डर हमारी जेबों में : प्रमोद कुमार तिवारी, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004।
37. ईंधन : स्वयं प्रकाश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004।
38. उत्तर बायाँ है : विद्यासागर नौटियाल, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 2004।
39. मोबाइल : क्षमा शर्मा, राजकमल, नई दिल्ली, 2005।
40. बनानी : उदयभानु पाण्डेय, हिंदी बुक सेण्टर, नई दिल्ली, 2004।
41. दर्दपुर : क्षमा कौल, ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2004।
42. अस्तित्व : ज्ञानप्रकाश विवेक, ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005।
43. चिरंजीव : चन्द्रकिशोर जायसवाल, रचनाकार प्रकाशन, पूर्णिया, 2005।
44. पिघलेगी बर्फ : कामतानाथ, ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005।
45. मुझे माफ करना : दिनेशनंदिनी डालमिया, नेशनल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 1986।
46. बँटता हुआ आदमी : निरुपमा सेवती, नेशनल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 1986।
47. सातनदियाँ : एक समन्दर : नासिरा शर्मा, अभिव्यंजना, नई दिल्ली, 1986।

48. हलाहल : धीरेन्द्र अस्थाना, सचिन प्रकाशन, दिल्ली, 1988।
49. चाक : मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल, नई दिल्ली, 1997।
50. मुझे चाँद चाहिये : सुरेन्द्र वर्मा, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 1993।
51. पीली आँधी : प्रभा खेतान, लोकभारती, इलाहाबाद, 1996
52. सात आसमान : असगर वजाहत, राजकमल, नई दिल्ली, 1996।
53. आब्जेक्शन मी लार्ड : निर्मला भुराड़िया, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
54. रंगमहोत्सव : सुदर्शन नारंग, संभावना प्रकाशन, हापुड, 2005।
55. बर्ड हिट : राजेश जैन, अंतरा प्रकाशन, दिल्ली, 2005।
56. कथांतर : उषा यादव, किरण प्रकाशन, दिल्ली, 2005।
57. सुबह दोपहर शाम : कमलेश्वर, समग्र उपन्यास, राजपाल, नई दिल्ली, 1988।
58. रेगिस्तान : कमलेश्वर, समग्र उपन्यास, राजपाल, नई दिल्ली, 1988।
59. हेलो सुजीत : तेजिन्दर, ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2004।
60. अभी शेष है : महीप सिंह, किताबघर, नई दिल्ली, 2004।
61. पूर्वी द्वार : कुसुम कुमार, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005।
62. यह जग काली कूकरी : सूर्यकांत नागर, दिशा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005।
63. चलो दोस्त सब ठीक है : शैलेन्द्र सागर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003।
64. जमीन : बनाफर चन्द्र, यात्री प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005।
65. छाड़न : सुरेन्द्र स्निग्ध, पुस्तक भवन, नई दिल्ली, 2005।
66. ठहते स्वप्नदीप : डॉ. मनीषा शर्मा, साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988।
67. आकाश अपने अपने : प्रकाश शुक्ल, शिशुभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1988।
64. शोक सभा : हिमांशु श्रीवास्तव, राजपाल, नई दिल्ली, 1983।
65. जाग मछन्दर गोरख आया : डॉ. विशम्भरनाथ उपाध्याय, राजपाल, नई दिल्ली, 1983।
66. हर आदमी का डर : कुलदीप बग्गा, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983।
67. राहु केतु : श्रवण कुमार गोस्वामी, राजपाल, नई दिल्ली, 1985।
68. जोगती : दुर्गा प्रसाद शुक्ल, पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1982।
69. दारुलशफा : राजकृष्ण मिश्र, शब्दाकार, नई दिल्ली, 1981।
70. दहकन के पार : निरुपमा सेवती, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1983।
71. शब्ध-वध : वीरेन्द्र जैन, सचिन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1987।
72. रंग गई मोर चुनरिया : डॉ. कृष्णावतार पाण्डेय, सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली,1995।
73. थकी हुई सुबह : रामदरश मिश्र, सुधा बुक मार्ट, नई दिल्ली, 2001।
74. अंतिम सत्याग्रही : राजेन्द्र मोहन भटनागर, डव पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2001।
75. नीलू नीलिमा नीलोफर : भीष्म साहनी, राजकमल, नई दिल्ली, 2000।
76. शेफाली के फूल : विद्यावती दुबे, सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली, 1996।
77. आखर चौरासी : कमल, नवचेतना प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003
78. अनि अनावृत : कु. इन्दिरा, अतुल-आलोक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981।
79. रामकली : शैलेश मटियानी, विभा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1990।
80. अन्धरी : एम. रहमान अन्सारी, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 2002।
81. रास्तों पर भटकते हुए : मृणाल पाण्डे, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 2000।
82. यह हार नहीं : क्रान्ति त्रिवेदी, नीलकंठ प्रकाशन, दिल्ली, 2001।
83. अंधियारे उजियारे : डॉ. मनीषा शर्मा, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 1994।
84. प्रपंचतंत्र : मुद्राराक्षस, राधाकृष्ण, दिल्ली, 1983।
85. नौशीन : पद्मा सचदेव, किताबघर, दिल्ली, 1995।

86. घर : विभूतिनारायण राय, अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद, 1981।
87. अनदेखे पुल : से.रा.यात्री, हर्षिता प्रकाशन, लखनऊ, 2003।
88. अनोखा आरोही : क्रान्ति त्रिवेदी, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 2005।
89. समुद्र तट पर खुलने वाली खिड़की : कामतानाथ, नवसृजन, नई दिल्ली, 2000।
90. टपरेवाले : कृष्णा अग्निहोत्री, सुधा बुक मार्ट, नई दिल्ली, 2003।
91. रात का सफर : रामदरश मिश्र, जे. के. बुक सेण्टर, नई दिल्ली, 2001।
92. वंशज : मृदुला गर्ग, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1999।
93. मुक्तिपर्व : मोहनदास नैमिशराय, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999।
94. सुन्नर पांडे की पतोह : अमरकांत, कृतिकार, इलाहाबाद, 1993।
95. हरिया हरक्यूलीज की हैरानी : मनोहर श्याम जोशी, राजकमल, नई दिल्ली, 1999।
96. खण्डित अभिमान : यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', प्रवीण प्रकाशन, इलाहाबाद, 1995।
97. तबादला : विभूतिनारायण राय, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 2001।
98. आँखर : देवेन्द्र उपाध्याय, सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली, 1989।
99. दीवार में एक खिड़की रहती थी : विनोद कुमार शुक्ल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997।
100. धीर समीरे : गोविन्द मिश्र, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 1988।
101. तुम्हारी रोशनी में : गोविन्द मिश्र, राजकमल, नई दिल्ली, 1985।
102. अग्निबीज : मार्कण्डेय, कथा प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000।
103. लहरों की बेटी : प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1995।
104. अपना मोर्चा : काशीनाथ सिंह, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 1985।
105. महाभिषग : भगवान सिंह, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 1990।
106. कठगुलाब : मृदुला गर्ग, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1996।
107. झुण्ड से बिछड़ा : विद्यासागर नौटियाल, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005।
108. शेष कादम्बरी : अलका सरावगी, राजकमल, नई दिल्ली, 2002।
109. पत्ताखोर : मधु काँकरिया, राजकमल, नई दिल्ली, 2006।
110. जवाहर नगर : रवीन्द्र वर्मा, किताबघर, नई दिल्ली, 1995।
111. निन्यानबे : रवीन्द्र वर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998।
112. बारामासी : ज्ञान चतुर्वेदी, राजकमल, नई दिल्ली, 1999।
113. कोई वीरानी सी वीरानी है : विजयमोहन सिंह, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 1998।
114. किस्सा गुलाम : रमेशचन्द्र शाह, राजकमल, नई दिल्ली, 1986।
115. बीच में विनय : स्वयं प्रकाश, राजकमल, नई दिल्ली, 1994।
116. जुलूस वाला आदमी : रमाकांत, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 1993।
117. दूसरा घर : रामदरश मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986।
118. सु-राज : हिमांशु जोशी, किताबघर, नई दिल्ली, 1982।
119. नीला चाँद : शिवप्रसाद सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988।
120. पगली घंटी : हृदयेश, किताबघर, नई दिल्ली, 1995।
121. सूरज सबका है : विद्यासागर नौटियाल, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 1997।
122. लेकिन दरवाजा : पंकज बिष्ट, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 1982।
123. अपने अपने राम : भगवान सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992।
124. उन्माद : भगवान सिंह, राजकमल, नई दिल्ली, 1999।
125. शीर्षक : चंद्रकिशोर जायसवाल, रचनाकार प्रकाशन, पूर्णिया, 1996।
126. बेदखल : कमलाकांत त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997।

127. दिलोदानिश : कृष्णा सोबती, राजकमल, नई दिल्ली, 1993।
128. भीम अकेला : विद्यासागर नौटियाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994।
129. छिन्नमस्ता : प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993।
130. तत् सम : राजी सेठ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983।
131. आधा मसीहा : सुभाष नरूला, दिनमान प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991।
132. इदन्नमम : मैत्रेयी पुष्पा, किताबघर, नई दिल्ली, 1994।
133. विस्रामपुर का संत : श्रीलाल शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998।
134. सोना माटी : डॉ. विवेकी राय, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983।
135. समर शेष है : डॉ. विवेकी राय, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988।
136. मंगल भवन : डॉ. विवेकी राय, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994।
137. उसी शहर में : ध्रुव शुक्ल, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 1988।
138. शहर में कर्फ्यू : विभूतिनारायण राय, अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद, 1986।
139. गुजर क्यों नहीं जाता : धीरेन्द्र अस्थाना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997।
140. कालकथा : कामतानाथ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998।
141. अंतिम अरण्य : निर्मल वर्मा, राजकमल, नई दिल्ली, 2000।
142. समय सरगम : कृष्णा सोबती, राजकमल, नई दिल्ली, 2000।
143. पटरंगपुर पुराण : मृणाल पाण्डे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983।
144. एक जमीन अपनी : चित्रा मुद्गल, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990।
145. आवाँ : चित्रा मुद्गल, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000।
146. राधिका : क्रांति त्रिवेदी, पाण्डुलिपि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001।

(इ) आलोचनात्मक ग्रन्थ :-

1. हम भारत के लोग : नानी पालखीवाला, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991।
2. यह बर्बरता कहाँ छुपी थी? : सम्पादक सुनील, अमृत पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1985।
3. पंचायती राज व्यवस्था : सं. देवेन्द्र उपाध्याय, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998।
4. साहित्य, संगीत और कला : कोमल कोठारी, विज्ञान लोक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002।
5. पीपल के बहाने : विद्यानिवास मिश्र, दिवि इण्टरनेशनल, दिल्ली, 2001।
6. दंगे : क्यों और कैसे? : परिकल्पना और प्रारूप- डॉ. गिरिराज शाह, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 1995।
7. धर्म और राजनीति : डॉ. रामजी मिश्र, आचार्य प्रकाशन, इलाहाबाद, 2001।
8. विधि व्यवस्था का यथार्थ : डॉ. प्रेमलता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993।
9. पुलिस और मानवाधिकार : डॉ. एस.सुब्रह्मण्यम, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998।
10. हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकार : सं. रमेश उपाध्याय, राधा पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1996।
11. भारत के विकास की समस्याएँ और समाधान : डॉ. प्रमोद कुमार अग्रवाल, लोकभारती, इलाहाबाद, 1998।
12. भूमण्डलीकरण और उत्तर सांस्कृतिक विमर्श : सुधीश पचौरी, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003।
13. संस्कृति, चेतना, विचारधारा : एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य : के.एन. पणिक्कर, सफदर हाशमी मेमोरियल ट्रस्ट, नई दिल्ली, 1995।
14. आधुनिक परिवार समस्याएँ और संक्रमण : एस.आर. गुप्त, सीता प्रकाशन, हाथरस, 1998।

15. विकास का समाजशास्त्र : श्यामाचरण दुबे, साक्षरा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001।
16. परिधि पर स्त्री : मृणाल पाण्डे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996।
17. द इकोनॉमिक्स ऑफ डेवलपिंग कन्ट्रीज : आर.एन.प्रतिमा त्रिपाठी, इन्दस पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 1999।
18. विकास और विषमता : भारत डोगरा, सी.-27 पश्चिम विहार, नई दिल्ली, 1993।
19. समाज और पर्यावरण : अनु. जगदीशचन्द्र पाण्डेय, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1986।
20. इतिवृत्त की संरचना और संरूप (15 वर्षों के प्रतिमान उपन्यास) : रोहिणी अग्रवाल, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, 2006।
21. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास : डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, लोकभारती, इलाहाबाद, 2004।
22. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य का विकास : डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, राजपाल, नई दिल्ली, 1996।
23. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 2004।
24. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं. 2006 वि. (पाँचवाँ संस्करण)।
25. हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल, नई दिल्ली, 2004।
26. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. बच्चन सिंह, लोकभारती, इलाहाबाद, 2003।
27. हिन्दी कहानी अंतरंग पहचान : रामदरश मिश्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1994।

पत्र पत्रिकाएँ :-

1. कादम्बिनी
2. कथादेश
3. वसुधा
4. वागर्थ
5. नया ज्ञानोदय
6. कथाक्रम
7. आजकल
8. हंस
9. धर्मयुग
10. साप्ताहिक हिन्दुस्तान
11. माया
12. कतार
13. सम्बोधन
14. सारिका
15. साक्षात्कार
16. पहल
17. समकालीन भारतीय साहित्य
18. कहानी संचयन
19. पाटलिप्रभा
20. इंदप्रस्थ भारती
21. समकालीन परिभाषा
22. समयांतर
23. आसपास की दुनिया
24. सामयिक वार्ता

25. इंडिया टुडे
26. तद्भव
27. मित्र
28. राष्ट्रीय सहारा
29. अमर उजाला
30. दैनिक जागरण
31. नवभारत टाइम्स
32. द पायनियर
33. सहारा समय

शब्द कोश :

1. वृहत् हिन्दी कोश : कालिका प्रसाद, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, सं. 2009 वि.।
2. अंग्रेजी हिन्दी कोश : फॉदर कामिल बुल्के, एस. चंद, नई दिल्ली, 1983 (तृतीय संस्करण)।

परिशिष्ट

परिशिष्ट

आठवें दशक के बाद के हिन्दी कथा साहित्य के कथ्यात्मक चिंतन और समय के सत्य के बीच सम्बन्धों को विश्लेषित करते हुए 'आज के कथाकारों' के विचारों को जानना और शोध प्रबंध में प्रस्तुत करना तर्कसंगत और महत्त्वपूर्ण होगा। इस कारण आठवें दशक के बाद के तमाम कहानीकारों एवं उपन्यासकारों के विचारों को जानने-समझने हेतु अनेक रचनाकारों के पास निम्नलिखित प्रश्न सूची भेजी गयी।

1. **आपको साहित्यकार बनने की प्रेरणा कहाँ से और कैसे मिली (कृपया अपने जन्म, अपनी रचनाओं और अपनी विशिष्ट उपलब्धियों का उल्लेख भी करें)?**
2. **कहानी/उपन्यास लिखने के पीछे आपका अपना उद्देश्य क्या है?**
3. **कथा-साहित्य के शास्त्रीय कथ्यात्मक चिंतन के बारे में आपके क्या विचार हैं?**
4. **देश और विश्व में व्याप्त समस्याओं को आप किस रूप में देखते हैं और अपनी रचनाओं में इन्हें किस प्रकार समायोजित/प्रकट करते हैं?**
5. **समग्र साहित्य में हिन्दी कथा-साहित्य का क्या स्थान है और यह समाज एवं राष्ट्र के निर्माण/विध्वंस में किस प्रकार उत्तरदायी है?**
6. **कथा साहित्य के वर्तमान और भविष्य की दिशा और दशा के सन्दर्भ में आपका क्या दृष्टिकोण है?**

उपरोक्त प्रश्न सूची के जवाब में कुछ प्रमुख कथाकारों के उत्तर प्राप्त हुए, जिन्हें ज्यों-का-त्यों यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है।

गोविन्द मिश्र :

1. मेरा जन्म, अतर्रा (जिला-बाँदा) में हुआ था। तब मेरी माँ वहाँ प्राइमरी स्कूल में पढ़ाती थीं, पिता मुंगौड़े की दुकान खोले थे। वहाँ से हम चरखारी गये जहाँ पर माँ को रियासत के स्कूल में नौकरी मिल गयी थी। रियासतों के खत्म होने पर वह स्कूल जिला बोर्ड के स्कूल में शामिल कर लिया गया, माँ का तबादला गाँव के स्कूल में कर दिया गया। चूँकि वहाँ मेरी पढ़ाई की सुविधा नहीं थी इसलिए माँ ने वह नौकरी छोड़ बाँदा के एक प्राइवेट स्कूल में नौकरी कर ली। आठवें दर्जे तक मेरी पढ़ाई चरखारी में हुई, 9-10 मैंने डी.

ए.वी. हाईस्कूल बाँदा से और इण्टर गवर्नमेण्ट इण्टर कौलेज, बाँदा से किया। बी.ए., एम.ए. प्रयाग विश्वविद्यालय से किया।

इण्टर में था तभी (14 साल की उम्र में) कुछ कहानियाँ लिखी थीं, एक विशेष पाठ्क के लिए...... वह थी मेरी प्रेमिका। उसे प्रेरणा कह सकते हैं तो कहें........पर अब मुझे लगता है कि भावनात्मक दबाव था वह जो सम्प्रेषण माँगता था। वैसा ही दबाव आज भी लिखवाता है।

2. दुःख की हिस्सेदारी करना अगर वे दूसरों के हैं तो, अपने हैं तो उन्हें समझना। पाठ्कों को उनका हिस्सेदार बनाना..... इस तरह पाठ्कों में उनके हिस्से के दुःखों को सहने की आत्मिक शक्ति विकसित करना। साहित्य अन्ततः जीवन की व्याख्या है और कहानी-उपन्यास में रचनाकार जीवन की सृष्टि करते हुए उसकी लिखित/अलिखित व्याख्या करता चलता है, जबकि वास्तविकता में जीवन सिर्फ हम पर से गुज़र जाता है।

3. मुझे नहीं मालूम यह चिंतन कौन-सा है। जिस जीवन या जीवन खण्ड को मैं उठाता हूँ. ... उसके सामने खुला होकर प्रस्तुत हो जाता हूँ..... फिर उसी में से कथ्य निकलता है। विचारधारात्मक पूर्वग्रह या विशिष्ट दिमागी कसरत से कोई कथा सायास निकालने की कोशिश नहीं करता।

4. जिस जीवन को मैं उठा रहा हूँ उसे ये समस्याएँ पहले से ही प्रभावित किए रहती हैं; अलग से उन समस्याओं को उठाना, या उन समस्याओं के इर्द गिर्द जीवन को बुनना (कल्पना से)..... यह मुझे नहीं भाता। उदाहरण के लिए राजनीति के भ्रष्टाचार पर सीधे लिखा तो पत्रकारिता हो गयी, लेकिन हमारा दैनन्दिन जीवन तो उस भ्रष्टाचार से प्रभावित है ही तो उस जीवन को प्रस्तुत किया तो परोक्ष रूप से राजनीति तो आ ही गई। 'पाँच आँगनों वाला घर' उपन्यास में कथ्य जो आया वह यह था कि देश की राजनैतिक गतिविधियों से समाज, परिवार यहाँ तक कि व्यक्तियों की जीवन शैली प्रभावित हुई, उनके समानान्तर बदली....... तो परिप्रेक्ष्य में राजनैतिक गतिविधियाँ आईं पर सामने जीवन ही रहा। इसलिए जीवन पर केन्द्रित रहते हुए कोई रचनाकार समकालीन समस्याओं की तरफ से उदासीन है- ऐसा नहीं माना जा सकता। कभी इशारों में, कभी न कहकर भी वह उन्हें कह जाता है, उनको लेकर अपनी वेदना प्रकट कर ही जाता है। बहुत सीधे या बहुत ज्यादा कहने से कला विरूपित होती है।

5. साहित्य में कथा साहित्य का विशेष स्थान है क्योंकि यहाँ, विशेषकर उपन्यास में, जीवन फैलाकर दिखाया जाता है, करीब-करीब वैसा ही जैसा वह बाहर है। इसलिए उसका प्रभाव भी अधिक होता है।

फिर भी समाज/राष्ट्र के निर्माण-विध्वंस आदि का निर्णायक होने की हद तक वह प्रभाव नहीं जाता। वह निर्माण-विध्वंस दूसरी ताकतों से नियंत्रित होता है। आज हमारे देश क्या, विश्व के अधिकांश नेता जो राष्ट्र/समाज के बारे में अहम फैसले लेते हैं, एक तरह से नियामक हैं.......वे पढ़ते ही नहीं (अमेरिका के राष्ट्रपति जौर्ज बुश तो अपढ़ माने जाते हैं)। हमारे देश में नेता पढ़े-अपढ़ लोग हैं, जितना पढ़े हैं उस आधार पर भी फैसले नहीं लेते, जिसे कहते हैं- वोट की राजनीति, वह उनसे फैसले करवाती है। तो यहाँ कहाँ है साहित्य। जो यह कहते हैं कि साहित्य का देश-समाज के निर्माण में प्रभाव है, उनके माध्यम से राजनीतिज्ञ हैं जो यह कहते हैं, जो अपनी विचारधारा के प्रचार के लिए एक विशेष प्रकार का साहित्य चाहते हैं और उसे ही आगे बढ़ाते हैं ताकि वह उनकी विचारधारा का प्रचार करे।

असली साहित्य अधिक से अधिक व्यक्ति, इन्डिविजुअल को प्रभावित करता है क्योंकि उसके एकांत से साहित्य का वार्तालाप है। व्यक्तियों को प्रभावित करते-करते ही समाज भी थोड़ा-बहुत प्रभावित होता है। इसमें वर्षों लग जाते हैं.....और इस प्रभाव में अन्य शक्तियाँ भी काम करती हैं।

6. हिन्दी कथा साहित्य के संदर्भ में कहूँ तो आज शिल्प, प्रयोग, भाषा आदि क्षेत्रों में तो बहुत विकास हुआ है, संवेदना सूखती सी दिखती है। जैसे हर चीज का इस्तेमाल कर उससे पाने की लालसा है, वैसी ही साहित्य से भी...... लेखक कुछ पाना चाहता है..... पद, पैसा, प्रतिष्ठा। मध्य युग के भक्त कवियों के 'सन्तन की कहाँ सीकरी सों काम' वाला 'एप्रोच' या गोगोल की प्रसिद्ध कहानी 'तस्वीर' में कलाकार को कैसा होना चाहिए उसकी तस्वीर से हम बहुत दूर भटक आए हैं।

गनीमत कि हर भाषा में इक्के दुक्के वैसे साहित्यकार अब भी हैं। जैसे आज मनुष्य, पेड़, नदियों, जंगल आदि की अपेक्षा है, वैसी ही साहित्य की भी। फिलहाल अभी तक तो यह सिलसिला थमता नहीं दिखता।

(02.12.2006)

रजनी गुप्ता :

1. साहित्यकार बनने की प्रेरणा तो जीवन की परिस्थितियों से मिली। अंदरूनी उद्विग्नताओं, बेचैनियों और द्वन्द्व से घिरे अन्तस् की अभिव्यक्तियाँ 'साहित्य सर्जना' हेतु प्रेरक बनीं।
2. हर एक के जीवन में कुछ अनुकूल..... कुछ प्रतिकूल क्षण आते हैं। रचना दबावों का प्रस्फुटन है। लिखने के पीछे एक ही उद्देश्य है कि अपना निजी दुःख सार्वजनिक लोगों की पीड़ा से जुड़कर सामूहिक दुःख की अभिव्यक्ति में बदल जाए। व्यवस्था से उपजे सवाल धीरे-धीरे सामूहिक लोगों के दिलो दिमाग को झंकृत करें और हमारे आस-पास जो अन्याय है...... जो क्रूरता है, जैसी कड़वी हकीकतें हैं- उन्हें सबके सामने साहित्य के जरिए लाया जाय।
3. कथा साहित्य के शास्त्रीय कथ्यात्मक चिंतन के बारे में ज्यादा कुछ नहीं बता सकती...... सिर्फ इतना जानती हूँ कि जीवन से निकल कर जब रचनाएँ सामने आती हैं तभी कोई विचार या दर्शन सृजित होता है। ओढ़ा हुआ चिंतन उपन्यास का आधार विन्दु नहीं बन सकता।
4. हमारे आसपास जो-जो हो रहा है- हम उन्हें ही रचनात्मक सामग्री की तरह इस्तेमाल करते हैं। हमारा कच्चा माल जीवन की भट्ठी से तप कर आता है जिसे हम भाषा और संवेदना के जरिए उकेरते हैं।

   हमारे देश की समस्या हो या समाज की कोई भी विसंगति- हमारा लेखन उनसे अछूता नहीं रह सकता। जैसे कन्या भ्रूण हत्या जैसी समस्या को ही लें- मैंने अभी हाल ही में इस विषय पर केन्द्रित कहानी लिखी है- 'गठरी', जो शीघ्र ही हंस में आने वाली है।
5. समग्र साहित्य में हिन्दी कथा साहित्य का स्थान तय करना तो मुश्किल है मगर हिन्दी कथा साहित्य हिन्दी भाषी राज्यों तक ही फैला है। हमारे पाठक मध्यवर्गीय जीवन से जुड़े हैं और संख्या आँकड़ों के हिसाब से सबसे अधिक होगी। हिन्दी भाषी बेल्ट की जनसंख्या पूरे देश की आबादी के कितने प्रतिशत में है? जब यह तय होगा तो उसी के हिसाब से हमारा साहित्य भी। साहित्य समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में सक्रिय भूमिका अदा करता है- इसमें दोराय नहीं। साहित्य के जरिए हम मनुष्यता सीखते हैं। प्रेम, उदारता, सदाशयता और इन्सानियत का जज्बा सिखाता है साहित्य। साहित्य पढ़कर व्यक्ति के भीतर की सोई कोमल भावनाएँ जगती हैं और वह एक श्रेष्ठ व्यक्ति में बदल जाता है। क्षमा, उदारता, सहनशीलता, सहिष्णुता और इन्सानियत जैसे जीवन मूल्यों को वहन करता हुआ साहित्य हमेशा निर्माण यानी सृजन करता है- विध्वंस कभी नहीं चाहता साहित्य। साहित्य का मतलब ही है साथ

लेकर चलना- सहित..... से साहित्य...... बना।

6. कथा साहित्य का वर्तमान खूब समृद्ध है........और भविष्य भी उज्ज्वल है। हाँ, पाठकों की घटती संख्या और मीडिया की बढ़ती भागीदारी जरूर चिंता जनक है मगर इस तकनीकी क्रान्ति के बावजूद लिखे हुए-छपे हुए शब्दों की गरिमा हमेशा बनी रहेगी- ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

(20.12.2006)

विजय :

मेरा जन्म 06.09.1936 को आगरा में हुआ था। एक वर्ष का भी नहीं था तब पिता की मृत्यु हो गयी और बेहद गरीबी में हम लोगों ने दिन काटे। माँ ने सिखाया था........ संघर्ष करना। भूखे हो तो डकार लो कि लोग पेट भरा समझें, दया नहीं करें!

37 वर्ष रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन में कार्य करके वैज्ञानिक 'ई' के पद से रिटायर हुआ। 1997 में दिल्ली में फ्लैट खरीदा मगर अब ज्यादातर वक्त नोयडा या इन्दिरापुरम में कटता है। हाँ, पत्र-पत्रिकायें इसी पते पर आती हैं, जिन्हें 10-15 दिन में मंगवा लेता हूँ।

जगह-जगह रहा व जाता रहा हूँ इसीलिए पाँच दर्जन ऐसी कहानियाँ हैं जो अहिन्दी क्षेत्र पर आधारित हैं। गाथा व पड़ाव में लगभग 20 प्रांतों की कहानियाँ हैं, पोस्टर से झाँकते चेहरे में महाराष्ट्र पर आधारित कहानियाँ हैं। उपन्यास साकेत के यूकेलिप्टस, डुआस (भूटान का द्वार) के चाय बागान के वर्तमान पर है। नवीनतम संग्रह ज झ द है (ज- जनजातीय, झ- झोपड़ पट्टी व द- दलित) जो अभी-अभी आया है।

(23.08.2006)